

श्री ओउम्प्रकाशजी वर्मा को सप्रेम भेंट

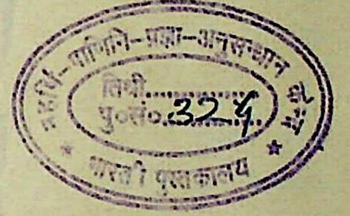
पीयूष

प्रकाश साहित्य प्रकाशन
पहाड़गंज अजमेर

[संपादन]

डा० भवानी लाल भारतीय □ सदाविजय आर्य

२५८



प्रकाश अभिनन्दन ग्रन्थ

पं. प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न' अभिनन्दन समारोह समिति अजमेर (राजस्थान)

दीपावली, 1971

सहयोगी
धर्मसिंह कोठारी



कलात्मक सज्जा एवं आवरण
'कलायोग', अजमेर



ब्लॉक निर्माता
वैदिक यंत्रालय, अजमेर



मुद्रक
वैदिक यंत्रालय, अजमेर

मूल्य : पन्द्रह रुपए मात्र

प्रकाशक
पं. प्रकाशचन्द्र कविरत्न अभिनन्दन समारोह समिति
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर [राजस्थान]

पं० प्रकाशचन्द्र जी "कविरत्न" अभिनंदन समारोह समिति

स्वागताध्यक्ष : पं. नरेन्द्र जी हैदराबाद
स्वागत-मंत्री : श्री श्रीकरण जी शारदा
संयोजक : डॉ. भवानीलाल जी भारतीय
सह-संयोजक : श्री पन्नालाल जी पीयूष
ग्रंथ-संपादन : श्री सदाविजय आर्य
कोषाध्यक्ष : श्री सुरेन्द्र प्रकाश जी शर्मा

सदस्यगण

सर्वश्री	सर्वश्री
आनन्द स्वामी सरस्वती	रणंजयसिंह अमेठी
ओमानन्द सरस्वती झज्झर	नारायणसिंह मसूदा
ब्रह्मानन्द दण्डी एटा	रामेश्वरानन्द घरौण्डा
ब्रह्मानन्द सरस्वती उड़ीसा	हंसराज गुप्त दिल्ली
अमरस्वामी गाजियाबाद	क्षेमचन्द्र "सुमन" दिल्ली
अभेदानन्द सरस्वती अजमेर	श्री जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ"
इन्द्रवेश दिल्ली	डॉ. सूर्यदेव शर्मा अजमेर
अग्निवेश दिल्ली	पं. रमेशचन्द्रजी शास्त्री एम. ए.
दुःखनराम पटना	विद्योत्तमायति हरिद्वार
रामगोपाल शालवाले दिल्ली	आनन्दप्रिय बड़ौदा
ओम्प्रकाश त्यागी दिल्ली	सरलाकुमारी शारदा अजमेर
प्रियव्रत गुरुकुल कांगड़ी	रामचन्द्र आर्यमुसाफिर अजमेर
रघुवीरसिंह शास्त्री दिल्ली	रामानन्द शास्त्री पटना
प्रकाशवीर शास्त्री,	विद्याधर शर्मा कानपुर
शिवकुमार शास्त्री लखनऊ	सुखलाल आर्य मुसाफिर अरनिया
सुदर्शनदेव शाहपुरा राज्य	नन्दलाल आर्यमिशनरी करतारपुर
श्रीकरण शारदा अजमेर	विजयकुमार गोविन्दराम दिल्ली
दत्तात्रेय वाब्ले अजमेर	विद्यावती सब्भरवाल कलकत्ता
भगवानस्वरूप अजमेर	बिहारीलाल शास्त्री बरेली
छोटूसिंह अलवर	भगवानदेव आर्य बम्बई
जगदेवसिंह सिद्धान्ती दिल्ली	सुशीलादेवी साहनी बम्बई
प्रतापसिंहशूरजी बम्बई	धर्मजित जिज्ञासु मदरास

जोरावरसिंह बरसाना	छबीलदास सैनी कलकत्ता
कन्हैयालाल आर्य गोरखपुर	बाबूलाल गुप्त लश्कर
वीरेन्द्र "धनुर्धर" शामली	वाचस्पति शास्त्री आगरा
लक्ष्मण कुमार शास्त्री कानपुर	हरिदत्त शास्त्री ज्वालापुर
भद्रपाल हरदुआगंज	उग्रसेन लेखी जयपुर
नन्दलाल आर्य गाजीपुर	रामनारायण शास्त्री पटना
वासुदेव शर्मा पटना	वटुकृष्ण वर्मन कलकत्ता
रामसिंह दिल्ली	विशम्भर प्रसाद नागपुर
मंजुनाथ शास्त्री अजमेर	देवीदास आर्य कानपुर
कृष्णलाल पोद्दार कलकत्ता	ओमप्रकाश वर्मा यमुनानगर
जयसिंह गायकवाड़ जबलपुर	ओंकार नाथ बम्बई
रुक्मणिदेवी बम्बई	राजबहादुर कोटा
गुलजारी लाल बम्बई	नाहरसिंह कोटा जंक्शन
बलवन्तसिंह उदयपुर	उदयभानु इन्द्र
केशवसिंह सांखला जोधपुर	हरप्रसाद ज्वालापुर
उमेशचन्द्र स्नातक हल्द्वानी	वैद्य मोहनलाल आर्यप्रेमी अजमेर
मिहिरचन्द धीमान् कलकत्ता	वैद्य धर्मसिंह कोठारी

□□□

महर्षि दयानन्द सरस्वती

[आर्य समाज तथा कविरत्न पं. प्रकाशचन्द्र जी के प्रेरणा-स्रोत]

अनुक्रमणिका

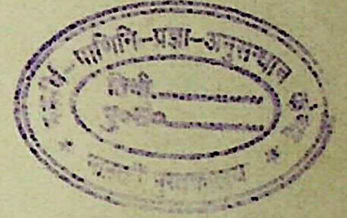
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सामयिक चिन्तन

काव्य-संकलन

परिशिष्ट

॥ ओ३म् ॥



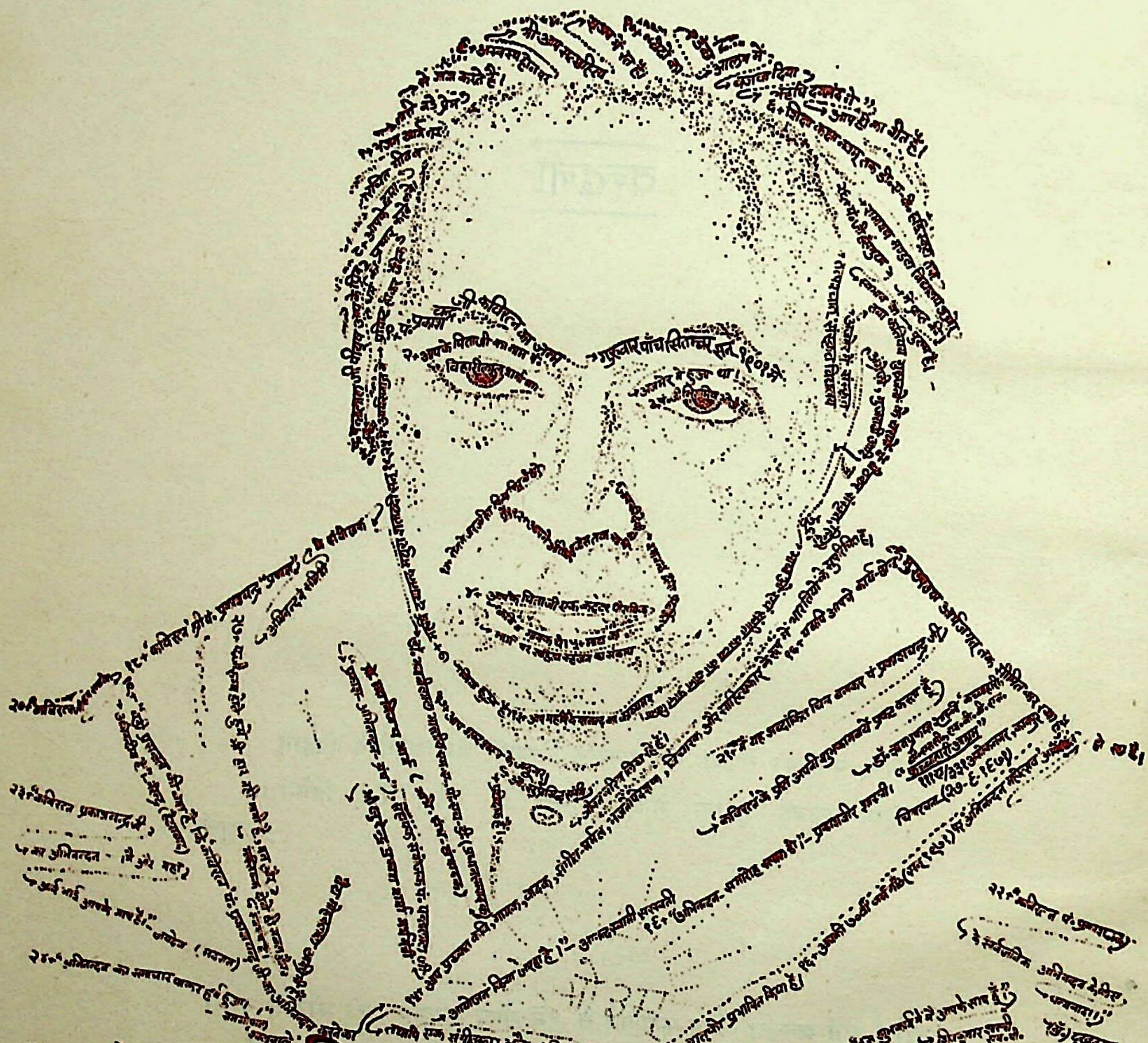
वन्दना

ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जु हुराण मेनो भूयिष्ठां ते नमः उक्ति विधेम ॥

☐ यजुर्वेद

प्रभो ! धर्म अनुकूल प्रिय पुण्य-पथ से हमें शीघ्र कल्याण की ओर ले चल ।
परम देव ! तू जानता है हमारे सकल कृत्य जो हैं मलिन और निर्मल ॥
सभी पाप, दुष्कर्म कर नष्ट, जिससे मनुज-जन्म हो पूर्ण सार्थक समुज्ज्वल ।
अमित स्नेह, श्रद्धा सहित कर रहे हैं कि तेरे लिये हम नमस्कार प्रतिपल ॥

☐ प्रकाशचंद्र



अक्षर (रेखा) चित्र : डा० ज्ञानचन्द्र, कानपुर

सम्पादकीय

एक व्यक्ति अपने जीवन की समस्त क्षमता से ऐसे कार्य करता है जिससे सामाजिक क्षेत्र लाभान्वित होता है. ऐसा कार्य .करने वाले व्यक्ति व्यक्तिगत सुखों का, पारिवारिक उत्तरदायित्वों का, ऐश्वर्य-संपत्ति का लेश मात्र भी विचार न करते हुए उद्दिष्ट कर्म में रत रहते हैं, कई ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं कि अपनी शारीरिक क्षमता से बढ़ कर कार्य करने वाले व्यक्ति अकाल में ही रोग शय्या अथवा मृत्यु को प्राप्त होते हैं ऐसे समाजोपकारक कार्य करने पर वस्तुतः व्यक्ति को मिलता क्या है। [सामाजिक कार्य का आडंबर रच कर संपत्ति या धन का संग्रह करने वाले असामाजिक तत्वों को छोड़ कर।] संभवत. उन्हें एक तो आत्मिक शान्ति या संतोष दूसरे कभी-कभी यश या अन्य किसी रूप में सामाजिक सम्मान प्राप्त होता है. आत्मिक शान्ति या संतोष व्यक्ति से संबंधित होने के कारण उसकी प्राप्ति के लिए वह किसी अन्य पर आश्रित नहीं होता है जबकि सामाजिक सम्मान व यश के लिए व्यक्ति समाज पर आश्रित होता है. बहुधा ऐसा हुआ है कि समाज ने व्यक्ति का समादर नहीं किया और उसकी मृत्यु के उपरान्त, काल की परतों के खुलने के साथ-साथ व्यक्ति के महत्त्व की बात समाज की समझ में आई. ऐसी स्थितियाँ अन्य व्यक्तियों को सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा देने के स्थान पर निराश करती हैं इसी कारण धीरे-धीरे सामाजिक क्षेत्र में स्वेच्छा से सेवा या सुधार कार्य करने की भावना लुप्त होती जा रही है. यद्यपि तथाकथित समाज सेवियों के कुकर्मों के कारण भी समाज ऐसे व्यक्तियों पर विश्वास ही नहीं करता है और संदेह की स्थिति अंततोगत्वा दोनों के लिए हानिकारक ही हो जाती है.

आज के ऐसे संदेहास्पद सामाजिक वातावरण में कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी 'प्रकाश' का अभिनन्दन निश्चित ही सामाजिक क्षेत्र की सजगता का प्रतीक है. कई बार यह सुना गया कि आर्यजगत् अपने कार्यकर्त्ताओं तथा विद्वानों का यथोचित सत्कार नहीं करता है, इस कथन के सत्यासत्य का विवेचन उद्दिष्ट नहीं तदपि इतना हमें जान लेना चाहिए कि यदि ऐसी स्थिति

उत्पन्न होती है तो वह हमारे लिए अत्यंत घातक सिद्ध होगी. मात्र दोष-दर्शन, अवगुण-वर्णन, अभाव-उल्लेख, व्यक्तित्व-निंदा आदि बातें सामाजिकता एवं श्रेष्ठता या आर्यत्व के विपरीत हैं प्रत्युत हमें बार-बार प्रेरणा, प्रोत्साहन, प्रशंसा आदि के द्वारा व्यक्ति में स्थिति श्रेष्ठता या आर्यत्व के गुणों को विकसित करने में योग देना चाहिए. इससे सामाजिक संगठन अधिक शक्तिशाली बनता है. अभिनन्दन समिति का प्रस्तुत कार्य इसी दिशा में लघु प्रयास है. अभिनन्दन समिति चाहती तो एक अच्छी धनराशि एकत्रित कर उसे स्वरूप श्री प्रकाशजी को भेंट कर सकती थी, किन्तु बड़ी से बड़ी अभिनन्दन धनराशि भी एक निश्चित कालावधि के उपरान्त समाप्त हो जाती और उससे व्यक्तिगत रूप से कोई लाभ होता या न होता किन्तु सामाजिक लाभ तो संभव ही न था. अभिनन्दन-ग्रन्थ द्वारा जहाँ कवि की सेवाओं का उल्लेख एवं मूल्यांकन हुआ है वहाँ विद्वान् विचारकों के चिन्तन-प्रसूत लेखों द्वारा समाज का मार्गदर्शन भी हुआ है. निश्चित ही यह ग्रन्थ प्रकाश जी की सेवाओं का एक ऐसा ऐतिहासिक स्मारक है जो न केवल भावीपीढ़ी को तथ्यात्मक विवरण देगा अपितु उनका दिग्दर्शन भी करेगा. अतः इसका महत्त्व धन की अपेक्षा अधिक दीर्घकालिक एवं प्रभावशाली है—इस का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि यह ग्रन्थ सर्वांगपूर्ण है, आज भी आर्य जगत् में "श्री विनायकराव अभिनन्दन ग्रन्थ" इस दिशा में दीप-स्तंभ की तरह दिशा-निर्देश कर रहा है क्योंकि उसमें कला और ज्ञान अथवा चिंतन या लेखन का मणि-कांचन सा योग था।

इसी संदर्भ यह भी निवेदन है कि आर्यसमाज को अपने प्रचार, प्रकाशन इत्यादि विविध कार्यों में कलात्मकता का सहारा लेना चाहिए क्योंकि कला के माध्यम से हम मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं. वस्तुतः हमारे सभी तरह के कार्यों में जन-मन-मोहिनी कला का अभाव हमारे पिछड़ेपन का द्योतक भी बन जाता है.

●

आज विश्व में अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष है. यह अस्तित्ववादिता इतनी अधिक व्यापक और गहरी हो गई है कि स्वयं व्यक्ति अस्तित्व की स्थापना के लिए समाज की परम्परा एवं नियमों का घोर विरोधी हो गया है. पश्चिम के समस्त युवा-आक्रोश व आंदोलन का मूल कारण यही अस्तित्व का संघर्ष है। भारत में यह आंदोलन अभी साहित्य के क्षेत्र तक ही सीमित है। अपनी प्राचीन परम्परा और रूढ़ियों के कारण अभी यहाँ पश्चिम जैसे आंदोलन जल्दी नहीं पनप सके हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि आज या कल आर्यसमाज को भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कठोर संघर्ष का सामना करना पड़े और बहुत संभव है कि पश्चिम

से प्रभावित भारतीय युवक स्वच्छंदवादिता के लिए, सिद्धान्तवादिता पर आधारित आर्यसमाज जैसे वस्तुतः प्रगतिशील आर्यसमाज के विरुद्ध प्रबल विद्रोह कर बैठे. ऐसी स्थिति में हमें अत्यंत शांतिपूर्वक अपने सिद्धान्त, उनकी व्याख्या, कार्य, कार्य प्रणाली तथा क्षेत्र के संबंध में गम्भीरता से विचार करना चाहिए. यदि आज भी हम अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर विरोधियों की बातों को ध्यान पूर्वक सुन न सके, बहुत ही अधिक धैर्य के साथ उनके कार्यों का अवलोकन न कर सके और आपसी कलह में शक्ति का अपव्यय करते रहे तो निश्चित ही महर्षि की आत्मा को क्लेश पहुँचेगा. श्री प्रकाश कविरत्न जैसे व्यक्तियों के किये कराये कार्यों पर पानी फिर जाएगा. अतः इस प्रसंग में निवेदन है कि आर्यो ! किसी भी मूल्य पर संगठन शक्ति को क्षीण न होने दो, इसके लिए पद का, व्यक्तिगत स्वार्थ का, आवश्यक हो तो श्रद्धानन्द और लेखराम की तरह आत्मा तक का बलिदान कर दो. साथ चलो स्वयं कार्य करो, दूसरों को कार्य करने दो यथा संभव वाणी द्वारा दूसरे की निंदा मत करो अपितु धैर्य पूर्वक अपनी आलोचना सुनो. मनन करो और प्रभु का नाम लेकर महर्षि के उस व्यापक उद्देश्य की पूर्त्ति में जुटे रहो.

आज हमें अपनी शिक्षण संस्थाओं के कार्य, उनकी कार्य प्रणाली पर आधुनिकता के संदर्भ में विचार करना है।

आज हमें अपने सत्संगों की पद्धति, उपादेयता आदि के संबंध में सोचना है। आज हमें अपने उपदेशकों और भजनोपदेशकों की स्थिति एवं उनके भविष्य का भी ध्यान रखना है.

आज हमें अपने वार्षिकोत्सवों के कार्यक्रमों के संबंध में गंभीरता पूर्वक विचार करना है.

आज हमें अपने प्रकाशन तथा प्रचार-साधनों के संबंध में मनोवैज्ञानिक आधार पर सोचना है.

आज हमें अपना संगठन शक्तिशाली, सुदृढ़ बनाए रखने के संबंध में दृढ़तापूर्वक एकता बनाए रखना है

आज हमें अपनी संगठन-व्यवस्था की पुनर्रचना की उपादेयता के संबंध में मनन करना है.

आज हमें राजनीति में सक्रिय होने के लिए बहुत ही व्यापक दृष्टि से मिलकर सोचना है.

सोचने के लिए सैकड़ों बातें हैं, वर्षों से हम सोचते आ रहे हैं और न जाने आगामी कितने वर्षों तक सोचते रहेंगे. यह लक्षण बहुत अधिक आशावादी नहीं हैं. अतः आर्यो ! आर्यसमाज स्थापना के शताब्दी समारोह तक और विचार कर लो. १९७५ का वर्ष हमारे लिए नव प्रेरणा का उत्सव हो, हमारे लिए

नई शक्ति का उत्स हो, हमारे लिए दृढ़ संगठन की एकसूत्रता का भाव हो—इसी उद्देश्य से इस ग्रन्थ के माध्यम से चिंतन के बीजारोपण का कार्य करने का प्रयास किया गया है.

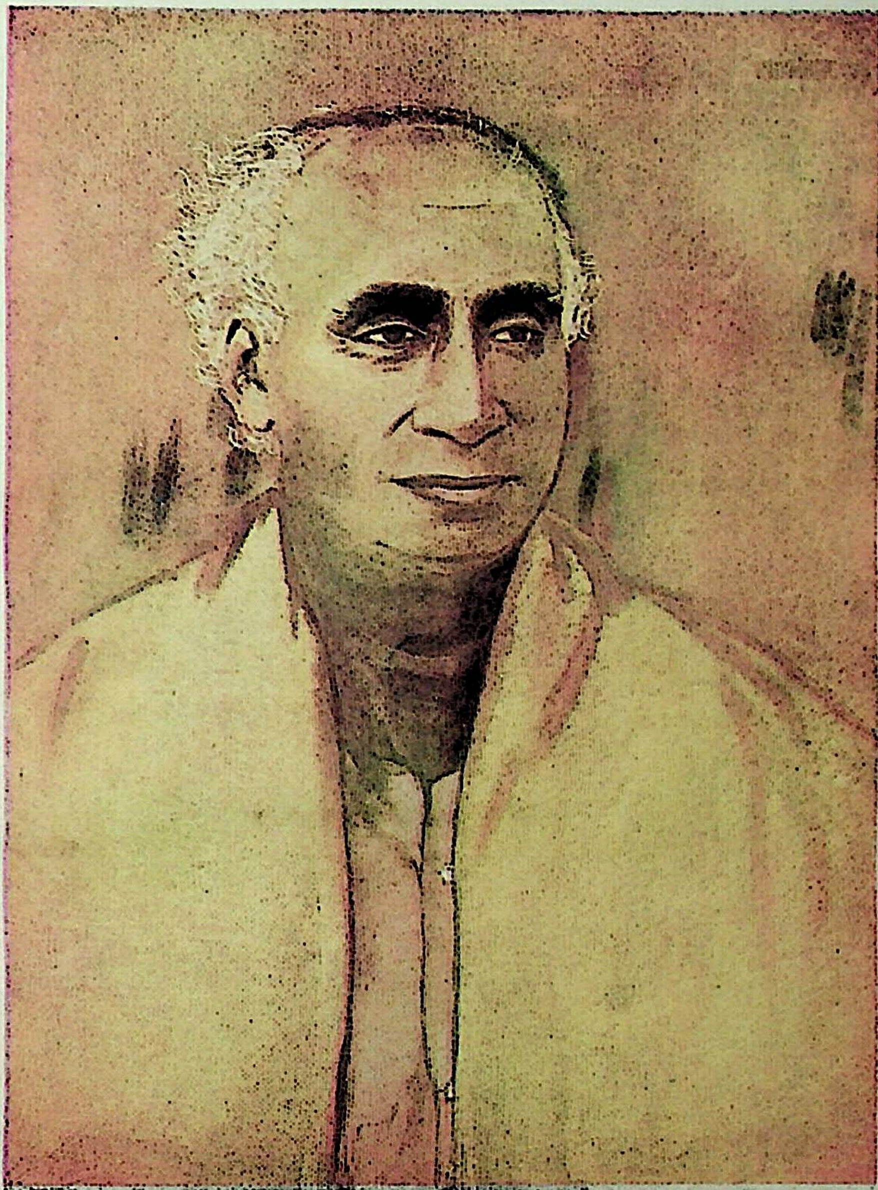
ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है प्रथम खंड में विभिन्न व्यक्तियों ने श्री प्रकाश जी के प्रति अपनी मंगल कामनाएँ अभिव्यक्त की हैं, द्वितीय खण्ड में श्री प्रकाश जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की विवेचना का प्रयास है, तृतीय खण्ड में सामायिक चिंतन के लिए विभिन्न विद्वानों के वैचारिक-स्वर मुखरित हुए हैं, चतुर्थ एवं अंतिम खंड में श्री प्रकाश जी के काव्य के प्रकाशित एवं अप्रकाशित उल्लेखनीय अंशों का संकलन है. हमारा प्रयास यही रहा है कि—पाठकों के वैचारिक जगत में नई चेतना जागृत हो—आपकी प्रतिक्रिया से हमें अपनी सफलता के संकेत मिलेंगे, लेकिन यह कार्य तभी संभव हो सका है जब कि आर्य-जगत् ने तत्परता पूर्वक हमें सहयोग दिया है, हम आभारी हैं.

इस ग्रन्थ के मुद्रण में वैदिक यंत्रालय अजमेर के प्रबंधकर्त्ता श्री सुरेन्द्र प्रकाश जी शर्मा तथा यंत्रालय के ही अन्यान्य कायकर्त्ताओं ने अथक परिश्रम किया है. ग्रन्थ के प्रूफ-संशोधन जैसे कष्ट-साध्य कार्य में श्री धर्मसिंह कोठारी जी ने अनवरत सहयोग दिया है. अतः यदि कहीं इस ग्रन्थ में कुछ प्रशंसनीय है तो वह सब इन्हीं के परिश्रम का परिणाम है—ये सब साधुवाद के पात्र हैं. समस्त अभिनन्दन कार्य के केन्द्र बिन्दु श्री पन्नालाल जी पीयूष रहे हैं. उनकी लगन एवं निष्ठा के परिणामस्वरूप ही यह सामाजिक कार्य संपन्न हो सका है—वे धन्य हैं.

हे कवि ! तुम्हारे संबंध में क्या कहा जाय ! तुम स्वयं प्रकाशित हो, प्रतिभा संपन्न हो, कुशल कवि हो अतः मात्र निवेदन है कि आर्य जगत् की ओर से यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर हमें प्रगतिपथ पर बढ़ते रहने का आशीष प्रदान करो.

इत्यलम्,

डा० भवानीलाल भारतीय □ सदाविजय आर्य



पं॰ प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न

चित्रकार : राम जैसवाल

जीवन-वृत्त

पं॰ प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न

रमाशंकर शास्त्री

पं. प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न का जन्म वि. सं. १९६० को अजमेर में हुआ। पिताजी श्री पं. बिहारीलाल जी अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) से आकर जीविकोपार्जन हेतु अजमेर में ही बस गये थे। वे कवि एवं गायक व पौराणिक थे। पौराणिक पं. जगत प्रसाद जी शास्त्री, पं. बुलाकी राम जी शास्त्री (संस्कृताध्यापक, मेओ कॉलिज, अजमेर), दुर्गादत्त भजनोपदेशक, पं. गौरी शंकर भट्ट आदिइ नके घर पर कभी-कभी पधारा करते थे। संगीत, कविता का भी कार्यक्रम प्रायः होता रहता था।

उन दिनों रामायण मंडल आदि (सनातन धर्म) और आर्यसमाज की बड़ी चहल-पहल रहती थी। इनके पिताजी भी उपरोक्त मण्डल के प्रतिष्ठित सदस्य थे। जहाँ वे भजन तथा रामायण का पाठ आदि किया करते थे। संगीत भी शिष्यों को सिखाते थे। भजन मण्डली भी बना रखी थी; अपनी कविता, भजनों को विविध राग रागनियों में ताल बद्ध करके गाया करते थे। उनमें से कतिपय ब्रजभाषा की निम्नलिखित भजन कवितायें हैं —

भजन १

देखो तृष्णा अजहूँ न छूटी।
केस भये सब स्वेत सीस के, दाँत बतीसी टूटी।
कटि कमान भई अँखियां दोऊ, कौड़ी की सी फूटी॥
हालन लागे पाँव डगामग ज्यों चरखा की खूँटी।
शिथिल अंग भये तबहूँ जियन हित, खावत औषध बूटी॥
मृग मरीचिका सी है जग में, मोहनि माया झूंठी॥
धन, धन भये 'बिहारी' जिन, हरिनाम सम्पदा लूटी॥

२

हरिजू या में दोष न मेरो॥
नाम पतित पावन भक्तन सौं, सुन्यों जबहिं मैं तेरो।
तब सौं बन्यो पतित अधरम को, धन्धौ कियो घनेरो॥
हौं मैं पतित, पतित पावन तुम, पातक, सबहिं निबेरो।
दास 'बिहारी' सदा तिहारे चरण शरण को चेरो॥

३

ग्वालन को हर के मृदु माखन,
हौन पलायन काहे विचारो।
ठाँव बताऊँ तुम्हें अति नीको,
न कोऊ जहाँ तुम्हें देखन हारो॥
कोटि कुकर्मन ते मन मेरो,
भयो अति कारो छयो अंधियारों।
क्यों ! नहीं याही में आन छिपे?
कोऊ और न ठौर 'विहारी' निहारो॥

ऐसे गीतों के अतिरिक्त वे सनातन धर्म के मण्डन और आर्यसमाज के खण्डन विषयक साधारण तर्जों के गीत भी बनाते थे।

जब रामायण मण्डल या जगदीश मन्दिर का उत्सव और नगर कीर्तन होता था तो स्वयं उन भजनों व गीतों को गाते थे और शिष्यों के साथ गवाते थे। उन भजनों की प्रथम पक्तियां निम्न-लिखित हैं—

नहीं निराकार की पूजा, प्रभु तो साकार सही है।

आर्यसमाज के भजनोपदेशक गाते थे—

गणपति का रूप बनाय के, पीली मिट्टी पुजवायी।

इनके पिता जी ने उत्तर में भजन बनाया था—

गणपति का रूप बनाय के पूजा ईश्वर की करते

आर्य समाज का भजन था—

कैसा ! उल्टा तुम्हारा सनातन धर्म

पिताजी ने उत्तर में बनाया था—

देखी देखी तुम्हारी आर्यसमाज।

कवि जी भी पिताजी के साथ इन भजनों को बड़े उत्साह से, उच्च स्वर से गाते थे।

प्रकाशजी एक दिन रामायण मण्डल के नगर कीर्तन में भजन गा कर गाड़ी से उतरे तो एक छोटे कद के आर्यसमाज के बड़े प्रेमी युवक उनसे बड़े प्यार से पीठ ठोक कर कहने लगे कि दुर्गाप्रसाद, कण्ठ (कविजी का पूर्व नाम) तुम्हारा बड़ा अच्छा है। आर्य समाज में आया करो और वहां भी अच्छे-अच्छे भजन गाया करो। लगे हाथों स्वरचित एक पुस्तक भी दी।

ये सज्जन थे आर्य प्रतिनिधि सभा (राजस्थान) के महोपदेशक पं. राम सहाय जी शर्मा जो अब स्वामी ओ३म् भक्त जी नाम से सुप्रसिद्ध हैं।

उन दिनों कविरत्न डी. ए. वी. प्राइमरी पाठशाला में पढ़ते थे और श्री पं. राम सहाय जी शर्मा उस स्कूल में अध्यापक थे। पिता जी के दृढ़ सनातनी होने के कारण प्रकाशजी भी सनातन धर्म को अच्छा व आर्यसमाज को बुरा कहते रहते थे। पिताजी दृढ़ पौराणिक थे। इस कारण अन्ध परम्परा युक्त पौराणिक जनून उनके भी रगरग में भरा था। परम पावन सत्य वैदिक विचार का स्थान फिर कहाँ से होता। यह ठीक ही कहा है—

तेरी महफ़िल से गैर उट्ठे
तो अय ! वेदर्द मैं बैठूँ
शनीचर जब गुजरता है।
तभी इतवार आता है।

ये तीन भाई थे। तीनों भाइयों में इनसे बड़े पन्नालाल थे, एक कृष्ण प्रसाद आर्य छात्रों के संग में रहने के कारण उनका आर्य समाज की ओर कुछ झुकाव था।

एक दिवस कविजी तथा उनके भाई अपने पिताजी के साथ एक मन्दिर में गये वहाँ कई देवताओं की मूर्त्तियां थीं पास ही कुछ गोल मटोल सालिग्राम, पत्थर के पड़े हुए थे। इनके भाई ने एक गोल मटोल छोटे से सालिग्राम को उठाकर अपनी अण्टी में बांध लिया। कविजी ने अपने पिताजी से कह दिया कि पन्ना भैया ने गोली खेलने के लिए एक सालिगराम उठा कर अण्टी में बाँध लिया है।

पिताजी ने पकड़ कर गाल पर दो तीन चाँटे जड़ दिये। फिर डाँट कर कहा—नालायक सालिगराम को उठाकर ले आया। भाई झुंझला कर बोला कि सालिगरामजी ने तो मुझ से कुछ नहीं कहा और चुपचाप चले आये और आप वैसे ही मुझे डांट रहे हैं।

पिताजी यह सुनकर चुप रह गये। सायंकाल अपने मित्र संगीत प्रेमी पं० दुर्गाप्रसादजी शर्मा से से कहने लगे, हमारे मंझले लड़के ने तो आज हमारे

बोल बन्द कर दिये। पूछने पर सारी बात बताई। वे भी खिलखिला कर हंस पड़े।

प्रकाशजी उन दिनों लगभग १०, ११ वर्ष के थे, जब पिताजी का हैज़े के प्रकोप से अचानक देहान्त हो गया। सब पुत्रों में पिताजी कविरत्नजी को अधिक प्यार करते थे।

पिताजी के देहान्त के पश्चात दोनों भाइयों के सहयोग से डी. ए. वी. हाई स्कूल में वे पढ़ते रहे। कुछ वर्षों पश्चात् भाई पन्नालाल का भी देहान्त हो गया।

प्लेग की बीमारी में आर्य स्वयंसेवक

लगभग सन् १९१५ में प्रकाशजी ने अजमेर में दूसरी बार प्लेग का भयंकर रोग फैलते देखा। देश-भक्त कुंवर चाँदकरणजी शारदा, कर्मवीर पं० जियालालजी डाक्टर खाँड़ वाला आदि को प्लेग में आर्य-स्वयंसेवक लिबास में रोगियों की सेवा सुश्रुषा उपचार करते देखा तो इन्हें भी आर्य स्वयंसेवक बनने की इच्छा हुई। साहसी बचपन से ही थे, प्लेग जैसे भयंकर रोग का रञ्च मात्र भय न था। छोटे होने के कारण इन्हें आर्य स्वयंसेवक संघ में भर्ती नहीं गया किया। मना करने पर भी यह अपने सुन्दरलाल साथी को लेकर रोगियों के घरों में सेवार्थ और मुर्दों को श्मशान में पहुँचाने के लिये स्वयं सेवक की ड्रेस स्वयं बनवाकर पहन कर स्वयं सेवकों के साथ हो लेते थे। इतना उत्साह देखकर तथा भजन कविता आदि सुनने की इच्छा से स्वयं सेवक भी इन्हें साथ लेते थे। माता से पढ़ने का बहाना बनाकर प्रातःकाल से ही इन्हीं कार्य में लग जाते थे। खाने पीने की भी कोई सुध नहीं रहती थी।

मुर्दों की अर्थियां आर्य स्वयं सेवक कभी मलूसर तो कभी आनासागर की घाटी के निकट वाले श्मशान में ले जाते थे।

एक दिन कविजी आनासागर की घाटी वाले श्मशान में कर्मवीर बाबू जियालालजी के भाई, प्रभुदयालजी मास्टर रामभरोसेजी मास्टर बीरबल जोशी तथा बाबू रामचन्द्र शर्मा आदि के साथ एक मुर्दा लेकर पहुँचे। बा. रामचन्द्र शर्माजी से टाल-वाला बड़ा दुखी होकर बोला बाबूजी! अब प्लेग कम हो गई दीखे है। पहले भगवान की दया से हमारे श्मशान पर मुर्दों का ताँता लगा रहता था, खाने पीने की भी फुरसत नहीं होती थी। अब तो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। दो या तीन मुर्दे सुबह से शाम तक आते हैं। भला कैसे काम चलेगा।

बाबूजी एक काम करो। मलूसर के श्मशान में मुर्दे न ले जा कर हमारे श्मशान में लाया करो। जिससे अन्त समय मरने वाले का व आपका भी मुँह पुष्करराज तीर्थ की ओर होगा इससे दोनों का कल्याण होगा और हमारी भी अच्छी बिक्री हो जायेगी। और फिर लकड़ियों की ओर इशारा करके बोला देखो बाबूजी लकड़ियों का पहाड़ सा लगा है १००० रु० उधार का देना है। क्या करें बाबूजी अब तो भगवान ही मालिक है उसी का भरोसा है।

बाबू रामचन्द्रजी ने कविजी से कहा देखो दुर्गाप्रसाद (कविरत्न का पूर्व नाम) ये कैसा भगवान का भक्त है अपना पेट और पेटी भरना चाहता है और दूसरों की मौत। इस स्वार्थी टालवाले की दूषित मनोवृत्ति देखकर कविजी ने "स्वार्थी भक्त की भगवान से प्रार्थना" शीर्षक से पद्य में प्रार्थना बना डाली।

श्मशानों में डेरा डाल पड़ा खोल लकड़ी की टाल
देखूँ आँख फाड़ निशि भोर आत न मुर्दा कीउ इस ओर
करूँ नाथ विनती कर जोर मेरी है बस तुम तक दौर
फैला दो ऐसी बीमारी हों बीमार सकल नर नारी
मरने का हो ताँता जारी बिक्री होवे खूब हमारी

जलियान वाले बाग का भीषण हत्या काण्ड

ब्रिटिश, जर्मनी युद्ध के पश्चात् सन् 1919 में रोलट नामक अंग्रेज ने एक एक्ट बनाया, जिसके आधार पर ब्रिटिश सरकार ने जनता के अधिकार अपहरण करके भीषण अन्याय करना आरम्भ कर दिया। इसके विरोध में जलियान वाले बाग में विशाल सभा हुई जिसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गयी मशीनगन से भीषण रक्तपात हुआ।

सारे भारत वर्ष में इस अत्याचार के विरोध में आवाजें गूंज उठीं। अजमेर में भी सभा हुई। वक्ताओं ने वहाँ की रोमाञ्चकारी घटना बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में जनता को सुनाई। कविजी के हृदय में भी उस निरीह जनता के रक्तपात से बड़ी वेदना व ब्रिटिश सरकार के प्रति रोष जागृत हुआ। कविरत्नजी उन दिनों ८वीं कक्षा उत्तीर्ण कर रेलवे वर्कशाप में अप्रेन्टिस हो गये थे। क्रिकेट के भी खिलाड़ी थे। घुंघराले बड़े बाल थे उनके संवारने में कुछ अधिक समय लग जाता था। माता के आग्रह करने पर भी कविजी ने बाल छोटे नहीं करवाये। एक दिन प्रातःकाल जबकि कविजी गहरी नींद में सो रहे थे माता ने उनके बाल काट कर कैंची से छोटे कर दिये। थोड़ी देर बाद उठ कर बाल बनाने को शीशा हाथ में लिया। ज्योंही बाल देखे, जान गये ये माँ की ही करतूत है। कविरत्न बड़े झुंझलाये। साथ ही जलियान वाले बाग की करुण कथा भी बेचैन बनाये थी। कवि जी ने कंघा तोड़ दिया, शीशा फोड़ दिया, साबुन की बट्टी इतनी जोर से फेंकी कि बाहर बाबू ग्यारसीलालजी तख्त पर बैठे थे उनके सिर में लगी। यह ही अच्छा हुआ कि उनके चोट नहीं लगी।

कविजी एक नाई की दुकान पर पहुँचे और कहा मेरा सिर घोटमघोट करदे। वह बोला क्या बात हुई क्या कोई मर गया। कवि जी ने कहा हाँ मेरी तबियत मर गयी, तू जल्दी से मूंड दे। वह बोला बाबूजी ऐसे घुंघराले बालों पर उस्तरा चलाने को मन नहीं हो रहा है। हाँ हल्की मशीन फेर दूंगा। उसने मशीन फेर दी उनके सिर के बाल सब जमीन पर आगिरे। वे दुकान से चले ही थे कि उनके उर्दू शायर उस्ताद मोहम्मद यामीन साहिब अचानक आ गये। जो कि डी. ए. वी. हाई स्कूल के पुराने छात्र थे बड़े खुश मिजाज उदार हृदय थे। उन्होंने कवि जी से उनके सिर की ओर इशारा करके पूछा आज ये बाग वीराना कैसे हो गया। उन्होंने जो बात थी साफ बतादी।

शायर महोदय ने उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—जो कुछ हुआ अच्छा हुआ। सुनो बादशाह औरंगजेब की शाहज़ादी जेबुन्निसा फारसी की अच्छी शायरा थी। एक दिन उसकी दासी से सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते हाथ से चीनी का आइना गिर कर टूट गया। दासी बड़ी घबराई शाहज़ादी के साथ रहते-रहते वह भी कुछ शायरी में कदम रखने लगी थी। उसने जेबुन्निसा को बड़े अदब के साथ यह मिसरा सुनाया—"अजखता आईनये चीनी शिकस्त।" अर्थात् भूल से चीनी का दर्पण मुझ से टूट गया है।

जैबुन्निसा ने खुश होकर कहा—

"खूब शुद असबाबे खुद बीनी शिकस्त" बहुत अच्छा हुआ। अहंकार की वृद्धि का साधन टूट गया। मैं भी कहता हूँ तुम्हारी जुल्फों का जाल जो तुम्हें उलझाये रहता था वो सर से दूर हो गया। और वह शीशा जो हुजूर जी शऊर को निहायत मगरूर व मखमूर बनाये हुआ था वह शीशा ही चूर-चूर हो गया है। अब देखना यह खाकी जिस्म रुहानी रियाजत से पुरनूर हो जायगा।

क्या खूब

बुतों का सितम रहनुमा हो गया,
कि रुख अपना सूये खुदा हो गया,

कवि जी ने ये शेर उसी समय लिख कर याद कर लिये। दोपहर को विदेशी कपड़ों को जलाने का कांग्रेस की ओर से कार्यक्रम था। कविरत्न जी भी अपना क्रिकेट मैच खेलने का काश्मीरी ऊनी कोट फ्लेनल की पेन्ट आदि ले गये और उन्हें उस जलती हुई आग के हवाले कर दिया।

सायंकाल मदार दरवाजे के बाहर चौक में जलियां-वाले बाग के शहीदों को श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने की सभा हुई। कवि जी भी पहुँच गये।

देशभक्त कुँवर चाँदकरणजी शारदा, भा. वीरेन्द्रजी, पं. गौरीशंकरजी भार्गव के मार्मिक भाषण हुए। कुछ हिन्दी व कुछ उर्दू की दर्द भरी कवितायें हुई। उन दिनों इन्हें भी उर्दू शायरी का नया ही शौक हुआ था। दूसरे इस घटना से दिल तड़प उठा था। ये शहीदों को श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने के लिए एक उर्दू की गजल लिखकर लेगये थे, वह, यह थी—

गजल

हो रही थी एक सभा जलियान वाले बाग में।
भीड़ थी भारी जमा जलियान वाले बाग में॥
दिल में बच्चे बच्चे के हुब्बे वतन का जोश था।
आ गया था होश में वो भी कि जो मदहोश था॥
सुनने को भाषण चला जलियान वाले बाग में।
बेरहम सरकार से हरगिज न डरना है हमें॥
सामना जुल्मों सितम का डट के करना है हमें।
गूँज उठी ये सदा जलियान वाले बाग में॥
तैश में डायर हुआ झट गन मशीनें छोड़ दीं।
गोलियां चलने लगीं लाशों पै लाशें बिछ गयीं॥
खून का दरिया बहा जलियान वाले बाग में।
क्यों न हो गम से कलेजा हिन्दियों का पाशपाश॥
याद में उनकी बहाये क्यों नहीं आँसू 'प्रकाश'।
जो हुए हक पर फना जलियान वाले बाग में॥

कवि जी की यह गजल (श्रद्धाञ्जलि) डबडबाई आँखों से जनता ने बड़े ध्यान पूर्वक सुनी और इन्हें प्रोत्साहन मिला। कुछ दिन पश्चात् सभा में ये एक और गजल लिख कर ले गये, जिसमें एक नवविवाहित वधू का पति भी जलियांन वाले बाग में निर्दयी डायर की मशीन गन की गोली से शहीद हो गया था। उस वधू की करुण कहानी उसकी ही जुबानी वर्णन की गई थी। गजल निम्न प्रकार है—

गजल

हाय! डायर मशीन के चलाने वाले।
मेरे प्रियतम से आह! मुझको छुड़ाने वाले॥
तूने मेरा मिटा दिया सुहाग दुनिया से।
खाक में मेरे सब अरमान मिलाने वाले॥
खुलने पाया न था कंगन भी हाथ से मेरे।
उम्रबाली में मुझे बेवा बनाने वाले॥
रात अँधेरी घटा काली काली घिर आई।
छिप गये चाँद वे धीरज के बंधाने वाले॥

कविरत्न जी ब्रिटिश रेलवे वर्कशाप की नौकरी छोड़कर जीवन निर्वाहार्थ कृष्णगढ़ मिल में उनके एक परिचित इन्जिनीयर की प्रेरणा से दो मास हाजिरी बाबू का कार्य करने के पश्चात् उपरोक्त मिल के साझीदार कांग्रेसी प्रेमी चरणदास बिरजी भाटिया सेठ के विशेष आग्रह से उनके साथ बम्बई चले गये। वहाँ पर भी ये समय समय पर कांग्रेसी सभाओं में प्रायः भाग लेते थे।

लोकमान्य तिलक फंड के लिये धन एकत्रित करने के लिये कांग्रेसीजनों के अनुरोध से कविरत्न-रचित जलियान वाला बाग एकांकी नाटक सती मञ्जरी नामक नाटक के साथ खेला गया। पुलिस ब्रिटिश सरकार ने (पारसी) बमन जी चरणदास जी, हीरालाल जी देसाई आदि कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के साथ कविरत्न जी को भी गिरफ्तार किया। परन्तु एक सप्ताह में ही जेल से मुक्त कर दिये गये। कविवर के एक निकट सम्बन्धी दुर्गाप्रसाद शर्मा जो अजमेर से भड़ौंच रेलवे स्टेशन पर ब्रिज इंसपेक्टर नियुक्त होकर आये थे उन्होंने इन्हें भड़ौंच बुला लिया।

अंग्रेजी कम्पनी की नौकरी से इन्हें घृणा थी अतः सरस्वती मिल में ये मेकेनिकल अप्रेन्टिस हो गये।

संगीता कविता व क्रिकेट के खिलाड़ी होने के कारण भड़ौंच में इनके अनेकों स्नेही मित्र हो गये।

आर्यसमाज का विशेष प्रभाव

सन् १९२३ कार्तिक पूर्णिमा को शुक्ल तीर्थ जहां एक विशाल वट वृक्ष कबीर वट नाम से विख्यात है। कविजी भी अपने साथियों के साथ वहाँ के मेले में गये थे। मेले में एक ओर उन्होंने एक स्थान पर दो अंग्रेज पादरियों को खड़े हुए, ईसा मसीह के गीत गाते हुए, गुजराती भाषा में भाषण देते हुए, भोले ग्रामवासियों को बहकाते देखा। पचासों स्त्री पुरुष, गले में सलीब पर चढ़े हुए ईसा का चित्र लटकाये हुए उनके आगे पीछे बैठे हुए थे। पूछने पर उन्होंने साफ बताया कि हम ईसाइ होंगे। उनके यह शब्द सुनकर कविजी का हृदय तड़प उठा और सोच उठा कि रामकृष्ण की सन्तान ईसाई हो रही है और ये हिन्दू अपने पूजा, पाठ, स्नान, ध्यान सैर सपाटे में लगे हुए हैं। कवि जी को किसी ने कहा देखो उस मन्दिर के कुछ दूरी पर एक सभा हो रही है। कविजी

तुरन्त वहां पहुँचे तो देखा वहाँ हवन हो रहा था। एक कपड़े पर आर्य समाज लिखा था। कविजी जान गये ये आर्य समाजी हैं। कविजी ने कहा:—बड़े दुख की बात है आप यहां बैठे हैं और देखो उस तरफ, अंग्रेजी पादरी ईसामसीह के गीत गाकर हिन्दुओं को ईसाइ बना रहे हैं। एक सज्जन ने कहा बस हम हवन समाप्त होते ही वहीं चल रहे हैं। थोड़ी देर में हवन समाप्त होते ही भजनोपदेशक अपनी करताल लेकर साथ ही हरमोनियम व तबला दो महाशयों के साथ लेकर चल दिये। भजनोपदेशक, उत्तरप्रदेश के कविजी की भाषा सुनकर समझ गये कि ये भी उत्तर प्रदेश के हैं। उन्होंने कवि जी को भी साथ चलने का आग्रह किया। कविजी ने कहा आप दो मिनट यहीं ठहरें मैं मन्दिर में भगवान के दर्शन करके अभी साथ चलता हूँ। वे आर्य महाशय बोले:—वाह ! ये खूब, हमें तो डाँट रहे थे चलो ! राम के दर्शन पीछे करना पहले राम की सन्तान को संभालें। कवि जी उनके साथ चल दिये।

जहां पादरी डेरा लगाये बैठे थे वहां पहुँचे। भजनोपदेशक महाशय ने हाथ में करताल संभाली, एक सज्जन ने बाजा, और एक ने तबला और उन्होंने बड़े ऊँचे स्वर में भजन गाना प्रारम्भ किया, बड़ी भीड़ हो गयी। फिर हिन्दी में ही भाषण देना शुरु किया। जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। भजनोपदेशकजी ने कविजी को भी कुछ कहने का आग्रह किया। कविजी को आर्य कवि बलदेवजी का एक भजन याद था। वही उन्होंने हारमोनियम के साथ ऊंचे स्वर से गाया—

लुट रहा जिनका खजाना किस तरह सोते हैं वो।
आंख खुलने पर हमेशा पीट सर रोते हैं वो॥

समय के अनुकूल गीत सुनकर भजनोपदेशक व आर्य सज्जन बहुत प्रसन्न हुए। कवि जी के बाद एक गुजराती सज्जन ने गुजराती भाषा में भाषण देते हुए ईसाइयों की खूब पोल खोली और अंग्रेज पादरियों की काली करतूतें सुनाकर उन्हें ब्रिटिश सरकार के एजेन्ट बताकर जनता को बड़ा प्रभावित किया। श्रोताओं में कितने ही गुजराती शिक्षित युवक थे। वे जोश में आ गये और पादरियों के पीछे बुरी तरह पड़ गये। ईसाइ होने वाले हिन्दुओं को भी समझाया और वे सब समझ गये कि वे पादरी हमें धोखा देंगे। अतः वे विधर्मी होने से बच गये। कविजी के हृदय पर भी आर्य समाज के प्रचार का भारी प्रभाव पड़ा। कविजी सोचने लगे आर्यसमाजी, रामकृष्ण भगवान की मूर्ति का तो अवश्य खण्डन करते हैं। परन्तु राम कृष्ण की सन्तान को विधर्मी होने से ये ही बचाते हैं।

उन्हीं दिनों दक्षिण के मालाबार प्रान्त में मोपला हत्याकाण्ड हुआ था। जिसमें मजहबी दीवाने मुसलमानों ने अनेकों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा और अनेकों को बलात् मुसलमान बनाया। तब आर्यसमाज के कार्य कर्तातथा त्यागी कर्मनिष्ठ श्रद्धेय महात्मा हंसराजजी तथा उनके शिष्यों ने तथा अन्य आर्य पुरुषों ने हजारों मुस्लिम-हर हिन्दुओं को शुद्धकर विधर्मी होने से बचाया। इस घटना का भी कविजी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

आर्य प्रचारक महोदय पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के भजनोपदेशक श्री पं० मथुरा शर्मा थे। उन्होंने तथा अन्य आर्यजनों ने दो तीन अन्य स्थानों पर प्रचारार्थ चलने का कविजी को आग्रह किया।

श्री पं० मथुरा शर्मा तथा गुजराती आर्य सज्जनों के साथ चलना तो स्वीकार कर लिया परन्तु कविजी ने स्पष्ट कह दिया कि मैं सनातन धर्मी मूर्ति-पूजक हूँ, हाँ कुछ बातों में आर्यसमाज को अच्छा मानने लगा हूँ। पं० मथुरा शर्मा ने कहा हमारे साथ चलो। हमारे साथ हारमोनियम वादक कोई नहीं है। भजन आपकी इच्छा हो तो गाना।

कविजी सरस्वती मिल से छुट्टी का प्रार्थना पत्र देकर उनके साथ इटोला आर्य समाज के उत्सव में चले गये। वहां कविजी ने नगर कीर्तन में दातारजी भजनोपदेशकजी के बड़े मधुर कण्ठ से भजन सुने। मथुरा शर्मा जी ने करताल के साथ भजनोपदेश किया। भाषण देने का उनका अच्छा अभ्यास था। जनता को अच्छा प्रभावित करते थे। कवि जी ने उनके साथ बाजा बजाया।

दूसरे दिवस प्रातःकाल श्रद्धेय राज्यरत्न स्व० पं० आत्माराम जी अमृतसरी जी बड़ौदा का 'ओ३म् ही

ही परमात्मा का मुख्य नाम है' पर बड़ा उत्तम उपदेश हुआ। वह कविजी को बहुत पसन्द आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्री दातारजी के भजन हुए। कविजी से भी आग्रह किया, कविजी ने गुरुनानक जी का "सुमरन करले मेरे मना" और सूरदासजी का "रे मन मूरख जनम गंवायो" भैरवी के स्वरों में गाया।

सभी ने उनका उत्साह बढ़ाया श्रद्धेय पं० आत्मारामजी अमृतसरीजी ने कहा तुम आर्य समाज, के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया करो। कविजी ने श्री रामविलासजी शारदा अजमेर द्वारा रचित आर्य धर्मेन्दु जीवन नामक महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र तथा सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ एक पुस्तक विक्रेता से मोल लिया। उसी दिन से कविजी ने स्वाध्याय, दोनों ग्रन्थों का प्रारम्भ कर दिया। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास के स्वाध्याय ने कविजी के अनेक संशय मिटा दिये।

इटौला में धर्मानन्द नाम के एक आर्य उत्साही कार्यकर्त्ता थे उन्होंने भी इन्हें वालौड के आर्य कवि तथा पं० महाराणी शंकर रचित भजनों की दो गुजराती पुस्तकें दीं।

पं० मथुरा शर्मा जी फिर कविजी को विलीगोरिया उत्सव में ले गये। वहीं श्री पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार तथा श्री पं० शंकरदेव विद्यालंकारजी के पिताजी के भी दर्शन हुए। वे बड़े उत्साही हृष्ट पुष्ट आर्य सज्जन हँसमुख थे। वयोवृद्ध कर्मठ आर्य श्री हरगोविन्द धरमसिंह काँच वाले से भी परिचय हुआ। (जो कि आज भी आर्य समाज की सेवा तत्परता से कर रहे हैं) एक वयोवृद्ध शास्त्रीजी के उपदेशों ने सन्ध्या के प्रति रुचि बढ़ाई।

कई सनातनी तथा आर्यों ने शंकायें कीं। उन्होंने तर्क प्रमाणों द्वारा समाधान किया। कवि जी के हृदय में वैदिक धर्म के प्रति पूर्ण आस्था हो गई।

वहाँ श्री मथुराजी के साथ नवसारी के पास ग्राम बीजल पुर गए (जहाँ श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दजी के अनन्य में श्री जीना भाई तथा श्री दयालजी भाई आर्य सज्जन रहते थे)। श्री मथुरा शर्मा तथा श्री जीना भाई के अनुरोध करने से कवि जी ने चार मास का समय प्रचार के लिये दिया। कवि जी ने सरस्वती मिल का कार्य छोड़ दिया। प्रचार में कई स्थानों पर पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार के साथ रहने का शुभावसर प्राप्त हुआ। शिक्षित जनता उनका उपदेश बड़ी श्रद्धा एवं ध्यान पूर्वक सुनती थी। कवि जी ने मथुरा शर्मा जी के साथ गुजरात के बलसार, वालैड, सूरत आदि स्थानों में प्रचारार्थ भ्रमण किया। कवि जी ने हिन्दी व गुजराती के भजन सीखना प्रारम्भ किया, साथ ही प्रचारार्थ भजन स्वयं भी बनाने लगे।

'आर्य बनो शुभ कार्य करो, भारत की दशा सुधारो॥ सबसे पहले कवि जी ने यह भजन बनाया जो आज भी "प्रकाश भजनावली" में प्रकाशित है। जिसका पीयूषजी द्वारा श्री के. एल. वर्मा अजमेर ने संगीत सुधा में रिकार्डिंग कराया था।

लगभग एक वर्ष के पश्चात गुजरात से अजमेर आये। इनकी माता अस्वस्थता के कारण सूख कर काँटा हो गई थीं। कवि जी उनकी यह दशा देखकर बालक की तरह उनके गले से लिपट कर इतने रोये कि उनकी धोती का अग्रभाग सारा आँसुओं से गीला हो गया। कुछ ही दिनों में कवि जी के आने से वह स्वस्थ हो गईं।

कवि जी रविवार को प्रथम बार ही प्रसिद्ध अजमेर आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में पहुँचे।

इनके सम्बन्धी वे ही भड़ौंच के ब्रज इन्सपेक्टर दुर्गाप्रसाद शर्मा ने बाबू जियालाल जी से कहा—इनका भजन कराइये। बाबू जियालाल जी ने कहा—क्या कहते हो भाई! यह तो कट्टर सनातनी है। सनातनी भजन गायेगा। उनका कथन सही था। एक बार उन्होंने कवि जी से आर्य समाज में भजन गाने को कहा था तो उन्होंने

नहीं निराकार की पूजा,
प्रभु तो साकार सही है।

यह भजन आरम्भ किया था। परन्तु कवि जी अब वैदिक धर्मी हो गये थे यह उन्हें विदित न था। श्री दुर्गा प्रसाद जी ने बाबू घीसूलाल जी से कहा—उन दिनों

सूरजकरण जी शारदा वकील आर्य समाज के मंत्री थे। कवि जी को उन्होंने समय दिया तो उन्होंने नवलसिंह जी का रचित

आत्मा में गंग बाहे,
क्यों न मन बहावे।

भजन गाया। एक भजन के लिए और आग्रह किया। कवि जी ने स्वरचित भजन—

अब आर्य बनो शुभ कार्य करो,
भारत की दशा सुधारो।

गाया। यह गीत सुनकर कर्मवीर पं० जियालाल जी डबडबाई आँखों से बोले—भाई मुझे नहीं मालूम था कि तुम वैदिक धर्म में रंग गये हो। कवि जी की पीठ ठोकी। आदरणीय पं० रामसहाय जी शर्मा के भी दर्शन हुए। वे बड़े प्रसन्न हुए। कवि जी ने चरण-स्पर्श कर कहा—पंडित जी जो आज मैं यहाँ दृष्टि आ रहा हूँ यह आपकी उस स्नेह दृष्टि का ही प्रभाव है।

पड़ी तुम्हारी जिस घड़ी, मुझ पर मधुमय दृष्टि।
मेरे जीवन में हुई, नई निराली सृष्टि॥

आर्य समाज अजमेर का उत्सव निकट था। श्री सूरजकरण जी शारदा ने कवि जी को आर्य समाज में भजनोपदेशक नियुक्त किया। कवि जी ने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा गर्वमेन्ट हाई स्कूल के मुख्याध्यापक श्री प्रेम वल्लभ जी जोशी तथा श्री राधेलाल जी कपूर एम. ए. से अति संलग्नता के साथ प्राप्त की। इन दोनों महानुभावों की कवि जी पर बहुत कृपा रही।

ये दोनों भारत के सुविख्यात संगीत कला मर्मज्ञ माने जाते थे। ग्वालियर के श्री गणपत राव जी भैया प्रसिद्ध संगीतकार की शैली के अनुसार ही कवि जी ने बाबू राधेलाल जी से हारमोनियम सीखा, स्वर्गीय बाबू गोपी कृष्ण जी टण्डन तथा ओंकारलाल जी से भी उन्होंने पर्याप्त संगीत शिक्षा का ज्ञान प्राप्त किया।

कविरत्न जी के बचपन के मित्र बाबू हरनारायण भटनागर रेलवे वर्क शॉप के फोरमैन के भ्राता श्री नारायण जी इनके पिता जी के बड़े स्नेही थे। तबला-वादन की शिक्षा सर्व प्रथम उन्हीं से कवि जी ने प्राप्त की थी। बाबू हरनारायण बड़े संगीत प्रेमी तबला-वादन में निपुण थे। इनके सम्पर्क में कविरत्नजी को संगीत—सूर्य उस्ताद फैय्याज खाँ बड़े गुलाम अली, श्री पं० विनायक राव पटवर्द्धन, श्री प्रो० नारायण राव, श्री मोती ज्योति जी, भविराम जी के पिता व चाचा आदि सुयोग्य संगीतकारों के संगीत सुनने का शुभावसर प्राप्त हुआ। कभी-कभी कवि जी भी गायकों के साथ हारमोनियम की संगति करते थे।

श्री हर जी बाबू संगीत के परम प्रेमी हैं। अब भी संगीत कार्य इनके द्वारा होते रहते हैं।

संगीत के साथ साथ कवि जी संस्कृत, पाठशाला (गंज) अजमेर में संस्कृत तथा वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करने साधु आश्रम (ऋषि उद्यान) प्रातः काल जाया करते थे। तैरने का अच्छा अभ्यास था सारा आनासागर पार करके लौट आते थे। इन्हीं दिनों श्री पं० नाथूलाल जी दयानन्द अनाथालय के अधिष्ठाता थे। आदरणीय पं० भगवान स्वरूप न्याय-भूषण जी के दर्शन उन्हीं के यहाँ हुए।

कवि जी उनसे संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते रहे। पंडित जी 'भ्रमर' उपनाम से बड़ी सरस कवितायें लिखते थे। आपके सत्संग से कविजी में वैदिक सिद्धान्त एवं संस्कृत, हिन्दी साहित्य-अध्ययन की रुचि हुई।

उन्हीं दिनों कवि जी ने ऋषि उद्यान (आना सागर) में बैठकर प्रसिद्ध 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने'—गीत को बनाकर सर्व प्रथम पं० भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण को ही सुनाया। वे सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और जब कवि जी ने आर्य समाज अजमेर में प्रथम बार सुनाया तो आर्यजनों ने उनका बहुत उत्साह बढ़ाया।

१९२५ में दयानन्द मथुरा शताब्दी समारोह में अजमेर के आर्यजनों के साथ सम्मिलित होने का कवि जी को सौभाग्य प्राप्त हुआ। देश विदेशों के आर्य नर-नारी लगभग ३ लाख की संख्या में आये थे। वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने—इस गीत को आर्य नर नारियों ने बड़े उत्साह से गाया। प्रकाश भजनावली प्रथम भाग की

१००० प्रतियाँ कवि जी के साथ थीं, सभी पुस्तकें आर्य बन्धु, बहिनों ने मोल ले लीं।

मथुरा शताब्दी के वृहद् कवि सम्मेलन के प्रधान, महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त प्रसिद्ध महाकवि कविता कामिनी कान्त स्वर्गीय श्रद्धेय पं० नाथूराम जी शर्मा 'शंकर' उनके दर्शन हुए। 'वेदों का डंका' यह गीत कवि जी ने उन्हें भी सुनाया। प्रसन्न होकर उन्होंने इनके सिर पर कृपा हस्त रखा और स्वरचित 'शंकर सरोज' अनुराग रत्न पुस्तकें प्रदान की गई। उस समय इनके हर्ष की सीमा न थी।

कवि जी ने उन्हें अपना काव्य गुरु मानकर प्रणाम किया।

श्रद्धेय महात्मा नारायण स्वामी महाराज के निर्देशन में यह दयानन्द जन्म शताब्दी समारोह महोत्सव सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। आर्य स्वयं-सेवकों का सेवा कार्य अत्यन्त सुन्दर एवं सराहनीय था। आर्य नर नारी अपने तम्बू आदि स्थानों पर निश्चिन्त हो कर अपना सामान छोड़ कर अत्र तत्र चले जाते थे, परन्तु कोई वस्तु उनकी इधर उधर न होती थी। महिलायें निश्चिन्त हो कर भ्रमण करती थीं। प्रभात फेरी में आर्य नर-नारियों के प्रभु भक्ति के सुन्दर भजन हृदय को आनन्द विभोर कर देते थे।

यज्ञ की सुगन्धि से वातावरण सुगन्धित रहता था। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, अशान्ति का नाम निशान न था। दयानन्द जन्म शताब्दी के महोत्सव का नयनाभिराम, मनमोहक स्थान उस समय साक्षात् वातावरण स्वर्ग के समान प्रतीत हो रहा था।

अजमेर आने पर कवि जी की माता ने कहा भैया मुझे बता मथुरा दयानन्द शताब्दी कैसी हुई। इनकी आँखों में दयानन्द जन्म शताब्दी महोत्सव का अनुपम आकर्षक चित्र खिचा ही हुआ था। वे मुख से अनायास ही यह कड़ी एक गीत की गुनगुनाने लगे—

सफल कर लीन्हों जीवन मात्

बस इसकी कवि जी ने इस प्रकार पूर्ति कर सुनाई—

सफल कर लीन्हों जीवन मात।
शताब्दी उत्सव लख पुलकित भयो सकल मम गात ।।
आये अति विद्वान् आर्य जन सन्यासी विख्यात।
जिनके सद् उपदेश श्रवणकर मिटे सकल उतपात ।।
भक्ति-भजन कर नर नारिन के मानहूँ अमृत बरसात।
स्वयं सेवकन को प्रबन्ध शुभ कहत नाहिं बनिआत ।।
ऋषिवर महिमा गाय मुदित मन दिवस बिताये सात।
जे नर अवसर चूके ते कर मींज-मींज पछताय ।।
नैनन की यह बात रुचिर छवि निरख तुरत उरझत्।
उत्सव छटा 'प्रकाश' नयन पुनि निरखन को अकुलात ।।

श्रद्धेय महाकवि शंकरजी, शंकर, सरोज तथा अनुराग रत्न के भजन परमोत्साह के साथ आर्यसमाजों के अधिवेशनों में कवि जी गाने लगे पर पैतृक संस्कार थे ही परन्तु उन दोनों कृतियों के अध्ययन से कवि जी की काव्य प्रतिभा में पर्याप्त वृद्धि हुई। कवि जी ने एक कविता में गुरुवर महाकवि शंकर के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है—

'शंकर सरोज' सुललित मृदु मकरन्द
पान जिसने भी किया वो निहाल हो गया
'अनुराग रत्न' की अनूप आभा अवलोक
अनुराग से विभोर अन्तराल हो गया
गुरुदेव शंकर कृपा से मैं 'प्रकाश' तुच्छ
आज जन-गण-मन मञ्जुमाल हो गया
अथवा यूँ कह दूँ कबीर के वचन भाँति
लाली देखने चला था मैं भी लाल होगया

कवि जी ने पञ्जाब की हिन्दी-रत्न, विशारद, प्रभाकर पुस्तकों का अध्ययन केवल साहित्य ज्ञानोपार्जन हेतु किया था। परीक्षा किसी की न दी। क्योंकि स्व० पं० कालीचरणजी शर्मा आर्य शास्त्रार्थ महारथी मौलवी फाजिल ने कवि जी को परामर्श दिया था कि तुम साहित्य ज्ञान बुद्धि के लिये पुस्तकें भले ही पढ़ना परन्तु परीक्षा कदापि न देना। परीक्षा में सफल हो जाओगे तो क्रमश ऊँचे प्रमाण-पत्र प्राप्त कर कहीं अध्यापक, प्राध्यापक होने की सोचोगे और आर्य समाज के प्रचारक नहीं रहोगे। उन्होंने अनेक उदाहरण दिये जो कि ऊँची डिगरियाँ प्राप्त करके वे उपदेश छोड़ कर कहीं अध्यापक अथवा प्रोफेसर

नियुक्त हो गये। इसी भय से कवि जी ने परीक्षा नहीं दी।

हाँ कितने ही छात्रों को परीक्षा देने के लिए अध्ययन अवश्य करा देते थे। आज भी अस्वस्थता में भी छात्रों को शिक्षण देते रहते हैं।

कुछ समय पश्चात् कविरत्न जी ने प्रकाश भजनावली का दूसरा भाग भी छपा लिया। प्रचारार्थ अजमेर से बाहर के निमन्त्रण भी इनको प्राप्त होने लगे। कवि जी आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रचारक नियुक्त हो गये।

वहाँ प्रथम बार दो मास आदरणीय पं० राम सहायजी शर्मा के साथ कवि जी का प्रचारार्थ शेखावाटी के ग्रामों तथा कस्बों में भ्रमण हुआ। कवि जी ने ग्रामों के अनुकूल महात्मा कालूराम जी के भजन तथा श्रद्धेय बस्तीराम जी के भजन भी याद किये। कई गांवों की ग्रामीण जनता इनकी हिन्दी भाषा के भजन नहीं समझ पाती थी, और साफ-साफ कह देते थे—तेरी बोली और तेरे भजन हमारी समझ में नहीं आते हैं। परन्तु कविजी कभी भी निराश व उदास नहीं हुए, पंडितजी हमेशा इनका उत्साह बढ़ाते रहे।

कविजी की संध्या व हवन करने की रुचि में वृद्धि रामसहाय शर्मा पण्डित जी के अनुकरण करने से हुई।

आर्य समाज के विरोधी लोगों ने कई स्थानों पर इनका अपमान, तिरस्कार व आक्रमण भी किये परन्तु वैदिक धर्म प्रचार की लग्न में रंचमात्र कमी नहीं आई। अपितु इनका उत्साह और अधिक ही बढ़ा।

पंडितजी के साथ बीकानेर, नागौर, कोटा, झालावाड़, जयपुर, जोधपुर, राजस्थान कई कई स्थानों पर भ्रमण किया। जोधपुर में आर्य समाज जो कि गुलाबसागर के सहारे है रात्रि में प्रातःकाल के चार बजे एक स्त्री गुलाब सागर में गिर गई। कान में आवाज पड़ी एक औरत गिर पड़ी है। उसी समय तालाब पर कविजी पहुँचे और देखते ही कूद पड़े। बड़ी कठिनता से स्त्री को बाहर निकाला।

श्री पं० सोहन लालजी, मास्टर वाली जी, श्री देवीदयाल जी चंडक, श्री अवस्थी जी आर्य समाज के उत्साही कार्य कर्त्ता थे व धर्म प्रचार में पूर्ण सहयोग देते थे।

गुलाब सागर पर जहाँ आज आर्य समाज है, वहाँ कभी लफंगे, गुण्डे मुसलमान पानी भरने वाली स्त्रियों से छेड़-छाड़ किया करते से थे। कोई न कोई दुर्घटना उनके द्वारा नित्य होती रहती थी।

आर्य समाज के उत्साही कार्य-कर्त्ताओं के प्रबल पुरुषार्थ से तथा आर्य समाज के प्रचार के प्रभाव से आर्य समाज मंदिर के सामने वाली हवेली के ठाकुर साहिब ने यह स्थान सहर्ष आर्य समाज के निर्माण के लिए अर्पण कर दिया। आज यहाँ वेदों की कथा, हवन, सत्संग आदि होते हैं—दयानन्द जन्म शताब्दी मथुरा के कुछ वर्ष पश्चात् प्रथम दयानन्द बोधोत्सव टंकारा में, अजमेर से आर्य जनों के साथ कविरत्नजी भी गये। आर्य विद्वानों के साथ वहाँ श्री पं. महाराणी शंकर जी, श्री ठाकुर नत्था सिंहजी के सुन्दर भजनोपदेश होते थे अन्तिम दिन श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने कविरत्न के भजनों कविताओं का कार्यक्रम रखा। कवि जी ने संगीत स्वर लहरी के साथ निम्न कविता सुनाई—

कष्ट हरने हराने अनाथों दलित वृन्द का
नाश करने अधम दासता फन्द का
मोड़ने मुख मलिन म्लेच्छ मति मन्द का
फोड़ने भण्ड पाखण्ड छल छन्द का
प्राप्त करने कराने 'प्रकाशार्य' प्रिय
बोध सद्धर्म शिव सच्चिदानन्द का
था किसे ज्ञात होगा कर्षण जी के घर
जन्म टन्कारा में श्री दयानन्द का

तत्पश्चात् समस्त जनता के साथ 'वेदों का डंका आलम में' यह गीत गुंजाया। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज मौरवी महाराजा तथा वीरपुर आर्य नरेश भी झूम उठे।

वीरपुर आर्य नरेश ने संगीताचार्य बसन्त के द्वारा कविरत्नजी को अपने निवास स्थान पर सादर बुलाया और कविता संगीतादि स्नेह पूर्वक श्रवण कर उन्हें पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया।

कविरत्न कभी-कभी देशभक्त कुंवर चाँदकरणजी शारदा के साथ भी प्रचारार्थ जाते थे। एक बार वे

कविरत्नजी तथा पं० जगन्नाथ जी उपाध्याय को पिलानी ले गये थे. तभी से जुगल किशोरजी बिरला कविजी को कभी-कभी अपने यहाँ प्रचारार्थ निमंत्रण देकर बुला लिया करते थे। एक वार पिलानी से श्री लक्ष्मी निवासजी बिरला के साथ दिल्ली गये। वहाँ सेठ जुगल किशोरजी बिरला के यहाँ डा० श्री सुखदेवजी तथा श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के दर्शन हुए—स्वामी महाराज को बाबू जुगल किशोर जी बिरला ने कहा आर्य समाज के प्रचारक ये प्रकाशजी हैं जिन्होंने "वेदों का डंका आलम में वजवा दिया ऋषि दयानन्द ने, यह भजन बनाया है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी कविरत्नजी को पहचान गये। प्रसन्न होकर बोले 'प्रकाश' तेरा ये भजन जनता बड़े प्रेम से गाती है। इनका चावड़ी बाजार आर्य समाज में श्री पं० इन्द्रजी को सूचना देकर रविवार के अधिवेशन में भजनों का कार्यक्रम निश्चित कर दिया। वहाँ आर्य जनता ने "वेदों का डंका" यही भजन सुनने की प्रवल इच्छा प्रकट की। और कविजी ने एक भजन ईश्वर भक्ति का सुनाकर यही उच्च स्वर में सबके साथ गवाया।

उन्हीं दिनों पंजाब के निवासी स्व० परमानन्द जी महोपदेशक भी राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा में कार्य कर रहे थे। उनके साथ कविजी अनेक स्थानों पर प्रचार करते रहे। वे बड़े कर्मठ, कुशल वक्ता, लेखक, सौम्य व्यवहार से सदा कविजी को सन्तुष्ट रखते थे। उन्होंने अजमेर में कचहरी रोड हाथी भाटा के निकट शिशु सदन की स्थापना की थी। जिसका आज भी उनकी धर्मपत्नी आदरणीया मनोरमा देवीजी सुचारू रुपेण संचालन कर रही हैं।

उन दिनों कविरत्नजी के पास उत्तर प्रदेश आर्य समाजोत्सव के निमन्त्रण अधिक आने लगे। अतः कविजी ने कुछ समय के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान से अवकाश ले लिया।

कुछ दिनों पश्चात् प्रधान रायबहादुर पं० मिट्ठनलालजी भार्गव तथा कर्मवीर पं० जियालालजी ने पुनः आर्यसमाज की ओर से प्रचारार्थ समय देने का कविजीको आग्रह किया। इन दोनों ने ही अजमेर तथा राजस्थान के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में प्रचारार्थ जाने की कविजी इस माँग को सहर्ष स्वीकार किया। कविजी ने भी आर्यसमाज अजमेर की ओर से प्रचारक होना स्वीकार कर लिया।

गुरुकुल काँगड़ी के प्रसिद्ध स्नातक पं० जनमजेयजी विद्यालंकार कुछ मास पश्चात् आर्यसमाज अजमेर के महोपदेशक नियुक्त हुए थे। उनके सम्पर्क से कवि की संस्कृत साहित्य-अध्ययन की ओर विशेष रुचि बढ़ी।

कुछ मास पश्चात् श्री पन्नालालजी पीयूष भी कविजी के साथ प्रचार में जाने लगे। वे कविजी के साथ करांची, लाहौर, अमृतसर, जालन्धर तथा उत्तर प्रदेश में बिहार तथा बंगाल के अनेक नगरों में गये।

दक्षिण हैदराबाद रियासत के विविध नगरों में वैदिकधर्म का प्रचार किया।

पीयूषजी ने भी कभी प्रचार में उदासीनता नहीं दिखाई। संध्या, हवन व स्वाध्याय भी निरन्तर करते रहते थे। कई बार उन्हें कविजी के साथ आरम्भ में कष्ट भी उठाने पड़े। परन्तु कभी भी उन्होंने उपालम्भ नहीं दिया और न कभी चिन्तित हुए। इनकी कविजी के प्रति हार्दिक श्रद्धा आज भी पूर्ववत ही है।

आर्यसमाज स्वर्ण जयन्ती तथा दयानन्द निर्वाण शताब्दी अजमेर के पश्चात् ये जयपुर चले गये जहाँ स्वजनों के विशेष आग्रह से एक विशाल आयोजन के साथ एक संगीत विद्यालय तथा पाठशाला और हारमोनियम अन्य संगीतवाद्यों की एक दुकान भी स्थापित की। कभी कभी अजमेर भी आते जाते रहते थे और स्वतंत्र रूपेण आर्यसमाजों के उत्सवों आदि में प्रचारार्थ आते जाते थे।

सन् १९३१ में असहयोग आन्दोलन छिड़ा तो पन्नालालजी पीयूष मेवाड़ में बन्दी हो गये और इधर मुख्याध्यापक, अजमेर कांग्रेस प्रधान, लक्ष्मीनारायणजी, [स्वामी प्रेमानन्दजी] हिन्दी पातञ्जलि योगदर्शन के रचयिता, अजमेर ऋषि उद्यान में ब्रिटिश सरकार द्वारा बन्दी बनाये गये।

उस समय कविजी बाबूराम ब्रह्मकविजी के साथ थे। दोनों सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने लगे। कविरत्नजी श्री पं० शीतलचन्दजी शर्मा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान (वर्तमान स्वामी सोमानन्दजी) भी कविजी के साथ इस असहयोग आन्दोलन में सोत्साह भाग लेने लगे। इसी आन्दोलन में वे बन्दी होकर उत्तर प्रदेश के एक नगर की जेल में पहुँच गये।

इधर कविजी तथा प्रिय बाबूराम शर्मा ब्रह्मकवि जी सत्याग्रह आन्दोलन में तथा कविजी की माताजी भी पुलिस द्वारा पकड़ी गई। वे जेल पहुँचा दिये गये। और माताजी छोड़ दी गयीं। इसी आन्दोलन में भाग लेने के कारण कांग्रेस तथा आर्यसमाज के सामान्य तथा मूर्धन्य कार्यकर्त्ताओं का प्रायः भारत की सभी जेलों में उन दिनों जमाव था। आर्यों के नित्य प्रति सत्संग होते थे। पर्याप्त राजनैतिक आर्यबन्दी भाग लेते थे। हवन की सुगन्धि से वातावरण सुगन्धित रहता था। जेल में कविता भजनादि लिखने तथा स्वाध्याय करने का अवकाश मिला।

आर्यसमाज के महोपदेशक सुकवि देशभक्त कुँवर सुखलालजी आर्य मुसाफिर ने आगरे की जेल में यह प्रसिद्ध गजल लिखी थी जिसका एक शेर है—

मुसाफिर मिल नहीं सकते हैं शोरो शर की दुनियाँ में।
फ़क़ीरी और इबादत के यहाँ जो स्वाद आते हैं।।

उन दिनों कष्टों एवं अन्याय का सामना करने का असीम साहस, ओज, उत्साह आठों पहर अन्तःकरण में बना रहता है। १५ अक्टूबर को कुछ बन्दियों के साथ अजमेर कारागार से अनायास कविजी मुक्त कर दिये गये। किसी भी सज्जन के जेल जीवन के अपने अनुभव पूछने पर कविरत्नजी स्वनिर्मित यह मनहरण छन्द (कविता) भी सुनाया करते थे।

नंगी देह पै उड़ाते चाबुक थे अधिकारी,
किन्तु वे हमारे लिये फूल की थीं छड़ियां।
स्वाद आता था सुधा सा रूखी-सूखी रोटियों में,
मारे भूख जब सूख जाती थीं अंतड़ियां।
गाते थे तराने देश प्रेम के दीवाने बन,
तसले की ताल पै बजाके हथकड़ियां।
था हर्षोन्माद न था किञ्चित् विषाद हाय,
आती हैं वे याद जेल जीवन की घड़ियाँ।

आर्य समाज के कार्यक्रमों के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में भी कविजी निरन्तर कार्य करते रहे। कुछ वर्ष पश्चात् जब निजाम शाही के अन्याय अत्याचार की पराकाष्ठा हुई तो उसके उन्मूलन हेतु सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा आर्य सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया था। प्रथम सर्वाधिकारी श्रद्धेय महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज, द्वितीय राजस्थान केसरी देश भक्त कुंवर चाँदकरण शारदा बने, जब राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री, 'स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज' तथा श्री पं. देवेन्द्र नाथ शास्त्री तृतीय तथा चतुर्थ अधिनायक बने तब आर्यसमाज अजमेर के मुख्य कार्यकर्त्ता कर्मवीर पं. जियालालजी ने राजगुरु आर्य सत्याग्रही तथा देवेन्द्र आर्य सत्याग्रही नाम के दो स्पेशल ट्रेन अजमेर से निजाम हैदराबाद भेजीं। प्रत्येक ट्रेन में ५०० उत्साही आर्य सत्याग्रही थे।

उन दिनों दुर्भाग्यवश कवि जी संग्रहिणी रोग से अत्यन्त पीड़ित थे तथापि कर्मवीर पं. जियालालजी, डी. ए. वी. हाईस्कूल के मुख्याध्यापक श्री पं. सूर्यदेव जी शर्मा तथा पं. देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री के साथ राजस्थान, उत्तर प्रदेश में आर्य सत्याग्रह आन्दोलन का तीव्र गति से निरन्तर प्रचार करते रहे। दुर्भाग्य वश बीमार होने के कारण इच्छा होते हुए भी कविजी सत्याग्रही व आर्य सैनिकों के साथ नहीं भेजे गये। दोनों स्पेशलों में आर्य सत्याग्रहियों के साथ ये प्रचार करते गये।

कवि जी के अस्वस्थावस्था में भी प्रचार करने के कारण और भी अधिक अस्वस्थ हो गये। परन्तु ज्योंही भारत के कोने कोने से आये आर्य सत्याग्रहियों ने जत्थों ने निजाम शाही को आर्यों की शर्तें स्वीकार करने पर विवश किया त्योंहीं सब आर्य सत्याग्रही मुक्त कर दिये गये। ये समाचार कवि जी ने सुना और उसी समय से इनका संग्रहिणी रोग दूर होता गया। यह आर्य समाज की बड़ी भारी विजय थी। महात्मा गाँधी जी ने भी इस आर्य सत्याग्रह की

भूरि भूरि सराहना की थी उस समय कविरत्नजी ने आर्य सत्याग्रही सैनिकों की प्रशस्ति में निम्न कविता लिखी थी —

चाहता नवाव हैदरावाद था मिटाना हस्ती
दुनिया से आर्य जाति वैदिक विधान की।
मठ, मन्दिर-निर्माण पै लगाया प्रतिबन्ध
इज्जत बढानी चाही मस्जिद कुरान की।
आर्य सत्याग्रही वीरों ने मिटाने को अन्याय
निपट निशंक हो लगाई वाजी ज्ञान की
नींव ही हिलाई अत्याचारी क्रूर शासन की
धूल में मिलाई सब शेखी सुलतान की।

कुछ दिन वाद संग्रहिणी रोग से मुक्त हो कर पूर्ववत् प्रचार में संलग्न रहे। कुछ वर्ष पश्चात् १९४२ का राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन बड़ी तीव्रगति से प्रारम्भ हुआ। उन दिनों कविजी उत्तर प्रदेश के वस्ती नगर में प्रचारार्थ गये थे। आर्यसमाज में इनके देशभक्ति पूर्ण ओजस्वी कविता, गीत, एवं प्रवचन होते रहे जिन्हें सुनकर जनता में जोश की ज्वाला भड़क उठी – विद्यालयों के छात्रों ने हड़ताल करदी। कई स्थानों पर तोड़ा फोड़ी का कार्यक्रम भी प्रारम्भ कर दिया। वस्ती से कविरत्न कलवारी ग्राम में प्रचारार्थ चले गये—कवि जी को पुलिस इन्सपेक्टर वारन्ट लेकर गिरफ्तार करने को आया। परन्तु वहाँ की जनता के प्रवल जोश के कारण इन्हें पकड़ा नहीं। भजन व्याख्यान होते रहे। पुलिस इन्सपेक्टर वापस चला गया।

उन दिनों वच्चे वच्चे के रक्त में देश भक्ति का उबाल था। नेताजी सुभाष का भी जनता पर काफी प्रभाव था। ब्रिटिश शासन कम्पायमान था। दमन चक्र भी असफल हो जाया करते थे।

कुछ मास पश्चात् अंग्रेजों की चाल से पाकिस्तान का आन्दोलन छिड़ गया। हिन्दू-मुसलमानों में भेद-भाव डालने की नीति काम कर गई।

पाकिस्तान आन्दोलन के विरुद्ध आर्य समाज ने भी प्रवल विरोध किया, परन्तु पाकिस्तान बन गया। स्वराज्य मिला परन्तु भारत माँ का शरीर खण्डित हो गया। कवि जी के शरीर में जो दर्द था वह बढ़ता गया। पाकिस्तान बनने के कारण करोड़ों हिन्दुओं का सिन्ध पंजाव से अपने समस्त वैभव सुख-साज छोड़कर भारत में आना पड़ा। बहुत से परिचित आर्य जनों के भव्य-भवनों में ये अतिथी रूप से सादर निमन्त्रित होकर जाते थे। उनकी विकट परिस्थिति देखकर वड़ा दुख होता था। किसी कार्य में मन नहीं लगता था। अब चिन्तित निरुत्साहित होने के कारण दर्द बढ़कर संधिवात रोग में परिवर्तित हो गया। आर्य समाज अजमेर के प्रमुख कार्यकर्त्ता कर्मवीर पं० जियालालजी कविजी को उपचारार्थ आर्य समाज में ले आये। उपचार वे पूर्ण लगन से कराते रहे। वैद्यराज पं० ब्रह्मानंदजी त्रिपाठी, डा० श्री चन्द्र जी, वैद्यराज पं० रामचन्द्र जी, उनके सुपुत्र श्री रमेश चन्द्र शर्मा, श्री डा० अम्बालाल शर्मा आदि वड़ी संलग्न उदारता से वर्षों उपचार करते रहे परन्तु विशेष लाभ नहीं हुआ। हाँ दर्द कुछ कम अवश्य हो गया। कविराजजी के स्नेही, आर्य समाज सदर मेरठ के उत्साही कार्यकर्त्ता बाबू रघुनंदन स्वरूपजी गोयल तथा उनके छोटे भ्राता श्री ओम प्रकाशजी गोयल एवं उनके परिवार ने उपचार एवं सेवा में कोई कमी नहीं रखी परन्तु उस वर्ष हिमपात अधिक पड़ने से शीत लहर का प्रवल कोप रहा जिसके कारण स्वास्थ्य लाभ न हो पाया।

कविरत्नजी ने अपने स्नेही सुदृढ़ जनों को भी अपनी अस्वस्थता की सूचना नहीं दी। कविजी के परम कृपालु गुरुवर प्रसिद्ध साहित्यकार पद्मश्री स्वर्गीय डा० हरीशंकर जी शर्मा, भूतपूर्व उपकुलपति गुरुकुल महाविद्यालय वृन्दावन, ने उनकी सूचना प्रसारित की। तब आर्य समाज फिरोजावाद के कर्मठ कार्यकर्ता सुकवि कृष्णलालजी कुसुमाकर आर्य साहित्यरत्न तथा सुप्रसिद्ध उदार हृदय आर्य साहित्य सेवी बाल कृष्ण अजमेर में कविजी से मिलने आये। कविजी की यह अवस्था देखकर दोनों के नेत्र सजल हो गये। सुहृद बाल कृष्ण जी ने कवि जी की इस विकट परिस्थिति में वड़ी उदारता व आर्यत्व का परिचय दिया।

कविजी की बीमारी का समाचार सुनकर प्रिय पन्नालालजी पीयूष अजमेर आये और इनकी अस्वस्थता

देखकर बड़े व्यथित हुए और अजमेर रहने का निश्चय कर लिया। आर्य सज्जन श्री के.एल. वर्माजी ने बड़ी उदारता से उनके रहने एवं संगीत विद्यालय के स्थापनार्थ उचित स्थान दे दिया।

अस्वस्थता में भी कविजी कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे और छात्रों को संगीत भी सिखाया करते थे। कविजी को बाबू जियालालजी ने श्री ब्रजनंदनजी शर्मा, मुख्याध्यापक द्वारा विरजानंद हाई स्कूल में संगीताध्यापक नियुक्त कर दिया था।

छठी से दसवीं कक्षा तक के छात्रों को संगीत सिखाया करते थे। दसवीं कक्षा बोर्ड की संगीत परीक्षा भी देती थी।

श्री पन्नालालजी पीयूष ने कविरत्न की अस्वस्थता में ही रचित क्रमशः भजनावली सम्पूर्ण, प्रकाश भजन सत्संग, गौ गीत प्रकाश, राष्ट्र जागरण गीत, आदि वैदिक यन्त्रालय आदि में प्रकाशित करवाई। सहस्त्रों प्रतियाँ बेचकर तथा आर्य बन्धु, बहिनों से पुस्तकों के प्रकाशनार्थ सहयोग प्राप्त कर रहे हैं। आज भी पूर्ववत् अथक परिश्रम से सेवा करते रहते हैं।

पीयूषजी तथा आर्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता एवं प्रभावी वक्ता श्री पं० प्रकाशवीरजी शास्त्री ने, डाइरेक्टर मेडिकल विभाग, राजस्थान के स्वर्गीय डा० श्री वी. एन. शर्मा द्वारा सवाई मानसिंह अस्पताल में कविरत्नजी के उपचार का उचित प्रबन्ध कराया। जयपुर के आर्य बन्धुओं एवं बहिनों ने पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। अन्य स्थानों की आर्य जनता ने भी सक्रिय सहानुभूति प्रकट की। कविरत्न जी स्वस्था-वस्था में अनेक स्थानों पर वैदिक धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते रहते हैं। अब एक छोटे से कमरे में रोग शैय्या पर पड़े रहते हैं। अपने अतीत की सुखद स्मृति जागृत होने पर उन्होंने डायरी में लिखा था—

धर्म प्रचारार्थ जाता था पंजाब राजस्थान
उत्तर प्रदेश आन्ध्र [redacted] बिहार व बंगाल में
निज प्रवचन काव्य गीत द्वारा करता था
भक्ति, शक्ति का सञ्चार वृद्ध युवा बाल में
सुनता स्वयम् भी था सुन्दर सदोपदेश
भरता था भद्रभाव निज अन्तरााल में
देखो तो दिनों का फेर आज पड़ा हूँ अस्वस्थ
असमर्थ, अस्त व्यस्त आह ! अस्पताल में

उसी अस्पताल में रोग शैय्या पर पड़े-पड़े कहावत कवितावली प्रथम भाग, गौ गीत प्रकाश तथा अन्य गीत कविताएँ अवश्य सृजन कर ली थीं। एक दिन कविरत्न जी सन्ध्या करते समय सीना ताने बैठे थे। उसी समय श्री बद्रीप्रसाद गुप्त भू. पू. स्वास्थ्य मंत्री (राजस्थान) तथा डाक्टर वी. एन. शर्मा (डाईरेक्टर, चिकित्सा विभाग, जयपुर) इनके कमरे में आये और हँसकर बोले प्रकाश जी आप अजब मरीज हो जो सीना तान के अकड़ रहे हो। कविजी ने उसी समय एक शेर सुना दिया—

जिन्दगी में तो किसी को क्या सर झुकाऊँगा,
बाद मरने के तो मैं और अकड़ जाऊँगा।

कवि जी नौ मास अस्पताल में रह कर पुनः अजमेर आ गये। कर्मवीर बाबू जियालाल जी के निधन के लगभग एक वर्ष पश्चात् आर्य समाज के समीप एक मकान में रहकर फिर अपनी बड़ी बहन हर देवी जी के मकान पर आगये और अब भी यहीं रह रहे हैं। लगभग ११ वर्ष से श्रीमान सी. एल. बाहारी जी हावड़ा से अपने पूज्य पिताजी श्री लालचन्द सी. एन्ड आर. ट्रस्ट की ओर से बड़ी उदारता से १०० रु. मासिक कविजी को सन् १९६० से भेज रहे हैं तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली द्वारा इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में लगभग ५ वर्ष से पुरस्कार रूपेण १०० रु. मासिक १९६७ से भेजा जा रहा है। स्व. श्रद्धेय महात्मा आनन्द भिक्षुजी १९६४ से निरन्तर १० रु. मासिक भेजते रहते थे। उनके निधन के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री जैमनी शास्त्री एम. ए. प्राध्यापक दिल्ली, १० रु. मासिक पूर्ववत् भेज रहे हैं। १५ रु. आदरणीय बलदेव जी वानप्रस्थी लगभग १९७० पाणिनि विद्यालय वेद मन्दिर चाँदपुर बिजनौर से भेज रहे हैं। हाई ब्लड प्रेशर रोग से तीन वर्ष से इस राशि से कविरत्न जी के जीवन निर्वाह, उपचार, सेवक,

आदि का व्यय होता है तथा इनके साहित्य प्रकाशन में लगा दिया जाता है। इनकी धर्मपत्नी पुष्पा देवी ३ वर्ष से ब्लड प्रेशर रोग से अत्यन्त पीड़ित हैं। वे कभी कभी कवि जी के साथ संगीत तथा भाषण द्वारा धर्म प्रचार में भी भाग लिया करती थी। बड़ी बहिन हरदेवी जी भी अस्वस्थ रहती हैं। स्वयं चलने फिरने से लाचार हैं, हाथ पैर काम नहीं करते हैं कठिनता से लिख पाते हैं परन्तु ईश्वर की महान कृपा है जो हृदय व मस्तिष्क में कोई विकार नहीं है। निरन्तर १०, १२ घन्टे बैठ कर अध्यापन, चिन्तन, मनन, साहित्य, सृजन करते रहते हैं। निराशा, हीन भावना पास नहीं फटकती। कविरत्न जी ने स्वयं लिखा है—

न जवानी है न वो खून में रवानी है
सख्त हैरानी परेशानी नातवानी है
मैं बढ़ा जा रहा हूँ जानिबे मंजिल फिर भी
खौफे आफ़त से कभी हार नहीं मानी है।
यद्यपि कुदैव व्याल का विषाक्त गड़ा दन्त है
सहस्र टूक लाख छेद वेदना अनन्त है
हुआ समस्त मम शरीर शुष्क पातझड़ सदृश
तदपि हृदय निकुञ्ज में बसन्त ही बसन्त है

अब महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र महाकाव्य के सृजन में संलग्न हैं। महाभारत के पर्वों के आख्यान-शिशुपाल वध, जरासन्ध वध, कीचक वध, द्रोपदी चीर हरण, वीर अभिमन्यु, पार्थ प्रतिज्ञा आदि काव्य रुप में लिख लिये हैं परन्तु वे धनाभाव के कारण अप्रकाशित पड़े हैं।

CO

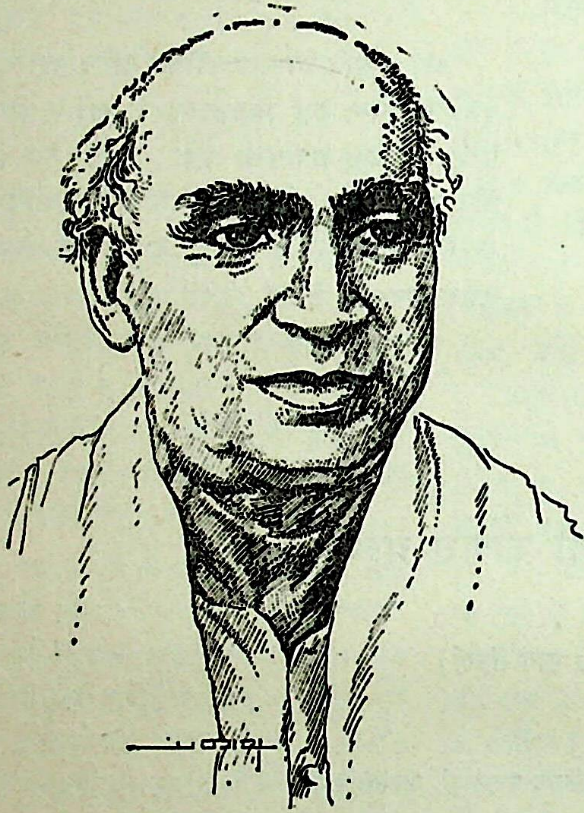
प्रकाशजी रचित ग्रन्थ

प्रकाशित

प्रकाश भजनावलि (पांच भाग संपूर्ण)
प्रकाश भजन सत्संग
प्रकाश–गीत [चार भाग]
प्रकाश–तरंगिणी [साहित्यिक रचनाओं का संकलन]
कहावत–कवितावलि
गो–गीत–प्रकाश
बाल हकीकत

अप्रकाशित

प्रकाश–गीतांजलि
महाभारत [महाकाव्य]
महर्षि दयानन्द–चरित्र [महाकाव्य]



कवि प्रकाशजी का एक रेखाचित्र

चित्रकार : प्रकाश आर्टिस्ट

शुभम् भवतु : सदाविजय आर्य

काव्याकाश के क्षितिज की ओर तीव्रगति से अग्रसर होते हुए, छंदालंकार-चक्रों को खींचते, वाक्-तुरंगों से युक्त काव्य-रथारूढ़ से अचेतन ने धीमे से पूछा-प्रतिभावान शक्ति धारी ! प्रयाण का प्रयोजन !

जन-मानस-विजय !—जैसे शून्य में घनघोर गर्जन हुआ ।

सुदूर दक्षिण के जन-मानस गीतों से मोहित हो गए. क्रांति के शब्द, लय और छन्दों पर थिरकते रहे, जन-मानस उत्साहित, उद्वेलित होता रहा. आततायी भूपति का शासन-तंत्र कंपायमान हो उठा. यवन-हृदय आतंकित हो गया, सारा भारत यश गाने लगा । प्रथम विजय-अभियान में पूर्ण सफलता पर अचेतन का स्वर प्रस्फुटित हुआ-संतुष्ट हो कवि !

पुरुषार्थी संतुष्ट नहीं होते, संतोष, प्रगति को कुंठित कर देता है, मैंने रुकना कहां सीखा है !

शब्द थिरकते रहे, भाव नृत्य करते रहे, लय गाती रही, छंद गतिशील रहे, अलंकार-सज्जित होते रहे, रस, प्रवाहित होता रहा, यौवन की उत्ताल तरंगों में दोलायमान मन, मद में झूमता रहा, विजय-पताकाएँ जन-मानसाकाश में यश-तारावलि का स्पर्श करने लालायित हो उठी ।



आकाश की ओर उन्मुख लताओं पर, प्रातः कालीन मलय-समीर और सविता की किरणों का स्पर्श पाकर मुस्काते कुसुमों पर, निर्झर उत्स पर, मानस की रमणीय सतरंगी कल्पनाओं पर एक दिन अचानक वज्रपात हो गया ।

सरिता, वेदना की स्वर लहरियों को लेकर पीड़ा के सागर की ओर दौड़ी, धरती दग्धता का अनल लेकर ज्वालामुखी से मिलने दौड़ी, आकाश, करुणा की धारा लेकर जलधरों की ओर दौड़ा, क्रंदन की ध्वनि गुंजायमान होकर विधाता की ओर दौड़ी, चपला चीत्कार कर उठी, दिग्दिगन्त स्तब्ध रह गए, उसे जड़िमा के उपसर्ग ने आ घेरा।

वह फूट पड़ा। समाज ने किसी की वेदना को कब समझा है कब अनुभव किया है! उसका मानस क्रंदन कर उठा। किन्तु समाज की जड़िमा कम न हुई, उसकी करुणा से लालित रवि किरणों ने समाज को प्रकाश दिया लेकिन उसकी वेदना को किसने जाना!

मानस, निराशा के घनघोर अंधस् में धंसने लगा, मानस हतोत्साहित हुआ, मानस त्रस्त होकर नव-अभियान के संकेत देने लगा, ऐसे दारुण तम सिन्धु में अंतश्चेतना की उर्मि प्रकाशित हो उठी, उसने उसकी वेदना को सहलाया, उसने उसके अश्रुओं का पान किया, उसने उसके क्रंदन का आलिंगन किया।

अचेतन का उत्स झरा— रुको नहीं, बढ़ो! आगे बढ़ो!! यह जड़ता समाज की है तुम उसे क्षीण कर दो, जड़ता की भित्तियों को वेध कर बाहर निकलो, प्रकाश तुम्हारा पथ प्रदर्शन करेगा, करुणा तुम्हारी पाथेय बनेगी, वेदना तुम्हे रसमय करेगी, जड़ता तुम्हे प्रतिकार करने की प्रेरणा देगी, तुम्हारे अंग न सही, अब तुम्हारे संकेतों पर शब्द थिरकेंगे, कविता-कामिनी नृत्य करेगी, रस प्रवाहित होगा, लय मधुर संगीत रचेगा, छंद और अलंकार शृंगार करेंगे, भाव जन-मन को आकुल करेंगे। कवि बढ़ो, रुको नहीं, आगे बढ़ो!

देव-गृह के मानस-प्रांगण में नूपुर, मृदग, मुरुज, वीणा, वेणू का क्वणन-ध्वनन होने लगा, भाव-कामिनी नृत्य करने लगी, रस के निर्झर फूट पड़े, इन्दु किरणों ने मादकता बिखेर दी, अन्तर्मन से शब्द ध्वनित हुआ—"ओऽऽऽम्"

किसी यात्री ने कहा 'शुभम् भवतु',

□□

मंगलकामना



वड़ी प्रसन्नता की बात है कि कविरत्न प. प्रकाशचन्द्र जी का अभिनन्दन करने का आयोजन किया जा रहा है।

आनन्द स्वामी सरस्वती

○○

कविरत्न पं. प्रकाशचन्द्र जी के सार्वजनिक अभिनन्दन के लिये धन्यवाद। यह एक परम शुभ कार्य है। पण्डित जी के द्वारा की गई सेवाओं के लिये आर्य जगत् सदा आभारी रहेगा।

डाक्टर दुखनराम, पटना
प्रधान,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

○○

कविरत्न पं. प्रकाशचन्द्र जी के अभिनन्दन का आयोजन बहुत प्रशंसनीय है।

स्व० आनन्द भिक्षु वानप्रस्थी

○○

अभिनन्दन का समाचार पाकर हर्ष हुआ।

रामगोपाल शालवाले

○○

अभिनन्दन-समारोह सफल हो।

प्रकाशवीर शास्त्री

○○

कविरत्न पं. जी प्रकाशचन्द्र जी "प्रकाश" हम सबके अभिनन्दनीय हैं।

नरेन्द्र हैदराबाद

○○

श्री प्रकाशजी ने युवावस्था से ही सामाजिक कार्य करने प्रारम्भ कर दिए थे। दैवी प्रकोप के उपरान्त भी आप निराश नहीं हुए और उसी उत्साह व धैर्य से यथा संभव कार्य कर समाज की सेवा करते रहे हैं। ऐसे व्यक्ति का अभिनन्दन होना ही चाहिए। मैं अपनी ओर से उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हूँ।

कृष्णराव वाब्ले
आचार्य
दयानन्द कॉलेज अजमेर

○○

धन्यवाद के पात्र

कविरत्न श्री प्रकाश जी आर्य जगत् के उन विशेष कवियों में से हैं जिन्होंने अपनी कविता के द्वारा अनेकों नर-नारियों एवं युवकों के हृदयों में सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रति आस्था व श्रद्धा उत्पन्न कर उन्हें महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज की ओर आकर्षित किया है। रुग्णावस्था में होते हुए भी उन्होंने वैदिक धर्म-प्रचार के व्रत को नहीं छोड़ा। वैदिक धर्म के प्रति यह उनकी आस्था, विश्वास एवं मिशनरी भाव का द्योतक है। आर्य समाज के प्रति उनकी सेवाएं सचमुच सराहनीय हैं और वे इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

⊙⊙

ओ३म् प्रकाश त्यागी
प्रधान मंत्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

शुभ कामना

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् सुयोग्य संगीतज्ञ कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी का आर्य जनता सार्वजनिक अभिनन्दन कर उन्हें अपना सक्रिय हार्दिक प्रेम समर्पित करने जा रही है। कविरत्न जी वास्तव में आर्यसमाज, आर्य संस्कृति एवं वैदिक धर्म के मूर्तमान-प्रतीक हैं। उन्होंने अपने काव्य, संगीत और वाणी से सुषुप्त आर्य जाति में उत्साह एवं नवजीवन का संचार किया है।

मेरी कामना है कि आर्य जनता अवश्य अपना हार्दिक सहयोग एवं प्रेम समर्पित कर अपने कर्त्तव्य का पालन करे।

मैं अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ प्रेषित करते हुए उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

⊙⊙

श्रीकरण शारदा
मंत्री
परोपकारिणी सभा, अजमेर

अमर सेवाएं

प्रत्येक भारतवासी विशेष रूप से आर्य नरनारी श्री प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न से भलीभांति परिचित हैं। उनके बारे में दो शब्द लिखना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिए ऐसा है जैसे सूर्य को दीपक दिखाना।

उन्होंने आर्यजगत् की जो सेवाएँ संगीत एवं वाणी द्वारा की हैं, वह आर्यसमाज के इतिहास में सदैव अमर रहेंगी। चाहे किसी ने कविरत्न जी का साक्षात्कार किया हो अथवा नहीं, उनकी कविताओं एवं गीत की धुन प्रत्येक आर्य नरनारी के मस्तिष्क में बनी रहती है और उनके उच्चतम व्यक्तित्व की सदा याद आती रहती है। मैं ऐसे महान् व्यक्ति का इस अवसर पर हार्दिक अभिवादन करता हूँ, परमात्मा उन्हें स्वस्थ एवं चिरायु करे। ⊙⊙

छोटूसिंह
प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान

प्रतिष्ठित विद्वान्

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई है कि 'ऋषि मेले' के अवसर पर आर्य जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान्, कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र 'प्रकाश' जी का अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जा रहा है। श्री प्रकाश जी जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति के अभिनन्दन का आपका यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। मैं आपके इस आयोजन की सफलता की हार्दिक कामना करता हूं।

शुभ कामनाओं सहित,

⊙⊙

प्रो० शेरसिंह
कृषि राज्यमन्त्री,
भारत सरकार

पथ प्रदर्शक

गौरव की बात है कि आगामी अक्टूबर में "ऋषि-मेला" के अवसर पर कविरत्न पंडित प्रकाशचन्द्र जी "प्रकाश" के अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया जा रहा है। श्री प्रकाश जी भारत के प्रख्यात कवि, गायक, वादक, संगीतमर्मज्ञ, भजनोपदेशक, विचारक एवं उच्च कोटि के साहित्यकार हैं। इनका निःस्वार्थ त्याग, अपूर्व जीवनादर्श एवं अडिग संकल्प साधना का गौरवमय परिच्छेद देश के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है। जिस अदम्य साहस, कुशाग्र बुद्धि तथा विलक्षण प्रतिभा का परिचय आपने दिया है वह अद्वितीय एवं अनुकरणीय है। भगवान इन्हें हमारे बीच दीर्घजीवन प्रदान करे ताकि देश की जनता का बौद्धिक कल्याण, विकास व उद्धार हेतु पथ प्रदर्शन होता रहे।

अभिनन्दन समारोह की सफलता के लिये मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूं।

⊙⊙

प्रेम चन्द्र शर्मा
स्वास्थ्य मन्त्री, उत्तर प्रदेश

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी 'प्रकाश' की ७० वीं वर्षगाँठ पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने की सूचना पाकर बहुत प्रसन्नता हुई।

पं० प्रकाश चन्द्र जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं और उन्होंने साहित्य, संगीत एवं अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में समाज की जो सेवा की है वह अमूल्य हैं और चिरकाल तक याद की जाती रहेंगी।

मैं पंडित प्रकाशचन्द्र जी के जीवन की शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

⊙⊙

डॉ० मोहनसिंह मेहता
अधिष्ठाता, सेवा मन्दिर, उदयपुर

कविरत्न प्रकाश जी की प्रशंसनीय सेवायें

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी प्रकाश आर्य जगत् के उन थोड़े से लोकप्रिय भजनोपदेशकों में से हैं जिन्होंने अपने जीवन भर ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की सेवा की। प्रकाशजी के अनेक सुमधुर गीत और भजन इतने लोकप्रिय हुए कि एक समय में प्रायः सारे आर्य जगत् में उनकी धूम सी मच गई। उनका 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" उनमें से एक है। प्रकाश जी अजमेर निवासी हैं और स्वर्गीय कर्मवीर श्री पं० जियालाल जी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने आर्य समाज में प्रवेश किया तब से मैं इन्हें जानता हूं। उन्होंने अपने जीवन में भी कई दृष्टियों से बड़ी प्रगति की। कविता पर तो उनका अधिकार ही है, संगीत का भी उनको विशेष ज्ञान है इसलिये ऋषि दयानंद और आर्य समाज के सिद्धान्तों तथा कार्यों पर रचे गये उनके गीत स्वभावतः बड़े मधुर सरल और लोकप्रिय हैं। अपनी वर्तमान रुग्णावस्था में भी वे निरन्तर अपना यह कार्य कर रहे हैं जो उनकी लगन का प्रमाण है। आर्य समाज द्वारा उनका अभिनन्दन किया जावे यह सर्वथा उपयुक्त है। मैं अपनी ओर से तथा आर्य समाज और उससे सम्बन्धित दयानन्द कॉलेज, जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, डी० ए० वी० उ० मा० विद्यालय, विरजानंद उ० मा० विद्यालय, जियालाल मा० विद्यालय दयानंद बाल सदन आदि शिक्षण संस्थाओं की ओर से हार्दिक शुभ कामना प्रस्तुत करता हूं।



दत्तात्रेय वाब्ले
प्रधान
आर्य समाज अजमेर

कर्मठ प्रचारक

श्री प्रकाशचन्द्र जी एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि और प्रभावोत्पादक गायक हैं, उनके बारे में रमणीयता की यह परिभाषा कि (क्षणे क्षणे यन्नवता मुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः) पूर्णतया चरितार्थ होती है। उनकी रचनाएं स्फूर्तिदायक, श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत उत्साह-प्रद होती हैं, संक्षेप में कहा जा सकता है कि उनकी रचनाएं काव्य के तीनों गुणों—ओज, प्रसाद और माधुर्य से पूर्ण हैं। वे पढ़ने और सुनने वालों पर अमिट प्रभाव डालती हैं। श्री प्रकाशचन्द्र जी ने अपनी रचना और संगीत द्वारा आर्य समाज की ठोस सेवा की है, वे ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त और आर्य-समाज के कर्मठ प्रचारक हैं। वर्षों से शरीर से असमर्थ होते हुए भी वे अपना कार्य बराबर कर रहे हैं इससे उनकी आर्य-समाज के लिए लगन का परिचय मिलता है। उनका नाम और कार्य, आर्य-समाज के इतिहास में विशेष स्थान पायेगा, इसमें संदेह नहीं।

यह प्रसन्नता की बात है कि ऋषि-मेला के अवसर पर उनको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा है। वे सर्वथा इस सम्मान के योग्य हैं।



महेन्द्र प्रताप शास्त्री
प्रिन्सिपल
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हाथरस

अनोखी प्रतिभा

श्री कविरत्न जी के अभिनन्दन का शुभ समारोह दिनांक २३-१०-७१ को हो रहा है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

मैं श्री प्रकाश जी के विषय में कुछ लिखने को जब उद्यत होता हूं तो मुझे भय हो जाता है, क्योंकि श्री प्रकाश जी के साथ मेरा पारिवारिक सम्बन्ध घनिष्ठ रूप में विगत पचास वर्षों से है, कहीं मेरा लिखना आत्मश्लाघा न समझा जाय।

प्रिय प्रकाश मेरे निकट स्नेही ही नहीं निकट सम्बन्धी भी हैं। हमारे इस प्रेम सम्बन्ध की डोर पिछले पचास वर्षों से उत्तरोत्तर दृढ़तर ही होती रही है।

यह तो हुई अपनी बात। श्री प्रकाशजी ने जिस लगन और उत्साह के साथ सारे भारत में घूम घूमकर अपनी मधुर और ओजस्वी वाणी द्वारा संगीत की मधुर ध्वनि में "वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" का नाद गुंजाते हुए आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में अनवरत गति से कार्य किया वह आर्य समाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किए जाने योग्य है।

आपने केवल वाणी द्वारा ही नहीं अपितु अपनी लेखनी द्वारा वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर काव्य रचना की वह उनकी अनोखी प्रतिभा और काव्य मर्मज्ञता की द्योतक हैं। आपकी कविताएँ आर्य समाज के अनेकों भजनोपदेशकों के द्वारा गायी जाती हैं जिन्हें जनता मंत्रमुग्ध होकर श्रवण करती अघाती नहीं।

आपने कइयों को संगीत की शिक्षा दी। आपके. अनेक शिष्य उच्च कोटि के संगीतज्ञ हो गये हैं, जिनमें श्री पन्नालाल जी 'पीयूष' एक सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक, संगीतज्ञ एवं कलाकार होने के साथ साथ अपने पूज्य गुरु श्री प्रकाशजी के प्रति निष्ठा रखने वाले, पूर्ण सदाचारी, कर्मकाण्डी और वैदिक धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखने वाले सिद्ध हुए जब कि अन्य कई शिष्य इधर-उधर हो गये।

आर्य जनता श्री प्रकाशजी का अभिनन्दन करके अपने कर्तव्य का पालन कर रही है, यह बड़े सन्तोष की बात है। मैं हृदय से श्री प्रकाशजी के प्रति अपनी शुभ कामनाएँ और शुभाशिष देता हूं और प्रभु से प्रार्थी हूं कि श्री प्रकाशजी जो मधुर काव्यधारा का प्रवाह चला रहे हैं वह चलाते रहने में समर्थ रहें।

भगवानस्वरूप "न्यायभूषण"
पुस्तकाध्यक्ष
परोपकारिणी सभा अजमेर

प्रख्यात कवि

श्री प० प्रकाश चन्द्र जी 'प्रकाश' कविरत्न से आर्य जगत् में कौन अपरिचित होगा, वे भारत के प्रख्यात कवि संगीतज्ञ, माने हुए भजनोपदेशक एवं विचारक हैं। उनकी रचनाएं जहां प्रभु भक्तों को झुमा देती हैं, वहां युवा-शक्ति में नये रक्त का संचार कर नया उत्साह भरती हैं। आज उस महान् तपस्वी आर्य मिशनरी विद्वान् का अभिनन्दन कर हम गौरवान्वित हो रहे हैं। प्रभु ऐसे ऋषिभक्तों :को दीर्घ यशस्वी जीवन प्रदान करे। यही प्रभु से प्रार्थना एवं मेरी शुभकामना है। ⊙⊙

हेतराम आर्य
मंत्री
जिला आर्यसभा, अलवर

श्लाघनीय सेवा

प्रकाश-काव्य में काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। साहित्य के माध्यम से प्रकाश जी ने समाज की जो सेवा की है वह श्लाघनीय है। मैं उनके अभि-नन्दन के अवसर पर अपनी हार्दिक मंगल कामना भेजता हूँ और कविरत्नजी के दीर्घायु होने की कामना करता हूँ। ⊙⊙

कन्हैयालाल सेठिया
रतन निवास, सुजानगढ़

प्रभावशाली भजनोपदेशक

कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी ने काव्य कला द्वारा आर्य समाज तथा वैदिक धर्म के प्रचार में प्रशंसनीय सेवा की है। आप जहाँ सुकवि हैं वहाँ गायक भी बड़े प्रभावशाली हैं। आर्य समाजों के महोत्सवों में प्रकाश कवि के कल कण्ठ से कविता गीत सुनने के लिए श्रोता बड़े उत्सुक रहते थे। कविरत्नजी ने आध्या-त्मिक, धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय ऐतिहाहिक तथा महर्षि जीवन, महाभारत आदि विषयों पर काव्य साहित्य लिखकर तथा अपने ओजपूर्ण सरल संगीत और काव्यमय भाषणों द्वारा आर्यसमाज तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में पूर्ण योगदान दिया है।

आपकी कविता में जहाँ माधवी की मादकता है वहाँ प्रभाव का जागरण भी है। जहाँ रसज्ञों के लिए सरसता है वहां सर्व साधारण के लिए मार्ग दर्शन भी है।

दुःख है गत २२ वर्षों से संधिवात से अंग अंग जकड़ गया और चलने फिरने तथा अपने आवश्यक कार्य करने में नितान्त असमर्थ हो गये हैं। तथापि हृदय और मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ हैं और इस अवस्था में भी निरन्तर साहित्य का सृजन करते रहते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे इन्हें स्वास्थ्य प्रदान करे जिससे इसी प्रकार काव्य रस द्वारा भारतीय जनता को तृप्त करते रहें।

⊙⊙

नन्दलाल आर्य मिश्नरी
वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार

राजस्थान-रत्न का अभिनन्दन

हर्ष की बात है कि आर्य प्रतिनिधि सभा ने "ऋषि मेला" के अवसर पर आर्यसमाज के कर्मठ तपे हुए प्रचारक कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी संगीत महोदधि का अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। कविरत्न जी को प्रभु ने मधुर कण्ठ, संगीत नैपुण्य, कला कौशल प्रदान किया है। इन विशेषताओं से, शारीरिक विपन्नता की इस दशा में भी पण्डित जी धर्मधारा प्रवाहित करने में सतत प्रयत्नशील हैं।

उनका शरीर दैवदुर्विपाक से, व्याधि मंदिर बना हुआ है किन्तु मस्तिष्क और वाणी वेद-सन्देश और महर्षि के आदेश के प्रसार में संलग्न हैं। राजस्थान सभा का यह कार्य, सभा की विशेषता के अनुरूप एवं प्रशस्य है। आर्य भाई इस पुण्य कार्य में यथाशक्ति और यथामति सहयोग देंगे ऐसी आशा है।



रामदयालु शास्त्री
महोपदेशक, अलीगढ़

श्री प्रकाश जी के प्रति

आर्य समाज अनारकली के वार्षिकोत्सव एक प्रकार के आर्यों के धार्मिक मेले होते थे। खूब चहल-पहल होती थी। अपार जन समूह हुआ करता था। अच्छे-अच्छे और विद्वत्तापूर्ण भाषणों के बाद दर्शकों को बिठाये रखने के लिये यह घोषणा की जाती थी कि इसके बाद कुंवर सुखलाल जी के भजन होंगे। ठीक ऐसा ही दृश्य यहां जोधपुर में हमारे उत्सवों पर श्री प्रकाश जी के भजनों का होता था। श्रोताओं को शांतिपूर्वक बिठाये रखने के लिये जब मैं आगामी प्रोग्राम की घोषणा में जनता को कहता कि अब प्रकाश जी के भजन होंगे तो वातावरण तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठता था।

जब पहली बार लोगों ने 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' सुना, तो उनके ऊपर एक जादू-सा छा गया, और सड़कों, गली-कूचों में इस पंक्ति-भजन की आवाज लगातार आती रहती थी। उनके भजन, व्यक्तित्व तथा साहित्य सृजन की त्रिवेणी ने उनको आर्य संसार में एक उच्च स्थान प्राप्त करा दिया है।

उनके अभिनन्दन पर मैं शुभ कामनाएं भेज रहा हूं, और उनके दीर्घ जीवन के लिए परम पिता से प्रार्थना करता हूं।



टी० डी० वाली
आर्य समाज, जोधपुर

कल्याणमयी आत्मा

कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी 'प्रकाश' ने भारतवर्ष में समाजों की जो अमूल्य सेवा की है वह अवर्णनीय और अनुपम है। उसके लिए मेरे शब्द समूह सूर्य को दीपक दिखाने के समान हैं, रोग-ग्रस्त होने पर भी उत्तरोत्तर मधुर कविता की रचना विश्व को प्रदान करना, उसमें भी वेदों के उत्तम भावों की प्रेरणा देना, यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि का परिचय देना है। ऐसे संगीत शास्त्र के अनुपम वेत्ता महान् कर्मठ समाज सेवक जिसमें साहित्य संगीत कवित्व शक्ति का समावेश होते हुए आर्य विचारमयी भावों का अनवरत जागरण देना यह सब कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी 'प्रकाश' में ही दृष्टिगोचर होता है। परमेश्वर की महती कृपा आर्यों पर हुई है जो ऐसी अनुपम सर्वगुण सम्पन्न प्रतिभापूर्ण कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी प्रकाश की आत्मा को विश्व के कल्याणार्थ प्रदान किया है। मेरी समझ में आर्य समाज में ये सर्वप्रथम सर्व श्रेष्ठ अपने ढंग के निराले ही हैं। ऐसे महान् प्रतिभाशाली आत्मा का अभिनन्दन समाजों को अवश्य ही करना चाहिये।

नागेन्द्र झा
गुरुकुल वैदिक आश्रम, राउरकेला

⊙⊙

साहसी पुरुष

कविरत्न श्री पण्डित प्रकाशचन्द्र जी भारत के प्रख्यात उच्चकोटि के कवि, संगीत मर्मज्ञ तथा महान् विचारक और साहित्यकार हैं जिनसे सब परिचित हैं।

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि आपकी ७० वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया जा रहा है और उस अवसर पर आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा। पारिवारिक चिकित्सक होने के नाते आपके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है और सेवा करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है। रुग्णावस्था में होते हुए भी आप महान् विचारक रहे हैं और सदैव अपने नियमित रूप से कार्य-क्रम में लगे रहते हैं। आर्य जगत् के हित के लिए तथा राष्ट्रहित के लिये हर समय चिन्तन करते रहते हैं। मैं जब कभी आपसे मिलने गया आपको सदैव अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए तल्लीन रहते हुए देखा। यह सब आपकी त्याग और तपस्या का फल है। अपना सारा जीवन बड़ी सादगी तथा निर्भीकता के साथ व्यतीत किया है। जीवन में अनेक प्रकार के संकटों के बादल आये हैं किन्तु आप अपने ध्येय में अटल रहें हैं, कोई डिगा नहीं सका। बड़े विरले पुरुष हैं जिन्होंने सर्व प्रियता और यश प्राप्त किया है और जनता का प्यार जिनके साथ में है। ऐसे वीर साहसी महापुरुष को अपने ध्येय से कोई च्युत नहीं कर सकता।

धन्य हैं ऐसे साहसी पुरुष, ईश्वर इन्हें दीर्घायु करे, मेरी शुभ कामनाएँ सदैव इनके साथ हैं।

डॉ० बालमुकुन्द शर्मा
आयुर्वेदाचार्य
रामदयालु औषधालय

⊙⊙

आर्य-चन्द्र

कविरत्न पं० प्रकाश जी का आर्य समाज रूपी नभ मण्डल में चन्द्रमा के सदृश स्थान है। आर्य समाज की जो सेवा उन्होंने की है तथा इस अशक्त स्थिति में भी कर रहे हैं वह गौरव की बात है। इस समाज पर पण्डित जी की विशेष कृपा रही है।

अजमेर के आर्य समाजी भाइयों ने उनके अभिनन्दन का जो यह कार्य-क्रम बनाया है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

इस समाज के सभी सदस्य पण्डित जी के प्रति हार्दिक शुभ-कामनाएँ समर्पित करते हैं तथा प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पण्डित जी में आर्य समाज की सेवा करने की शक्ति बनाये रक्खें।

शान्ति प्रकाश मित्थल
आर्य सभा सदर, मेरठ



प्रेरक कवि

माननीय भाई प० प्रकाश चन्द्र "कविरत्न" के अभिनन्दन के समाचार से अपार हर्ष हुआ। वे रुग्ण होते हुए भी अपने अमर साहित्य द्वारा आर्य जनता के अत्यन्त ही निकट हैं। वह आपकी काव्यमय रचनाओं को मन्त्र मुग्ध होकर सुन भूरि-भूरि प्रशंसा और अभिनन्दन करती है। मेरा आपसे प्रथम परिचय १९३३ में कराची सिन्ध आर्य समाज के उत्सव पर हुआ तबसे आपको मैं बड़े भाई के समान ही मानता चला आता हूं। मुझे आर्य समाज के सिद्धान्तों से ओत प्रोत ठोस और व्यापक साहित्य तो अन्य किसी का भी नहीं दीख पड़ता। आपके गुणों का मैं इस निर्जीव लेखनी से क्या वर्णन करूं। आपके कई रूपों से मैं निकट से परिचय रखता हूँ, आप सदा हम लोगों के लिए प्रेरणा स्थल हैं, कलाकार की दृष्टि से, कविता की दृष्टि से। सुख दुःख में भी आपका सन्तुलन ठीक रहता है। आपकी कविता हर रस से ओत प्रोत है। मेरे जैसे सैकड़ों व्यक्ति अपने पथ-प्रदर्शक का, उनकी रचनाएँ गा-गा कर हृदय में सदा ही अभिनन्दन करते रहते हैं और परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह ज्योति अनन्त काल तक हमें प्रेरणा देती रहे। अंत में उन महानुभावों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस गौरवमय कवि-कलाकार सुयोग्य प्रचारक के अभिनन्दन के विचार को साकार रूप दिया। अंत में पुनः पुनः चिरायुष्य की कामना करता हूँ।

भद्रपाल सिंह
आर्य प्रचारक, चंड़ौली



कल्याणमयी आत्मा

कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी 'प्रकाश' ने भारतवर्ष में समाजों की जो अमूल्य सेवा की है वह अवर्णनीय और अनुपम है। उसके लिए मेरे शब्द समूह सूर्य को दीपक दिखाने के समान हैं, रोग-ग्रस्त होने पर भी उत्तरोत्तर मधुर कविता की रचना विश्व को प्रदान करना, उसमें भी वेदों के उत्तम भावों की प्रेरणा देना, यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि का परिचय देना है। ऐसे संगीत शास्त्र के अनुपम वेत्ता महान् कर्मठ समाज सेवक जिसमें साहित्य संगीत कवित्व शक्ति का समावेश होते हुए आर्य विचारमयी भावों का अनवरत जागरण देना यह सब कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी 'प्रकाश' में ही दृष्टिगोचर होता है। परमेश्वर की महती कृपा आर्यों पर हुई है जो ऐसी अनुपम सर्वगुण सम्पन्न प्रतिभापूर्ण कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी प्रकाश की आत्मा को विश्व के कल्याणार्थ प्रदान किया है। मेरी समझ में आर्य समाज में ये सर्वप्रथम सर्व श्रेष्ठ अपने ढंग के निराले ही हैं। ऐसे महान् प्रतिभाशाली आत्मा का अभिनन्दन समाजों को अवश्य ही करना चाहिये।

नागेन्द्र झा
गुरुकुल वैदिक आश्रम, राउरकेला

⊙⊙

साहसी पुरुष

कविरत्न श्री पण्डित प्रकाशचन्द्र जी भारत के प्रख्यात उच्चकोटि के कवि, संगीत मर्मज्ञ तथा महान् विचारक और साहित्यकार हैं जिनसे सब परिचित हैं।

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि आपकी ७० वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर अखिल भारतीय स्तर पर अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया जा रहा है और उस अवसर पर आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायगा। पारिवारिक चिकित्सक होने के नाते आपके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है और सेवा करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है। रुग्णावस्था में होते हुए भी आप महान् विचारक रहे हैं और सदैव अपने नियमित रूप से कार्य-क्रम में लगे रहते हैं। आर्य जगत् के हित के लिए तथा राष्ट्रहित के लिये हर समय चिन्तन करते रहते हैं। मैं जब कभी आपसे मिलने गया आपको सदैव अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए तल्लीन रहते हुए देखा। यह सब आपकी त्याग और तपस्या का फल है। अपना सारा जीवन बड़ी सादगी तथा निर्भीकता के साथ व्यतीत किया है। जीवन में अनेक प्रकार के संकटों के बादल आये हैं किन्तु आप अपने ध्येय में अटल रहे हैं, कोई डिगा नहीं सका। बड़े विरले पुरुष हैं जिन्होंने सर्व प्रियता और यश प्राप्त किया है और जनता का प्यार जिनके साथ में है। ऐसे वीर साहसी महापुरुष को अपने ध्येय से कोई च्युत नहीं कर सकता।

धन्य हैं ऐसे साहसी पुरुष, ईश्वर इन्हें दीर्घायु करे, मेरी शुभ कामनाएँ सदैव इनके साथ हैं।

डॉ० बालमुकुन्द शर्मा
आयुर्वेदाचार्य
रामदयालु औषधालय

⊙⊙

आर्य-चन्द्र

कविरत्न पं० प्रकाश जी का आर्य समाज रूपी नभ मण्डल में चन्द्रमा के सदृश स्थान है। आर्य समाज की जो सेवा उन्होंने की है तथा इस अशक्त स्थिति में भी कर रहे हैं वह गौरव की बात है। इस समाज पर पण्डित जी की विशेष कृपा रही है।

अजमेर के आर्य समाजी भाइयों ने उनके अभिनन्दन का जो यह कार्य-क्रम बनाया है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

इस समाज के सभी सदस्य पण्डित जी के प्रति हार्दिक शुभ-कामनाएँ समर्पित करते हैं तथा प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पण्डित जी में आर्य समाज की सेवा करने की शक्ति बनाये रक्खें।

शान्ति प्रकाश मित्थल
आर्य सभा सदर, मेरठ



प्रेरक कवि

माननीय भाई प० प्रकाश चन्द्र "कविरत्न" के अभिनन्दन के समाचार से अपार हर्ष हुआ। वे रुग्ण होते हुए भी अपने अमर साहित्य द्वारा आर्य जनता के अत्यन्त ही निकट हैं। वह आपकी काव्यमय रचनाओं को मन्त्र मुग्ध होकर सुन भूरि-भूरि प्रशंसा और अभिनन्दन करती है। मेरा आपसे प्रथम परिचय १९३३ में कराची सिन्ध आर्य समाज के उत्सव पर हुआ तबसे आपको मैं बड़े भाई के समान ही मानता चला आता हूं। मुझे आर्य समाज के सिद्धान्तों से ओत प्रोत ठोस और व्यापक साहित्य तो अन्य किसी का भी नहीं दीख पड़ता। आपके गुणों का मैं इस निर्जीव लेखनी से क्या वर्णन करूं। आपके कई रूपों से मैं निकट से परिचय रखता हूँ, आप सदा हम लोगों के लिए प्रेरणा स्थल हैं, कलाकार की दृष्टि से, कविता की दृष्टि से। सुख दुःख में भी आपका सन्तुलन ठीक रहता है। आपकी कविता हर रस से ओत प्रोत है। मेरे जैसे सैकड़ों व्यक्ति अपने पथ-प्रदर्शक का, उनकी रचनाएँ गा-गा कर हृदय में सदा ही अभिनन्दन करते रहते हैं और परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह ज्योति अनन्त काल तक हमें प्रेरणा देती रहे। अंत में उन महानुभावों का हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस गौरवमय कवि-कलाकार सुयोग्य प्रचारक के अभिनन्दन के विचार को साकार रूप दिया। अंत में पुनः पुनः चिरायुष्य की कामना करता हूँ।

भद्रपाल सिंह
आर्य प्रचारक, चंड़ौली



रससिद्ध कवि

प्रकाश जी का अभिनन्दन आर्य संस्कृति का अभिनन्दन है। आपके कार्य की कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती। मेरे बचपन से आपके मधुर संगीतों की ध्वनि अब भी कानों में गूंजती रहती है। आपके ओजस्वी, ललित-लय में लिखे गीत सत्प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, उनमें रसों का विषयानुकूल परिपाक है, जो आज भी शिथिल-शिराओं में रक्त का संचार करते रहते हैं। आर्यजगत् द्वारा ऐसे मनस्वी, ओजस्वी वर्चस्वी रससिद्ध कवि का अभिनन्दन होना सराहनीय है। इनकी आत्मीयता की प्रतिमूर्ति अब भी ज्यों की त्यों नयनों में नाचती रहती है। दुर्भाग्य है कि दूरस्थ बन्धु के दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। आप बहुत दिनों तक गुनगुनाते रहें ऐसी प्रभु से कामना है। ⊙⊙

किशनलाल 'कुसुमाकर'
आर्य नगर, फीरोजाबाद

कविरत्न की चार विशेषताएं

(१) भावपूर्ण सुरीले भजन। (२) आकर्षक व्यक्तित्व मानो कोई राजकुमार है। (३) अच्छे उपदेष्टा व वक्तृत्व शक्ति (४) न सिर्फ भजनीक ही, उत्कृष्ट कवि व लेखक भी; किन्तु दुर्भाग्य से २५-३० वर्षों से लकवे जैसी बीमारी के आघात से आहत हैं। हाँ तिस पर भी मनोबल व कल्पना शक्ति पर काबू बनाये हुए हैं।

कवि रत्न के अभिनन्दन की हृदय के अन्तस्तल से सफलता चाहता हूं। जिससे अनेक कार्य-कर्त्ताओं को ठोस प्रेरणा मिलेगी कि, सच्ची सेवा की कदर अवश्यं-भावी है, चाहे देर सबेर हो। ओ३म् शान्ति! ⊙⊙

कन्हैय्यालाल कलयंत्री
बम्बई.

महान प्रेरक

श्री प्रकाश चन्द्र जी राजस्थान के प्रख्यात कविरत्न संगीतज्ञ एवं महान् उपदेशक हैं, वे आर्यसमाज के विशेषतः महान् प्रेरक एवं निर्देशक और गुणवान व्यक्ति हैं। जब-जब कि उदयपुर में आर्य समाज के पिछले वर्षों में अर्थात् सन् १९२५ से सन १९३५ तक जितने वार्षिक अधिवेशन हुवे, और प्रताप जयंती के मुख्य जलसे एवं वार्षिक अधिवेशनों का अवसर आया, प्रकाशजी उस समय उन अधिवेशनों में विद्यमान थे। वे धाराप्रवाह संगीत से एवं कविताओं द्वारा अपनी वाणी और रचनाओं का बड़े मार्मिक शब्दों में जनता को उपदेश और मनोरंजनात्मक व्याख्यान देते थे।

जनता मुक्तकंठ द्वारा उनकी वाणी को आलिंगन करती थी एवं उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करती थी, वे वाणी से शैली से और क्रम से पूरे कुशल और ज्ञान देते थे और रचनाओं से जनता को प्रभावित करते थे। ⊙⊙

भंवरलाल तायलीय

श्री प्रकाश जी का काव्य-साहित्य

श्री प्रकाश जी का काव्य-साहित्य सदा प्रांजल प्रोज्ज्वल-प्रेरक और प्रेषक है। उनके काव्य कलाप में धारावाही भाव-भावना और हृदय के उद्गार हैं। जैसा कि वे लिखते हैं:—

"भारत में शेर मर्द दिलेरों का काम है।
नामर्द बुजादिलों का यहाँ नहीं मुकाम है।
मुर्दों की तरह जीना जमाने में [खाम है।
जिन्द दिली "प्रकाश" जिन्दगी का नाम है।"

उपरोक्त प्रेरक सन्देश सिवा प्रकाशजी के और कौन दे सकता है! भविष्य के होनहार कवियों को श्री प्रकाश जी का काव्यसाहित्य प्रकाश-स्तम्भ का काम देगा इसमें अणु मात्र भी शंका नहीं है। दयानन्द का दीवाना श्री प्रकाशचन्द्र जी हमेशा श्री महाराज की आवाज को गर्जना पूर्वक घोषित करता रहा है। आजकल तो कवियों की भाषा में केवल शब्दाडम्बर के सिवा और कुछ नहीं मिलता है।

इससे अधिक अंजली श्री प्रकाश जी को और क्या दूं। केवल शब्दजाल बिछाना मुझे अभीष्ट नहीं है।

वेद *मित्र* ठाकुर
(फकीरे दयानन्द)

⊙⊙

प्रकाश के स्रोत

प्रकाशचन्द्र जी राजस्थान और भारत में सार्वजनिक जागृति और प्रकाश के स्रोत रहे हैं। उनकी कविताओं और जीवन ने देश के अनेक युवकों को जीवन में प्रेरणा प्रदान की और समर्पित जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहित किया है भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। बरसों से रुग्ण होने के बावजूद वे आज भी प्रेरणादायक साहित्य का निर्माण कर रहे हैं। मैं अपने एक ऐसे, हुतात्मा साथी के अभिनन्दन के इस समायोजन के लिए आप को हार्दिक बधाई देता हूं और भगवान से प्रार्थना करता हूं कि उन्हें शतायु प्रदान करें ताकि वे अपने साहित्यिक कार्यों से देश को प्रेरणा देते रह सकें।

पृथ्वीसिंह मेहता *विद्यालंकार*
उदयपुर

⊙⊙

अभिनन्दन कवित्त

स्वास्थ्य नहीं ठीक किन्तु साहस न त्यागा कभी
स्वस्थ व्यक्तियों से भी अधिक किये कार्य हैं।

प्रचार वेद धर्म का, करते जो अहर्निशि
सराहनाएँ उनकी सदा अनिवार्य हैं।

प्रतिभा सम्पन्न कवि श्रीयुत प्रकाशचन्द्र
विमल विचारक गान विद्या आचार्य हैं।

होवें वे शतायु 'रणञ्जय' कामनाएँ सह
करते अभिनन्दन आज सभी आर्य हैं। ⊙⊙

रणञ्जयसिंह एम. एल. ए.
भूतपूर्व प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

वेदों का डंका

यदि प्रकाश जी और कुछ न भी करते तो भी केवल "वेदों का डंका" नामक उनका अमर गीत ही उन्हें अमरता प्रदान करने को पर्याप्त था, जिसकी प्रेरणादायी ध्वनि को हम अपने जीवन के उषा काल से सुनते व हृदयंगम करते आये हैं। और जो आज भी कोटिशः आर्य जनों के कंठ का अनुपम हार बना हुआ अपने कर्त्ता के यश सौरभ को दिग् दिगंत में फैला रहा है।

सर्व शक्तिमान् परमपिता परमात्मा ऐसे अमूल्य नर रत्न को दारुण दुःख से शीघ्र मुक्त करके स्वस्थ दीर्घायु प्रदान करे ताकि वह आर्य समाज के माध्यम से, संतप्त मानवता एवं पीड़ित प्राणियों की अधिकाधिक सेवा करने में समर्थ हो सकें यह हार्दिक कामना है। ⊙⊙

कुँ. रणजित *'तन्मय'*
सिद्धान्त वाचस्पति एम.ए.एल.एल.बी.
दगडोलवी, जयपुर

गुरुदेव शतायु हों

शास्त्रीय-संगीत में आबद्ध कई चीजें गुरुदेव ने मुझे सिखाई। संगीत शिक्षण का जो ज्ञान मुझे है उसमें पूज्य गुरुदेव का विशेष हाथ है। प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसे महान् गुरु का सान्निध्य पीयूष जी को अनेक वर्ष तक प्राप्त होता रहे। वार-बार प्रभु से प्रार्थना है कि पू० गुरुदेव शतायु हों। ⊙⊙

देवदत्त नादमूर्ति
"संगीत अलंकार", साहित्य-विशारद
उदयपुर (राजस्थान)

ईश्वर पं० प्रकाश जी को स्वास्थ्य व दीर्घायु प्रदान करे, जिससे आपके काव्य-साहित्य द्वारा वैदिक धर्म का अधिकाधिक प्रचार हो। ⊙⊙

महन्त रामचरणदास
जेठाना (अजमेर)

इज़हारे हकीकत

आज मुझे जनाब कवि रत्न पं० प्रकाश चन्द्र "प्रकाश" की ६० वीं सालगिरह पर चंद अलफाज़ लिखने का मौका मिला है यह मैं अपनी खुशनसीबी समझता हूं क्यों के पण्डित जी की जिंदगी इस जमाने में बहुत नुमाया है और उनकी जिंदगी के लिए कुछ लिखना या कहना सूरज को चिराग दिखाना है। फिर भी मैं चन्द अलफाज़ इस नुमाया हस्ती के लिये लिख के आपके गोशे गुज़ार कर रहा हूं के पण्डित जी की नुमाया खिदमात जो के संगीत के रूप में और कविताओं वा गज़लों और दीगर मज़ामीन से लाखों लोगों की खिदमत की है। उसका कोई सानी नहीं मिलता उनके प्रकाश से जमाने के लोगों को प्रकाश मिला है। मैं दस्ते दुआ हूं कि खुदा उन्हें सलामत रखे और उनकी हाजिर-जवाबी ज़िदादिली जादू बयांनी अता फर्माते रहें ताके हजारों दिल बल्के लाखों दिल उनसे फैज़े आम हो।

मेरी दिली दुआ है के खुदा उनकी उम्र दराज करे, ताके उनका साया हमारे सर पर रहती दुनिया तक रहे।

एस० एम० थोमस
लोंगिया अस्पताल, अजमेर



त्यागमय जीवन

अनेक वर्षों से अस्वस्थ रहते हुये भी प्रकाशजी ने अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें प्रकाश भजनावली, प्रकाश तरंगिणी, प्रकाश भजन सत्संग, प्रकाश गीता व गऊ गीत प्रकाश विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाभारत के कई प्रसंगों पर जैसे जरासंध वध, शिशुपाल वध, अभिमन्यु, पार्थ प्रतिज्ञा, जयद्रथ वध, कीचक वध आदि पर भी आपने सुन्दर कवितायें लिखी हैं जो मुद्रण हो जाने के पश्चात् पाठकों को प्राप्त हो सकेंगी। इन सब की शैली भी अत्यन्त रोचक व शिक्षाप्रद है।

आजकल पण्डितजी महर्षि दयानन्द जीवन काव्य लिखने में संलग्न है और जिस भाव भीनी श्रद्धा तथा तन्मयता के साथ यह ग्रन्थ लिखा जा रहा है उससे लगता है कि यह पुस्तक प्रकाशजी की न केवल सर्वोत्तम रचना होगी वरन् समस्त संसार के लिये एक कल्याणकारी मार्ग प्रस्तुत करेगी।

प्रभु से प्रार्थना है कि श्री प्रकाशजी को स्वास्थ्य प्रदान करें ताकि वे एक दीर्घकाल तक इसी प्रकार त्यागमय जीवन व्यतीत करते हुये प्राणी मात्र की सेवा में रत रह सकें।

ब्रह्मदत्त भार्गव
किशनगढ़



हर्ष की बात

भगवान से प्रार्थना है कि वह प्रकाश जी को इस रुग्णावस्था में भी आनन्द व सन्तोष से परिपूर्ण रखे। आपकी सेवाओं के कारण ही हम भी कर्त्तव्य रूपेण आपकी किञ्चित् सेवा कर लेते हैं। आपका आर्य जनता की ओर से अभिनन्दन हो रहा यह हमारे लिये हर्ष की बात है।

वेड़ाराम, पूना



शुभ कामना

करुणा निधान, सौख्य खान, सर्वशक्तिमान्
विश्व नियन्ता, महान महिमा तुम्हारी है।
प्रथम पीयूष वेद—ज्ञान है तुम्हीं ने दिया
कारण हो तुम जगती के, लीला न्यारी है॥
शत शत सूर्य आभा से तुम्हारी आलोकित
चंन्द्र छिटकाता ज्योत्स्ना अमित प्यारी है।
द्रवित हो हरो व्याधि सुकवि प्रकाश जी की
जीयें जुग जुग यह विनय हमारी है।

पन्नालाल 'पीयूष'
अजमेर



हार्दिक-उद्गार

ऋषि दयानन्द आनन्दकंद का भक्त प्रकाश निराला है।
प्रिय सेवा भावी समाज का यह चन्द्र—चांदनी वाला है॥
कविरत्न खरा क्या कीमत है यह जाने—जानने वाला है।
इसको जौहरी ही पहचाने जो रत्न परखने वाला है॥
कर्मवीर पैदा होता है बनने से नहीं बनता है।
यही जान अभिनन्दन द्वारा मान बढ़ाती जनता है॥



जिस मण्डप में पहुँचे प्रकाश वहां तिमराकार होय सब दूर।
रागद्वेष की मिटे कालिमा, चमक उठे चहरों का नूर॥
फिर जित देखो उत राम के प्यारे नजर न आवे कोई क्रूर।
यह खूबी देखी प्रकाश में प्रेम भाव मन में भरपूर॥
देश—धर्म अरु गो—रक्षा हित जीवें वर्ष हजार।
"जगन" यही शुभ कामना पूर्ण करे कर्तार॥

जगन्नाथ उपाध्याय
कड़क्का चौक, अजमेर



व्यक्तित्व एवं कृतित्व



प्रकाश का कवि

वैद्य ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

अपने जीवन में राजस्थान में दो आर्यसामाजिक उपदेशकों के कार्यकलाप की छाप हमारे हृदय पर सबसे गहरी, सबसे स्पष्ट और सबसे उज्ज्वल है। वे हैं श्री पं० रामसहाय जी, वानप्रस्थ में श्री ओम् भक्त जी और संन्यास आश्रम में अब श्री स्वामी अभेदानन्द जी। दूसरे हैं श्री पं० प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न, मन को चुरा लेने वाले संगीतज्ञ, श्रोताओं के मन की छिपी भावनाओं को माधुर्य के साथ छन्द-रूप दे देने वाले कवि और हृदय की गहराई में छिपकर बैठ जाने वाले उपदेशक।

बाल्यकाल में उपदेशक के रूप में श्री पं० रामसहाय जी को देखा। युवावस्था के प्रारम्भ में श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न को देखा। श्री पं० रामसहाय जी तब से 'चरैवेति चरैवेति' का मन्त्र लेकर अभी तक, पैरों के थक जाने पर भी, वेदना-विभूत हो जाने पर भी निरन्तर चल रहे हैं और ऋषि के उपदेशों का प्रसार और प्रचार कर रहे हैं। श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी ने राजस्थान को ही अपनी स्वर लहरियों से तृप्त नहीं किया अपितु प्रायः भारत के सभी प्रदेशों को अपने मधुर, मादक, सन्मार्ग-प्रेरक संगीत से आपूरित किया। गतिमय सक्रियता का जो अल्प समय भगवान् ने उन्हें प्रदान किया उसमें वे ऐसी तीव्र और अविश्रान्त गति से चले कि उस शीघ्र ही व्यतीत हो जाने वाले काल में ही आर्यजनों के मानस पर छा गए। समाजों के बड़े आयोजन प्रकाश जी की उपस्थिति के बिना, उनकी संगीतधारा के बिना प्रायः होते नहीं थे।

दैव दुर्विपाक से पहिले उन्हें संग्रहणी के रोग ने घेरा और उनके स्वास्थ्य को झकझोर दिया। उसके अनन्तर आमवात ने जो प्रबल एवं दुर्दमनीय आक्रमण किया उससे उनके पैर और जानु निष्क्रिय हो गए। हाथों और बाहुओं पर भी उसका प्रभाव हुआ। पहिले तो उन्हें असह्य कष्ट सहना पड़ा। तदनन्तर रोग ने उन्हें मानो बांध कर डाल दिया है। बंधा हुआ है कवि का शरीर। हिलना डुलना अति प्रयास-साध्य और दुःखद है। परन्तु प्रकाश के भीतर का कवि जाग्रत ही नहीं पहिले से भी अधिक उद्बुद्ध है, परिपक्व है और अधिक से अधिक दृढ़ निश्चय से परिपूर्ण है।

बाड़मेर, अब तो राजस्थान का एक सीमान्तवर्ती जिला है। अपनी विशेष स्थिति के कारण भारत के मानचित्र पर उसका एक सर्वविदित सा स्थान बन गया है।

परन्तु उन दिनों में, आज से दशाब्दियों पूर्व वह जोधपुर राज्य का एक परगना था। कुछ अज्ञात सा, एक कोने में पड़ा हुआ साधारण सा कस्बा था। हमारे पितामहजी श्रीयुत पं० बैजनाथ जी तिवारी को आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के प्रति अनन्य और अमित श्रद्धा थी। किसी भी आर्य सामाजिक बन्धु के दर्शन करके उनका रोम रोम प्रफुल्लित और हर्षित हो उठता था। बस, यही मन में रहता था कि कौनसा ऐसा उपाय हो कि इनकी अभूतपूर्व सेवा की जावे और समाज के प्रचार में उनका सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके। समाज के कोई उपदेशक बन्धु वहां पहुंचते तो वे उसे अपने किन्हीं पूर्वकृत महान् सुकृतों का फल मानते। सभी प्रकार का प्रेममय आदर, सत्कार और सेवा उनके लिए प्रस्तुत होती थी। उसके लिए यही उदाहरण पर्याप्त है कि हम गुरुकुल से स्नातक होकर घर आए। हम समझते थे कि हम भी पण्डित हैं। विस्तृत, विशद् ज्ञान हमने प्राप्त किया है। परन्तु यदि कोई उपदेशक पण्डित महोदय घर पधारते तो जब सोने का समय होता तो पितामहजी का आदेश होता "पण्डित ब्रह्मानन्दजी, देखिये तो महाराज थके हुए होंगे। थोड़ा इनके पैर तो दाब दीजिये।" और ब्रह्मानन्द जी अपने आपको बड़ा पण्डित समझते हुए भी, पितामहजी के अपने आचरणों के द्वारा प्राप्त शिक्षा के प्रभाव से, उनके स्नेहमय उद्बोधन के बल से उपदेशक जी के चरणों की सेवा के लिए चल पड़ते। यह बात दूसरी थी कि वे ब्रह्मानन्द को इस सेवा का सुअवसर प्रदान करते या कुछ सोचकर कर कहते—"नहीं नहीं पण्डितजी, ऐसे विद्वान् स्नातकों को ऐसा कष्ट नहीं देना चाहिये।"

विद्वज्जन, साधारणजन यहां तक कि पशु भी सेवा और प्रेम के वशीभूत होते हैं। पूज्य पण्डित जी की सेवा और अगाध प्रेम से आकृष्ट होकर राजस्थान के प्रायः सभी विद्वान् एवं प्रतिष्ठित उपदेशक महानुभाव उनके गृह को अपने आगमन से पवित्र करते रहते थे। वैसे तो सरकारी क्षेत्रों में यह समझा जाता था कि किसी को 'काले पानी' का दण्ड देना हो तो बाड़मेर भेजा जावे। परन्तु आर्य समाज के उपदेशक महानुभावों ने हृदय में सम्भवतः यह अनुभव कर लिया था कि यदि स्नेह, प्रेम और श्रद्धा का रस लेना हो तो बाड़मेर जाना चाहिये। कवि हृदय श्री पं. प्रकाशचन्द्र जी इस तत्व को सम्भवतः सर्वाधिक गम्भीरता और सरसता से अनुभव करने की क्षमता रखते थे। एक बार बाड़मेर जाने के अनन्तर उनका उसमें मोह हो गया था। उधर उनकी सर्व सामान्यजन को अपने कवित्व और भावुकता से आकृष्ट करने की शक्ति को पण्डित जी ने हृदयङ्गम किया था। हमारे पिताजी श्री पं० अनन्तरामजी त्रिपाठी संगीत के भी विशेष प्रेमी हैं। इसलिए कविवर प्रकाश जी का आगमन उनके लिए तो द्विगुण आनन्ददायक होता था। इसलिए उनका वहां और भी अधिक स्वागत होना स्वाभाविक था।

सुदीर्घ समय के अनन्तर अजमेर में ही आकर कविरत्न जी के सम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह बात सम्भवतः १९३८ की है। कुछ वर्षों के अनन्तर उन्हें इस दुःखद व्याधि ने जकड़ लिया। प्रारम्भ में हमें भी उनकी चिकित्सा सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। मन से प्रबल इच्छा थी कि औषध और सेवा के बल से वे एक बार उठ खड़े हों और समाज के कार्य एवं प्रचार को प्रबलता से आगे बढ़ावें। फिर भी रोग के स्वभाव से और भावी की अनिवार्यता से कोई औषध उन्हें स्वास्थ्य प्रदान नहीं कर सकी।

उसके अनन्तर कितने दिन, कितने मास और कितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, दुःख गंगा का कितना जल सिर पर से निकल चुका है? उसे देखकर किनारे खड़े लोग सहम उठते हैं, व्याकुल और कातर होकर आर्तनाद कर उठते हैं। परन्तु प्रकाशजी हैं कि प्रत्येक आघात और दुःख के साथ उनमें एक नवीन दृढ़ता और आत्मविश्वास का सृजन होता है। यात्रा संकटपूर्ण है फिर भी वह मस्ती में गुनगुनाते हैं—"बहुत दूर मुझको जाना है।"

प्राचीन विचारकों का अभिमत है कि मानव के सभी कार्य और प्रयत्न सोद्देश्य एवं उसके चरम विकास में सहायक होने चाहिये। काव्य भी इसी प्रकार का होना चाहिये। कुछ आधुनिक विचारकों का कथन है कि कविता कविता के लिए ही होनी चाहिये, परन्तु हमारी दृष्टि में इस कथन में कोई 'तुक' नहीं है। इसे भी एक अतुकान्त कविता ही समझिये। कहते हैं कि 'प्रयोजन मनुद्दिश्य'

मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते' 'किसी प्रयोजन का विचार किये बिना कोई मन्दबुद्धि भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।' तो फिर बुद्धिमान् विचारक और कवि बिना उद्देश्य के कविता भी क्यों करने लगे।

सोना कभी सोने के लिए ही नहीं होता, उसका उद्देश्य श्रान्त शरीर को विश्राम और अभिनव स्फूर्ति देना है। भोजन कभी भोजन के लिए नहीं होता उसका उद्देश्य शरीर को आहार और पोषण देना है। चलना कभी चलने मात्र के लिए नहीं होता उसके द्वारा किसी लक्ष्य पर पहुँचना होता है। इसी प्रकार कविता कविता के लिए नहीं होकर किसी चरम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक साधन मात्र है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, रागद्वेष, सुख दुःख सभी को होता है कभी कम, कभी अधिक। परन्तु उसकी विचित्र अभिव्यक्ति ही तो कविता का लक्ष्य नहीं है। रोगाक्रान्त होने पर मनुष्य हाय हाय, सी सी करता है। अनेक बार भगवान् को उपालम्भ देता है। अपनी निर्दोषता भी बताता है। परन्तु यह आह और कराह ही तो सब कुछ नहीं है। उसका लक्ष्य और आकांक्षा यही रहती है कि दुःख से कब, कैसे मुक्ति हो। अपने 'काम' की, कामजन्य वेदना की विविध एवं विचित्र अभिव्यक्ति मात्र 'काव्य' कैसे हो सकेगी यह एक पहली है।

कविवर प्रकाश का मार्ग सीधा है। वहाँ यह उलझन नहीं है। उनकी समस्त यात्रा सोद्देश्य है। उनके समस्त काव्य का निश्चित लक्ष्य है। उसमें रस की जाह्नवी बहती है तो रस के महासागर से संगम के लिए उन्नति की आकांक्षा है तो परम पद की प्राप्ति के लिए। दर्शन की लालसा और तड़प है तो परम आत्म तत्व के साक्षात्कार के लिए। उसमें काम क्रोध लोभ मोह हर्ष विवाद की लहरियाँ हैं तो आदर्श जीवन की सृष्टि के लिए।

कवि प्रकाश ने अपना 'होश सम्भालने' के अनन्तर इतने वर्षों में अनेक पुस्तकों की रचना की है। परन्तु उनके गायक ने जो भी संगीत की सृष्टि की, कवि ने जो कुछ गुनगुनाया है वह सब सार्थक और सोद्देश्य है। उसका एक भी काव्य, एक भी पद और एक भी शब्द निरुद्देश्य नहीं है। उसने एक भी पद्य की सृष्टि असीम गगन में निरुद्देश्य भटकन का प्रादुर्भाव करने के लिए नहीं की। कोई भी रचना केवल हृदय पर हाथ रखकर आह भरने के लिए नहीं की! कितने काव्य! कितने गीत। कितने पद! सभी के सभी मानव की अभ्युन्नति के निमित्त, अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए! विस्तृत आकाश में उन्नति की उड़ान भरने के लिए! वेद के—'उर्वन्तरिक्ष मन्वेभि' के प्रेरक पद को सार्थक करने के लिए! कितनी आश्चर्यजनक उपलब्धि है। कितना महान् और विस्तृत यज्ञ है यह प्रकाश कवि का!

लुञ्ज और पङ्गु, वेदनाक्रान्त और कैसा निरीह! फिर भी कैसा गतिमान्, अगणित जनों को गति देने वाला, निद्रितों को जागरण मन्त्र देने वाला, वेदनाग्रस्तों की वेदना को, मेघों को वायु के समान छिन्न-भिन्न कर देनेवाला अद्भुत है प्रकाश का यह कवि। आज आर्यसमाजों के सत्सङ्गों में भक्ति का प्रवाह होता है तो प्रकाश के भजनों से; शोभा-यात्राओं में शोभा और प्रभाव का संचार होता है तो प्रकाश के गीतों से; स्वयंसेवक दलों की गति में ताल और नियन्त्रितता आती है तो प्रकाश के प्रोत्साहक स्वरों से। श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी (मथुरा—१९२४) से लगभग आधी शताब्दी से समाजों की यात्रा प्रकाश के संगीत की ताल पर ही होती रही है। इसका प्रधान कारण है प्रकाश–काव्य की सोद्देश्यता! उसका प्रवाह, प्रसाद, लालित्य, रस और भाव उसकी धारा की सोद्देश्य गति में सहायक है।

महापुरुषों के चरित और उद्देश्य और उपदेशों का गायन स्वयमेव सिद्धिप्रद है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित और आदर्शों का गान करने वाले कवि स्वयं अमर हो गए हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसा अद्भुत वर्चस्वी, विद्वान् पराक्रमी, भविष्य द्रष्टा, मार्ग दर्शक, महान् व्यक्ति संसार में इधर के काल में नहीं हुआ है। प्रकाश की वाणी ने उसी महामानव के, महर्षि के गुणों का गान किया है, कवि के भ्रमर मन ने ऋषि की वाणी के अमृत रस का ही पान कर के उसके आस्वाद का सहस्रधा प्रकाशन किया है। उसके उद्देश्यों और उपदेशों को ही यथा शक्ति प्रचारित करने का प्रयास किया है इसीलिए प्रकाश की वाणी धन्य है और प्रकाश का कवि धन्य और कृतकृत्य है। □□

युवा उत्साह से जीवन के सम ताल तक

पन्नालाल पीयूष

सन् १९२९ ईस्वी के जून मास में भारत केसरी कुँवर चाँद करण जी शारदा के नाम पं० बुद्धदेव जी धार (मध्य भारत) का पत्र लेकर मैं अजमेर आया। शारदा जी के लघु भ्राता डा० मानकरण जी शारदा से उस पत्र द्वारा साक्षात्कार हुआ, और मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के अन्तर्गत १६ जून २९ ई० को भजनोपदेशक नियुक्त कर दिया गया।

इस समय आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुधाकर जी एम. ए., जो ऋषि दयानन्द के शिष्य राजाधिराज नाहर सिंह जी शाहपुरा के पास थे, तथा मन्त्री महर्षि दयानन्द के शिष्य श्री रामविलास जी शारदा (दीवान बहादुर श्री हरविलास जी शारदा के बड़े भाई) के सुपुत्र श्री सूरजकरण जी शारदा थे। सभा में उस समय स्वामी लक्ष्मणानन्द जी, श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी प्रज्ञाचक्षु) संन्यासी, स्वामी लक्ष्मणानन्द जी (ब्यावर), उपदेशकों में महोपदेशक श्री पं० परमानन्द जी बी. ए. लाहौर वाले, श्री पं० रामसहाय जी शर्मा वर्तमान श्री ओ३म् भक्त जी स्वामी, श्री पं० नेतराम, पं० महेन्द्र जी आदि तथा भजनोपदेशकों में पं० छोगालाल जी (प्रज्ञाचक्षु), ठाकुर रघुवीर सिंह जी, ठाकुर योगराज सिंह जी, श्री ओंकारलाल जी, श्री कन्हैयालाल जी, श्री पं० पूरण चन्द जी, आदि आदि थे। मुझे लगभग सभी संन्यासियों तथा उपदेशकों के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, विशेष रूप से श्री पं० परमानन्द जी बी. ए. तथा श्री पं० रामसहाय जी विद्याभूषण जिनकी प्रेरणा से प्रचार रुचि बढ़ी।

सन् १९३० में कविरत्न जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सन् १९३१ में मैं कविरत्न जी के पास आ गया। कविरत्न जी इन दिनों आर्य समाज, अजमेर की ओर से प्रचार कार्य करते थे और भारत के सभी प्रान्तों में प्रचारार्थ उत्सवों आदि में जाते थे। मुझे भी इनके साथ कराँची (सिन्ध), लाहौर, अमृतसर (पंजाब), दक्षिण में हैदराबाद(आँन्ध्र), उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में जाने का शुभावसर प्राप्त हुआ। उसी समय में संगीतमय भजन कविता गाने की शैली आपके द्वारा मुझे प्राप्त हुई। तभी से मैंने हार्दिक श्रद्धा से गुरु रूप में आप को जाना और माना।

दक्षिण भारत की यात्रा

सन् ३२ में आर्य समाज मोमिनाबाद (अम्बाजोगाई जो हैदराबाद निजाम स्टेट के अन्तर्गत था) के उत्सव पर गये और वहाँ से धारुर नगर गये । यहाँ अंग्रेजों के प्रारम्भिक शासन काल में उत्तर प्रदेश के निवासी फौज में भर्ती होकर आये। इनमें अधिकांश कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जो फौज से अवकाश प्राप्त करने पर यहीं के निवासी बन गये। इनमें अधिकांश निर्भीक साहसी व दृढ़ आर्य थे। जिन्होंने स्थान स्थान पर आर्य समाजों की स्थापना की और धारुर में तो गुरुकुल की भी स्थापना की जिसके आचार्य श्रीमान पं० भगवानस्वरूप जी न्यायभूषण थे उनसे पर्याप्त प्रेरणा मिलती रहती थी। जहां भी हमको निमन्त्रित किया वहाँ भव्य स्वागत किया और नगरों में शोभा यात्रा निकाली गई।

एक घटना :—धारूर से एक पंजाबी सज्जन जो महात्मा हँसराज जी के शिष्य तथा डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर के पढ़े हुए थे हमको परली बैजनाथ ले गये। परली बैजनाथ पौराणिकों के १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक है। यहाँ बड़ा विशाल मन्दिर है। यहाँ के महन्त व पुजारियों ने हमारा कार्यक्रम रखा। आचार्य श्री पं० द्विजेन्द्र नाथ जी शास्त्री गुरुकुल वृन्दावन [जो उन दिनों महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा १८७५ में संस्थापित आर्य समाज काकड़ वाड़ी (बम्बई) के पुरोहित थे] वे भी उत्सव पर पधारे हुए थे। अतः मेरे भजन के पश्चात् पंडित जी का वेदोपदेश हुआ जिसमें वेदोपनिषद् शास्त्र, गीता, आदि के प्रमाणों से वैदिक धर्म की महत्ता बतलाई जिसका महन्त जी तथा पुजारियों एवं जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। पडित जी के भाषण के पश्चात् कविरत्न जी का सुमधुर संगीत-मय भजनोपदेश आरम्भ हुआ। आपने अपनी संगीत और काव्य-मय प्रतिभा एवं प्रवचन और बीच-बीच में हारमोनियम के सरस वादन द्वारा श्रोताओं को आनन्द विभोर कर दिया।

कवि जी ने अपने काव्य में अछूतोद्धार प्रसंग लेकर शबरी के बेरों को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने किस प्रेम से खाये इसका वर्णन किया, तथा उपसंहार में यह कविता सुनाई —

राम ने तजा था राज, पिता के कथन काज
तुम भात तात बात, धूल में मिलाते हो।
राम ने निषाद और भीलों को लगाया गले
तुम कह पतित, पगों से ठुकराते हो।
राम ने किया था सती, सीता हित घोर युद्ध
तुम लाल ललना लुटेरों से लुटाते हो।
एक भी न काम गुण धाम राम सा 'प्रकाश'
किस बिरते पै भक्त राम के कहाते हो॥

दैवयोग से उस समय कुछ वर्षा प्रारम्भ हो गई, मन्दिर के बाहर कुछ अछूत कहे जाने वाले लोग बैठे भजनोपदेश सुन रहे थे, वे वर्षा से भीगने लगे। मन्दिर के महन्त जी तथा उनके श्रद्धालुओं पर इस प्रसंग का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मन्दिर के बाहर की दीवार के एक भाग में टीन का छप्पर था उसमें उन अछूतों को बुलाकर प्रेम से बैठाने का आग्रह किया।

मुगल शाही से लोहा लेने वाले भाई बन्सीलाल जी के लघुभ्रात श्यामलाल जी द्वारा उदगीर नगर में भव्य स्वागत

परली बैजनाथ से हमारा कार्यक्रम उदगीर जाने का हुआ। वहाँ पहुँचते ही हमारे स्वागतार्थ भाई बन्सीलाल जी के लघुभ्राता भाई श्यामलाल जी ने नंगी तलवारों और लाठी व लेजिम के व्यायाम के साथ शोभा यात्रा निकाली और वैदिक धर्म की जय के नारे लगाते हुये चले। इस प्रकार शोभा यात्रा चलकर आर्य समाज मन्दिर में समाप्त हुई और वहाँ दो दिन तक धुंआधार प्रचार हुआ। पंडित प्रकाश जी के राजस्थानी के वीर रस के इतिहास को सुनकर श्रोताओं की भुजाएं फड़क उठती थीं।

मुगलशाही की राजधानी हैदराबाद (भाग्यनगर) में

उदगीर से हैदराबाद पहुँचे और आर्य समाज रेजिडेन्सी बाजार (जो बीच में सुल्तान बाजार और वर्तमान में महर्षि दयानन्द मार्ग है) में ठहरे और उन्हीं दिनों शास्त्रार्थ महारथी श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी देहलवी भी पधारे थे, जो राजा बन्सीलाल जी (नारायण लाल जी) पित्ती के बाग में ठहरे। इन दिनों आर्य समाज के मन्त्री

कर्मठ कार्यकर्ता श्री चन्दूलाल जी थे। इन्होंने एक मास तक नगर के विभिन्न क्षेत्रों में हमारे भजन तथा देहलवी जी के भाषणों का कार्यक्रम रखा और धूमधाम से प्रचार प्रारम्भ हुआ। पं० रामचन्द्र जी देहलवी कुरान-शरीफ के आलिम थे ही। उनकी आयतों का शुद्ध मधुर उच्चारण सुनकर बड़े-बड़े मौलवी-मुल्ला झूम उठते थे और बाग़ बाग़ होकर कह उठते थे-"वल्लाह है तो आर्यावाला, मगर कुरान शरीफ की आयतें निहायत लज़ीज़ लहजे से बोलता है और तलफ्फुज़ कितना दुरुस्त व बेहतरीन है।" (यह हैदराबाद की खास भाषा है)।

मेरा तथा पण्डित प्रकाश चन्द्र जी का संगीतमय भजनोपदेश सुनकर श्रोता आनन्द विभोर हो जाते थे इसका मुख्य कारण राज्य की भाषा उर्दू होने से हमारे विचारों को जनता अच्छी प्रकार से समझती थी।

यहाँ के आर्य समाज के प्राण स्व० श्री केशव राव जी जज थे। जो मुगलशाही शासन में भी निर्भीक रहकर आर्य समाज का प्रचार करते कराते थे। इन्हीं के सुपुत्र श्री पं० विनायक राव जी विद्यालंकार गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक तथा बैरिस्टर थे, जो बड़े ही उत्साह से हमारे कार्यक्रमों में भाग लेते रहते थे। स्वराज्य के पश्चात् आन्ध्र प्रदेश में ये मन्त्री पद पर भी रहे थे।

स्वर्गीय श्री पं० वन्सीलाल जी व्यास पर तो पं० प्रकाश चन्द्र जी के भजनों और शैली का इतना प्रभाव पड़ा कि इन्होंने तो तभी से संकल्प कर लिया कि मैं एक भजन मंडली बनाकर ही प्रचार करूंगा और अपने संकल्प के अनुसार इन्होंने बड़ी सुन्दर भजन मण्डली बनायी। महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों के प्रचार व प्रसार के लिये एक गुरुकुल की भी स्थापना की जो हैदराबाद के समीपस्थ गुरुकुल घटकेश्वर के नाम से चल रहा है। जब कभी आर्य समाज का वार्षिकोत्सव अथवा प्रान्तीय या सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन का आयोजन होता था तो व्यास जी ऐसे कुशल प्रबन्धक, व्यवस्थापक थे जो पंडाल, प्रदर्शिनी आदि की सुन्दर, मनमोहक और आकर्षक व्यवस्था करते थे कि दर्शक और श्रोतागण मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। एक-एक लाख जनता इन उत्सवों और सम्मेलनों में भाग लेती थी। व्यास जी राजस्थान में नागौर नगर के निवासी थे। जब कभी राजस्थान आते तो अजमेर आकर कविरत्न जी तथा मुझसे अवश्य मिलकर जाते थे और कहते थे कि मुझे भजनोपदेश और प्रचार की प्रेरणा कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी से ही मिली।

हैदराबाद में हमारे कार्यक्रमों में १५-२० हजार की जनता आती थी। उनमें १०-२० श्रोता ऐसे भी होते थे जो कविरत्न जी के भजनों को नोटबुक में नोट करते जाते थे।

एक दिवस कविरत्न जी ने तत्कालीन मन्त्री श्री चन्दूलाल जी से कहा कि यहां के श्रोता कितने अच्छे हैं जो हमारे भजन व्याख्यानों को सुनकर और नोट भी करते जाते हैं। तब मन्त्री जी ने बताया कि नोट करने वाले श्रोता नहीं हैं अपितु सब गुप्तचर (नवाब के सी. आई. डो.) हैं यह सुनकर कवि जी को तुलसीदास जी का एक दोहा स्मरण हो आया-

" तुलसी या संसार में सबसे मिलिये धाय।
ना जाने किस रूप में नारायण मिल जाय॥"

दूसरे दिन अपने भजन प्रवचनों में उक्त दोहे पर एक पैरोड़ी बनाकर सुनाई :—

तुलसी या संसार में कबहुं न मिलिये धाय।
ना जाने किस रूप में सी. आई. डी. मिल जाय॥

एक दिन कविरत्न जी ने अपने भजनों के माध्यम से भक्त प्रहलाद् के प्रभु की परम प्रतीति प्रीति का वर्णन किया: —

अत्याचारी पिता हिरणकश्यप ने ईश्वर की भक्ति छोड़ने का प्रहलाद को आग्रह करते हुए अनेक प्रकार के कष्ट देने का भय दिखाया। तब प्रहलाद कहता है :—

आग में जलाओ, कोल्हुओं में पिलवाओ
चाहे चाम भी खिंचाओ, चिरवाओ चाहे आरे से
बेड़ियां पिन्हाओ, कारागर में भिजाओ,
अंग अंग कटवाओ, चाहे तीक्षण कुठारे से
जहर खिलाओ चाहे, फांसी पै चढ़ाओ,
हाथियों से कुचलाओ, डसवाओ नाग कारे से
गिरि से गुड़ाओ, बांध जल में बुड़ाओ पर
प्रीति ना छुड़ाओ, मेरी प्रभु प्राण प्यारे से॥

हिरण्यकश्यप क्रोधावेश में उसे मारने को तलवार निकाल लेता है। तब प्रहलाद निर्भय हो मुस्कराते हुए यह कहता है:—

है ज़मीनोआसमां, पानी, हवा, अंगार में।
फूल, फल, पत्तों, दरख़्तों में दरो दीवार में॥
हथकड़ी में, बेड़ियों में, तौक सूली, दार में।
आता है प्यारा नज़र मुझको तेरी तलवार में॥
सर के कट जाने पै ही प्रहलाद राहत पायेगा।
है छिपा तलवार में प्यारा गले लग जायेगा॥

सी. आई. डी. ने इसमें से कुछ नोट कर लिया और दूसरे दिवस उर्दू के दैनिक पत्रों में निकला कि आर्यावाले कहते हैं कि तलवार लेकर म्लेच्छों को मार डालो काट डालो। इस प्रकार अर्थ का अनर्थ कर झूठी रिपोर्ट नवाब को दी इससे नवाब ने हमारे प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिया और देहलवी जी सहित हम हैदराबाद राज्य से निष्कासित कर दिये गये।

उन दिनों नवाब उस्मान अली का शासन था जिसको मौलवी मुल्लाओं ने औरंगज़ेब का प्रतीक बनाना चाहा था। उसके शासन में मन्दिरों की मरम्मत, घन्टे, घड़ियाल, शंख बजाने बन्द कराना प्रारम्भ करा दिया और आर्य समाजियों पर कड़ी दृष्टि रखना प्रारम्भ कर दिया।

उसी समय से भाई बंशीलाल जी तथा भाई श्याम लाल जी ने मुगल शाही से डटकर लोहा लेने का निश्चय किया। और आगे जाकर १९३९ में हैदराबाद आर्य सत्याग्रह (धर्म युद्ध) आन्दोलन का रूप बना और ४० हजार आर्यों (हिन्दुओं) से जेलों को भर दिया गया। जिसमें लगभग १९ आर्य-वीर मुगल शाही अत्याचारों के कारण शहीद हुए। इसी आन्दोलन में भाई श्यामलाल जी भी शहीद हुए।

कवि-रत्न जी ने हुतात्मा (शहीद) पं. श्यामलाल जी के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करते हुए यह कविता लिखी थी—

ईश के आराधक गुणागार गम्भीर धीर
ज्ञानी सन्त दीन अनाथों के प्रतिपाल थे
परम सुधारक, पोषक आर्य सभ्यता के
वेद ज्ञान मानसरवर के मराल थे
असत, अनीति, अत्याचार के अरण्य को जो
भस्म करने के हेतु घोर ज्वाल-माल थे
ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त बन्शीलाल
भाई जी के, अनुज शहीद श्यामलाल थे

उपरोक्त सत्याग्रह में बलिदान होने वाले वीरों के त्याग-बलिदान के प्रसंग में कवि जी ने यह गीत भी लिखा था, जो आज भी आर्य-प्रचारक, गायक श्रद्धा-विभोर होकर गाते हैं —

हमें वैदिक धर्म अति-प्यारा है।
हमें वैदिक धर्म अति-प्यारा है॥
आंखों का यह तारा।
यही दिल का सहारा॥
सब कुछ ये हमारा।
हमें आर्य-धर्म अति-प्यारा है॥
आर्य जनों पर निजाम-शाही ने जब जुल्म गुजारे।
डाल जेल में निर्दय हो, तन पर कोड़े फटकारे॥
श्यामलाल जी वेद, सुनहरी आदि आर्य गण प्यारे।
मरते दम भी निर्भय हो, मुख से ये शब्द उचारे॥
हमें वैदिक-धर्म अति प्यारा है।
हमें वैदिक धर्म अति प्यारा है॥
आर्य जनों ने भाग्य नगर में, जौहर खूब दिखाये।
चक्की पीसी पत्थर फोड़े, सिर पर बोझ उठाये॥
कंकड़, काँच, सिमेन्ट मिले, ज्वार के रोट भी खाये।
बजा-बजा हथकड़ी बेड़ियाँ यही तराने गाये॥
हमें वैदिक-धर्म अति प्यारा है।
हमें वैदिक-धर्म अति प्यारा है॥

आर्य वीरों के इस महान् त्याग और बलिदान के आगे नवाब को हार मानकर सन्धि करनी पड़ी तथा आर्यों ने विजय-पताका फहरायी।

अंग्रेजी शासन में आर्य समाज के प्रचारक उपदेशकों पर बड़ी कड़ी दृष्टि रखी जाती थी कारण कि अंग्रेज सरकार को महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज की क्रान्तिकारिणी स्वातंत्र्य विचार धारा से अपने शासन के डगमगाने का भय उत्पन्न हो गया था। जहाँ उत्सव, प्रचारादि होते थे वहाँ सी. आई.डी. का जाल सा बिछ जाता था, वास्तव में स्वराज्य आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र उन दिनों आर्य समाज ही माना जाता था। श्री पट्टभिसीतारमैया ने कांग्रेस के इतिहास में लिखा है तथा महात्मा गाँधीजी ने भी कहा था कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में १०० में से ७५ प्रतिशत

आर्य समाजियों ने भाग लिया और जेल यातनायें भोगीं। क्रान्तिकारियों में चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल और सरदार भगतसिंह आदि ने गोलियाँ खाईं और फाँसी की रस्सी को हँसते-हँसते चूमा। ये सब आर्यसमाज ही से प्रेरणा पाये हुए थे।

एक बार इन्दौर में सी. आई. डी. पीछे लगी हुई थी। उस समय कवि जी एक उर्दू गज़ल लिख रहे थे —

सर कटा दे आन पर सच्चा वही सरदार है।
ज़र लुटा दे जो ग़रीबों को वही ज़रदार है॥
बून हो जिस गुल में उस गुल से तो बेहतर खार है।
दर्द ग़र दिल में न हो ये ज़िन्दगी बेकार है॥
पीस न लोगे जब तलक पत्थर से सुरमे की तरह।
चश्मे दिलवर तक पहुँचना तब तलक दुश्वार है॥

इसी गज़ल में आगे लिख दिया—

मिस्ल साये के लगा पीछे मेरे खुफिया पुलिस।
बे टके पैसे मिला क्या खूब चौकीदार है॥
होश तन मन का न रहता है मुझे मुतरूफ़ 'प्रकाश'।
हुब्बे क़ौमी के नशे में इस क़दर सरशार है॥

आर्य समाज का प्रारम्भिक प्रचार-क्षेत्र विशेष रूप से पंजाब व उत्तर प्रदेश रहा और उन दिनों हिन्दी भजनों के साथ-साथ उर्दू की भी गज़ल व शायरी आदि से प्राय: प्रचार किया जाता था। पं भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा के संस्थापक थे और उनके शिष्य कुँवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर भी उर्दू की गज़लों से प्रचार करते थे। उनकी तथा पं० भोजदत्त जी, श्री लालचन्द जी फ़लक आदि की गज़लों से प्रभावित होकर कविरत्न जी ने भी कुछ गज़ले उर्दू में लिखी।

ईसाइ परिवार पर प्रभाव

एक बार गंगापुर सिटी राजस्थान में प्रचारार्थ गये वहाँ पं० गंगाधर शर्मा रेलवे में थे। ये आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता थे। इन्होंने नगर में विभिन्न क्षेत्रों में प्रचार का प्रबन्ध किया। इसी संदर्भ में रेलवे के गार्ड दीवानी कम (जो ईसाई थे) उन्होंने भी अपने बंगले पर प्रचार का कार्यक्रम रखा था। पंडित जी ने वैदिक धर्म की महत्ता व आर्य जाति से बिछुड़ कर कैसे हमारी रामकृष्ण की सन्तान ईसाई और मुसलमान हो गई है इसका मार्मिक शब्दों में वर्णन किया। इस प्रचार का इस परिवार पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे कहने लगे—हम तो नाम मात्र के ईसाइ हैं, हम परिस्थिति से विवश हो ईसाइ हो गये हैं इसका हमें बड़ा दुख है, यदि कोई अच्छा आर्य हिन्दू परिवार मिल जाय तो हम अपने दोनों लड़कों और दोनों लड़कियों का विवाह उसी परिवार में करने को तैयार हैं। श्री पं० गंगाधर जी ने उनका सुप्रबन्ध किया और वे ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त बन गये।

नमस्ते के विरोधी को कविता में उत्तर

सन् १९३३ में आर्य समाज आसनसोल (बंगाल) के उत्सव पर गये। वहाँ उत्सव के अवसर पर हिन्दुओं के पौराणिकों ने उत्सव में जाने से रोकने का प्रयत्न किया और समाज में जिस समय कविरत्न जी का भजनोपदेश हो रहा था। उसी समय यह कड़ी लिखकर भेजी —

जनम भंगी के घर होगा मिलेगी झूँठ खाने को
नमस्ते नाश कर देगी फिरोगे दाने दाने को

कविराज जी ने इसका पद्यमय उत्तर उसी समय बनाकर दिया—

नमस्ते है जगत में वेद का डंका बजाने को
नमस्ते है कपट पाखण्ड पन्थों के हटाने को।
नमस्ते है संजीवनी शक्ति मृतकों के जिलाने को।
नमस्ते अग्नि है अज्ञान का कर्कट जलाने को।
नमस्ते तोप है खल पोप दल के दुर्ग ढाने को।
नमस्ते है सुदर्शन चक्र असुरों के मिटाने को।
नमस्ते ने किया चेतन चतुर उन भोले भाले को।
जो समझे धर्म थे धन माल पोपों के जिमाने को।
चिढ़े बैठे हैं कितने पोप इस कारण नमस्ते से।
न मिलते अब उन्हें लड्डू कचौड़ी खीर खाने को।
यों कहते हैं पोप जी रो रो के अपने बाल बच्चों से।
करो अब बन्द जल्दी से नमस्ते के तराने को।
बनेंगे आर्य नर नारी खुलेगी पोल फिर सारी।
नमस्ते नाश कर देगी फिरोगे दाने दाने को॥

सन् १९३४ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन था, जिसके अध्यक्ष पं० जवाहरलाल जी थे। जहाँ कांग्रेस का पण्डाल बनाया था ठीक उसके सामने दयानन्द कालेज के प्रांगण में आर्य समाज के प्रचार के लिये विशाल पंडाल बना था। उसमें आर्य समाज के प्रमुख विद्वान् वक्ता

पं० शिव शर्मा जी, पं० विद्यानन्द जी तथा प्रचारक श्री केदार नाथ जी, पं० रामदत्त जी शुक्ल, रासबिहारी तिवारी तथा प्रसिद्ध प्रचारक चौधरी तेजसिंह जी आदि थे। प्रचार धूमधाम से चलता था। कांग्रेस के बड़े बड़े नेता भी आकर व्याख्यान दे जाते थे। एक दिवस पं० मदन मोहन मालवीय जी पधारे। उनका ओजस्वी भाषण हुआ तत्पश्चात् पं०प्रकाश चन्द्र जी का साहित्य संगीतमय मधुर भजनोपदेश प्रारम्भ हुआ। श्रोता मन्त्र मुग्ध हो गये तथा मालवीय जी भी झूमने लगे।

सरदार भगत सिंह को फाँसी हुई इसकी सूचना तार द्वारा अजमेर आई। उस समय आर्य समाज का वार्षिकोत्सव हो रहा था। सूचना पाते ही कर्मवीर पं० जियालाल जी ने उत्सव स्थगित कर दिया, और वहां बैठा हुआ हजारों नर नारियों का समुदाय शोक ग्रस्त हो गया। उसी समय मंच पर आकर कविरत्न जी ने भगत सिंह को श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए उन्हीं के हृदयोद्गार में एक कविता सुनाई —

देश के खातिर सहूँगा सब सितम आराइयाँ।
खाऊँगा सीने पै खञ्जर तेग गोली बर्छियाँ।
मूंज की रस्सी बटूंगा पीस लूंगा चक्कियाँ।
हाथ में हो हथकड़ी पावों में पहनूं बेड़ियाँ।
गर्म चिमटों से बदन की खाल तक खिचाऊंगा।
मर मिटूंगा पर न उफ़ तक मैं जुबां पर लाऊँगा।
तख्त-ए-फाँसी पै यारों। जिस घड़ी चढ़ जाऊंगा।
देखना पहले से ज्यादा तौल में बढ़ जाऊँगा॥

लोग कहते हैं कि जब भगत सिंह को फाँसी लगने के बाद तोला गया तो पाँच पौंड वजन बढ़ गया था।

सन् ३० में सत्याग्रह और जेल यात्रा

जब महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का बिगुल बजाया उस समय गांधी जी से भी पहले भारत में सन् २१ में सत्याग्रह संग्राम करने वाले सत्याग्रही वीर राजस्थान के अन्तर्गत बिजौलिया (उदयपुर, मेवाड़) के किसान सत्याग्रही श्री विजयसिंह जी पथिक ने एक गीत लिखा—वह गीत केसर गंज (अजमेर) चक्कर के मैदान में झण्डा फहराते समय पं. प्रकाश चन्द्र जी ने गाया। उनके साथ इस गीत को गाने का सौभाग्य मुझे भी मिला। वह गीत सन् १९४२ के प्रजा-मण्डल के आन्दोलन में मेरे भी उदयपुर में जेल जाने का कारण बना। वह गीत मुझे आज भी ज्यों का त्यों याद है।

प्राण मित्रों भले ही गँवाना, पर न झण्डा ये नीचे झुकाना
तीन रंगा है झण्डा हमारा बीच, चरखा चमकता सितारा
शान है यही इज्जत हमारी, सर झुकाती इसे हिंद सारी
तुम भी सब कुछ इसी पर चढ़ाना
पर न झण्डा ये नीचे झुकाना
क्या भूले हो जलियान वाला
क्या वो डायर का इतिहास काला
गोलियों की लगी जब झड़ी थी
नींव आज़ादी की तब पड़ी थी
याद है ग़र वो खूने नहाना
तो न झण्डा ये नीचे झुकाना
उसने तो था न वृथा जुल्म ढाया
पेट के बल पै हमको चलाया
कोसों बच्चों को पैदल भगाया
मां और बहिनों को घर घर रुलाया
याद है ग़र तुम्हें वो फसाना
तो न झण्डा ये नीचे झुकाना।
झण्डा ये हर किले पर चढ़ेगा
इसका दल रोज़ दूना बढ़ेगा
पस भला हो जो अंग्रेज़ जागे
लोभ हिन्दी हुकूमत का त्यागे
वरना बदला है क्या ये ठिकाना
उनसे बदलेगा सारा ज़माना
प्राण मित्रों भले ही गँवाना, पर न झण्डा ये नीचे झुकाना

इस गीत को गाकर ज्यों ही सारी जनता जुलूस के रूप में जा रही थी पं. प्रकाश जी का वारंट कट गया, मुझे छोटा लड़का समझ कर छोड़ दिया। आपकी माता जी तथा पं. श्री परमानन्द जी की श्रीमती मनोरमा देवी दलपति के रूप में महिलाओं का संचालन कर रही थीं। इन्हें भी पुलिस ने घेर लिया।

कुछ दिनों पश्चात् गवर्नमेन्ट कॉलेज पर पिकेटिंग किया वहां आपको गिरफ्तार कर लिया। आपके साथ बाबूराम जी ब्रह्मकवि, जो आपके शिष्य हैं, उनको भी पकड़ लिया

और जेल भेज दिया। तब जेल में आपने एक गज़ल लिखी :—

हिन्द में स्वराज्य का फिर बोल बाला हो गया
सन्त बापू की बदौलत फिर उजाला हो गया
देखकर तहरीक इक अंग्रेज यूँ कहने लगा
माई डियर क्या से क्या ये मैन काला हो गया
ये निहत्थे हिन्द वाले कर रहे लाखों में चोट
आज इनका ढंग लड़ने का निराला हो गया
जेल में 'प्रकाश' भेजा इसलिये डर जायेगा
ये मगर वाँ और भी बेडर दुबाला हो गया

उन दिनों जेल में राजस्थान के सुप्रसिद्ध कर्मठ कार्यकर्त्ता पंडित हरिभाऊ जी उपाध्याय, बाबा नरसिंह दास जी, कृष्ण गोपाल जी गर्ग, रामनारायण जी चौधरी, जयनारायण जी व्यास, ईश्वर दत्त जी मेधारथी (वेद स्वामी मेधारथी) श्री क्षेमानन्द जी राहत आदि भी थे। वहीं पर कुछ समय तक कविरत्न इन महानुभावों के सम्पर्क में आए।

देशी राज्यों में प्रजामण्डल का आन्दोलन और कविरत्न जी के राष्ट्रीय गीतों का प्रभाव

देशी राज्यों में प्रजामण्डल के आन्दोलन के समय मैं उदयपुर में था, जहाँ भी प्रजामण्डल की सार्वजनिक सभा होती, उसमें राष्ट्रीय गीतों के गायन का कार्यक्रम मेरा ही रहता था। श्री माणिकलाल जी वर्मा का मेवाड़ राज्य में आने पर प्रतिबन्ध था, अतः ये अजमेर से संचालन करते थे और श्री भूरेलाल जी बया, वैद्यराज भवानीशंकर जी आदि प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। श्री मोहनलालजी सुखाड़िया भी कार्य क्षेत्र में आये ही थे। बड़े उत्साही लगनशील और क्रान्तिकारी विचार-धारा के थे।

९ अगस्त सन् ४२ को रात्रि में सारे प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये, उसके विरोध स्वरूप उदयपुर नगर में हड़ताल हो गयी। श्री वर्मा जी की धर्मपत्नी नाराणीदेवी और मैंने एक विशाल जलूस का संचालन किया, जिसमें लगभग ४० हजार जनता थी। कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी के निम्न गीत गाते हुए जलूस तिरंगा झंडा लिये आगे बढ़ा—

मरना है एक रोज क्यों न मरें वतन की शान पर।
मार मुसीबत सभी सहेंगे गुलाम बन कर नहीं रहेंगे
आज़ादी के लिए खुशी से खेल जायेंगे जान पर ।। मरना ।।
भारतवासी वीरो आओ ऐसा जौहर क्रान्ति मचाओ
फिर प्रकाश लहराये तिरंगा झंडा हिन्दुस्तान पर ।। मरना ।।

दूसरा गीत वही झण्डे वाला पथिक जी का—

प्राण मित्रों भले ही गँवाना पर न झण्डा ये नीचे झुकना।

हमारी भी गिरफ्तारी का वारंट निकल आया और पकड़ कर जेल भेज दिये गये। वहाँ जेलों में भी श्री वर्मा जी व भूरेलाल जी बया, श्री सुखाड़िया जी आदि राजनैतिक वन्दी थे। प्रार्थना तथा राष्ट्रीय गीत मैं ही गवाता था। जिसमें अधिकाँश गीत प्रकाश जी के ही होते थे।

स्वराज्य के पश्चात् सन् ४८ में प्रथम बार कांग्रेस का अधिवेशन जयपुर में हुआ। मैं वैद्यराज भवानी शंकर जी के साथ उदयपुर से प्रबन्ध व्यवस्था में जयपुर आया था, कविरत्न जी भी वहाँ पधारे हुए थे। अतः वैद्यराज जी की अध्यक्षता में ही एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें आपने स्वयं रचित सुप्रसिद्ध साहित्यिक रचना सुनाई—

"बड़ी दूर मुझको जाना है।"

हैदराबाद सत्याग्रह, संग्रहणी और गठिया वाय का रूप

श्री प्रकाश जी सन् ३९ में हैदराबाद सत्याग्रह में निरन्तर प्रचार का कार्य करते रहे। कर्मवीर पं० जियालाल जी ने बम्बई में कहा कि तुम कुछ दिन विश्राम करो पर वे न माने। छाछ दही के प्रयोग से संग्रहिणी का रोग तो जाता रहा किन्तु धीरे-धीरे शरीर में वात रोग का प्रकोप बढ़ता गया, परन्तु प्रचार कार्य में शिथिलता तनिक न आने दी।

श्री पं० विहारी लाल जी शास्त्री (बरेली) ने २५ वर्ष पूर्व सुमन-संग्रह पुस्तक में 'हैदराबाद मेरी दृष्टि में' इस शीर्षक वाले लेख में निम्न विचार प्रकट किये हैं।

"यहाँ के आर्य समाजियों ने पर्याप्त तप और त्याग किया है। उसी का यह फल है। पं० श्यामलाल जी और श्री वेदप्रकाश जी आदि कई आर्य वीरों के बलिदान

पं० दत्तात्रेय प्रसाद जी व पं० बंशीलाल जी जैसों का अपनी ऊंची वकालात को छोड़ देना और सबसे बढ़कर यहाँ के धनी-मानी, प्रतिष्ठित कुल के सज्जन पं० विनायक रावजी का त्याग और लगन श्लाघ्य है।

पं० जवाहर लाल नेहरू के समान भी इनका सर्वस्व आर्य समाज के लिए हो गया है। पं० बंशीलाल जी के लिए तो हम बिस्मिल साहिब का एक शेर बदल कर यूं कह सकते हैं।

अपनी कुर्बानी से है मशहूर बंशीलाल जी।
शमए वैदिक धर्म पर घर का घर परवाना है॥

श्री पं. नरेन्द्रजी दृढ़ आर्यसमाजी और ज्वाजल्यमान जीवन रखने वाले नौजवान हैं। इधर के उपदेशक और प्रचारक स्फूर्तिवान और लगन से काम करने वाले हैं। सभी आर्य समाजियों में प्रेम, श्रद्धा और जीवन पाया जाता है। अत्याचार पीड़ित प्रजा में उठने की जो तड़प होती है वह यहाँ भी दिखाई देती है।"

यात्रा और प्रचार में रहते रहते श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर ने बहुत मना किया कि यदि ऐसी लापरवाही की तो रोग अधिक बढ़ जायगा और वही हुआ। सन् ४९ दिसम्बर में आर्य समाज खुसरुपुर विहार के उत्सव पर गये। वहाँ रात्री को प्रचार में वर्षा और ओले पड़े जिससे भीग गये। सारा शरीर ठंड से अकड़ गया। उस समय आपकी धर्मपत्नी पुष्पा देवी जी भी साथ थीं। वो वहाँ से मेरठ ले आईं और आपके स्नेही बाबू रघुनन्दन स्वरूप जी की कोठी पर रहे।

वहां तीन मास उपचार हुआ किन्तु कोई लाभ न हुआ तब पं० जियालाल जी ने आपको अजमेर बुलवा लिया और श्री डा० अम्बालाल जी व वैद्यराज रामचन्द्र जी का पुनः उपचार आरंभ हुआ। इसी बीच में स्व० बी.एन.शर्मा डाइरेक्टर मेडिकल विभाग राजस्थान (जयपुर) से मैंने चर्चा की। उन्होंने आकर देखा और आपको जयपुर ले गये और लगभग ६ मास तक सवाई मानसिंह अस्पताल में उपचार हुआ। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री जयनारायणजी व्यास,स्वास्थ्य मंत्री बद्रीप्रसाद जी गुप्त, महारानी गायत्री देवी आदि ने उपचार सम्बन्धी व्यवस्था में सहयोग दिया, तथा आर्य समाज किशन पोल बाजार, आदर्श नगर आदि के आर्य सज्जनों तथा देवियों ने यथाशक्ति सहयोग दिया। विशेष रूप से श्री उग्रसेन जी लेखी व उनकी धर्मपत्नी, श्री डा. मथुरालाल जी शर्मा व धर्मपत्नी राधा प्यारी जी, वैद्यराज पं० देवदत्त जी भारद्वाज, सावित्री देवी, श्री दामोदर लाल जी गुप्त तथा धर्मपत्नी, श्री भगवती प्रसाद जी, श्री डा० भटनागर तथा उनकी पत्नी लक्ष्मी भटनागर, श्री सुन्दरलाल जी भाटिया तथा आर्य महिला समाज किशन पोल बाजार आदि की बहिनों ने पूर्ण रूपेण सहयोग प्रदान किया।

एक दिवस डा. बी. एन. शर्मा जी ने आकर कविरत्न जी से पूछा कहिये आपका स्वास्थ्य कैसा है। तब कविरत्न जी ने गजल सुनाई जिसकी दो कड़ियाँ उद्धृत हैं—

जुज़ मर्ज मरीज़े मुहोब्वत का ग़म से छुटकारा हो न सका।
बस रहने भी दो अय चारागरों तुमसे कुछ चारा हो न सका।

सन् ५० में आप सन्निपात के कारण चलने फिरने में नितान्त असमर्थ हो गये। प्रचार कार्य रुक गया तथा आपका साहित्य प्रकाशन का कार्य भी रुक गया। इस परिस्थिति को देख मैं विह्वल हो गया। (उन दिनों मैं उदयपुर में संगीत विद्यालय तथा संगीत सम्बन्धी सामग्री का व्यवसाय करता था।) अतः मैंने आपकी सेवा में रहने का निश्चय किया। साहित्य प्रकाशन आदि की व्यवस्था तत्कालीन वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक श्री भगवान् स्वरूप जी न्याय भूषण के सहयोग से आरम्भ की। जिसमें प्रकाश भजनावली, प्रकाश भजन सत्संग, राष्ट्र जागरण, कहावत कवितावली, गौ-गीत-प्रकाश आदि रचनाओं के प्रकाशन उल्लेखनीय हैं। गत २० वर्षों में इनके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। जिन्हें आर्य जनता बड़े उत्साह से क्रय कर लाभ उठा रही है।

संगीत कला मन्दिर

मैंने सन् ४९ में श्री के० एल० वर्मा जी के सहयोग से संगीत कला मन्दिर की स्थापना की जिसमें ग्वालियर की परीक्षा का केन्द्र भी रहा। कवि प्रकाश जी इस रुग्णावस्था में भी विद्यालय का आचार्य पद संभालते, देखभाल करते। श्री राजा भैया पूछ वाले प्रिन्सिपल माधो संगीत विद्यालय ग्वालियर से परीक्षा लेने आये। अजमेर तथा राजस्थान में से

उदयपुर, भीलवाड़ा, कोटा ब्यावर आदि के छात्रों ने परीक्षाओं में सम्मिलित हो लाभ उठाया।

वर्त्तमान म्युजिक कॉलेज के प्रिन्सिपल कन्हैयालालजी मधुकर, श्रीचन्दजी अग्रवाल, स्नेहलता शर्मा, कमला अग्रवाल आदि कई संगीतज्ञ इस कला मन्दिर के छात्र रहे हैं। विद्यालय प्रति वर्ष भातखण्डे जयन्ति बड़े समारोह से मनाता। जिसमें कविरत्नजी अथक परिश्रम करके छात्र छात्राओं से संगीत तथा राष्ट्रीय गीत तैयार कराते। नाटक तैयार करते। 'हमें भारत देश अति प्यारा है' यह गीत तो अजमेर के जन जन में गूँज उठा था। विद्यालय अच्छे रूप से चल रहा था किन्तु सन् ५७ में पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह संग्राम आरंभ हुआ। मैं भी उसमें गिरफ्तार हो गया। एक वर्ष की सजा होने के कारण सब कुछ अस्तव्यस्त होने से विद्यालय बन्द हो गया।

पंजाब का हिन्दी सत्याग्रह

सन् ५७ में पंजाब में हिन्दी भाषा पर प्रतिबन्ध लगने के कारण सत्याग्रह संग्राम आरम्भ हुआ। सार्वदेशिक आर्य सभा दिल्ली की ओर से इसके प्रचार की व्यवस्था के लिए मैं भी कार्य करता था।

एक दिन ग्राम चहड़ कला (लोहारों) में पैदल जा कर विराट सभा की। श्री आचार्य कृष्ण जी, श्री पं० गौतम जी आदि हम सोलह उपदेशक व भजनोपदेशक थे। रात्रि को बारह बजे सभा सम्पन्न होने के पश्चात पुलिस ने घेरा डालकर हम सब को गिरफ्तार कर लिया। और हिसार (हरियाणा) बोस्टल जेल में ले जाकर बन्द कर दिया और कत्ल का आरोप लगाकर एक एक वर्ष का कारावास दे दिया। उस समय कविरत्न जी का निम्न गीत हम सब गाते रहे जिससे हमें बड़ा उत्साह मिलता है—

अति निकट, विकट, संकट का ठट सिर पर है
परवाह नहीं रक्षक जब जगदीश्वर है।

दीक्षान्त शताब्दी मथुरा

सन् ५९ के दिसम्बर में महर्षि दयानन्द जी महाराज ने गुरुवर विराजनन्द जी से १०० वर्ष पूर्व दीक्षा ली थी। उसकी शताब्दी मनाने का अवसर आया। उन दिनों पद्मश्री पं० हरिशंकर जी शर्मा आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान थे। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि किसी भी प्रकार कविरत्न पं० प्रकाश चन्द्र जी को लेकर आओ। आर्य जनता उनके दर्शन करना चाहती है। तब मैंने साईकिल के तीन पहियों वाली गाड़ी बनवाई और शिष्य मण्डली सहित मथुरा पहुंचा। श्री पं० विद्याशंकर जी शास्त्री भी साथ थे। सन् २५ में ऋषि दयानन्द की मथुरा शताब्दी पर पंडित जी ने जिस अमर गीत की रचना की थी, वह अमर गीत जन मानस में आज भी गूँजता रहा है।

'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने'

इसी प्रकार दीक्षा शताब्दी पर जो आपने रचना की वह भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई। इस गीत को हम सब ने गाया था।

यूँ तो कितने ही महापुरुष हुए दुनिया में
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना।

गीत बड़ा लम्बा है इसमें साहित्य छटा है, इसे सुनकर श्रोता गण झूम झूम उठे और श्री चन्द्र नारायण जी एडवोकेट बरेली ने इस पंक्ति को पुनः पुनः सुनना चाहा।

"मानते मान रहे मिथ्या प्रचार मंडी के,
वेद अनुयायी थे रक्षक थे ओ३म् झण्डी के"

[यह गीत प्रकाश गीत द्वितीय भाग में प्रकाशित है और इसका रिकार्ड भी मेरे द्वारा गाया हुआ उपलब्ध है।)

सन् १९६० के दिसम्बर मास में आर्य समाज १९, विधान सरणी (कार्नवालिस स्ट्रीट) कलकत्ता के उत्सव पर गया। उन दिनों आर्य समाज के मंत्री स्व० श्री भारद्वाज जी थे उन्होंने उत्सव में कविरत्न जी की पुस्तकों के विषय में अपील करते हुए बीमारी की भी चर्चा कर दी। श्री मेहरचन्दजी धीमान, पं० रघुनन्दन लाल जी, श्री कृष्णलाल जी पोद्दार, श्री रुलिया राम जी आदि ने १००)- १००)- रु० की राशि दी। श्री सी. एल. बाहरीजी ने मुझसे कहा कि आप मेरे निवास स्थान पर आना। दूसरे दिन प्रातः मैं बाहरी इन्जीनियरिंग वर्क्स हावड़ा गया। आपने कविरत्नजी का पता लिख लिया और जनवरी सन् ६१ की ५ तारीख को कविरत्न जी के नाम से १००)- रुपये मनी आर्डर द्वारा भेजे। वह राशि तब से आज तक उनके पितृ-स्मारक श्री लालचन्द जी बाहरी ट्रस्ट से मासिक रूप

में भेज रहे हैं। इसी प्रकार सन् ६५ में मैं हैदराबाद गया। वहाँ श्री पं० नरेन्द्र जी, उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से चर्चा की। इन्होंने सभा में प्रस्ताव रक्खा और इसमें श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री, श्री पं० रामनारायण जी शास्त्री, श्री लाला रामगोपाल जी सभा मंत्री, इन्होंने सभा से १००) रु० मासिक सहयोग प्रदान करना आरंभ कर दिया। स्वामी आनन्द भिक्षुजी की १०) रु० मासिक भेजते थे उनके स्वर्गस्त होने पर उनके सुपुत्र श्री जेमिनिजी शास्त्री ये राशि भेजते हैं। श्री बलदेव जी वानप्रस्थी चांदपुर १५) मासिक और समय २ पर आर्य भाई बहिनें सहयोग भेजते हैं जिससे इस रुग्णावस्था में भी जो नवीन साहित्य का सृजन कविरत्न जी करते रहते हैं उनका प्रकाशन होता रहता है।

भारतीय संगीत का स्वरूप, तथा कविरत्न जी की संगीत संबन्धी रचनाएँ

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्ग देशी विभागेन संगीतं विविधं मतम्॥

– संगीत रत्नाकर

संगीत में गायन, वादन एवं नृत्य तीनों का समावेश है। और तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध है। अर्थात् सम गीत न हो तो वह संगीत नहीं कहलाता है। इसमें भी दो प्रकार का संगीत होता है मार्गीय व देशी।

मार्गीय संगीत वैदिक युग से प्रचलन में आया माना जाता है। उत्तर कालीन वैदिक युग में निबद्ध, प्रबन्ध और मार्गीय नाम से संगीत विद्या के तीन भेद हो गये थे। मानव की प्रकृत्यावस्था में उसके भावों को अभिव्यक्ति के लिए किये गये परिणाम स्वरूप अद्‌भुत, स्वयम्, स्वर तथा अलाप के शास्त्रीय विकास को ही देशी संज्ञा दी गई। प्राचीनकाल में हमारे वेदों की ऋचायें साम वेद के स्वरों में गाई जाती थीं। साम उपासना का साधन है और वर्तमान में भी कहीं कहीं प्रचलित है।

देशी विषय का व्याख्यान करते हुए शारंग देव ने कहा है –

देशे देशे जनानां यद्रुवेद् हृदय रञ्जकम्।
गीतं च वाद्यं नृत्यं च तद्देशी त्यभिधीयते॥

और भी —

रंजक, स्वर संदर्भो गीतमित्यभिधीयते।
गन्धर्व गान मित्यस्य भेद द्वयमुदीरितम्॥
अनादि सम्प्रदायो यः गान्धर्वं तज्जगुर्बुधाः।
या तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम्।
देशी रागादि षु प्रोक्ता तद् गानं जन रंजनम्॥

वर्तमान में प्रचलित संगीत को उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर हम देशी संगीत कह सकते हैं। इसमें दो पद्धतियां प्रचलित हैं। (१) हिन्दुस्तानी पद्धति (२) कर्णाटक पद्धति। प्रथम का प्रचार और प्रयोग क्षेत्र, उत्तर भारत है तो द्वितीय का दक्षिण भारत। जैसा नामों से ही स्पष्ट है।

उत्तर भारत की पद्धति में गायन की कई शैलियाँ हैं इनमें सर्वश्रेष्ठ गायकी नूम तूंम ही मानी जाती है। और इसका वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है—

ओ३म् तू ही तरन तारण अन्तर तरन।

इसमें सम्प्रदायिकता नहीं है। आर्य (हिन्दू) मुस्लिम, ईसाइ कोई भी गायक नूम तूम की गायकी से यही गायेगा। वर्तमान भारत में इसके दो घराने प्रसिद्ध हैं। आगरा घराना और डागुर घराना। इसमें किसी भी राग के स्वरों को लेकर इन शब्दों के साथ स्वरों का विस्तार किया जाता है।

यही गायकी वीणा और सितार आलाप में बजाई जाती है, फिर ध्रुपद, धमार, ख्याल (छोटे बड़े) टप्पा, ठुमरी, होरी, भजन, गजल, तराना, चतुरंग, सरगम और गीत।

बीच के युग में यह कला राजा महाराजा व नवाबों को रिझाने का साधन रही। यह कार्य प्रायः पेशेवर गायक किया करते थे। जिनको हेय दृष्टि से देखा जाता था। और शिष्ट परिवार व सर्वसाधारण में इसका अभाव था। किन्तु १९ वीं शताब्दी में संगीतोद्धारक स्वनामधन्य पं० विष्णु-नारायण भातखण्डे, पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने इसका पुनः उद्धार किया और ईश्वरोपासना का प्रमुख साधन बताया तथा शिष्ट समाज में सम्मान कराया।

कविरत्न जी भी संगीत कला में अच्छी गति रखते हैं। संगीत में प्रायः शृंगार प्रधान रचना होती हैं। आपने

अपनी संगीत मय रचनाओं को ईश्वर आराधना, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय रूप दिया है जिनमें से कतिपय रचनाएँ प्रस्तुत हैं—

ध्रुपद शैली की रचना

राग यमन (चौताल अथवा एक ताल)

(१) भज भज मन ओ३म् कार

(२) आपहै अनादि ईश है अपार माया। राग सुगराई

(ये रचनाएँ आपको रचित प्रकाशभजनावली, भजन सत्संग, गीत, तरंगिणी, आदि में प्रकाशित हैं।)

(३) राग खमाज त्रिताल छोटा ख्याल
प्रभु तेरी रचना न्यारी न्यारी।

(४) राग मालकोष ताल रूपक
रे नर तज कुटिल व्यवहार रे।
झपताल
करुणा निधि टेर सुनलो हमारी।

(५) राग मालगुञ्जो त्रिताल (छोटा ख्याल)
डूबत की लाज राखो प्रभुजी आज

(६) राग तिलंग त्रिताल-
मन मधुर नाम भज ओ३म् ओ३म्
राग पीलु (ठुमरी अंगमे) ताल त्रिताल या अद्दा

(१) अबतो केवल तेरो आश। और

(२) तुम सम और न जगमे मीत

राग टोडी त्रिताल (मध्य तप)

मैं तुमको पहचान न पाया
राग काफी ताल दीप चन्दी (होरी)
टेर सुनो प्रभु मोरी। और
रंगरेजवा जाऊँ वारी
ताल झपताल
हे दीन के नाथ हरो ताप मोरा
(इस की बन्दीश दूगन चौगन में है)
राग खमाज त्रिताल (मध्य लय)
जीवन जीवन धन पर वारूँ ॥
राग दरबारी कानडा मध्यलय
'ओ३म् नाम प्रिय बोल तब तो तोहे शान्ति मिलेगी'

आदि अनेक रचनाएँ हैं जो समस्त रागों में गाई सकती हैं।

नृत्य

भारत में नृत्य की कई शैलियां हैं मणिपुरी (आसाम) भरत नाट्यम् (मद्रास) कथकली (केरल) लोक नृत्य, कत्थकमें जयपुर और लखनऊ दो घराने प्रसिद्ध हैं इनमें भाव अभिव्यक्ति तथा तबला पखावज के बोलों पर काव्य के साथ नृत्य होता है।

कविरत्नजी ने जयपुर की कत्थक शैली में भी कुछ नृत्य के बोल लिखे हैं उनके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

भारत महिमा

तुंगभाल हिमगिरि विशाल
\+ २
शोभित तुषार सिरमञ्जु मुकुट
० ३
लहरात हरित श्यामल अञ्चल
\+ २
मन मुदित करत दुख हरत सकल
० ०
प्रिय गंग जमुन सरिता अनेक
\+ २
मणि मुक्त माल सो उर सुहात
० ३
नित नील सिन्धु जल धोवत चरण
\+ २
मंगल करणी भवभय हरणी जय
० २
जग भारत माता जय जय भारत
\+ २ ०
माता जय जय भारत माता
३ +

कंस सँहारी कृष्ण

कंस असुर मथुरा-नृपाल, अन्याय करत निशदिन कराल ॥
जुवती जवान, अरु वृद्ध बाल, थर-थर कम्पित भय से निहाल ॥
लख विकल हुए अति कृष्णचन्द, जशुदा के नन्द आनन्द कन्द ॥
भये अमित लाल लोचन विशाल, पुनि फडकि फडकि उठे भुज विशाल ॥
पहुँचे तुरन्त नृप सभा बीच, पकड़ा कर से वह कंस नीच ॥
सिरकेश झटक दिया भूमि पटक, खल कटक विकट गये भय से सटक ॥
उर पर सवार भर भर हुंकार, मुष्टिक प्रहार कर वार वार ॥
कंसासुर का कर दिया अन्त, पुलकित अनन्त सब साधुसन्त ॥
सब गोपी ग्वाल अति ही निहाल, निरखत उछरत अति बजा ताल ॥

सुरगण ऋषि गण बरसात सुमन, हर्षित पुरजन यह कहत वचन ॥
भव-भय-भञ्जन-जन-मन-रञ्जन। खल-दल-गञ्जन जसुदा नन्दन ॥
श्री कृष्णचन्द्र की जय, श्री कृष्णचन्द्र की जय श्री कृष्णचन्द्र की जय ॥

ऐसे गुरुवर प्रकाशचन्द्र
देव दयानन्द-प्रतिपादित वैदिक धर्म
प्रचारक ये प्रसिद्ध प्रेम के पुजारी हैं।
रचते विविध विषय-भूषित जो पीयूष
गीत, कविता, ललित, लोक उपकारी हैं ॥
वात व्याधि ग्रस्त जीर्ण क्षीण तन से हैं किन्तु
मनसे नितान्त स्वस्थ शान्त धैर्य धारी हैं।
वे प्रकाशचन्द रचते रहें सु काव्य छन्द
टूटे व्याधि फन्द कामनायें ये हमारी हैं ॥

□□

अभिनन्दन श्रद्धाञ्जलि

कविराज धर्मसिंह कोठारी

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्रकेतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥

ऋ० ८।९६।४॥

श्रद्धेय कविरत्न 'प्रकाश' जी से मेरा परिचय घनिष्ठ है और सम्पर्क भी बहुत पुराना है। अपने बाल्यकाल से ही मैंने इनको आर्य समाज के शीर्षस्थ गायक, उत्तम भजनोपदेशक और प्रभावशाली प्रचारक के रूप में देखा है। पीछे किंचित् चिकित्सा करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। क्या तो रुग्णावस्था और क्या स्वस्थावस्था इनको सदा प्रसन्नचित्त पाया। ऐसे वन्दनीय व्यक्तियों के लिये ही कहा गया है:—

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं प्रचारकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

"जिनका मुखकमल सदा प्रसन्न, चित्त सदा दयापूर्ण, वाणी पीयूषवर्षिणी, और कार्य विमल वेद धर्म का प्रचार करना हो वे किसके वन्दनीय न हों ? अर्थात् सभी के वन्दनीय हैं। वैसे तो ये गृहस्थाश्रमी हैं और जीवनसंगिनी भी भाग्य से इन्हें अच्छी ही मिली है तथापि इनकी चिरसंगिनी के रूप में वाणी ही अधिक सहायक हुई है।

इनकी संगीत-सुधा की अजस्र लहरियों में मैंने अपूर्व आह्लाद और शान्ति प्रदान कर देने वाली तृप्ति का सुखद अनुभव किया है। आर्योचित ओज की अभिव्यक्ति और अजेय आत्मशक्ति का सान्निध्य इनके व्यावहारिक जीवन के अभिन्न अङ्ग हैं। आर्य-कवि कुल सूर्य श्री नाथूरामजी 'शंकर' के पश्चात् भाषा-काव्य-गगन में श्री कविरत्न 'प्रकाश' जी का प्रकाश ध्रुव तारे के समान देदीप्यमान है। कौन नहीं जानता कि इसी प्रकाशपुञ्ज से प्रायः सभी आर्य समाजों के वार्षिकोत्सव-दीप आलोकित होते थे। विशेषतः आर्य समाज अजमेर का वार्षिकोत्सव तो श्री 'प्रकाश' जी के प्रकाश से ही जगमगाता था। घर-घर में 'प्रकाशजी' के भजन आज भी गाये जाते और आकाशवाणी पर सुने जाते हैं।

अपने जीवन के प्रारम्भ में ही अपनी दैवी प्रतिभा, मृदुहास्य, आशुकवित्व और पर-गुण-प्रशंसिनी प्रवृत्ति से इन्होंने न केवल स्थानीय अपितु सार्वदेशिक जन मानसों, मूर्धन्य कलाकारों और कवियों के विमल अन्तःकरणों में अपने प्रति जो स्नेह बीज वपन किया उसका विकास आजकल इनकी रुग्णावस्था में भी शिथिल नहीं हुआ प्रत्युत अधिक अंकुरित और परिवर्द्धित होता हुआ चतुर्गुणीसज्जा से इस अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में मुखरित हुआ है। इस पुष्प-प्रचय में अपने अति आत्मीय प्रियजनों की पुष्पाञ्जलियाँ पाकर श्री 'प्रकाश'जी प्रसन्न हों और हमें आशीर्वाद दें।

□□

प्रकाशचन्द्र अभिनन्दन

हे जगतीतल सुललित 'प्रकाश'
शीतल-सु- 'चन्द्र' - मण्डल-विकास',
सौ बार तुम्हारा अभिनन्दन !

साहित्य को तुमसे गान मिला ।
कविता को अद्‌भुत मान मिला ।
मातृ - भारती - सेवक से —
हिन्दी को नव उत्थान मिला ।
हे हृदय सरोरुह के सुवास,
कर दिये छिन्न दुर्गन्ध - पाश,
सौ बार तुम्हारा अभिनन्दन !

तुमने धर्म - ध्वजा फहराई
सुसिद्धान्त - हरीतिमा छाई ।
मंगल - पथ अपनाकर तुमने —
मानवता की ज्योति जगाई ।
हे उच्चता - प्रतीक आकाश.
अघ - ओघ-तिमिर के वन विनाश,
सौ बार तुम्हारा अभिनन्दन !

संगीत - कला आधार तुम्ही
कवि - कुल के चिर संसार तुम्ही ।
गायक, ललित-कला - वरदायक —
सच्चे सुख के श्रृंगार तुम्ही ।
हे आर्य प्रवर, मनस्वी - सुहास,
ले ज्ञान गम्य अनबुझी प्यास,
सौ बार तुम्हारा अभिनन्दन !

○ रमाकान्त दीक्षित

मेरे "प्रकाश"

मेरे "प्रकाश" — प्यारे "प्रकाश"

साहित्य-गगन मंडल में मुद, चिर काल चमकते चन्द्र-हास ॥ १ ॥

साहित्य - सरोवर के सरसिज, कविता-कामिनि के कलित कान्त ।
"कविरत्न" कहें या कवि कोविद, सज्जन स्वभाव से सदा सन्त ॥
हो आर्य जगत की अतुल आश । मेरे प्रकाश............... ॥ २ ॥

संगति शास्त्र के सुज्ञाता, कवि कलाकार वादक गायक ।
अनगिन जन गन मन रंजन हो, शतशः शिष्यों के सन्नायक ॥
स्वर-किसलय-कलिका के विकास; मेरे प्रकाश............... ॥ ३ ॥

सद्धर्म - प्रचार यज्ञ में तुमने, जीवन सारा होम दिया ।
सब सुख सुविधा सम्पत्ति त्यागी, विश्राम कभी क्षणभर न लिया ॥
घर पर न रहे चिर सावकाश; मेरे प्रकाश .... ॥ ४ ॥

कहते समोद "अजमेर रहूँ", कलकत्ता रहूँ या रहूँ पटना ।
बस घटे कोई सी भी घटना, पर रहे प्रचार हि की रटना ॥
"मजनूँ" समाज का बनूँ काश ! मेरे प्रकाश .... ॥ ५ ॥

सब आर्य समाज - उत्सवों पर, पद प्रिय प्रकाश के गाते हैं ।
बहु आर्य प्रचारक गुरु मानें, श्रोतागण सुन हरसाते हैं ॥
रचनायें वर वाणी विलास, - मेरे प्रकाश .... ॥ ६ ॥

ले दीप्त "सूर्य" से सुप्रकाश, ज्यों "चन्द्र" चमकता धरती पर ।
प्यारा "प्रकाश" चमकता रहा, त्यों आर्य जगत् की वेदी पर ॥
हो अभिनन्दन शाश्वती श्वास; मेरे प्रकाश प्यारे प्रकाश ॥ ७ ॥

○ डा० सूर्यदेव शर्मा

साहसी मित्र

हरनारायण भटनागर

मैं अपना परिचय स्वयं दे रहा हूँ। सबसे बड़ा परिचय मेरा यही है कि मैं दुर्गाप्रसाद (वर्तमान प्रकाशचन्द्र कविरत्न) का बचपन का मित्र हूँ। साथ ही भाई भी क्योंकि मेरी माता इन्हें और इनकी माता मुझे अपने पुत्र के समान समझती थीं-इस प्रकार हमारा परस्पर व्यवहार मित्र व भाई का रहा।

किसी ने ठीक ही कहा है—भाई का दर्जा बड़ा बशर्ते कि वह दोस्त हो और दोस्त का दर्जा बड़ा बशर्ते कि वह भाई हो।

लगभग ६० वर्ष पूर्व की बात है जब मैं छोटा था। केसरगंज अजमेर में एक मिट्ठन नाम के दुष्ट प्रकृति के लड़के ने मुझे बहुत तंग किया और मैं रोने लगा। इतने में एक अपरिचित लड़का दुबला पतला सा आया और मैंने उसे बतलाया कि यह मुझे मार रहा है, यह सुनकर उसने तुरन्त आस्तीन चढ़ा एक थप्पड़ उसके गाल पर रसीद किया और टाँग पकड़कर चारों खाने चित्त दे पटका।

बस उसी दिन से मेरी उससे मित्रता हुई और वह मित्रता अब तक बनी हुई है। मेरा सहायक वह लड़का कौन था? वह यही जो श्री० पं० प्रकाश चन्द्र कविरत्न के नाम से प्रसिद्ध है।

कौन जान सकता था प्रकाश सा नटखट (किन्तु दुर्व्यसन से रहित) कट्टर सनातनी बाप का कट्टर सनातनी बेटा महर्षि दयानन्द का अनुयायी एव आर्य समाज का प्रचारक होकर अपनी प्रभावशाली काव्य रचनाओं द्वारा हिन्दू जाति एवं राष्ट्र की सेवा करने को निर्द्वन्द्व ही जुट जायेगा।

कभी जब मैं प्रकाश जी को राष्ट्रीय आन्दोलन तथा आर्य समाज के कार्यों में बड़ी तत्परता से भाग लेते देखता था, तथा श्रोताओं को उनके प्रवचन गीत, कविता आदि सुनकर मुग्ध होते देखता तो मैं खुशी के मारे फूला न समाता था। साथ ही प्रकाश जी का बचपन का वह साहसी चुस्त चुलबुला चित्र मेरी आँखों के सामने खिंच जाता था। अब भी अतीत की स्मृतियाँ जाग्रत हो जाती हैं।

एक दिन में तथा प्रकाश, आर्यदेव, गिरजाशंकर आदि साथी मेरे घर की छत पर बैठे थे। पीछे मोहनलाल जी का बाड़ा था। प्रकाश जी बोले मैं छत की डोली पकड़ कर ऊपर से बाड़े में कूद सकता हूँ। छत काफी ऊँची थी। मैं बोला, अगर तू कूद जायगा तो मैं भी कूद पड़ूंगा। इस पर प्रकाश जी दीवार पकड़ कर झट से कूद पड़े, वादे के अनुसार मैं भी छत की डोली पकड़ कर दीवार से लटक तो गया लेकिन ज्योंही नीचे देखा तो कूदने का साहस न हुआ, और ऊपर लटका ही रह गया। मेरा शरीर उन दिनों अधिक भारी भरकम था, आखिर बड़ी मुश्किल से दो तीन तगड़े पड़ोसियों ने हाथ खींच कर मुझे छत पर ला पटका।

वैसे तो अनेकों घटनाएं हैं, हां एक रोचक घटना याद आई। रामलीला देखकर हम सब साथियों ने रामलीला करने का इरादा किया। नकली चेहरे लाये, कपड़े भी इधर उधर से जुटाये और धनुष बाण भी बनाये।

प्रकाश जी बहुत अच्छा, चाँदी के चमकीले गोटे से सजी हुई मजबूत खपच्ची का, धनुष और पतली पतली बेंत का बाण लेकर आये, और बोले देख कितने बढ़िया धनुषबाण है। मैं बोला निशाना मारना तो आता ही नहीं धनुषवाण बढ़िया है तो क्या।

प्रकाश बोले मैं बढ़िया निशाना लगा लेता हूँ तो मैंने कहा मेरे माथे का निशाना लगा तब जानूं। प्रकाश जी ने बेंत का बाण धनुष को डोरी पर चढ़ाया और कसके मेरी ओर तीर फेंका। माथे के बिल्कुल बीचोंबीच लगा। सूजन बड़े तिलक की तरह ऊपर उभर आयी। ग़नीमत यह कि तीर नोकदार नहीं था और आँख में नहीं लगा। प्रकाश बड़े घबराये और सोचने लगे कि अब मेरी खूब पिटाई होगी।

मुझे इनकी निशाने बाजी पर ईर्ष्या हुई और बोला यार तू तो बहुत अच्छा निशाना लगा लेता है। जाना मत ! अभी रामलीला की प्रेक्टिस होगी।

थोड़ी देर में प्रकाश राम का मुकुट व पोषाक आदि पहन कर बड़े उमंग के साथ खड़े हो गये। लक्ष्मण गिरजाशंकर बन गया था। हनुमान मैं बन ही गया था। इतने ही में प्रकाश जी की माता आई और झुंझलाती हुई बोलीं—'आ नाश पीटे तोहे रामलीला बताऊं' यूं कह कर मारने को हाथ उठाया ही था इतने में भाभी जी (मेरी माता जी) आ गईं और हाथ पकड़ लिया और कहा ये तुम्हारा दुर्गा तो राम बना हुआ है, बिना बात क्यों मार रही हो। इनकी माता बोलीं - होगा राम तुम्हारे लिये। देखो बहिन नई साड़ी से नया चांदी का गोटा उधेड़ कर ले आया है। जो गोटा धनुष में लगा हुआ था उसे उसी वक्त निकाल दिया। गोटा धनुष से क्या निकला प्रकाश जी का तो कलेजा ही निकल गया। झुंझलाकर तुरन्त राम की पोषाक उतार दी। सारी रामलीला वाल मण्डली भंग हो गई।

मेरे बड़े भाई श्री नारायण जी मुझे नारु पहलवान के अखाड़े में कुश्ती, व्यायाम के लिए भेजा करते थे। एक दिन प्रकाश जी भी लंगोट लेकर मेरे साथ अखाड़े में पहुंच गये। अखाड़े में उस्ताद मेरी गर्दन पर हाथों से जोरों के गद्दे लगा रहे थे। कभी मेरी खोपड़ी अखाड़े की मिट्टी में तो कभी मेरा मुंह। प्रकाश जी मेरा यह हुलिया देख अपनी बगल में लंगोट दबाकर चुपचाप खिसक गये।

अखाड़े से मैं इनके घर पर पहुंचा तो देखा कि आप अकेले ही दण्ड-बैठक लगा रहे थे। अखाड़े से चले आने का कारण पूछा तो बताया कि हरजी तेरी तरह यदि उस्ताद ने मेरी गर्दन पर गद्दे लगाये तो गले के साथ मेरा स्वर भी सख्त हो जायेगा और गाने का आनन्द चला जायेगा।

प्रकाश जी को बचपन से ही गाने का शौक था। इनके पिताजी पं. बिहारीलाल जी गायक और कवि थे। वे तथा मेरे बड़े भाई श्री नारायण जी, बा. मुकुन्द मुरारीलाल जी आदि रामायण मण्डल सनातन धर्मसभा में जाया करते थे। भाई तबला बजाने में निपुण थे (भैये) मुकुन्द मुरारीलाल जी हारमोनियम अच्छा बजा लेते थे। पिताजी के साथ प्रकाश जी भी वहां जाया करते थे।

मेरे भाई की बैठक में प्रायः गाना बजाना होता ही रहता था। प्रकाश जी के साथ मेरी पहलवानी के साथ साथ संगीत में भी रुचि बढ़ी। मैं तबला बजाता और ये हारमोनियम बजा कर गाते थे।

गुणी जनों की संगति करते-करते हम दोनों की संगीत में और अधिक रुचि बढ़ने लगी। हम श्री प्रेम बल्लभ जोशी

हैड मास्टर गवर्नमेंट हाई स्कूल अजमेर तथा बाबू राधेलाल जी कपूर एम. ए., के पास संगीत सीखने को जाने लगे। प्रकाश जी के एक शिष्य श्री.ओंकार लाल जी कभी आर्य भजनोपदेशक थे, जो चतुर्मुखी गायक हैं। उन्हें भी श्री बा. राधेलाल जी के पास संगीत शिक्षणार्थ श्री प्रकाश जी ले गये थे। उपरोक्त दोनों महानुभाव भारत के प्रसिद्ध संगीतमर्मज्ञों में माने जाते थे। मेरे एक प्रिय स्नेही मित्र बा. गोपीकृष्ण टण्डन, जो कि प्रकाश जी के भी अनन्य प्रेमी थे, दुःख सुख के साथी थे। बड़ा ही मधुर उनका कण्ठ था वे ठुमरी अंग में अच्छा गाते थे। आर्य जगत के प्रसिद्ध व्याख्यानदाता एवं उर्दू कवि कुंवर सुखलालजी ने भी प्रकाश जी के यहां उनका गाना सुना था वे बड़े प्रसन्न हुए थे।

ऐसा होनहार सुन्दर युवक संसार से शीघ्र ही चल बसा। जो प्रकाश जी की बीमारी से व्याकुल होकर उनके यहां बीसों चक्कर लगाता था।

उन्हीं के सहयोग से हमने अजमेर में एक उच्च स्तर का अखिल भारतवर्षीय संगीत सम्मेलन भी किया था। अजमेर म्यूजिक कालेज की स्थापना में भी मेरा तथा उनका विशेष सहयोग रहा था। वे तथा प्रकाशचन्द्र जी व ओंकारलाल जी बाबू राधेलाल जी कपूर से श्री गणपत राव भैया ग्वालियर के प्रसिद्ध संगीतकार हारमोनियम वादक की शैली का हारमोनियम वादन प्रायः ठुमरी अंग में सीखा करते थे।

मेरे यहां संगीत सूर्य उस्ताद फैयाज़ खाँ उस्ताद, बड़े गुलाम अली, श्री पं. मणीराम जी, उनके पिता चाचा प्रसिद्ध गायक श्री मोती जी ज्योति जी श्री गुरुवर पं. महादेव प्रसाद जी, पं. भीष्मदेव जी, पं. नारायण राव व्यास, श्री विनायक राव पटवर्धन आदि गायक पधारते रहते थे। मैं प्रायः तबले की संगति करता था और गोपीकृष्ण टण्डन व कभी कभी प्रकाश जी भी हारमोनियम की संगति करते थे। हमसे ये संगीत गुरुजन बड़े प्रसन्न रहते थे।

भाई प्रकाश जी का मेरा साथ केवल संगीत तक ही सीमित न था। अपितु उनके साथ आर्य समाज के कार्यों में भी प्रायः भाग लेता था। मेरा पहलवानी अखाड़ा था और मेरे शिष्य उत्साह के साथ आर्य समाज के उत्सव में इनके साथ भाग लेते थे।

एक बार अजमेर के वार्षिकोत्सव के पश्चात् विधर्मी गुण्डों ने संगठित होकर उत्सव में आने वाले आर्य नरनारियों पर आक्रमण करने का इरादा किया। श्रोताओं की रक्षा में जाने वाले लगभग बीस आर्य वीर हैडक्लर्क बाबू दीवान चन्द्र, कर्मवीर बाबू जियालाल जी, श्री जगनप्रसाद आदि के साथ मैं भी गिरफ्तार हुआ। सजायें भी हुई फिर अपील हुई और साहिबज़ादे जज महोदय के फैसले में सब निर्दोष प्रमाणित होकर मुक्त हो गये।

प्रकाशजी कभी देशभक्त कुंवर चाँदकरण जी शारदा तो कभी कर्मवीर पं० जियालाल जी द्वारा कोई न कोई सामाजिक कार्य मेरे सुपुर्द करा देते थे। मेरी वर्कशॉप की उत्तरदायित्व पूर्ण ड्यूटी होने पर भी मैं अन्य किसी को नियुक्त कराके यथाशक्ति कार्य को पूरा करता था।

बचपन से लेकर अबतक मैंने प्रकाश जी के हंसमुख स्वभाव में कोई कमी नहीं देखी। अनेक आपत्तियाँ आने पर भी विचलित होते नहीं देखा।

कभी इनका स्वास्थ्य देखे ही बनता था। आज इनका रोगग्रस्त शरीर देखते ही आंखे भर जाती हैं।

उसी समय ये मुझे गले से लगाकर हंसते हुए कहते —देखो हरजी मैं कहाँ बीमार हूँ मेरी लेखनी बराबर चल रही है। ये देखो मेरी नई रचना—

बस और क्या चाहिये।

किसी रिसाले में मजमूं नया निकलता रहे
किसी के वास्ते सीने में प्यार पलता रहे।
नियामतें ये गनीमत है जिन्दगी के लिये
दिमाग चलता रहे और दिल मचलता रहे॥

यूं कह कर मुझे तसल्ली देने की चेष्टा करते हैं।

□□

कभी प्रकाशजी के साहित्य पर शोधग्रन्थ लिखे जायेंगे !

प्रकाशवीर शास्त्री

कठिनाई से मेरी आयु उस समय नौ या दस साल की रही होगी। जब मैं ज्वालापुर (हरिद्वार) गुरुकुल का छात्र था। उसी समय मस्ती से भक्ति दर्पण में लिखा यह गीत गाया करते थे —

'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने'

कई बार मन में रह-रह कर यह इच्छा होती थी – इस गीत के रचयिता के दर्शन भी कभी हो जाते तो अच्छा था। गुरुकुल के उत्सव में सौभाग्य से कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी एक बार पधारे। जब यह पता लगा कि यह ही उस गीत के रचयिता हैं तो पहले, बार बार उन्हें देखने को जी चाहा। उन्हें देखकर सहसा विश्वास नहीं होता था – यह अलमस्त आदमी भला ऐसा गीत कैसे लिख सकता है ? पर जब उत्सव में कई बार उनके काव्य और संगीत रस का पान किया तब तो उनमें श्रद्धा और विश्वास दोनों जग उठे। यह तो कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो सकती थी – उनके साथ सार्वजनिक जीवन में कार्य करने का भी सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा। पर विधि का विधान विचित्र है। प्रकाश जी के साथ वर्षों तक आर्य समाज के मंच से सेवा करने का भी सौभाग्य मिला और उन्हीं दिनों उनके निश्छल व्यक्तित्व का निकट से अध्ययन करने का अवसर भी मिला।

आर्य समाज को स्वर्गीय श्री नाथूराम शंकर और कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी ने जो साहित्य दिया है, वह अब इतिहास का विषय बन गया है। जीवन भर दोनों एक ही मार्ग पर निष्ठा के साथ चलते रहे। कभी-कभी तो मन यह भी कहता है – कहीं यदि यह दोनों आर्य समाज के अतिरिक्त किन्हीं दूसरे मंचों पर रहे होते तो न जाने कितने लोग इन्हें हाथों हाथ उठाये फिरते। आर्य समाज के सिद्धांत जितने कठोर हैं उनका प्रचार भी वैसा ही तलवार की धार पर चलना है। प्रचारक को स्वयं अपना जीवन पहले वैसा बनाना पड़ता है। विरले ही उस रास्ते पर चलना पसन्द करते हैं। स्वस्थ रहने पर तो प्रकाश जी की धूम चारों ओर थी ही। कोई सफल उत्सव वह नहीं माना जाता था जहां वह न पहुंचें। अस्वस्थ होने के बाद भी अपनी रचनाओं द्वारा वह बराबर आर्य समाज और देश की सेवा करते रहे। पर दुर्भाग्य यह ही रहा-इनके साहित्य को जो सम्मान मिलना चाहिए था वह मिल नहीं सका।

कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी ने जहाँ देश, जाति और समाज के लिए अपनी कलम चलाई वहाँ कभी-कभी गूढ़ साहित्यिक रचना भी उन्होंने की। परन्तु सार्वजनिक मंच से रचनाओं को समझने वाले क्योंकि कम थे, इसीलिए उन्हें सरल भाषा में ही अपने साहित्य का सृजन अधिक करना पड़ा। उनकी कुछ कवितायें जो अब से बीसों साल पहले लिखी गई थीं आज की स्थिति में भी उतना ही महत्व रखती हैं। प्रकाश जी के लिखे गीतों से आज भी प्रतीत होता है मानो कल की घटनाओं को ही लक्ष्य में रख कर वह गीत लिखे गये हैं। उनकी रचनाओं का समय के साथ बराबर मूल्य बढ़ता चला जा रहा है। कभी समय आयेगा जब कोई प्रकाश कवि और उनका साहित्य विषय पर शोध ग्रन्थ लिख कर किसी विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करेगा। भारत का ही नहीं दुनिया का ही यह नियम है—व्यक्ति की कीमत उसके जीवन में उतनी नहीं आंकी जाती जितनी उसके जाने के बाद आंकी जाती है। प्रकाश जी की भी यह ही स्थिति रही।

अपने स्वभाव में मिठास और विनोद प्रियता के लिए भी वह प्रारंभ से ही प्रसिद्ध रहे हैं। एक बार विन्ध्य प्रदेश में (जो अब मध्य प्रदेश का भाग बन गया है) खजुराहो के पास महाराजपुर में रात्रि को आर्य समाज का उत्सव समाप्त करने के बाद में, प्रकाशचन्द्र जी तथा आचार्य वाचस्पति जी आदि कुछ महानुभाव रेल पकड़ने के लिए हरपालपुर से कोई अन्य सवारी न होने से ट्रक में बैठ कर चल दिये। हरपालपुर से झांसी को उन दिनों में एक-दो ही गाड़ी आती थीं। वक्त की बात रास्ते में वह ट्रक भी खराब हो गया। रात्रि का एक या डेढ़ उस समय बजा होगा। नींद के झोंके अपना अलग प्रभाव जमाना चाहते थे। और उधर प्रातः काल हरपालपुर पहुंच कर गाड़ी पकड़ने की चिन्ता थी। ट्रक खराब हो जाने से सब के चेहरे उतर गये। रात्रि जागरण भी हुआ और जिस उद्देश्य से चले थे वह भी पूरा नहीं हुआ। परन्तु उस उदासी और निद्रा के वातावरण को पूरे रास्ते भर प्रकाश जी ने अपनी रचनायें सुना-सुना सजीव बनाये रखा। मंच पर प्रायः कम ही उनकी यह रचनायें सुनी थीं। आज भी इनको वह विनोदी कविताएं कभी-कभी जब स्मरण हो आती हैं तो एकान्त में भी हंसने को जी चाहता है। एक गीत की पहली पंक्ति तो आज भी मुझे याद है—

मो पै सब धन्धो करवाय लीजे
चलुंगी तोरे संग।

इसी यात्रा में एक तीन पाव के चूरमा की भी कथा उन्होंने सुनाई थी। पाकिस्तान बनने की खुशी में आपे से बाहर हो रहे किसी मुस्लिम लीगी को ब्रज के घोड़ा तांगा हांकने वाले ने गुस्से में भरकर वह जवाब दिया था। प्रकाशचन्द्र जी का निजी रूप सार्वजनिक रूप से और भी कहीं मधुर और प्रिय रहा है। उनका यह सौभाग्य था जो सहधर्मिणी पुष्पा जी ने उनके सार्वजनिक और निजी जीवन को और चार चांद लगाये। उनकी एकमात्र पुत्री स्नेह भी अपने नाम के अनुरूप स्नेह की मूर्ति रही। जब वह छोटी थी और प्रकाश जी की कवितायें गाती थी तो समां बांध देती थी। अब तो स्नेह जयपुर के आकाशवाणी केन्द्र की हिन्दी और राजस्थानी गीतों की गिनी-चुनी गायिकाओं में से है। पर समय के प्रवाह ने तीनों को कठोर परीक्षण के मार्ग से चलने के लिए भी विवश कर दिया। लेकिन इस पर भी जिस साहस और धैर्य का परिचय उन्होंने अपनी इन कठिनाई की घड़ियों में दिया वह सराहनीय है। परमात्मा इन सब को दीर्घायु और स्वास्थ्य प्रदान करें। जिससे वह छोटा पर आदर्श परिवार देश व समाज की बराबर सेवा करता रहे।

यहां मैं कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी के सुयोग्य शिष्य भाई पन्नालाल पीयूष को भी स्मरण करना चाहता हूँ। उन्होंने एक आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य का परिचय दे कर अपनी जिस निष्ठा और भक्ति का प्रदर्शन किया है वैसा आज के समाज में बिरला ही कोई शिष्य मिलेगा। पन्ना और लाल के गुण जहां उनमें उनके माता-पिता की देन हैं वहां पीयूष रस उनके सुयोग्य गुरु प्रकाश जी का ही प्रसाद है। आशा है वह भविष्य में भी इसी तरह उनका आशीर्वाद ले कर इस प्रसाद का बराबर चारों ओर वितरण करते रहेंगे।

मैं एक बार फिर अन्त में अपनी हार्दिक श्रद्धा के साथ इस अनोखे कवि, समाजसेवी और दूरद्रष्टा को नमन करता हूँ।

□□

प्रकाश की वाणी

देव नारायण भारद्वाज

कवि की रचना, रवि-रचना है, वह कर्म-केतु-कल्याणी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(१)

शंकर-सूर्य, चन्द्र-हरिशंकर, कविवर प्रकाश ध्रुवतारे हैं।
अन्य आर्य कवि दीपक सम, हर आर्य हृदय के प्यारे हैं।
शंकर स्वर्ग गए हरिशंकर, अब भू पर दिनकर प्रकाश हैं।
रोज रोज नव गीत किरण से, कवि प्रकाश करते प्रकाश हैं।
कविवर प्रकाश के भजनों से, ऋषि की शोभा सम्मानी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(२)

शंकर साहित्य सुचेता थे, हरिशंकर हिन्दी के नेता।
पाली प्रकाश ने परम्परा, जिसके अब तक वह हैं खेता।
श्रुति-राष्ट्र भक्ति प्रभु दर्शन की, प्रेरणा प्रबल जो कवि देता।
होता जो राष्ट्र रचयिता है, वह नेता, बाकी अभिनेता।
है राष्ट्र हेतु कविता प्रकाश, उर-अन्तर से उत्थानी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(३)

उदयाचल है जिला अलीगढ़, जहाँ उदित कवि सूर्य हुए हैं।
पूर्ण देश या आर्य विश्व में, बढ़कर प्रतिभा पूर्य हुए हैं।
भारत-माँ-हिन्दी माता की, गोदी सम्पन्न बनाई है।
साहित्य सुधा को सरसाया, आभा उत्पन्न कराई है।
कवि कमल-कली सी कलम-फली, दी गन्ध गुलाब सुहानी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(४)

अजमेर नगर इतिहास धन्य, है आर्य जगत् का तीर्थ निराला।
यहीं ऋषी थे मोक्ष-सिधारे, सूनी कर वैदिक श्रुति शाला।
ऋषि का समाज यदि जीवित है, जीवित तो ऋषि श्रुतिशाला है।
यज्ञमेरु अजमेर धन्य, जिसको प्रकाश ने पाला है।
अजमेर नगर क्या भारत भर, पाता प्रकाश कल्याणी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(५)

ऋषि दयानन्द ने वेदों का, उत्तम परिपूर्ण विचार किया है।
वैदिक धर्म वेद आधारित, हमें ज्ञान-विज्ञान दिया है।
ऋषि के सब सिद्धान्तों का, कवि सही मूल्य पहिचाना है।
गीतों में गाकर प्रकाश ने, छेड़ा नव नित्य तराना है।
यज्ञ अग्नि ज्यों हव्य बढ़ाती, त्यों कव्य काव्य कल्याणी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है।

(६)

दयानन्द का ध्येय बढ़ाने, प्रभु ने पुष्प प्रकाशा है।
मधुर प्रचारक मुखर सुधारक, गायन प्रकाश की भाषा है।
आर्य जगत के गायक सब, नित ज्योति आपकी पाते हैं।
सुकवि रश्मि सी शुभ रचनायें, हो हर्षित सब गाते हैं।
कविवर प्रकाश की रचनायें, हर गायक को वरदानी हैं।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

(७)

कविवर प्रकाश प्रियवर प्रकाश, पल पल प्रकाश का वन्दन है।
घिस घिस देह नेह वरसाया, जैसे सुगन्धमय चन्दन है।
सहन किया कटु कष्ट देह का, गीतों में बदला क्रन्दन है।
है गौरव गर्वित आर्य जगत, करके प्रकाश अभिनन्दन है।
है गीत-गगन से हृदय मगन, सन्मार्ग प्रेरणा वाणी है।
श्रोता तुम इससे शिक्षा लो, यह कवि प्रकाश की वाणी है॥

□□

फ़नकार की कीमत

माइल बदायूनी

परकाश ने जो काम ज़माने में किये हैं।
उनसे ही तो रोशन ये मोहब्बत के दिये हैं॥
मेहरुम थे जो तर्ज़े मोहब्बत की सदा से।
वो चाक गिरेबान इन्हीं ने तो सिये हैं॥
तनहाइयों का ज़हर था जिनमें घुला हुआ।
परकाश ने रहमत के वो साग़र भी पिये हैं॥
मिलती नहीं ज़माने में उनकी हमें मिसाल।
नग़मात वो परकाश ने दुनियाँ को दिये हैं॥
'माइल' यही फ़नकार की कीमत है जहाँ में।
उनका है ज़माना वो ज़माने के लिए हैं॥

□□

एक संस्मरण

श्रीमती सुशीला देवी

श्री प्रकाशचंद्र जी आर्य जगत के उदीयमान कवि हैं। बड़े ही निष्ठावान, उत्साही एवं उद्योगी। आर्यसमाज पर आपकी अटूट आस्था है। इसीलिए आपने अपना सम्पूर्ण जीवन इसी पर अर्पण कर दिया। प्रभु ने आपकी आस्था की परीक्षा लेनी चाही। इसलिए आर्य समाज की सक्रिय सेवाओं से आपको अशक्त कर दिया। फिर भी आप निराश नहीं हुए और पड़े-पड़े ही अपनी कवित्व शक्ति का सहारा लेकर इस परीक्षा में पार उतरते चले जा रहे हैं। आपके अनेक कविता-संग्रह जिनमें कवित्त, भजन, गजल इत्यादि सभी हैं, प्रकाशित हो चुके हैं जो अति ही भावोत्तेजक, उत्साह-वर्धक एवं हृदय-स्पर्शी हैं। पर सबसे कड़ी बात जो मैंने आपमें पायी वह यह है कि आपकी गायन शक्ति बड़ी मनमोहक है। आप अपनी कविताओं को जिस प्रकार गाते थे वह जिसने सुना बिना आकर्षित हुए, बिना सराहना किये न रह सका। पंडाल में सन्नाटा छा जाता था। गजब का समा बाँध देते थे और जनता आप में खो जाती थी।

आप कवि के साथ-साथ एक कुशल गायक भी हैं। यह बहुत बड़ी बात है। एक साथ गायन एवं कवित्व दोनों प्रतिभाओं का एक ही व्यक्ति में समावेश होना दुर्लभ होता है। कवि प्रकाशचंद्रजी गायक, वादक, कवि सभी कुछ हैं। यही आपकी आर्य सामाजिक क्षेत्र में सफलता की, प्रसिद्धि की कुंजी है। मैंने कई भजनोपदेशकों का गायन, भजनोपदेश सुना। उनमें भी अनेक उच्चकोटि के थे और हैं। परन्तु श्री प्रकाशचंद्रजी जैसा उच्चकोटि का गायक मैंने आर्यसमाज के प्लेटफार्म से अभी तक न देखा न सुना। बात यह है आप संगीतज्ञ भी तो हैं। और हैं संगीत विद्या में पारंगत। इसीलिए अपने गीतों को ऐसी ध्वनों में सेट कर लेते थे जो साधारण जनता के लिए ही नहीं अपितु जो संगीत का थोड़ा भी ज्ञान रखते हैं उनके लिए हृदयग्राही एवं ऊंचने वाला हो जाता था।

श्री प्रकाशचंद्रजी से मेरा प्रथम परिचय तभी हुआ जब मैं जालंधर कन्या महा—

विद्यालय पंजाब से १९३८ में स्नातिका की परीक्षा पास करके आयी थीं। हम लोगों को एक साथ मोकामा, बाढ़, बख्त्यारपुर, खुसरूपुर, विहार, पटना इत्यादि स्थानों पर काम करने का अवसर मिला। मैं प्रकाशचंद्र जी की गायन पद्धति से प्रभावित थी और प्रकाशचंद्र जी मेरे मीठे, सुरीले कंठ से। मुझे भी संगीत से अत्यधिक प्रेम था और मैं भी गायन एवं भाषण दोनों प्रकारों से आर्यसमाज को, (जब-जब मुझे आमंत्रित किया जाता था) सेवा किया करती थी। प्रकाशचंद्र जी मेरी काफी प्रशंसा किया करते थे। मेरी आपसे और आगे शिक्षा लेने की काफी इच्छा होती थी पर संभव कैसे हो सकता था। हाँ, यदि आप बिहार ही में—अपनी ससुराल में रहते तो भी कुछ संभव होता पर आप तो केवल सामाजिक कार्य से ही, अर्थात् प्रचारार्थ ही यहाँ आते थे। स्थायी निवास स्थल तो अजमेर ही था। आपकी पत्नी श्रीमती पुष्पा जी एवं आपकी धर्ममाता संध्यादेवी जी से भी परिचय हो ही गया था। आर्य परिवार भी एक क्या परिवार होता है! जो सौहार्द्र मिलने के पश्चात् एक बार पैदा हो जाता है फिर भुलाये नहीं भूलता।

□□

आर्य विद्वान का अभिनन्दन

देवदत्त बाली

मैं एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपेक्षित विषय की ओर देश की जनता का सामान्यतः और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रेमियों का विशेषतः ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आर्य समाज के विद्वान मनीषी विख्यात सुकवि, संगीतज्ञ तथा गायक पं. प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न का उनकी ७०वीं वर्षगांठ पर अभिनन्दन करने का निश्चय किया है। पंडितजी गत कई वर्ष से गठिया रोग से पीड़ित हैं और इस रोग ने उनके शरीर को जर्जरित और अशक्त बना दिया है। तथापि वे श्रेष्ठ साहित्य का सृजन कर भाषा और साहित्य की सेवा करते जा रहे हैं। आपकी काव्य-कृतियां हिन्दी के वैदिक साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

खेद का विषय है कि इतने दीर्घकाल से यह महान विचारक और साहित्यकार शारीरिक कष्ट उठा रहा है परन्तु अभी तक केन्द्रीय सरकार ने या राजस्थान सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा अन्य हिन्दी-सेवी संस्थाओं का भी इधर ध्यान नहीं गया। हिन्दी प्रेमियों तथा हिन्दी के साहित्यकारों को, जिनका भारत सरकार पर प्रभाव है, चाहिए था कि पंडितजी को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित कराते और सरकार को बाध्य करते कि उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। समाज के लिए पंडितजी का महत्व इसलिए भी अधिक है कि उनका साहित्य मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर प्रेरित करने वाला है। मैं समझता हूँ कि अब भी सरकार को अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। जनता तो यथाशक्ति उस महान तपस्वी का अभिनन्दन करेगी ही परन्तु सरकार पर कर्तव्य की अवहेलना का कलंक लग जाएगा।

□□

आर्य जगत के चारण योद्धा कविरत्न पं० प्रकाश दान जी

डॉ. मानकरण शारदा

विगत वर्षों से अभिनन्दनों की ऐसी झड़ी लग गई है कि श्रावण की लूमों झूमों का आनन्द देती चली आ रही है। भगवान करे यह आकाशी नवनीर आर्य जगत के क्षेत्र में नवांकुर प्रस्फुटित करे और दयानन्द का काम पूरा करे यह तो है आशावादी दृष्टिकोण।

दूसरा है मोहर्रमी — वह यह है कि हमारी अस्त होती हुई परन्तु लम्बी छाया फेंकने वाली पीढ़ो को यह आभास हो रहा है कि वेद जैसे अनादि वृद्ध की ओर ही लोगों की उपेक्षा है तो फिर हम जैसे वृद्ध लेखकों की मरने पर क्या गति होगी इसका भगवान ही वेली है। असंख्य अभिनन्दन मारवाड़ की गंवारू भाषा में जीवत वाखा हो जावे तो क्या बुराई है।

मैं न तीन में न तेरह में, न राजनीतिक प्रपञ्चों में, और न मंचों के माचिसों में! अतएव स्वाभाविकतया इन समारोहों का समदर्शी बना रहा। भाई पीयूष जी आये और अपने सितार के तुन तुन से मेरे सोते तारों को कम्पित करने लगे, मैंने कम्पन-लेखनी कह कर अलग रहना चाहा किन्तु उनकी तुन तुन ने मेरी लेखनी को कुछ लिखने के लिए बाध्य कर दिया। अनेक चेयरमैनों की सदारत में और अपनी सदारत में लोगों को अपनी वाणी, कविता और संगीत से मुग्ध करते हुए मैंने प्रकाश दान जी को देखा है। उनके उभरे हुए जोश में लोगों को उछल-उछल कर आकाशी तारे तोड़ते देखा है। वहाँ आज मैं उनको सड़कों के वाकिंग चेयरमैन के रूप में देखता हूँ।

कविता द्वारा :—

'देखने में छोटे लगे घाव करे गंभीर' वाले तीर चलाते भी देखता रहा हूँ। प्रकाश जी को देखते ही मुझको वह दिन याद आ जाता है जब श्रद्धानन्द जी के सन् २५ में (शहीद होने के समाचार पाते ही एक विशाल जुलूस अजमेर नगर में निकला था) श्री प्रकाश जी ने तत्काल ही एक चमत्कारिक रचना रची कि जिसकी गूंज ने उस दिन सारे नगर को ही नहीं गुंजा दिया बल्कि वह गूंज आज भी आर्य समाजों के उत्सवों में जान

डालती रही हैं। उसकी टेर यह है :—

दृढ़व्रती आर्य संन्यासी का यह खून अजब रंग लायेगा।
भारत के कोने-कोने में यह भीषण क्रान्ति मचायेगा॥

काल की गति भजन तो रंग जमाता रहा है क्रान्ति चमकाता रहा है परन्तु आशु कविजी बीमारी के शनिश्चर जी के शिकार हो गये और शनिश्चर जी की कथा में कथित हाथ पांव से मजबूर वैसे मजबूत चौरंगिया होकर पड़े हैं। परन्तु फिर भी महर्षि दयानन्द जी की ख्याति लिखने में लगे हुए हैं मानो बिमारी को चुनौती देकर गा रहे हैं।

हम तो शहीद होंगे तुम भी नहीं बचोगी
हम अमर होंगे दुनियां तुमको बुरा कहेगी
कट कट के सिर गिरेगा पर धड़ सतर रहेगा
धड़ से ही फिर लड़ेंगे, नहीं हम कलम तजेंगे
संग्राम भूमि में हम यूं जूझ के मरेंगे
तब जन हमें जगत के जुझार जी कहेंगे।
रात जगेगी नारी गीत अपने ही गवेंगे
उट्ठेगी वे तभी तब कुकुटजी बांग देंगे॥

आखिर प्रकाश दानजी "वेदों का डंका बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" की टेर फेंक कर दयानन्द का धौंसा बजाने वाले चारण योद्धा रहे हैं। जिसने दयानन्द के वीर सैनिकों को दीवाना कर दिया था और उसने मथुरा जन्म-शताब्दी पर आकाश पाताल एक कर दिया था।

□□

सच्चा भक्त

विद्याशंकर सिद्धान्तशास्त्री

प्रकाशचन्द्र कविरत्न एक अजंड़ कवि, भजन सम्राट, और महर्षि दयानंद महाराजा का ऋण चुकाने में अपनी जान की बाज़ी लगाने वाला एक आर्य वीर! अपनी ऋण तथा असहाय स्थिति में अपनी लेखनी को तलवार के रूप में चमकाने वाला एक धुरंधर योद्धा और अपने शरीर की परवाह न कर परमात्मा की कृपा से मिला हुवा ज्ञान और बुद्धि की शक्ति से तीन लोक में परिभ्रमण करने वाला था अपने ज्ञान चक्षु से ईश्वर की लीला देखकर कविता के रूप में जन साधारण को प्रभु का संदेश देने वाला प्रभु का परम भक्त।

शास्त्र में लिखा है कि ईश्वर न्यायकारी और दयालु है, तो श्री प्रकाशचंद्र कविरत्न के साथ उसने न्याय किया है या अन्याय? क्या, वह परमपिता परमात्मा अपने प्यारे भक्तों को दुःखी देखना चाहता है! नहीं! कदापि नहीं। हम अल्प बुद्धि वाले लोग उस दयाधन प्रभु के इन्साफ़ को समझने में असमर्थ हैं। तो फिर भगवान चाहते क्या हैं?

इस बात को मैंने बहुत ही गहराई से सोचा! और जब मेरे समझ में कुछ भी न आया, तब मैंने अपनी दोनों आखें बंद करके उस सर्वव्यापी परमात्मा की शरण ली! उत्तर मिल गया! और मेरे मुँह से निकला है दयानिधि, आप महान दयालु हैं!

यह है वह उत्तर :—

रे विद्याशंकर, तू मेरे परम भक्त को देखकर मेरी असीम कृपा की कल्पना भी नहीं कर सकता। क्या तू यह नहीं जानता कि जिसपर मेरी अब कृपा होती है, सर्व प्रथम मैं उसकी बुद्धि को ही नष्ट कर देता हूँ, और विनाश के मार्ग पर छोड़ देता हूँ। जिसकी बुद्धि में कोई अंतर नहीं पड़ता वही मेरा सच्चा भक्त है। मेरे प्यारे भक्त, अपने नाशवान शरीर की परवाह नहीं करते। प्रेम के मार्ग में सत्य प्रकाश है, और सत्य के मार्ग में प्रेम कसौटी है।

जिंदगी उनकी है जो रोते नहीं। और संकटों में होश जो खोते नहीं।
गिर पड़ें, मिट जायें मटियामेट हो। शूल धरती पर कभी बोते नहीं॥ □□

शुभकामना

जनमेजयः विद्यालंकारः

सहायो दीनानां मधुरतर वाक् प्रीति बहुलः ।
स्वयं हीनः पापैरुपदिशति धर्मं प्रतिदिनम् ।।
सुखे वा दुःखे वा सहचरवरो यश्च सुहृदाम् ।
प्रकाशाख्यः सोऽयं कविवर वरेण्यो विजयते ।।१।।
रसाढ्यं यत् काव्यं बहुतर मनेनास्ति लिखितम् ।
ददात्यंवेतृभ्यः परमसुभगां तत् खलु मुदम् ।।
यशो वा वित्तं वा न खलु चकमेऽयं कविवरः ।
समायातं किन्तु द्वयमपि तदस्याङ्घ्रियुगले ।।२।।

कविः प्रकाशचन्द्रोऽयं,
सज्जनः प्रियवाक् सुहृत् ।
जीव्यादयं वर्ष शतं,
भूयश्च शरदः शतात् ।।३।।

□□

प्रकाश--महिमा

भगवती प्रसाद 'अभय'

अज्ञान और अविद्या की निशा अंधियारी में
चन्द्र के समान किया ज्ञान का प्रकाश है ।
साहित्यिक काव्य मय मधुर संगीत द्वारा
मानवों के हृदयों में भर रहा उल्लास है ।।
पाखंड पंथ खंडन की सत्य धर्म मंडन की
बजे वेद वीणा सदा यही अभिलाष है ।
ऋषि दयानन्द के पथ का पुजारी बन
जग में "अभय" आया कविवर प्रकाश है ।।१।।

कंचन सा तन सारा व्याधियों से क्षीण हुआ
दे रहा है दैव जिन्हें रात दिन त्रास है ।
फिर भी यह प्रभु भक्त धर्म का दीवाना वीर
हृदय में प्रभु का लिये दृढ़ विश्वास है ।।
रोग शैया पै भी मन में शिव संकल्प लिये
साहित्य सुमन की फैला रहा सुवास है ।
कर्म क्षेत्र का सेनानी कर्मवीर धर्मवीर
जग में 'अभय' आया कविवर प्रकाश है ।।२।।

□□

प्रकाश जी की रचनाएँ

ओमकुमार आर्य

प्रकाश कवि की रचनाओं का आर्य समाज के गीत – साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओं की गेयता तथा लय–माधुर्य अन्यत्र बहुत कम मिलते हैं। कई दूसरे तथा-कथित कवियों की तरह आप कोरे तुकबन्द कवि नहीं हैं वरन आप में भाषा, भाव, सिद्धांत आदि का त्रिवेणी संगम मिलता है। इस दृष्टि से आपकी गणना स्वनामधन्य स्व० दादा बस्तीराम और कुंवर सुखलाल के साथ की जा सकती है। पाठक आपकी रचनाओं में निम्नलिखित विशेषताएँ सहज ही पा सकते हैं।

आपके गीतों में पाया जाने वाला आध्यात्मिकता का पुट बहुत ही उत्कृष्ट, सुलझा हुआ तथा वेद सम्मत है। ईश्वर आपको कण–कण में प्रतीत होता है। आपकी स्पष्ट मान्यता है कि "अणु–अणु में है वही व्यापक प्रकाश प्रिय" किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण विरोधाभास तो यह है कि आनन्द–सागर में नित्य निवास के उपरान्त भी मानव दुःखी है। इसलिए आपके कण्ठ से फूट पड़ा "अचरज ये जल में रहकर भी मछली को प्यास है"।

कितने ही वेदमंत्रों का युक्तियुक्त, रसपूर्ण भावानुवाद आपके गीतों में यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ

अगम, अगोचर, अकाय, अविनाशी ईश
दूर है अज्ञानियों से ज्ञानियों के पास है

में स पर्यंगाच्छुक्रमकाय..........तथा तद्दूरे तद्वन्तिके..............की झलक मिलती है। "बन्धन वा मोक्ष का कारण नर आप है" में "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः" का भाव देखा जा सकता है।

आपके विचार में उच्च मानवता की प्रस्थापना चरित्र तथा नैतिकता के उदात्त धरातल पर होती है। कर्त्तव्यविमुखता चारित्रिक ह्रास तथा नैतिक पतन ही आज की बुराइयों की जड़ है। आपके शब्दों में

सोये मल्लाह तो नैया को पार कौन करे
जब सुधारक का पतन हो तो सुधार कौन करे।

नाच रंग में हों मस्त देश के युवक.... .... प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति भी आपकी आँखें जागरूक हैं। प्रकृति चित्रण आप में बहुत ही सुन्दर, मनोहारी अलंकार पूर्ण मिलता है। "विविध रंगों के फूल लगते फबीले कैसे, अलबेली प्रकृति नटी की हरी साड़ी के" पंक्तियों में प्रकृति देवी का मानवीकृत रूप लुभावना है। "फूल फबीले, अलबेली, आदि शब्दों का अनुप्रास भी दर्शनीय है। इसी कविता में आगे चलकर आपकी युक्तियों की काव्यात्मकता और काव्य की युक्तियुक्तता देखी जा सकती है। दर्शन और काव्य का यह सुन्दर समन्वय कहीं-कहीं ही देखने को मिलता है। यह प्रवाह और स्वाभाविक गति स्व० पं० नाथूरामशंकर शर्मा में प्रचुर मिलती है।

महर्षि दयानन्द के प्रति आपका हृदय श्रद्धा से ओत-प्रोत है। उस युगपुरुष देव दयानन्द को आपने अपने गीतों में भावभीनी श्रद्धांजलि दी है। आपकी दृढ़ मान्यता है कि दुनियाँ की सारी बीमारियों का इलाज वही सुपथ है जो ऋषि ने हमें बताया है।

"दयानन्द ऋषि के बताए सुपथ पर, तुम्हें पूर्ण श्रद्धा से चलना पड़ेगा" में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार की मान्यता कुँवर सुखलाल की भी है। उन्होंने लिखा है

"मुसाफिर उसी में शिफा पाओगे, जो तजवीज स्वामी दवा कर गया"।

स्वामीजी विषयक कितने ही और उद्धरण भी दिये जा सकते हैं।

आपकी उर्वरा कल्पना की उन्मुक्त उड़ान चमत्कार पूर्ण और विमस्यकारी तो है मगर ऊल जलूल तथा सीमा से परे अतिशयोक्तिपूर्ण कहीं पर भी नहीं है। जवानी में फूटती हुई मूछों को देखकर जो सुन्दर उद्भावना आपने की है उसे देखकर कौन दाँतों तले अंगुली नहीं दबाएगा ?

वैसे तो हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन भक्त-कवियों में सिद्धान्त विषयक अस्पष्टता और घालमेल बहुत है, फिर भी तुलसी, कबीर, सूरदास प्रभृति में कहीं कहीं वैदिक मान्यताओं का प्रभाव मिलता है। और इन्हीं कवियों की कुछेक बातों का प्रभाव हम प्रकाश कवि में भी पाते हैं। वैसे अनुभूति और अभिव्यक्ति की कुछ स्थितियाँ ऐसी हैं जहाँ अलग-अलग कवि प्रायः एक ही प्रकार के शब्दों में अपनी बात कहते हैं। इस दृष्टि से किस का प्रभाव किस पर है, कहना बड़ी कठिन बात है। फिर भी जो साम्य मुझे मिला वह इस प्रकार है :-

"तेरा साँई तुझ में बसै ज्यों पुहुपन में बास" (कबीर)। "फूलों में ज्यों सुवास .... है .... वो सदा तेरे पास है (प्रकाश कवि)। "पानी विच मीन पियासी, माहे सुन सुन आवे हांसी" (कबीर)। अचरज ये जल में रहकर भी मछली को प्यास है (प्रकाश कवि)। और भी --

"माड़ा नशा शराब का उतर जाए प्रभात
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात"

(गुरुनानक देव)

"चढ़के झट उतरे ऐसे मनहूस नशे का क्या पीना
"चढ़के जो न कभी उतरे, वह पी ले प्रिय पावन हाला"

(प्रकाश कवि)

प्रकाश कवि के सारे काव्य का विशद विवेचन और भी कई विशेषताएं हमारे सामने ला सकता है। उपर्युक्त संक्षिप्त से विवेचन से ही स्पष्ट हो जाता है कि अपने निराले गुणों से विभूषित उनका काव्य श्रोताओं और पाठकों को मंत्रमुग्ध कर रहा है। 'गुण' और 'गण' दोनों कसौटियों पर प्रकाश जी खरे उतर रहे हैं। परमात्मा करे इनकी वाणी पर सरस्वती देवी चिरकाल तक विराजमान रहे ताकि यह प्रतिभा सम्पन्न गीतकार आर्य समाज और समस्त मानवता की अमूल्य सेवा करता रहे।

□□

प्रकाश महिमा

सत्यप्रिय व्रती व्याकरणाचार्य

ओ३म् जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ त्वा हरामि शतशारदाय ।। अथर्व० ८-२-२ ।।

परमात्मा का उपदेश है कि ज्योतिष्मान् उज्वल आदर्श चरित्र वाले सज्जनों से प्रेरणा प्राप्त करके सौ वर्ष वा उससे अधिक जीवन आनन्द पूर्वक धारण करो । आशावान् उत्साहमय रहो ।

आर्या ज्योतिरग्राः ।। ऋ० ७-३३-७ ।।

आर्य अर्थात् उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले सज्जन सदैव प्रकाश प्राप्त कर संसार में अग्रगण्य होते हैं ।

वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ।। ऋ० १-५९-२ ।।

परमेश्वर आर्यों को प्रकाश प्रदान करता है जिससे समर्थ होकर वह उन्नति करते हैं ।

उत्क्राम महते सौभगाय ।। यजु० ११-२१ ।।

हे मनुष्यो ! महान् सौभाग्यशाली बनने के लिये प्रयत्न करो ।

यत्नेन किन्न सिध्यति भूतले ।।

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।। अथर्व० ७-१०५-१ ।।

उन्नति के लिये वेदवाणी का वरण करके आगे बढ़ो इन मन्त्रों से यही शिक्षा मिलती है कि हमें ज्ञानानुकूल कर्म करते हुये सफलता प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये । वेदों का मुख्य प्रयोजन क्या है इस विषय में महर्षि दयानन्दजी ने स्पष्ट लिखा है—"जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें । और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें ।" सत्यार्थ प्र० समु०७ । ज्ञान से ही सुख और मुक्ति होती है । सत्यार्थ प्र० समु०९ में लिखा है जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना ? ·······उसका उपाय करना अत्यावश्यक है ।

"........जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है" ।।

यथार्थ ज्ञानी-कवि परमात्मा ही है। 'कविर्मनीषी' यजु० ४०-८ वेद उस प्रभु की कविता है—

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति । अथर्व० १०-८-३२

भगवान् के काव्य वेदों को पढ़ो जो पवित्र प्रेरणाप्रद नित्य हैं। भगवान् सृष्टि की आदि में वेदों को इसीलिये प्रकाशित करता है जिससे मनुष्य वेदानुसार आचरण करके अपने अमूल्य जीवन को सार्थक सफल बनाने में समर्थ हो सकें।

सम्मान्य कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्रजी ने अपनी सुमधुर-रसमय प्रेरणाप्रद-सिद्धान्तानुकूल कविता से सभी को आनन्दित किया है जिसके लिये हम सदा प्रकाशजी के आभारी रहेंगे।

"वाणी रसवती यस्य सफलं तस्य जीवनम्" इस उक्ति के अनुसार आपका जीवन सफल है।

"स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नितम्" श्री प्रकाश जी के साहित्य से ज्ञानवृद्धि होकर प्रेरणा और उत्साह प्राप्त होता है।

काव्य संगीत कला में आप अत्यन्त निपुण हैं। किसी ने कहा है—

"पिलाये जो कि अमृत रस उसे संगीत कहते हैं"। सरस गम्भीर भावों से युक्त आपकी रचनायें निराली हो हैं। यह परमात्मा की श्री प्रकाशजी को अनोखी देन है। 'चन्द्रो याति सभामुप'। ऋ० ८-४-९।

जैसे चन्द्रोदय दर्शन सभी को आह्लादित करता है वैसे ही सभाओं में मैंने देखा था कि प्रकाशजी की रसभरी प्रभावशाली कवितायें सुनकर श्रोतागण आनन्द विभोर मुग्ध हो जाते थे। यहाँ थोड़ा कविता का रसास्वादन कीजिये, परमात्मा की ओर से कवि का कथन कुछ अंश— "पास रहता हूँ तेरे सदा मैं अरे—तू नहीं देख पाये तो मैं क्या करूँ, मूढ़ मृग तुल्य चारों दिशाओं में तू ढूंढ़ने मुझको जाये तो मैं........यह न कर पाप करता हूँ संकेत मैं तेरे अन्तःकरण में विराजा हुआ, लिप्त विषयों में हो सीख मेरी भली ध्यान में तू न लाये तो मैं क्या........अति मनोहर सरस भव्य दृश्यों भरा विश्व सुन्दर प्रकाशार्य मैंने रचा, अपनी करतूतों से स्वर्ग वातावरण नरक तू ही बनाये तो मैं........इसी प्रकार आपकी कवितायें आह्लादव्य तथा ज्ञानवर्द्धक होती हैं। परमेश्वर आदेश देता है—

पश्येम शरदः शतम् जीवेम शरदः शतम्
बुध्येम शरदः शतम् रोहेम शरदः शतम्
पूषेम शरदः शतम्। भवेम शरदः शतम्
भूयेम शरदः शतम् भूयसी शरदः शतात् ।।

अथर्व १९-६७, मन्त्र १ से ८ तक

करुणामय भगवान् से प्रार्थना है कि श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी—

"शतं जीवन्तु" ऋ० १०-१८-४। स्वस्थ दीर्घायु हों जिससे सुदीर्घ काल तक हम सभी उनके दिव्य प्रकाश से लाभान्वित होते रहें।। ओ३म्

"भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि"

शमित्योम्

□□

शायरों में मुन्तखिब

—शुभैषी वनाश्रमी

कवि जी गत २५/२६ वर्षों से अपने शुभ अशुभ कर्म फल समन्वयी सङ्घर्षमय जीवन को अनुपम धैर्य, शौर्य के साथ वीरता पूर्वक यापन कर रहे हैं।

अत्यन्त अकल्पनीय एवं प्रचण्ड अशुभ को धराशायी कर कवि जी का शुभ प्रत्यक्ष हो विजयी हुआ है।

यह कवि जी का अनन्य मानव प्रेम, तीव्र प्रभुनिष्ठा एवं वैदिक विचार धारा के प्रचार प्रसार में मन, वचन, कर्म की अनुपम एकता का जीता जागता उदाहरण है। महाकवि अकबर के ये शब्द कवि जी के प्रति अक्षरशः फिट होते हैं —

तुझे हम क्यों न अकबर शायरों में मुन्तखिब समझें,
बयां, ऐसा कि मनमानें, ज़बाँ ऐसी कि सब समझें।

प्रभु! इन्हें सत्यनिष्ठा और मानवता का ऐसा ही अनन्य प्रेम आगामी जन्म जन्मान्तरों में प्रदानें, यही अकिञ्चन शुभैषी की आन्तरिक शुभ कामना है।

अभिनन्दन-गीत

दयानन्द की कलित कीर्ति का किया जिन्होंने मधु गायन,
उन कविरत्न प्रकाशचन्द्र का करते हैं हम अभिनन्दन।
ऋषिवर के 'वेदों का डंका कुल आलम में बजा दिया',
वैदिक संस्कृति-सौरभ से जग का गृह-आंगन सजा दिया,
जीवन भर जीवनदायी सत्साहित्य का कर सर्जन।
उन कविरत्न० ॥

एक बार सोई जनता को दयानन्द ने चेताया,
दयानन्द की सुप्त स्मृति को प्रकाश जी ने हरयाया
मुखरित सा हो उठा भावनव गीत माधुरी से कानन,
उन कविरत्न० ॥

शब्द शब्द में रस सरसाया ऐसी गूँथी हैं लड़ियाँ,
भाषा सबल भाव दोनों की आन मिली सुन्दर कड़ियाँ,
बने अमर वरदान अहो जिनके छन्दों के भी बन्धन।
उन कविरत्न० ॥

तन ने साथ दिया न दिया पर मन से स्वस्थ सजग बलवान,
सदा धर्म-हित स्वयं जिए औरों को की प्रेरणा प्रदान।
वेद भक्ति या देशभक्ति का करते रहे सन्देश वहन।
उन कविरत्न० ॥

आन पै मिटने के दृढ़ भाव सभी हृदयों में भर डाले,
राम कृष्ण दयानन्द के काम अधूरे पूरे कर डाले।
जन जन जागृति हेतु जिन्होंने किया वीर रस आवाहन।
उन कविरत्न० ॥

परम पिता से यही याचना चिर यह चन्द्रप्रकाश रहे,
अज्ञान-अन्धेर मिटाने का आर्यों का सद्विश्वास रहे।
कविरत्न का अमूल्य जीवन करता रहे मार्ग दर्शन।
उन कविवर प्रकाशचन्द्र०।

कुमारी सुशीला आर्य

कविरत्न

बढ़ाये विमल प्रिय-प्रकाश स्वरूप भव्य-
प्रगल्भ प्रगुण आर्य-देश में कहाये आप !
प्रकर्ष प्रखर-प्रज्ञा, प्राज्ञ सुपुरुष प्रिय,
प्रतिभा सुप्रसाधित-पुस्तक रचाये आप !!
प्रभाकर प्रभव-प्रभा के प्रतिरूप सदा,
पुनीत-प्रकाश कवि रत्न कहाये आप !
आर्य प्रतिमान पूज्य प्रतिष्ठित सुप्रमाणित,
प्रसारण-पावन-विचार को बढ़ाये आप !!

काव्य कानन के कारु महा केशरी अभय,
कलित-कोविद विज्ञ-मेधावी महान आप !
सरस-सुरीले गीत-गाते औ बजाते रहे,
सभा-सराबोर होती सुनाते व्याख्यान आप !!
वेद-वीणा बजाके जगाते रहे आर्य जगत्,
प्रेम-सुधा-वारी के कराते मृदु-पान आप !!
"घनसार" उपकार किये हैं असीम निज-
आर्यों के विशेष एक प्रिय-अभिमान आप !!

कविता-उद्यान कहूँ, रसों के निधान कहूँ,
वेदों के सुगान कहूँ, आर्य अभिमान आप !
आर्य निज देव कहूँ, प्रिय जग-सेव कहूँ,
भव्य से सुभेव कहूँ, गंधर्व से गान आप !!
आर्य प्रतिमान कहूँ, ऋषिकी सन्तान कहूँ,
आर्य-भक्तिवान् कहूँ, ध्रुव-धर्म ध्यान आप!
काव्य-कलाधर कहूँ, आर्य नर-वर कहूँ,
शान्ति प्रिय "घनसार" कवियों के प्रान आप!!

पधारे पीपाड़ जब, सेवा का सुयोग मिला,
आर्य-समाज में आर्य-स्रोत बहाया था !
ज्ञान का विशेष हुआ प्रकाश-प्रकाश आये,
प्रकाश बढ़ा के निज, प्रकाश दिखाया था !!
विमल-वैराग-अनुराग-भव्य भाव युत,
देख-देख पुर लोग-आर्य हरषाया था !!
अस्वस्थ होते भी आप स्वस्थता दिखाते रहे,
"घनसार" मधुर वैदिक गान गाया था !!

कस्तूरचन्द "घनसार"

प्रकाश-काव्य में वैविध्य

सुरेन्द्र प्रकाश शर्मा

कवि प्रकाश जी की कविता व गीतों में संगीतात्मकता होने के कारण ही प्रसाद गुण की प्रधानता है। इनके भक्तिरस के भजन प्राचीन भक्त कवियों का स्मरण दिला देते हैं, जैसे —

अब नहीं छूटे लगन मोरी लागी।
जीवन–धन की जगमग जगमग ज्योति जिया में जागी।
मन–मधुकर प्रभुपद–पंकज कौ भयो परम अनुरागी॥

○ ○

अब तो केवल तेरी आस।
पीर न जानत कोऊ मन की, करत सभी उपहास।
करुणा–धन ! तुम बिन चातक की कौन बुझाये प्यास॥

○ ○

मन अब प्रभु के ही हो रहिये।
प्रभु के नेह लगन में निशदिन भली बुरी सबही की सहिये॥

○ ○

भोर भई अब जाग री, तज आलस निंदिया।
ऋतु सुन्दर 'प्रकाश' प्रिय सुन्दर खेल प्रेम की फाग री॥

○ ○

रंगरेजवा जाऊँ वारी, सुघर रंग दे मोरी सारी।
जाकी चटक फबन मतवारी, होय जगत सौं न्यारी।
निरखत ही पिय मोरे होवें, मैं होऊँ पिय प्यारी, होय आनंद उजियारी॥

ये भजन आध्यात्मिक हैं। संगीतकार एवं भजनोपदेशक इन्हें विविध राग रागिनियों में गाते हुए स्वयं आनन्दमग्न हो श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध करते हैं।

खड़ी बोली में भी कवि के भजनों में पर्याप्त माधुर्य पाया जाता है। उदाहरणार्थ —

प्रभु भक्ति में चपल मन लग जाये तो अच्छा है।
दुर्वासना मलिनता भज जाये तो अच्छा है।

छायो है रात काली चोरों ने सेंध डाली।
सोया हुआ पथिक यह जग जाये तो अच्छा है॥

प्रभु को बिसार किसकी आराधना करूं मैं ।
पा कल्पतरु किसी की क्या याचना करूं मैं ॥
मोती मुझे मिला जब मानस के मानसर में ।
कंकर बटोरने की क्यों कामना करूं मैं ॥

कविरत्न जी ने सरल हिन्दी भाषा में उर्दू शैली के अनुसार सर्वव्यापक अनादि अनन्त निराकार निर्विकार अखिलेश्वर के अस्तित्व, का वेद उपनिषदों के दार्शनिक मंत्रों का आधार लेकर किस अनूठेपन से अनुमोदन किया है सो दर्शनीय है —

वो है भगवान मेरा । वो है भगवान मेरा ॥
सर्व कल्याण-मयी जिसकी छत्र छाया है
सारे ब्रह्माण्ड में आकाशवत् समाया है
एक अविनाशी, निर्विकार जो अकाया है
मूर्त्ति जिसकी नहीं यह वेद ने बताया है
नित्य, निर्लेप, शुद्ध, वुद्ध सर्व ज्ञाता है
नीचे, ऊपर से पकड़ में न कभी आता है
चर्म के चक्षुओं से जो न देखा जाता है
धीर, योगी जिसे अन्तः करण में पाता है
वो है भगवान मेरा । वो है भगवान मेरा ॥

कवि की मान्यता है कि संसार की रम्य रचना किसी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक चेतन शक्ति के द्वारा हुई है —

विविध रंगों के फूल लगते फबीले कैसे,
अलबेली प्रकृति नटी की हरी साड़ी के ।
ज्ञान चक्षु खोल प्रभु रचना अपार लखो,
है न यह कौतुक अचेतन अनाड़ी के ॥
बिना घड़ो साज के न बनती 'प्रकाश' घड़ी,
चालक बिना न चलते हैं चक्र गाड़ी के ।
बिना बीज वृक्ष, बिना तिल्ली कब तेल होता
है न विश्व-खेल बिना चतुर खिलाड़ी के ।

परमेश्वर की प्रेरणा से ही प्रकृति का प्रत्येक परमाणु गतिशील है इसी कारण विश्व का चक्र नियम पूर्वक चल रहा है ।

नित्य नव्य भव्य सृष्टि का सृजन ये सतत्
केवल उसी का एक भृकुटि-विलास है ।
देव वृन्द, काल विकराल उसी की विचित्र
परम पवित्र प्रभुता का बना दास है ।
अणु अणु में है वही व्यापक 'प्रकाश' प्रिय
फूल में सुवास जैसे ईख में मिठास है ।
अगम अगोचर, अकाय अविनाशी ईश
दूर है अज्ञानियों से ज्ञानियों के पास है ।

कवि ने तर्क-युक्ति द्वारा अनेक कविता या गीतों के माध्यम से ईश्वर सत्ता का प्रतिपादन किया है ।

ईश्वर सिद्धि प्रसंग में कविरत्न का यह गीत परम प्रसिद्ध है ही —

सूर्य की लाली में और चन्द्र की उजाली में
बोलो वह कौन है ? बोलो वह कौन है ?
जो है हरियाली में वृक्षों की डाली डाली में
बोलो वह कौन है ? बोलो वह कौन है ?

गीत के अंत में निम्न पंक्तियां कितनी सरस-सरल एवं सार युक्त हैं —

आग चकमक में है जैसे हवा गगन में है ।
लाली मेंहदी के पात में महक सुमन में है ।
जैसे मक्खन दही में पुतली ज्यों नयन में है ।
यूं बसा जो "प्रकाश" प्राणियों के मन में है ।
सूर्य की लाली में.................................
बोलो ! वह कौन है ? बोलो ! वह कौन है ?

गीतों में ऐतिहासिक घटनाओं का प्रयोग

कविवर प्रकाश जी ने अनेक गीतों कविताओं के चरणों में ऐतिहासिक घटनाओं का बड़ी सुन्दरता से प्रयोग कर अन्योक्ति अलंकार की सी छटा दिखलाई है ।

(१)

करो मदद अपने पौरुष से पीड़ित ललना लाल की ।
करना है जो कर डालो मत खाल निकालो बाल की ।
सहन करोगे कब तक ! ये गीदड़ भभकियाँ शृगाल की ।
कृष्ण ! संभालो चक्र हो चुकी सौ गाली शिशुपाल की ।

(२)

व्यर्थ वितण्डे में फंसकर अब चूक नहीं अवसर तू ।
मार-मार जयद्रथ को अर्जुन ! पूर्ण प्रतिज्ञा कर तू ।
तीर न चले लक्ष्य पर तो फिर कैसी तीरन्दाज़ी ।
सोच समझकर कर खेल खिलाड़ी जीती हार न बाजी ॥

(३)

जिसने छल से स्वत्व तुम्हारा छीना है।
उससे बदला लिए विना धिक जीना है॥
भीम ! भूल अपमान न तू पाञ्चाली का।
दुश्शासन का लहू तुझे ही पीना है।
कौरव वंश मिटाने को तैयार रहो।
काम देश के आने को तैयार रहो॥

प्रकाशजी के काव्य में उद्‌बोधन

प्रकाश जी के साहित्य में जहाँ अन्य विविध विषयक कविता गीत हैं, वहां विश्वास, उल्लास, ओज को भी विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। विपदाओं के काले वादलों में भी इन्हें लक्ष्यरूपी दिव्यालोक दृष्टि आता है।

पीस लो दुख के खरल में पर रहे विश्वास।
पाऊँगा सुरमा सदृश सबके दृगों में वास॥
विश्व देखेगा तुम्हारे अघ, अन्य अनरीत।
मेरी सब तरह है जीत॥
दो मिटा अस्तित्व मेरा धूल मिट्टी डाल।
बीज हूँ गलकर बनूँगा मैं विटप सुविशाल॥
गायेंगे शुक, पिक मधुप मम मृदुल गुण गण गीत॥
.... मेरी सब तरह है जीत।

दुख आतप के बिना कभी होती सुख की बरसात नहीं।
कूदे विना अथाह सिन्धु में, मोती लगते हाथ नहीं।
वढ़े चलो अय वीर जवानो, चिन्ता की है बात नहीं।
दिवस न आये जिसके पीछे ऐसी कोई रात नहीं॥

क्रूर, कुशासकों द्वारा निरपराध निरीह निर्बलों का शोषण करने के कारण कवि को नयनाभिराम आर्कषक मधुमय, विश्राम-शान्तिमय जीवन नहीं सुहाता है अपितु विपद विघ्नों से टकराने वाला संर्घषण प्रिय जीवन उसे प्रिय लगता है—

जहाँ विकट संकट के ठट में हृदय लोह का बनता है।
जहाँ खुली संगीनों के भी सन्मुख सीना तनता है॥
पी स्वतंत्रता की हाला मस्ताने जहाँ झूमते हैं।
जहाँ रंगीले फाँसी की रस्सी को ललक चूमते हैं॥
जहाँ राष्ट्र नौका निर्भय भीषण लहरों में वढ़ती है।
जहाँ पर्वतों की ऊँची चोटी पर चींटी चढ़ती है।
जहाँ भयंकर आँधी में घिर कर तिनके मुसकाते हैं।
जहाँ धान के ढेर विकट विजली से आँख लड़ाते हैं।
जहाँ कवूतर विकट वाज़ की छाती पर चढ़ जाता है।
जहाँ निवल अन्यायी शोषक दल की चिता सजाता है।
सुन जय घोष जहाँ वीरों का, मौत, मौत को आ जाती है।
वहाँ मुझे ले चल साथी।

प्रकृति का कण कण संघर्षण प्रिय सचेष्ट है इसी कारण संसृति में जागृति है, एवं प्रगतिशीलता प्रस्फुटित है। अतः हे पुरुष !

नाम न ले विश्राम शान्ति का,
अरे ! विश्व यह समराङ्गण है।
संघर्षण में यहाँ जागरण,
विराम में ही महा मरण है॥

साहसी, शूर समर क्षेत्र की ओर मुख करके फिर विघ्न बाधाओं से भयभीत होकर पीछे नहीं हटता है।

प्रकाशजी कविता के माध्यम से निराश पन्थी को प्रोत्साहन देते हैं—

समराङ्गण में उतर पड़ो तो, फिर पीछे पग धरना क्या रे !
ऊखल में जब शीश दे दिया फिर चोटों से डरना क्या रे !
बीज सदृश धरती में दब, अंकुर बन उठना ही जीवन है
कुए वावली में गिर कर, मुर्दे की तरह उभरना क्या रे !
उठा सूर्य खिल उठे कमल अब तू भी उठ आगे की सुध ले
बीते स्वर्णिम स्वप्न याद कर ठण्डी आहें भरना क्या रे !

परमुखापेक्षी सौख्य, सम्पदा, स्वतंत्रता से वंचित पराश्रित हो परम परिताप को प्राप्त होते हैं। अतः कवि कहता है—

खुद दर्द की दवा हो किसी से न दवा ले।
सोफ़े पै मत पड़े पड़े पंखे की हवा ले॥
मेहनत से बहने वाले पसीने की बात कर।
मर्दों की तरह दुनियां में जीने की बात कर।

इसी प्रसंग में कवि जो का यह मुक्तक कितना प्रेरणात्मक है—

देखकर विघ्न पथिक चित्त विकल तेरा है।
मुड़ना अब कैसा ! हुआ कोसों दूर डेरा है॥
आत्म बल लेके विपद विघ्न-रात्रि से तू निबट।
तेरे स्वागत को स्वयं आ रहा सवेरा है।

बहती हुई नदी के पानी के थपेड़ों को खा-खाकर गोल होने वाले पत्थर तीव्रगामी हो जाते हैं। आपत्तियों के आघातों से भग्न हृदयों में तीव्र ओज एवं प्रगतिशीलता आ जाती है कविवर लिखते हैं—

आदेश तुम्हारा पाऊँ तो
मृतकों में जीवन भर दूँ
संकेत तुम्हारा पाते ही
जगती में हलचल कर दूँ
मत समझो हृद-वीणा का
टूटा तार लिये फिरता हूँ
क्या तुम्हें बताऊँ मैं
क्या क्या उद्गार लिये फिरता हूँ॥

प्रकाशजी की एक ग़ज़ल का यह शेर भी दृष्टव्य है—

मत जुदा होना कभी पहलू से अय ! दर्दे जिगर।
ज़िन्दगी का साज़ तेरे दम से ही बेदार है॥

हँसना भी एक कला है। ईश्वर भक्त, मन के मरदानों को, प्रेमी दीवानों की मुस्कान, अट्टहास को सुनकर मृत्यु भी बगलें झांकने लगती हैं।

किसी बेकस, दुखिया के रुंधे विधे कलेजे से निकली दर्द भरी आह को ही मीठी तान समझकर वाह वाह करके हंसने वाले वास्तव में हंसना नहीं जानते हैं। उर्दू के महाकवि 'मीर' कहते हैं—

दर्दे दिल कितना पसन्द आया उसे
मैंने की जब आह उसने वाह की।

किसी ग़रीब के झोंपड़े में आग लग रही हो और कोई आतिशबाज़ी का शगल समझकर हँसी के कहकहे लगाये तो उस बेदर्द का हँसना हँसना नहीं है। रंगरेली, वदफेलियों की कीचड़ में फंसे हुए हँसना क्या जाने ? कविरत्न लिखते हैं—

करते सुख की चाह अधिक जो दुख दल दल में फंसते देखे।
अपने हाथों अंग अंग वे, पर बन्धन में कसते देखे।
रोते देखे भय विघ्नों से डर कर घर में धंसते देखे।
वीर, धीर, भय विपदाओं के तूफानों में हँसते देखे।
हँसो अधर से, हँसो नैन से, हँसो सैन से, हँसो बैन से।
सौ रोगों की एक हँसी ही है अनमोल दवाई।
हँसना सीखो मेरे भाई, मानों सीख यह सुखदाई॥

चरित्र निर्माण

राष्ट्र निर्माण के लिये चरित्र निर्माण होना आवश्यक है।

कविवर का यह दोहा कितना सुन्दर है—

श्रम, संयम, यम, नियम बिन कब होता कल्याण।
प्रथम राष्ट्र निर्माण के कर चरित्र निर्माण॥

सदाचार सम्पन्न व्यक्ति संकटापन्न स्थिति में भी कभी विपन्न नहीं होता है और न वैभव विलासिता के वातावरण में स्वकर्त्तव्य से विचलित होता है। कवि आचारवान की ध्रुवता धीरता के प्रति लिखते हैं—

वज्रपात, तममयी रात, आँधी, ओला-वर्षण हो
अति प्रचण्ड उद्दण्ड असुर से भीषण संघर्षण हो
निन्दा, स्तुति अपमान, मान, जीवन हो या कि मरण हो
धवल धाम, नयनाभिराम, नित नूतन आकर्षण हो
विविध सौख्य साधन समीप हो सुरा सुन्दरी बाला।
नहीं डिगेगा सदाचार की रक्षा करने वाला॥

शक्ति का महत्त्व

जिसमें शक्ति होती है उसकी ओर सभी इस प्रकार चले आते हैं जिस प्रकार नदी नाले सागर की ओर। यह माना सत्य महान् वस्तु है, वरणीय विभूति है परन्तु सत्य की रक्षा शक्ति के बिना नहीं हो सकती है। कवि का यह मुक्तक कितना उपयुक्त है—

दूर ममता विरक्ति से होगी।
मोक्ष की प्राप्ति भक्ति से होगी।
महापुरुषों के याद कर ये वचन।
सत्य की रक्षा शक्ति से होगी॥

इसीलिए कवि आग्रह करता है कि—

बलवान बनो बलवान बनो॥
गुणवान बनो, धनवान बनो।
मतिमान बनो गतिमान बनो॥
आदर से जीना चाहो तो।
सबसे पहले बलवान बनो॥
अब समय नहीं है, केवल ढ़प।
घण्टे घड़ियाल बजाने का॥

अब समय नहीं है, क्षमा ।
अहिंसा शान्ति, शान्ति चिल्लाने का ।।
अब समय नहीं है आठ पहर ।
चरखा, तकलियां चलाने का ।।
है समय शत्रुओं को अपने ।
बाजू का जोर दिखाने का ।।
तूफानों में जो अटल रहे ।
तुम वह कठोर चट्टान बनो ।।
बलवान बनो, बलवान बनो ।।

तुम महादेव शंकर समान विष घोर हलाहल भी पीलो ।
तुम सिंह व शिवाजी के समान, छलछन्दी की छाती छीलो ।।
तुम नीति निगुण श्री कृष्ण तुल्य जहरीले नागों को कीलो ।
तुम भीमसेन के तुल्य दुष्ट, दुश्शासन का लोहू पीलो ।।
पापों की लंक जलाने को अब तुम 'प्रकाश' हनुमान बनो ।
बलवान बनो, बलवान बनो ।

जैसे को तैसा

महाराज युधिष्ठिर को द्रोपदी कहती है—

व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविपु ये न मायिन :। प्रविश्य हि घ्नन्ति

शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्नि शिता इवी वेषव :।।

वे जड़बुद्धि हमेशा पराजय पाते हैं जो मायावी शत्रु के साथ स्वयं मायावी नहीं बनते हैं। इसी प्रकार के भोले भाले लोगों को दुष्ट शत्रु उसी प्रकार से मार देते हैं जिस प्रकार तेज तीर कवच से न ढ़के हुए नंगे शरीर में घुस जाते हैं। कपटी शत्रु से कपट से ही काम लेना चाहिए। कवि जी ने लिखा है —

काँटे से ही काँटा विष से ही विष होता दूर
कपटी कपट से ही चुंगल में आता है।
कपटी शत्रु से जो सीधेपन का व्यौहार करे
वो 'प्रकाश' सर्वनाश अपना कराता है।

रहो निशंक बंक, अति सीधेपन से काम न चलता है।
टेढ़ी उङ्गली किये बिना हाँडी से घी न निकलता है।
मचला शिशु औ सिंह संभाले पर भी नहीं संभलता है।
वृष्टि न रुकती रोके से, टाले से युद्ध न टलता है।।

वनो प्रचण्ड युद्ध – प्रेमी,
वैरी से प्रबल युद्ध ठानो।
समय यही है कर जाओ कुछ
मत चूको हे मरदानो ।।

भारत वासियों में यद्यपि शान्ति प्रियता है परन्तु मातृ भूमि की रक्षा तथा अधम आततायियों उद्दण्डों के घमण्ड खण्ड खण्ड करने को इनमें प्रचण्ड युद्ध प्रियता भी परम्परा से चली आ रही है—

जिसके खेतों का खाया है अन्न, पिया मृदु नीर है।
उसकी रक्षा हेतु युद्ध करने को हृदय अधीर है।
छिड़ जाने दो युद्ध युद्ध करने के लिये शरीर है।
अजी! युद्ध प्रियता तो अपनी मौरूसी जागीर है ।।

आर्यों ने दीन निर्बल निरपराध को सदा शरण दी है, किसी विवशता से अनुचित लाभ नहीं उठाया है, किसी को दास नहीं बनाया है —

निबलों के हित आर्यों ने
संकट में पड़ना सीखा है।
देश धर्म निज आन बान पर
निर्भय अड़ना सीखा है ।।
अन्यायी असुरों से
सीना तान अकड़ना सीखा है।
और वतन के दुश्मन
गद्दारों से लड़ना सीखा है ।।

भोले भाले शब्दों का प्रयोग प्राय: केवल सीधे साधे नम्र स्वभाव के व्यक्तियों के लिये किया जाता है परन्तु कविरत्न जी ने इस शब्द का प्रयोग अनूठेपनसे किया है —

भोले भाले हैं कहाते हम भारतीय जन
बात नहीं झूठ सचमुच भोले भाले हैं
साधु सज्जनों के लिये भोले हैं 'प्रकाश' किन्तु
दुर्जनों की छाती छेदने के लिये भाले हैं ।।

भारत के वीर सैनिक के प्रति

भारत के वीर सैनिक जो धूप, सर्दी, आंधी, ओले, बरसात, भूख-प्यास सब कुछ सहन करते हुए शत्रुओं की तोपों के सामने राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने प्रिय परिवार तथा प्राणों के मोह को छोड़ कर निर्भय होकर अड़ने वालों

के प्रति कवि जी ने कैसे हृदयस्पर्शी भाव अपनी कविता में व्यक्त किये हैं—

"धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही !"
घात लगाकर धोखे से जब कभी शत्रु चढ़ आता,
तू उसके टैन्कों, विमानों राड़ारों से टकराता।
रातों जगता, कभी भूमि पथरीली पर सो जाता,
कभी भूख तो कभी प्यास तिस पर भी तू मुसकाता।
कभी सरकता, घुटनों चलता, गिरता चढ़ता कभी उछलता।
घायल होता तुरन्त सँभलता, फिर दुश्मन के शीश कुचलता,
दूर भागती तेरे भय से भीषण ताना शाही।
धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही ॥
मां कहती दिन बहुत हो गये आजा ! लालन मेरे।
बहिन कहै भैया सावन में बांधू राखी तेरे।
पत्नी बाट जोहती उर में ले अरमान घनेरे।
तुझे कहां अवकाश रण स्थल में है तेरे डेरे।
हाथ लिए बन्दूक दुनाली, निर्भय तू करता रखवाली।
समरक्षेत्र में ही मनती है तेरी तो होली दिवाली।
अल्हड़ मस्त जवान, न करता किञ्चित लापरवाही।
धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही ॥

इस प्रकार अनेक विषयों पर कविजी ने अपनी कुशल लेखिनी द्वारा सरस हृदय वाले जनों के मानस को भिन्न-भिन्न भावों से प्लावित किया ।

कवि के काव्य में उपलब्ध यह विषय-विविधता निश्चित ही कवि की प्रतिभा-संपन्नता का प्रमाण है।

□□

संस्मरण

सन् १९३४ में मैं आर्य समाज बांदीकुई के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने गया हुआ था। वहां पर पहली बार कविरत्न पं. प्रकाशचन्द्रजी को देखा। उस समय उनमें बड़ा बांकापन तथा मस्ती का आलम था। ओजस्वी वाणी तथा हृदयग्राही संगीत से जनता को मोह लेने का जादू था।

* * * *

स्व० स्वा० कर्माचन्दजी (जो बाद में जैनधर्म में चले गये थे) की सुपुत्री का विवाह संस्कार कराने मैं भिवानी गया हुआ था और आर्य समाज मन्दिर में ठहरा हुआ था, वहीं पर कविरत्नजी भी आये हुए थे। कई दिन तक साथ रहा। आर्य समाज की प्रगति के सम्बन्ध में चर्चा हुई। भिवानी में इन्हें किन्हीं अच्छे संगीतज्ञ तथा वादक का पता चला। हम दोनों उनके घर पहुँचे और वागेश्वरी राग का आनन्द लिया। आर्य समाज के प्रचार के साथ साथ इनका संगीत प्रेम तथा संगीत मर्मज्ञता सोने में सुहागे का मेल था। समय समय पर हास्यरस तथा विनोद की फुलझड़ियाँ भी छूटती रहती थीं।

* * * *

रुग्ण होने के पश्चात् कुछ वर्ष हुए कविरत्नजी अपनी सुपुत्री के साथ आर्य समाज, हनुमान रोड की ओर से प्रचारार्थ पधारे हुए थे। राजा बाज़ार स्क्वेयर में प्रचार का कार्यक्रम रहा। नई दिल्ली की जनता ने आर्यसमाज के पुराने महारथी की वाणी सुनकर अपने को धन्य माना।

शारीरिक अस्वस्थता होते हुए भी श्री 'प्रकाश' जी ने जिस धैर्य और साहस का परिचय दिया है, हौसला बनाये रखा है, आर्यसमाज के लिए निरन्तर साहित्य सृजन किया है तदर्थ उन्हें साधुवाद है।

भगवान् उन्हें हमारे मध्य दीर्घकाल तक बनाये रखें वे और भी यशस्वी हों।

—चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण

सरलता और सरसता का मूर्तरूप

शिवकुमार शास्त्री

दिसम्बर सन् ४५ की बात है, मैं और श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी मुजफ्फरगढ़ पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान) के उत्सव पर एकत्र हो गये। दो दिन खूब चहल पहल रही। प्रचार के अतिरिक्त भी काव्य चर्चा चलती रहती। वापसी पर मुझे और कविरत्न जी को लाहौर तक साथ साथ यात्रा करनी थी। जब हम एक रेलगाड़ी से चलकर मुल्तान पहुँचे तो लाहौर वाली ट्रेन जा चुकी थी और शाम को ६ बजे तक कोई गाड़ी न थी। थोड़ी देर वेटिंग रूम में विश्राम किया और फिर हम दोनों में काव्य चर्चा प्रारम्भ हुई। निश्चय यह हुआ कि श्री प्रकाशचन्द्र जी हिन्दी की कविता सुनाएंगे और मैं उसकी तुलना में कोई संस्कृत सूक्ति कहूँगा। लगभग तीन घंटे तक स्टेशन के प्रतीक्षालय में यह कविगोष्ठी चलती रही। चार बजे सायं शौचादि के लिए हम लोग जंगल की ओर चले किन्तु चर्चा चालू रही और उसको तभी विराम मिला जब शाम को ६ बजे गाड़ी में सवार हुए।

उस चर्चा में सैकड़ों ही कवित्त दोहे सोरठे और शेर पं० प्रकाशचन्द्र जी ने सुनाये। किन्तु उनमें से दो दोहे और दो शेर तो चित्त पर ऐसे जम गये जिन्हें मैंने भाषणों में भी अनेक बार कहा और उसके बाद पंजाब के दूसरे उपदेशक और भजनीक भी उनका प्रयोग अपने भाषणों में करने लगे। उन दोहों तथा शेरों का रसास्वादन श्री प्रकाशचन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ के सहृदय पाठक भी करें।

यौवन के प्रारम्भिक काल में पुरुषों के मुख पर मूंछ और दाढ़ी के बाल उगने प्रारम्भ होते हैं। ये दाढ़ी और मूछों के बाल कवियों की चर्चा का विषय रहे हैं। इसी प्रसंग में श्री प्रकाशचन्द्र जी ने किसी पौराणिक कवि की एक दोहे में हेतोत्प्रेक्षा सुनायी —

या डर विधि नवयुवक मुख कारी रेख बनाय।
तरुणाई पै काहुकी दीठि न कहुँ लग जाय॥

काव्य की दृष्टि से कवि की उत्प्रेक्षा निःसन्देह सराहना के योग्य है – क्योंकि भद्दी से भद्दी शक्ल में भी यौवन में निखार और आकर्षण आ जाता है – ग्राम्य प्रदेश की यह उक्ति कि जवानी में गधी भी अप्सरा बन जाती है, कुछ वास्तविकता रखती है। तब तो विधि को भी नज़र के प्रहार से युवक को बचाने की चिन्ता होनी ही चाहिए। उस बचाव के लिए चिरपरिचित और परीक्षित उपाय काली रेखाएं ही हैं – और वह मूंछों के रूप में विधि ने खींच दीं। किन्तु विचारणीय यह है कि इस से युवक को क्या शिक्षा मिली ? प्रकारान्तर से देखें तो उसके अहंकार में और वृद्धि की, "कि तुम इतने सुन्दर थे कि भगवान को भी तुम्हें नज़र से बचाने की चिन्ता हुई।" इसी की तुलना में प्रकाशचन्द्र जी ने स्वरचित दोहा सुनाया –

कारी मूंछ प्रकाश नित युवकहिं करति संकेत ।
कारो मुख अब होन के दिन आये टुक चेत ॥

आर्य युवक ! यौवन के प्रारम्भ में काली मूंछें भगवान ने तुम्हें नज़र से बचाने के लिए पैदा नहीं की। अपितु इनके उगद्म का लक्ष्य तुम्हें सावधान करना है। अब तक का बाल्यकाल का जीवन तुम्हारा निश्छल निष्कपट और निर्विकार रहा – अब सरलता की जगह बनावट लेगी। चाहे बात छिपाने से भी छिपती नहीं है – किन्तु मनुष्य यत्न यही करता है कि मेरे रहस्यों पर पर्दा पड़ा रहे – यही बिगाड़ का प्रारम्भ है। उपनिषत् के ऋषियों ने लिखा है – कि बालकपन की सरलता मनुष्य में अक्षुण्ण रहनी चाहिये– "पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्" विद्वान् को चाहिए कि ज्ञान को पचाकर बालक के समान रहे। इस पर ब्रह्मसूत्र में चर्चा की गयी और प्रश्न किया गया कि बालभाव से रहने का क्या अर्थ है ? 'बालवत् चर्वणं निगरणं वा'। जैसे बालक खाते पीते और उछलकूद करते रहते हैं वैसे– इसका उत्तर दिया 'अनाविष्कुर्वन्' जैसे बच्चा दम्भ रहित होता है – जैसा होता है, वैसा ही लोगों के सामने आ जाता है। उसे अपने को छिपाना आता ही नहीं। यह सरलता रहनी चाहिए। माता के स्तनों का मधुर दूध पीने का अधिकार बालक का है। जो अन्दर बाहर से एक जैसा है– जगन्माता के अमृत मय दूध के पीने का अधिकार भी बालक के समान सरलता से व्यवहार करने वाले व्यक्ति का ही है– इस का वर्णन करते हुए ऋग्वेद में कमाल किया है।

हृत्सु पीतासो युद्धयन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ ऋ० ८। २। १२

हृदयों में पीये हुए युद्ध करते हैं जैसे शराबी पागल होकर लड़ते हैं। सोमरस या सुरा हृदय में नहीं पायी जाती पेट में पी जाती है। हृदय पर छाप छोड़ते हैं काम क्रोधादि विकार, जिनसे विजय प्राप्त करना सरल काम नहीं है – यह तो शराबी की कुश्ती है। शराबी की कुश्ती का फैसला चित्त पट्ट का नहीं है। शराबी में तो जब तक दम है लिपटता ही चला जावेगा। चाहे उसे चित्त गिराओ चाहे पट्ट। यही बात काम आदि की भी है। एक बार यदि काम के कुसंस्कार पर विजय प्राप्त करली तो उसका अर्थ यह नहीं है कि जान छूट गई। यह लड़ाई तो लगातार रहेगी जब तक कि वे संस्कार ही क्षीण न हो जावें और तुम नंग धड़ंग बालक के समान अपने को सरल और निर्विकार न बना लो।

एक दूसरे हिन्दी के कवि ने जवानी के शुरु में उमड़ती हुई बुराइयों की बाढ़ से तंग आकर अपने बालकपन को याद किया है और जवानी के बदले बालकपन को चाहा है। लिखा है –

कोई मरता है मुस्कान पे किसी की कभी,
वेदना उठाता लोचनों की कुटिलाई से।
उथल-पुथल सी मचाती चित्त में अशान्ति,
छूटता न पीछा वासना की सेवकाई से।
कितने भले थे अहा वे दिन मिला था मन,
योग सुखदाई न वियोग दुखदाई से।
तंग आ चुका हूँ इतना मैं तरुणाई से कि,
चाहता हूँ बदलना किसी की शिशुताई से।

इस प्रकार बुराइयों और विकारों के आगमन के समय ही कविवर प्रकाशचन्द्र ने युवक को सावधान किया कि यदि तुम पहले से चौकन्ने रहे तो अपना मुंह काला होने से बचा लोगे, और नहीं तो फिर उससे बच पाना बहुत कठिन है। संस्कृत के एक कवि ने निर्विकार यौवन की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

प्रथमे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः ।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ॥

अर्थात् जो जवानी के दिनों में शान्त है वही शान्त है। बुढ़ापे में शरीर जीर्ण और निर्बल हो जाता है और इन्द्रियां अशक्त हो जाती हैं। तब तो शान्ति सभी को हो जाती है। किन्तु वह शान्ति श्मशान भूमि की शान्ति है, बस्ती की नहीं। इसलिए कवित्व की दृष्टि से और साहित्य की दृष्टि से क्योंकि साहित्य की परिभाषा शास्त्रकारों ने यह की है–जो हित सहित हो वही साहित्य है – तो इस दोहे में बहुत ही हितोपदेश है।

उस गोष्ठी के प्रसंग में दो शेर भी उन्होने कहे थे जो बुढ़ापे में मनुष्य का पथ-प्रदर्शन करते थे। एक था –

सबक़ इबरत का ले नादान बालों की सफेदी से।
कफ़न जीते जी ओढ़ा है निगारे जिन्दगानी ने।।

क्या ही सुन्दर बात कही है कि यह तेरे जवानी के ढलने पर काले बाल सफेद नहीं हुए, अपितु जीवन की दुलहन ने कफ़न ओढ़ लिया है और इसकी मृत्यु को देख कर के भी यदि तुझे वैराग्य नहीं होता तो कब होगा? दूसरा शेर बिल्कुल इसी से जोड़ खात हुआ यह कहा था–

नज़र कर झुर्रियों से शेव के सिमिटे हुए रुख पर।
वह बिस्तर है दम तोड़ा है जिस पर नौजवानी ने।।

बुढ़ापे में बाल ही सफेद नहीं होते, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। चेहरे की झुर्रियां क्या हैं मानो जवानी ने बिस्तर पर छटपटा करके दम तोड़ दिया है। जैसे करवट बदलने से बिस्तरे में सिकुड़नें पड़ जाती हैं उसी तरह से चेहरे की झुर्रियां हैं। इन शेरों में भी कवित्व और साहित्य की ऊंचे से ऊंची उड़ान है।

मैं इस संस्मरण के साथ कविवर प्रकाशचन्द्र का सानन्द अभिनन्दन करता हूँ। प्रभु हमारे प्रचार के क्षेत्र के युवकों को और दूसरे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को प्रकाशचन्द्र जी के निर्मल और निश्छल जीवन से कष्ट में भी कर्त्तव्य पथ से विचलित न होने के पवित्र व्रत से प्रेरणा प्रदान करे।

□□

एक संस्मरण

लगभग ३६ वर्ष पूर्व मैं आर्य समाज मन्दिर सदर मेरठ में बैठा था कि एक युवक पधारे और मुझसे कहा कि मैं अजमेर से आया हूँ। आपके यहाँ कथा में भाग लेने।

मैं स्वयं भी उस समय अल्हड़ था और प्रथम बार समाज का मन्त्री नियुक्त किया गया था। मैंने उत्तर दिया कि आपके आने की कोई सूचना नहीं है। हमारे पत्र का उत्तर दिये बिना आप क्यों आये? वे सीने से युवक उठ कर जाने लगे। मैंने कहा कि आप आये हैं तो ठहरिये! फिर उनको अपने घर ले आया। वह आकर घर में सभी से इतना घुलमिल गये थे कि वह सम्बन्ध अटूट प्रेम में बदल गया। वह समय हर समय मेरी आँखों के सम्मुख रहता है।

फिर तो मेरठ नगर आते जाते वे हमारे परिवार में ठहरते थे। कभी कभी कवि गोष्ठी तथा संगीत गोष्ठी भी चलती थी। मेरा परिवार उनके आने की प्रतीक्षा में रहता है। उनके भजन परिवार में रुचि पूर्वक गाये जाते हैं। आर्य जगत् में आपकी सेवा भुलाई नहीं जा सकती है।

"वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" तथा "ओ३म् भूः ओ३म् भूः ओ३म् भू" आदि गीतों के रचयिता के नाम से वे पुकारे जाते हैं। उनकी रचनाएँ साहित्यिक तथा वर्तमान काल की दृष्टि से अपूर्व हैं। उनकी छाप सदा सदा के लिए आर्य समाज के इतिहास में बनी रहेगी, वे हैं कविरत्न प्रकाश चन्द्रजी।

परम पिता प्रभु कवि प्रकाश को दीर्घायु प्रदान करें और आर्य जगत् को इनकी रचनाओं से लाभान्वित करें।

:रघुनन्दन स्वरूप गोयल

प्रकाश-अभिनन्दन

"प्रणव शास्त्री

पंचम स्वर सङ्गीत सामके गायक प्यारे
डिगे न कोई कदम साधना-पथ में धारे।
तमस्तोमसे दूर दुग्ध सी कीर्ति पसारे
श्रीधर "पुष्पा"[1] रमा रम्य आँखों के तारे ॥ १ ॥
प्रतिभा पावन पूर्ण सुकृति रचना के हामी
काव्यानन्द समाधि सिद्धि के साधक स्वामी।
शतशत "स्नेहीलता"[2] सफलता के मधु माली
चंचरीक सम चाख रहे रसरीति-प्रणाली ॥ २ ॥
द्रवित हृदय सौहार्द गङ्ग में स्नान कराते
जीवन दे जीवन को जीवन ज्योति जगाते।
कलित कल्पना मौसम के मधु मास निराले
विबुध जनों को पिला रहे "पीयूष"[3] पियाले ॥ ३ ॥
रत्न राशियाँ सागर सम तुमने बिखराईं
कान्त पदावलि आर्य सुगम सिद्धान्त सुहाईं।
अक्षय यश प्रासाद-प्रतिष्ठित पण्डित ज्ञानी
भिन्न भिन्न भावों के भावुक अविरत दानी ॥ ४ ॥
नंदन सुख सम्प्राप्त आप्त-उपदेश-विहारी
दयानन्द ऋषि चरणों के प्रिय प्रेम-पुजारी।
नयी सूझ के सन्त सजग साहित्य मनीषी
सबल सदा रचनाएं होतीं सत्य-सनी सी ॥ ५ ॥
दैत्य-दलन को वीर भाव तुमने उपजाये
वरद वेद के डङ्का भी तुमने बजवाये।
मंजुल मोहन मन्त्र कलामय काव्य भवानो
गर्वित गंगा धार धरा में रहे रवानी ॥ ६ ॥
ललित जगत् में सूर्य चन्द्र से मित्र मनोहर
मनमें हो प्रभु "प्रणव-प्रेम" की धवल धरोहर।
यह अभिनन्दन वन्दन चन्दन सा सुखदायी
हो आयुष का दिवस युगों का प्रिय पर्यायी ॥ ७ ॥

१. पण्डितजी की धर्मपत्नी २. पुत्री ३. शिष्य

प्रकाश-प्रशस्ति

हरवंशलाल "हंस" आर्य गायक

पावन प्रभा प्रकाश पुञ्ज की देख प्रभावित जन मानस है।
जिनका शुचि साहित्य सर्वतोमुखी सार सम्पन्न सरस है।
कविता गीतों में जिनके कुछ अजीब साही आकर्षण है।
दूषण रहित, भारती भूषण मानों अमृत-रस वर्षण है।
आर्यों का उद्बोधक, गायक, प्रचारकों का पावन धन है।
उसी महाकवि गुरुवर को मेरा भी शत् शत् अभिनन्दन है॥
जिसकी कविता के माध्यम से उपासकों ने की उपासना।
जिसकी कविता ने श्रोता पाठक-उर-भरदी भव्य भावना।
जिसकी कविता से गायक ने जनता पर जादू सा डाला।
जिसकी कवितावली मञ्जुमणि मण्डित मनोहारिणी माला।
शिष्य समूह जिसे सादर नत मस्तक हो करता वन्दन है।
उसी महाकवि गुरुवर को मेरा भी शत्-शत् अभिनन्दन है॥
जिसके काव्य कोष से मैंने अहा! एक ही कण पाया है।
उसके प्रभाव से मेरे जीवन में रस अनुपम आया है।
वेद संस्कृति के प्रति श्रद्धा, अटल ईश, विश्वास दे दिया।
आर्य जाति की सेवा करने का उर में उल्लास दे दिया।
जिसकी सूक्ति, ईश्वराराधक को कण्टक पथ भी नन्दन वन है।
उसी महाकवि गुरुवर को मेरा भी शत्-शत् अभिनन्दन है॥
यद्यपि काया जीर्ण किन्तु आत्मिक बल की अविचल समृद्धि है।
प्रमुदित आकृति, सतकृति, सुसमृति, धृति सुभमति की सतत वृद्धि है
संघर्षण प्रिय जीवन कवि का लखकर अमित चकित सकुचाये।
रहती दूर मृत्यु इस भय से मृत्यु, न मेरी ही हो जाये।
जिसका विपत्त ज्वाल में पड़कर जीवन बना हुआ कञ्चन है।
उसी महाकवि गुरुवर को मेरा भी शत्-शत् अभिनन्दन है॥

जीवन्तु यावच्चन्द्र-दिवाकरौ कविरत्न-महाभागाः

श्री पण्डित प्रकाशचन्द्र कविरत्न महोदया आर्यसमाजस्य जाज्वल्यमान रत्नावर्तन्ते। आर्यसमाजस्य काव्यक्षेत्रे स्वर्गीय पण्डित नाथूराम शर्म—जयगोपाल कविरत्नानयोरनन्तरम् इम एवैकमात्र कुशलाः काव्यमर्मज्ञाः समजायन्त इत्यत्र नास्ति कश्चित् सन्देहावसरः। यद्यं तादृशाः कविप्रवरा अन्यस्मिन् कस्मिंश्चिन्मतेऽभविष्यंस्तर्हि महतीं कीर्ति सम्पदां चालप्स्यन्त। परन्त्वेते सरस्वत्या वरद पुत्रा महर्षि-दयानन्द-सरस्वती-पादानां चरणारविन्देष्वतिशयभक्तिविशेषाद् महद्यशः ऐश्वर्यं च तृणीकृत्य सर्वविधं दुःखं सहमाना अपि वैदिकधर्मविमुखां कृतिं मनाक् परिहृतवन्तः। बहुभ्यो वर्षेभ्यः महता पक्षाघातरोगेण पीडिता अपि वैदिकमन्तव्यानधिकृत्य काव्यकर्मण्येवाहर्निशं संलग्नाः सन्ति।

यावद् भुवि महर्षि दयानन्दस्य कीर्तिर् आर्यसमाजश्च स्थास्यति तावत् 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' इति कृतिरूपेण विग्रहेणाजरा अमरा स्थास्यन्ति।

राजस्थानार्यप्रतिनिधिसभा एतेषां महामान्यानां कविरत्नानाम् अभिनन्दनेन स्वयमभिनन्दिताऽभूत्।

वस्तुतस्त्वेते महानुभावाः—

मालती कुसुमस्येव द्वे गती मनस्विनाम्।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा॥

इति भर्तृहरिवचनं स्वजीवनेन चरितार्थयमाना एव दृश्यन्ते। यद्वा

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।

वचनानुसारं स्वजीवनमाहात्म्यं प्रदर्शयन्ति।

एतेषां जीवने—

ये नाम केचिदिह प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्ति तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति च कोऽपि समानधर्मा कालोऽयं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

इति महाकवि भारविवचनानुसारम् एतेषां माहात्म्यं कदाचिद् भाविन आर्यवर्या विज्ञास्यन्ति।

मादृशः कविकर्मणि चञ्चुप्रक्षेपविरहितो जनो नान्यत् किमपि वक्तुमप्रार्थयति शक्नुवन् परेशं यदस्मच्छ्रद्धाभाजः प्रकाशचन्द्र—कविरत्नमहाभागा यावच्चन्द्रदिवाकरौ जीव्यासुः।

कविरत्नमहाभागानां श्रद्धालुः—
युधिष्ठिरो मीमांसकः

□□

कविरत्न प्रकाश जी का बहुविध व्यक्तित्व

पं० वाचस्पति जी शास्त्री

प्रकाश जी कवि, गायक और प्रचारक के रूप में एक से एक बढ़कर निखरे हैं। रोग-शय्या पर पड़े-पड़े भी आज तक जो अपनी काव्य प्रतिभा से वह दे रहे हैं वह आर्य साहित्य की अनुपम निधि है। लगभग २७ वर्ष पूर्व की बात है गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया था। एटा के श्री रंग जी को अध्यक्षता के लिये बुलाया गया था किन्तु किसी कारण से वे न पहुंच सके थे, सभापति पद के लिये मञ्च पर किसी व्यक्ति की खोज हो रही थी। प्रकाश जी मंच पर आर्य समाज के योग्य गायक के रूप में उपस्थित थे। मैंने कहा इन्हें ही सभापति बनाओ तो स्वर्गीय श्री उमाशंकर जी वैद्य जो सम्मेलन के संयोजक थे मुझसे पूछने लगे कि क्या ये भी कविता करते हैं। मैंने कहा आज सुन लेना। मेरे आग्रह पर प्रकाश जी को अध्यक्ष बनाया गया। मथुरा वृन्दावन के कई अच्छे-अच्छे कवि आये थे। सम्मेलन खूब जमा। प्रकाश जी की उस कविता की बड़ी धूम रही। 'बड़ी दूर मुझको जाना है' प्रकाश जी ने इस कविता के तीन भाव चित्रों में वीर श्रृंङ्गार और शांत रस का ऐसा सशक्त चित्रित किया कि जनता मंत्र-मुग्ध हो गई। संयोजक जी मुझ से कहने लगे भाई ये तो छिपे रुस्तम निकले। हम तो इन्हें केवल भजनोपदेशक ही समझते किन्तु ये तो ऊँचे स्तर के कवि हैं। मैंने भी उन तीन चित्रों में से 'पर्वत से नहीं' के अवतरण वाला चित्र पहिले पहल प्रकाश जी से उस कवि सम्मेलन में ही सुना और मैं यह निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि ऐसा सजीव चित्रण शांत रस का मैंने अब तक हिन्दी साहित्य में नहीं पढ़ा है।

चैत्र मास था। हम लोग हरदोई जिले में शाहाबाद के उत्सव पर गये थे। सायंकाल को प्रकाश जी को मैं जबरदस्ती सैर करने के लिये बाहर घसीट ले गया। एक बाग में होले भूने, होले चबाते चबाते एक स्थानीय सज्जन ने कविता पाठ आरम्भ कर दिया। फिर क्या था प्रकाश जी का कविता प्रवाह लगभग ३ घंटे चला। उस चर्चा में भी मुझे प्रकाश जी की वह कविता इतनी भाई कि कई बार उसे सुना :—

मैं अपने आधार रहूँगा,
मुख से आह कढ़ी कढ़ने दो
घाव बढ़ रहा है बढ़ने दो
पर मरहम के ऐहसानों का
भारी भार तनिक न सहूँगा
मैं अपने आधार रहूँगा

शब्द शब्द से कवि का स्वाभिमान फूटा पड़ता है। वास्तव में स्वाभिमान और स्वावलम्बन ही इनको इस रोग-जनित अशक्तता में भी सशक्त बनाये हुए है।

प्रकाश जी ने अपने को कवि के रूप में कभी नहीं पहिचाना। उन्होंने अपनी कवि-प्रतिभा की उत्तम तुरङ्गी को अश्वतरी बनाकर उस पर सदा प्रचार सामग्री का भार ढोया। इस प्रकार अपने कवि व्यक्तित्व के साथ सदा अन्याय किया। वे अपने प्रचारक रूप में इतने खोगे रहे कि अन्य गुणों का कभी ध्यान ही नहीं किया।

अनेक वार ऐसी सुन्दर कवितायें भी कूड़े में फेंक दी गई जिन में सोधी प्रचार सामग्री नहीं थी। ऐसी ही एक कविता श्री धर्म दत्त जी आनन्द ने प्रकाश जी के कूड़े में से उठाकर नोट कर ली थी कविता का शीर्षक था 'बूंद का बलिदान' मैंने यह कविता धर्मदत्त जी से आग्रह करके कई वार मंच पर बुलवाई तब कहीं वह प्रकाश में आई। ऐसी न जाने कितनी कवितायें प्रकाश जी ने कूड़े में फेंकी होगी तभी तो मैं कहता हूँ उन्होंने अपने कवित्व के साथ न्याय नहीं किया। मुझे पूर्ण निश्चय है कि आज भी प्रकाश जी का बहुत कुछ अप्रकाशित है और असंग्रहीत भी। ये तो कुछ रचनाएँ जो प्रकाश में आयी हैं वह श्री पन्नालाल जी पीयूष का पुरुषार्थ है नहीं तो प्रकाश जी की कवितायें मात्र स्वान्तः सुखाय ही रह जाती। भला हो निष्ठुर दैव का जिसने कवि को असाध्य वात-रोग देकर घूमना फिरना और बाजा बजाना बंद कर दिया तो काम हुआ रोग शय्या से उन्होंने जो भी कुछ लिखा वह प्रेरणादायक व प्रचार सामग्री के साथ साथ ही साहित्य की अमूल्य निधि है।

प्रकाश जी का एक गीत मुझे इतना प्रेरणापद लगा कि गत वर्ष प्रचार यात्रा में श्री सुरेन्द्रसिंह जी भजनोपदेशक से सभी बैठकों में गवाया।

हम से न तू खाने की न पीने की वात कर
मर्दों की तरह दुनियां में जीने की वात कर
क्या देवता पैग़म्बरों का पूछता पता
इस मातृभूमि का तो कण कण है देवता
मत यरूशलम् मक्का मदीने की बात कर॥
निज ज्योति से अंधेरा जो हर दिल का भगादे।
माता के मुकुट में जो चार चांद लगा दे।
नकली नहीं उस असली नगीने की बात कर
खुद दर्द की दवा हो किसी से न दवा ले।
मत सोफे पर पड़े पड़े मत पंखे की हवा ले।
मेहनत से बहने वाले पसीने की बातकर।

इस गीत में युवकों के लिये देशभक्ति तथा कर्मठ्यता की इतनी सशक्त प्रेरणा है कि एक बार तो मुर्दे में भी जान आ जाती है।

'यह मत कहो कि जग में कर सकता क्या अकेला
लाखों में काम करता है सूरमा अकेला।'

यह गीत कितना प्रेरणादायक है। कविवर रवीन्द्रनाथ का प्रसिद्ध गीत 'एक चाल चलो'। जहां निराश को धैर्यमात्र बंधाता है वह अध्यात्म का एक कोमल स्वर मात्र है। उस में आशा के क्षीण प्रवाह में से निराशा शिर ऊंचा करके बहते बहते डराती सी जाती है? किन्तु प्रकाश जी का यह गीत तो विश्व विजयी वीर की घोषणा है जिसमें समस्त विघ्नबाधाओं को रौंद कर निकल जाने की प्रबल सामर्थ्य है।

प्रकाश जी का गायक रूप

प्रकाशजी संगीत विद्या के पूर्ण ज्ञाता हैं। वे गायन और वाद्य दोनों में निपुण हैं। स्वल्प समय में ही वे राग का पूरा रूप बना देते हैं जिसे अनेकों गायक घंटों के परिश्रम से बना पाते हैं। एक युग था जब तबला और हारमोनियम पर उनका हाथ तैरता हुआ चलता था। आर्यसमाज केसरगंज अजमेर में या कभी अन्यत्र भी उत्सव की समाप्ति पर प्रायः संगीत गोष्ठी जम जाती थी तब प्रकाशजी का वह गायक रूप देखने को मिलता था। अब भी अजमेर, जो राजस्थान में संगीत का गढ़ है, में हिन्दू और मुसलमान गायक प्रकाश जी को उसी तरह मानते हैं जैसे बूढ़ा पहलवान जो बुढ़ापे के कारण कुश्ती लड़ना छोड़कर अपना लंगोट उतार चुका है किन्तु अखाड़े के किनारे बैठा हुआ अपने पट्ठों को आशीर्वाद देकर उत्साह बढ़ाता है। हर विजयी पहलवान उसके चरण छू कर आशीर्वाद लेता है।

प्रकाश जी की शिष्य मंडली में अनेकों गायक और वादक हैं जो अपनी कला से सर्वोच्च स्थान पा चुके हैं।

आर्य समाज के प्रचारकों में भी जो प्रकाशजी के पास कुछ दिन भी सीख गया है उसके गायन और आलाप में निरालापन झलकता है। प्रकाशजी के गायक रूप के सम्बन्ध में भी मेरा यही विचार है कि उनका स्वर शील स्वभाव भक्ति तथा करुण रस के गायन के योग्य था किन्तु हठ वश उन्होंने देश भक्ति के और समाज सुधार के लिये वीर रस में अधिक गाया। मैंने अनेक बार देखा कि मंच पर प्रकाश जी की जो रंगत जमी वही उनकी सामग्री से अन्य गायकों ने जमायी। श्रीमान् कुंवर सुखलालजी जो आर्यसमाज के सर्वाधिक सफल गायक और चोटी के प्रचारक हैं कभी हिन्दी कविता गाने की रुचि होने पर प्रकाशजी का कोई गीत गा देते हैं। 'नाम न लो विश्राम शान्ति का अरे विश्व यह समराङ्गण है' इत्यादि से तो श्रोताओं की भुजाएं फड़कने लगती हैं।

किन्तु प्रकाशजी करुणा रस के सफल गायक हैं। उनके स्वर में ओज नहीं, पीड़ा है। कविता में तो बड़ा ओज है पर स्वर में उसका अभाव है किन्तु प्रकाशजी के स्वर में वह भाव जिसे उर्दू वाले 'सोज़' कहते हैं भरपूर हैं।

प्रायः तीस वर्ष पूर्व की बात होगी। महोली जि० सीतापुर का उत्सव था। स्व० श्री दुर्गाप्रसाद मिश्र जी ने प्रकाशजी को अजमेर से बड़े आग्रह से बुलाया था। मैं भी उस उत्सव पर बुलाया गया था। सायंकाल की बैठक का एक नव स्नातक को सभापति बना दिया था। ये नवयुवक प्रकाशजी से पूर्ण परिचित न थे उन्होंने प्रकाशजी को प्रचार के लिये केवल ३० मिनट का समय दिया। पर ३० मिनट में तो उनका गला भी गरम नहीं हो पाया था इतने में सभापति ने घंटी बजादी। प्रकाश जी ने मर्यादाना ध्यान रखते हुए कार्यक्रम बंद कर दिया, पर उनका विषय अधूरा बीच में ही कट गया सभी श्रोताओं को बुरा लगा और प्रकाशजी पर जो बीती होगी उसे तो कोई वक्ता ही जान सकता है? प्रकाशजी रुष्ट हो गये, रात्रि को भोजन भी नहीं किया। प्रबन्धकों ने क्षमा मांगी। सभी ने अनुनय विनय की पर क्रोध नहीं उतरा तब जो तबला बजाने वाला संभ्रान्त व्यक्ति व संगीतज्ञ था और अपनी रुचि विशेष के कारण ही तबला बजाने आया था, उसने प्रकाश जी के सामने बाजा रख दिया और स्वयं ठेका बजाने लग गया। कार्यक्रम की समाप्ति पर यह कार्यक्रम चालू हुआ। धीरे धीरे चुने हुए श्रोता आने लगे। स्वास्थ्य ठीक नहीं था जुकाम हो गया था अतः मैं भीतर जाकर लेट गया पर नींद कहां आती। रात बढ़ती जाती थी और प्रकाश जी का दर्दीला स्वर वातावरण में गूंज रहा था। अन्तरा था 'कन्हैया से कहियो मेरी राम राम।' लगभग रात्री में दस बजे से तीन बजे तक यह कार्यक्रम चला। यह निजी संगीत गोष्ठी थी अतः प्रचार के आदर्शों की जंजीर से यह मुक्त थी। गोपियां उद्धव को कृष्ण के लिये सन्देश दे रही थीं। प्रकाश जी के कंठ से करुणा का स्रोत अजस्रधारा में बह रहा था और मैं अपने बिस्तर पर लेटा हुआ आंसुओं से अपना तकिया भिगो रहा था। कभी कभी तो हिचकी भर कर भी रोया। अच्छा ही हुआ मैं वहां नहीं बैठा नहीं तो वहां बैठना और इस प्रकार करुणा पर विह्वल होकर आंसू बहाना संभव कैसे हो सकता। तभी तो मैं कहता हूँ कि प्रकाश करुण रस के सिद्ध गायक हैं किन्तु जाति तथा राष्ट्र में नव उत्साह भरने के लिये वे अपने कंठ के विरुद्ध सदा वीर रस ही गाते रहें हैं। उन्होंने जसवन्त सिंह के शेपू को औरङ्गजेब के शेर से घंटों लड़ाया है चाहे किसी को स्वाद आया चाहे न आया पर उन्हें सन्तोष हुआ कि मैंने जनता में वीरता के भाव भरकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है।

ऐसे हैं हमारे प्रकाश जी। वे सूर और तुलसी के समान ऋषि गाथा के गायक धर्मवीर पं० लेखराम के समान आर्यसमाज के दीवाने और गुरुदत्त विद्यार्थी के समान तिल तिल कर जलते हुए भी वैदिक सिद्धान्तों का प्रकाश फैलाने वाले हैं। इस रोग जर्जर शरीर में हड्डियों का ढांचा मात्र ही नहीं है अपितु प्रतिभा का पर्वताकार पुञ्ज भी है। और लहराता हुआ सहृदयता का अथाह सागर भी है व अपने धर्म के लिये वज्र के समान अटूट आस्था भी है। अतः इस महामानव को मेरा बार बार प्रणाम है।

प्रकाश जी का प्रचारक रूप

प्रकाश जी आर्यसमाज के दीवाने हैं उनका सम्पूर्ण जीवन वैदिक मिशन के लिये अर्पित है। ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों

के प्रचार के लिये उनके पास तन मन धन कुछ भी अदेपन नहीं है। वे वैदिक धर्म का प्रचार करके जितना सुख पाते हैं उतना और कुछ करके नहीं। प्रचार उनका आत्मीय है इसीलिये उन्हें मैंने कभी प्रचारक जीवन में संस्था की व्यवस्था और व्यवस्थापकों की आलोचना करते नहीं सुना। यद्यपि यह सत्य है कि अनेक स्थानों पर व्यवस्थापकों ने उचित व्यवहार नहीं किया पर उन्होंने तो सदा ऐसा ही माना कि ऋषि के विचारों को फैलाना कार्य तो मेरा है इसलिये आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता जो भी कुछ करते हैं वह मेरे कार्य में सहयोग है अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं। वह घटना मुझे कभी नहीं भूलती जब मैं और प्रकाश जी, कानपुर से प्रयाग आर्यसमाज के उत्सव के लिये चले तब प्रकाश जी के ऊपर गठिया रोग का आक्रमण प्रारम्भ हो चुका था। लड़ाई का समय था ट्रेनों में बहुत भीड़ होती थी अतः रात्रि में चलने की हिम्मत नहीं हुई। दिन में पैसिंजर ट्रेन से इलाहाबाद के लिये चले उसमें स्थान सुविधा से मिल गया। प्रकाश जी प्रायः लेटे हुए ही चले क्योंकि उनके सारे शरीर में दर्द हो रहा था, मार्ग में ट्रेन लेट होती गयी और नियत समय से ४ घंटा बाद हम प्रयाग समाज में लगभग ९॥ बजे रात्रि में पहुँचे। स्टेशन पर प्रकाश जी को मैंने गोदी में भरकर ट्रेन से उतारा और सहारे से धीरे धीरे रिक्शा तक पहुँचाया था। समाज के उत्सव का वह प्रथम दिन था, नगर कीर्तन हो चुका था सब लोग सोने लगे थे, मंत्री जी भी घर जा ही रहे थे कि हमारा रिक्शा पहुँचा, मंत्री जी ने अन्य कोई सामान्य कुशल प्रश्न आदि का शिष्टाचार बिना बर्ते ही प्रकाश जी को डाँटते हुए कहा आप देर से क्यों आये, नगर कीर्तन में क्यों नहीं पहुँचे? मुझे मंत्री जी का व्यवहार बड़ा बुरा लगा किन्तु प्रकाश जी तो एक अपराधी की भांति अति नम्र स्वर में सफाई देने लगे कि क्या करें ट्रेन लेट हो गई। वैसे तो मेरे अपने भी प्रचार के कई अनुभव हैं जैसे २० मील गर्मियों में पैदल चलना रात्रि में भोजन न मिलने पर और अधिक देर के कारण छोटे स्थान पर कुछ खाद्य पदार्थ न मिलने से पेट में घोंटू देकर सो जाना, समाज मन्दिर की चाबी लेने के लिये कभी प्रधान कभी मन्त्री के घर के चक्कर काटते हुए फुटबॉल की तरह बाजार में लुढ़कना, रात्रि को उत्सव की समाप्ति के बाद सिर पर सामान लादकर जाना, सवारी का प्रबन्ध न होने से। किन्तु यह सब होने पर भी मैंने प्रकाश जी की तरह सदा यही समझा कि प्रचार का कार्य मेरा है अत इसके लिये मुझे चाहे जो कष्ट उठाना चाहिये। किन्तु उस दिन तो मैं भी विचलित हो गया था। वह घटना मुझे भी अपमान जनक लगी और आज भी उस बात को याद करके मन न जाने कैसा हो जाता है।

समाज के अधिकारी उपदेशक को समाज का अङ्ग नहीं समझते जबकि उपदेशक ही समाज की आत्मा है। आगमन पर स्वागत करते समय निवास की व्यवस्था और विदाई के समय शुद्ध व्यापारिक वृत्ति से काम लिया जाता है। समाज में वही अधिकारी कुशल और सफल समझा जाता है जो उपदेशकों को थोड़े में ही टरकादे। कई बार तो यह भी देखा गया है कि जो देय धन नियत किया है उससे भी कम देकर प्रारम्भ करते हैं और माँगने पर बढाते हैं जो माँगने में संकोच करते हैं उससे धन बचाकर सन्तुष्ट होते हैं कि इतने में ही निपटा दिया।

इस अनुभव से उपदेशकों में भी कुछ ऐसे हो गये हैं जो प्रायः पहिले ठहरा लेते हैं या लेते समय डंडेवाले पठानों का रूप प्रगट करते हैं। प्रयाग पुर में प्रधान ने अपने गेहूँ बेच कर एक प्रचारक की विदाई देकर अपनी इज्जत बचाई यह मैंने स्वयं देखा था।

पर प्रकाश जी ने तो वैदिक धर्म का प्रचार स्वान्तः सुखाय ही किया। उन्होंने अपनी कविता का प्रारम्भ 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' इस गीत से किया था और आज तक हजारों गीत लिखे हैं किन्तु उन सभी में प्रचार की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने जो कुछ लिखा जो कुछ बोला और जो कुछ कहा है वह सब आर्यसमाज के प्रचार के लिये है। प्रकाश जी अपने उपदेशक जीवन में बड़े लोकप्रिय रहे हैं। किसी समाज के अधिकारियों को उनके व्यवहार से कभी असन्तोष नहीं रहा और साथी उपदेशकों में तो वे अपने मधुर तथा विनोदी स्वभाव के कारण इतने प्रिय थे कि उनके रोगी होने से उत्सवों पर न जाने के कारण कई वर्षों तक उत्सव सूने सूने लगते थे और उनकी याद आते ही मन व्यग्र हो

जाता था। अब तो समझ ने धीरे धीरे उस अभाव का अभ्यासी बना दिया है।

एक समय की बात है कि मैं भाई प्रकाशवीर जी और प्रकाशजी विन्ध्य प्रदेश में महाराजपुर के उत्सव पर गये थे। महाराजपुर से हरपालपुर लगभग ४० मील आकर प्रातः ४ बजे ट्रेन झांसी के लिये लेनी थी तब बसें नहीं चलती थीं। ट्रेन भी २४ घंटा में केवल एक ही थी इसलिये उत्सव की समाप्ति पर रात्रि ११ बजे हम एक ट्रक से चले जो बरेड़ा से पान उठाकर हरपालपुर स्टेशन पहुँचाता था। ठेला कई जगह पान लादने के लिये रुका और इस प्रकार चलते चलते सारी रात बीत गई पर स्टेशन तक नहीं पहुँचे हम टार्च से यही देखकर मन ही मन कुड़कुड़ावें कि रात्रि जागरण व्यर्थ हुआ और ट्रेन भी नहीं मिली। पर करते क्या ड्राइवर का मुख्य काम पान उठाना था हमें तो वह कृपा करके ले जा रहा था। हम तो देर होने के कारण ट्रेन न मिलने की आशंका से ही दुःखी थे कि इतने में ही ड्राइवर को नींद का एक झोंका आया और हमारा भरा हुआ ट्रक चूर होने के लिये पेड़ से टकराने चल दिया। कुशल हुई कि हम तीनों आगे ड्राइवर के पास बैठे थे और सावधानी से जाग रहे थे। गाड़ी के बहकते ही हमने हल्ला मचाकर ड्राइवर को जगाया तब उसने दुर्घटना होते होते बचाई। गाड़ी खड़ी करादी ड्राइवर को २ घंटा सोने को हमने कह दिया। इतना दुःख हो रहा था कि हम एक दूसरे से कुछ नहीं बोल रहे थे। झुंझलाहट ने और विवशता ने मूक बना दिया था। पर प्रकाशजी को कहाँ चैन' उन्हें यह गम्भीरता और घुटन का वातावरण कब सह्य था उन्होंने एक व्रज का रसिया गाना शुरू किया।

मैं तो चना, मटर भी खालूंगी चलूंगी तेरे संग।

फिर क्या था हम तीनों के हँसते हँसते पेट में बल पड़ गये क्षण भर में वह भारीपन और झुंझलाहट सब मिट गई। रात्रि जागरण और ट्रेन न मिलने का खेद जाता रहा। आठ बजे दिन चढ़े हरपालपुर पहुँचे। ट्रेन तो चार बजे जा चुकी थी। अब अगले दिन फिर चार बजे स्टेशन पर सामान रखकर शौचादि नित्य कर्म से निवृत्त हुए, इतने में एक माल गाड़ी झांसी जाने के लिये आ गयी। गार्ड से प्रार्थना करके उसमें बैठ गये। खुले डब्बे में अपने बिस्तर खोल लिये। जंगल के सुन्दर दृश्य स्वच्छन्द यात्रा और प्रकाशजी ने जो शेर और कवितायें शुरू कीं, बीच बीच में प्रकाशवीर जी ने अपने लटके सुनाये तो वह नीरस यात्रा रसमय यात्रा में बदल गई। दिन भर यात्रा रही पर शाम तक झाँसी पहुँच जावेंगे जहाँ से सबको ट्रेन मिल जावेगी, यह सोचकर प्रसन्न थे पर अभी हमारी कठिनाइयों का अन्त नहीं था। मालगाड़ी ओरछा पर झाँसी से एक स्टेशन पूर्व अनिश्चितकाल के लिये रुक गई। दो घंटा प्रतीक्षा करके हमको चिन्ता हुई कि यदि यह इसी प्रकार दो घंटा और खड़ी रही तो झांसी में भी कोई गाड़ी नहीं मिलेगी। कुलियों ने बताया कि यह तो प्रायः रात भर भी यहाँ खड़ी रह जाती है तब हमने रात्रि आठ बजे एक तांगा किया जिससे एक घंटे में सदर बाजार झाँसी आये और वहाँ जब तक हम हाथ मुख धो संध्या करके निवृत्त हुए तब तक श्री हेमराज जी भाटिया ने भोजन बनवा दिया। भोजन करके ट्रेन पकड़ ली यों उस भयानक यात्रा का अन्त हुआ। मुझे बार बार यह ध्यान आता है कि उस रात यदि प्रकाश जी हमारे साथ न होते तो हम एक दिन एक रात में ही वर्षों की यातना भुगत लेते।

□□

भक्त प्रकाश कविरत्न

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

आर्य जन कविरत्न जी के नाम नामी से सुपरिचित हैं। वैसे तो आर्य समाज में भक्ति रस की धारा बहाने वाले अनेक कवि हुये हैं परन्तु इसमें दो मत नहीं हो सकते कि भक्त प्रवर अमीं चन्द जी के पश्चात् यदि कोई आर्य जनता के मन को मोह सका तो वह कविरत्न प्रकाशार्य ही हैं।

मध्य काल में भारत में कई सन्तों ने भक्ति रस से सने गीत गाए। वे गीत आज भी झूम २ कर गाए जाते हैं। उन सन्त कवियों में और प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न में एक अन्तर है। सन्तों ने कहीं ज्ञान की निन्दा की तो कहीं कर्म की। किसी ने पाषाण पूजा का खण्डन किया तो किसी ने पाषाण पूजा का पक्ष लिया। इनमें कोई नारी का निन्दक था तो कोई नारी का गुणगान करता रहा। कोई कृष्ण जी का भक्त तो कोई उनका विरोधी। मतैक्य था ही नहीं। श्रद्धेय श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि इन भक्तों का सुधार ऐसा ही था जैसा एक लम्बा व्यक्ति छोटी चादर ओढ़ कर ग्रीष्म ऋतु में सोए। यदि मुख ढाँपता है तो पाँव को मच्छर काटते हैं और यदि पाँव ढांपता है तो मच्छर मुंह पर वार करते हैं। सन्तों ने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया तो नारी की निन्दा कर दी। नारी का ध्यान आया तो ज्ञान की निन्दा कर दी। सुधार का एकांकी कार्यक्रम था।

आर्य विचार धारा को प्रवाहित करते महर्षि दयानन्द जी, द्वारा स्थापित आर्य समाज ने ऐसे कवियों को जन्म दिया जिनकी लेखनी ने समय-समय पर आनन्द रस वर्षाया, श्रद्धा विभोर होकर प्रभु प्रेम के गीत गाये। आवश्यकता पड़ी तो देश, जाति, दुःखी दीन, गो, नारी, विधवा, दलित, अनाथ के लिये रक्त-रोदन भी किया। आर्य कवियों की लेखनी ने आग का राग भी सुनाया, जीवन को सम्पूर्ण रूप में देखा।

उदाहरण के लिए पूज्यपाद भक्त प्रवर अमीचन्द जी ने जहाँ "तुम ही प्रभु चाँद" का मधुर गान गाया वहाँ 'दयानन्द देश हितकारी तेरी हिम्मत पे बलिहारी' गीत गाकर आर्यों को देश सेवा के लिए भी झंझोड़ा। मुनिवर श्रद्धेय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज

ने सन्ध्या के एक मन्त्र पर लिखा :—

मस्तिष्क जीवन पथ चुने भिक्षा हमें दे हमें ज्ञान की ॥
यश की लुटेरी हों भुजाएँ मान की कल्याण की ॥

मैं अधिक इस पद पर क्यों लिखूँ, पाठक इस पद की दूसरी पंक्ति को ध्यान से बार-बार पढ़ें। बिन्दु में सिन्धु भरा है। श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने ही अपने एक विख्यात गीत में यह आग का राग गाया।

जहाँ पेड़ अन्याय का जन्म लेगा।
वहाँ यह बनेगी कुल्हाड़ी नुकीली ॥

कविरत्न जी भी आर्य कवियों की इसी परम्परा में हैं। आपके गीतों की गहराई, साहित्य व लालित्य पर मैं तो साधिकार लिख नहीं सकता। कारण यह है कि साहित्य प्रेमी तो हूँ, साहित्य समालोचक नहीं। छन्द शास्त्र से अनभिज्ञ भी हूँ तथापि साहित्य प्रेमी हूँ। प्रकाश जी के गीत बाल काल से मेरे कानों में गूँज रहे हैं। मैं उनका भक्त हूँ। मुझ पर उनके काव्य का गहरा प्रभाव पड़ा है। मैं जो कुछ अनुभव कर पाया हूँ पाठकों की भेंट करता हूँ।

आर्य जगत् भक्त प्रवर प्रकाश का अभिनन्दन करने जा रहा है। इसी उपलक्ष यह लेख लिख रहा हूँ। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्रकाश जी वर्षों से पक्षाघात से रूग्ण हैं। लम्बी बीमारी भी आर्य कवि का साहस नहीं तोड़ सकी। आशावादी, ईश निष्ठ भक्त प्रकाश लिखता है :—

सहस्रों हुए छेद हैं टूक लाखों,
हुआ तन सकल सूख, पतझड़ सरीखा।
मगर मित्र ! मेरा ये मानस का मधुवन,
सदा फूलता ओर फलता रहेगा ॥

प्रकाश जी महाकवि पं० नाथूराम शंकर शर्मा जी के सुशिष्य है। उनके प्रति लिखा है :—

गुरुदेव शंकर कृपा से मैं 'प्रकाश' तुच्छ
आज जन-गण-मन मञ्जु माल हो गया
अथवा यूं कह दूं कबीर के वचन भांति
लाली देखने चला था मैं भी लाल हो गया।

इन पदों में कविरत्न जी ने अपने पूज्य गुरुदेव के प्रति जहां अपनी श्रद्धा व्यक्त की है वहां नम्रता भी प्रदर्शित की है।

कविरत्न जी अपनी ध्येयनिष्ठा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—

काट लो शिर हो न सकता दीन-हीन निराश
दीप बत्ती सम करूंगा प्राप्त पूर्ण 'प्रकाश'
जाएंगे बलि सैंकड़ों मुझ पर पतंग सप्रीत।
मेरी सब तरह है जीत ॥

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने आर्यों में मिशनरी लग्न पैदा की। आर्य अपनी ही उन्नति पर सन्तुष्ट नहीं हो सकता, वह सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है। सच्चे आर्य का सर्वश्रेष्ठ धन वैदिक विचार धारा है। 'प्रकाश' जी लिखते हैं :—

धन मिटे, धाम मिटे मैं मिटूं न कुछ चिन्ता।
गीत यदि मेरे विश्व में अमिट ये हो जायें ॥
फैंकता हूं सभा में टोपियां विचारों की।
काश दो चार सिरों पर ही फिट ये हो जायें ॥

प्रकाश जी भक्ति काल के भक्त कवि नहीं, आप देव दयानन्द के युग के भक्त हैं। आपके भक्ति गीतों में जहां वेद और उपनिषदों के शुद्ध उच्च भाव हैं, वहाँ दीन जन के लिए आपके सीने में बह रहा दर्द का दरीया भी गीतों का रूप ले लेता है।

एक प्रार्थना गीत में लिखा हैं :—

अन्याय दुराचार दुर्व्यसन से दूर हों।
सब भांति मातृ भूमि का उत्थान करें हम ॥

एक भजन में लिखा है :—

जग में सम्पत्ति सुयश कमावें।
विद्या पढ़ें विवेक बढ़ावें ॥
मातृ भूमि के हों हितकारी।
सुन लो भगवन विनय हमारी ॥

ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है :—

कोष तुम्हारा खुला निरन्तर,
पाते भोजन कीड़ी कुंजर।
समय समय पर घन जल बरसाते,
वन उपवन चहुँ दिश लहराते,
ज्ञान प्रकाश हृदय में भर दो,
भक्ति भावना उर में भर दो।

यह गीत भक्तों को पूज्य पं० बस्तीराम जी के 'धन धन तेरी कारीगरी करतार' की याद करा देता है।

महर्षि दयानन्द ने ज्ञान, कर्म व उपासना तीनों के महत्व पर प्रकाश डाला है। ऋषि दयानन्द तीनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। एक को दूसरे का विरोधी नहीं। भक्त 'प्रकाश' श्रद्धा विभोर होकर इस आर्ष सिद्धान्त को सन्मुख रखकर लिखते हैं:—

ज्ञान प्रकाश हृदय में कर दो।
भक्ति भावना उर में भर दो॥

रुग्ण होते हुये भी 'प्रकाश' जी प्रभु का अटल विश्वास उर में धार कर लिखते हैं :—

मुझ को प्रकाश प्रतिपल आनन्द आन्तरिक है।
जग के क्षणिक सुखों की क्या चाहना करूं मैं॥

यह पद यूं ही नहीं रच दिया। मैंने स्वयं उनको रोग-शय्या पर शोक, चिन्ता, व वेदना से सर्वथा मुक्त पाया। उनके मुख पर मुस्कान व शान्ति कान्ति ही देखी।

ईश भक्त प्रकाश ने अपने एक मधुर गीत में लिखा है:—

न मैं धाम धरती न धन चाहता हूं।
कृपा का तेरी एक कण चाहता हूं॥

इसी भजन में लिखा है:—

विमल ज्ञान धारा से मस्तिष्क उर्वर।
व श्रद्धा से भरपूर मन चाहता हूं।
प्रकाशात्मा में अलौकिक तेरा है।
परम ज्योति प्रत्येक क्षण चाहता हूं॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गीत में भी 'प्रकाश' जी ने वेदोक्त उपासना का सिद्धान्त बड़े सरल ढंग से स्पष्ट कर दिया है। विमल ज्ञान धारा व श्रद्धा का सम्बन्ध केवल वेद धर्म में ही है। ईश्वर की भक्ति में मग्न 'प्रकाश' को ईश्वर के नाम पर चल रहे पाखण्डों का ध्यान आया तो एक गीत लिखा:—

'हमें प्राण प्यारा हमारा मिला न'। अपने इस प्रसिद्ध गीत में 'प्रकाश' जी ऋषि दयानन्द को न भूल सके, जिनकी कृपा से वह सच्चे आस्तिक बन पाए। आचार्य चमूपति जी ने भी एक बार ऋषि के प्रति उर्दू कविता में लिखा था—

शुक्र सद शुक्र मिटी खाना वदोशी दिल की।
कर गई सीने में घर जब से मुहब्बत तेरी॥

भक्त 'प्रकाश' पुकार उठा:—

अनायास योगी दयानन्द आया।
मुझे तत्व वैदिक धरम का बताया॥
पड़ा पर्दा अज्ञान का था हटाया।
मुझे मन भवन में मेरा मीत पाया॥
प्रकाशायें फिर क्लेश कोई रहा न।
हमें प्राण प्यारा हमारा मिला न॥

ईश्वर की सर्वव्यापकता का चिन्तन करते हुये ईश स्तुति में लीन भक्त का हृदय नाच उठा:—

आज 'प्रकाश' प्राण धन पायो।
अंग अंग आनन्द उमगायो॥

मनुष्य ईश से दूर है। ज्ञान की दूरी है। काल व स्थान की नहीं। प्रकाश जी लिखते हैं: —

जल से धोया मल मल के तन।
धोया नहीं कभी कलुषित मन॥
कट जाते त्रय ताप ज्ञान की।
गंगा में कर स्नान न पाया॥

ईश्वर के नाम पर जल स्थल पूजा पर कितना गहरा प्रहार है। वैदिक उपासना दीनों का प्रलाप नहीं। कार्य कारण व कर्म फल सिद्धान्त में विश्वास रखने वाला भक्त प्रकाश लिखता है —

साहस न हारें, कभी शक्ति दीजे।
उर में भरी भव्य भक्ति तुम्हारी॥

अपने प्रसिद्ध गीत 'तुम्हारे दिव्य दर्शन' में कविरत्न जी के हृदय की गहराइयों से स्वर निकला:—

रत्न अनमोल लाते लाने वाले भेंट को तेरी।
मैं केवल आंसुओं की मञ्जु माला लेके आया हूं।

कविरत्न जी प्राणधन प्रभु से प्रार्थी हैं: —

भर दो भक्ति 'प्रकाश' हृदय में।
दुःख में सुख में हार, विजय में॥

'सब मिल के नारी-नर करो उच्चार ओ३म् का' इस भजन में ओ३म् नाम की महिमा दर्शाते हुये 'प्रकाश' जी आस्तिकों को अपनी बात हृदयंगम कराने के लिये महर्षि दयानन्द जी का दृष्टान्त बड़ी सजीव व रसपूर्ण भाषा में देते हैं:—

इस नाम के प्रताप दयानन्द हुये सबल ।
वैदिक विवेक सत्य के साँचे में गये ढल ॥
भय संकटादि में रहे ध्रुव की तरह अटल ।
दुर्बुद्धि दुष्ट दम्भियों के दिल गये दहल ॥
जिस दम किया महर्षि ने जयकार ओ३म् का—

'पोंगा पन्थ का नाम धर्म नहीं। अनर्गल आलाप का नाम जाप नहीं।' प्रकाश जी इन पदों में बता रहे हैं कि जाप वह है जिससे योगी तेजोमय रूप धारण कर अघ अज्ञान का नाश कर देता है। ईश निष्ठा की यही कसौटी है।

पपीहा पर भारतीय कवियों ने बहुत कुछ लिखा है। महाकवि बच्चन ने सतरंगिनी में पपीहा पर एक सुन्दर कविता लिखी है। हमारे कविरत्न जी भी पपीहा को न भूल सके। एक गीत रचा:—

मैंने पूछा पपैया से ऐ, पपैया ।
तेरा किसके विरह में तड़पता जिया ॥

पपीहा का उत्तर है:—

बोला मेरा 'प्रकाश' वही है पिऊ ।
ओ३म् भूः ओ३म् भूः ओ३म् भूः ओ३म् भूः ॥

सारा गीत ही रस की गागर है। इसका अन्तिम भाग पढ़ पढ़कर मैं कई बार जी भर कर रोया हूँ। पाठक भी रसास्वादन कर लें:—

भक्ति रस में दयानन्द ऐसे बहे ।
पूर्ण आजन्म वह ब्रह्मचारी रहे ॥
धर्म रक्षा के हित लाख संकट सहे ।
मरते दम भी यही शब्द मुख से कहे ॥
होवे इच्छा तेरी पूर्ण प्यारे प्रभु ।
ओ३म् भूः ओ३म् भूः ओ३म् भूः ओ३म् भूः

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान अथवा प्रकाश जी के धनी मानी भक्तों को चाहिये कि इस भजन का रिकार्ड भरवा कर भक्ति रस की गंगा बहा दें।

एक और भजन है:—

ओ३म् नाम प्रिय बोल रे। तोहे शान्ति मिलेगी ।
चहूं दिश प्रभु की ज्योति निरखले,
ज्ञान चक्षु को खोल रे। तोहे शान्ति मिलेगी ॥
विषयों में मत खो 'प्रकाश' तू ।
मानुषतन अनमोल रे। तोहे शान्ति मिलेगी ॥

यह इस भजन के कुछ पद हैं। आनन्दघन भगवान् की स्तुति करते हुये इस भजन को गाते हुये वही मस्ती आती है जो भक्त प्रवर अमींचन्द जी के जय जय पिता परम— व तुम हो प्रभु—से आती है।

'पानी में मीन प्यासी' भक्तों ने यह विचार ऋग्वेद के एक मन्त्र से लिया। कण-कण में ईश का निवास है। प्रति क्षण उसकी कृपा की दृष्टि हो रही है फिर जीव तीन तापों से तृप्त है। इसी आशय का एक भजन प्रकाश जी ने लिखा है:—

आनन्द स्रोत बह रहा पर तू उदास है ।
अचरज ये जल में रहके भी मछली को प्यास है ॥

इस गीत के अन्त में आता है —

कुछ तो समय निकाल आत्म शुद्धि के लिये ।
नर-जन्म का उद्देश्य न केवल विलास है ॥
आनन्द मोक्ष का न पा सकेगा तब तलक ।
तू जब तलक 'प्रकाश' इंद्रियों का दास है ॥

इसी प्रकार अनेक गीतों में प्रकाश जी ने ईश्वर की वाणी वेद की ऋचाओं को हिन्दी काव्य का रूप दिया है। ईश्वर का काव्य तो अलौकिक है ही। भक्त प्रकाश जी ने भी अपने प्रयास में कोई कमी नहीं छोड़ी।

धन की बढ़ रही लालसा पर व्यंग्य करते हुये लिखा है—

धन माल अपार बटोर भले ।
पर, इतना ध्यान अवश्य रहे ॥
अपना घर बार बसाने को ।
औरों का घर बरबाद न कर ॥

एक ईश भक्त घोर विपत्ति में भी किस प्रकार आशा व उल्लास से जीवन बिताता है यह एक भजन की इन पंक्तियों में पढ़ें —

अति तममयी निशा में, आकुल भ्रमित पथिक को ।
पावन प्रकाश पूरित, दीपक-किरण तुम्हीं हो ।

आत्मविश्वासी प्रकाश जी प्रभु भक्ति की धारा में बहते हुये हृदय के उद्गार व्यक्त करते हैं —

आदेश तुम्हारा पाऊँ तो, मृतकों में जीवन भर दूं ।
संकेत तुम्हारा पाऊँ तो, पल भर में हलचल कर दूं ।
मत समझो हृदवीणा का,
टूटा तार लिये फिरता हूँ ।

इसी के अन्त में कहा है —

सौन्दर्य स्वर्ग का जिस पर बलि होने को उत्कण्ठित हो
मैं अपने उर में वह सुन्दर
संसार लिये फिरता हूँ ।

वर्षों का पक्षाघात भी "प्रकाश" जी के मन को सूना न बना पाया । कितना आत्म बल है यह उपरोक्त पदों में पाठक देख चुके हैं । एक गीत में प्रकाश जी का स्वाभिमान गर्जना करता है :—

मैं अपने आधार रहूँगा
अपने मन की करुण कहानी सुर तरुवर से भी न कहूँगा ।
मुख से आह ! कढ़ी कढ़ने दो ।
घाव बढ़ रहा है बढ़ने दो ।।

पर, मरहम के अहसानों का भारी भार तनिक न सहूँगा

फिर लिखा है :—

"प्रगति शील प्रस्फुटित सोत सम निज निर्मित नव-पन्थ गहूँगा"

'प्रकाश' के जीवन में इतनी मृदुता का कारण क्या है ? शरीर जीर्ण हो चुका है फिर भी कवि जी मस्त हैं । प्रकाश स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देते हैं —

कण्टक—पथ भी नन्दन—वन हैं, जब तू समीप जीवन धन है तेरी छाया, हे करुणा—धन, भर देती जड़ता में जीवन ।

तेरे ही क्षणिक हास से तो मुझ में प्रकाश नित-नूतन है ।

भक्त 'प्रकाश' जी को आर्य समाज ने प्यार भी दिया है और सत्कार भी । आर्य समाज में कोई बड़ा ही अभागा होगा जो उनके नाम–नामी से अपरिचित होगा । यह तथ्य बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि जिस गीत ने 'प्रकाश' जी की कीर्ति दशों दिशाओं में फैला दी, वह है :—'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने', इस गीत ने 'प्रकाश' जी को अखिल भारतीय स्तर का सम्मानित गीतकार व आर्योपदेशक बना दिया । मेरा ऐसा मत है कि 'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये', यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्वल कोजिये, 'जय जय पिता परम आनन्द दाता, तुम हो प्रभु चांद मैं हूं चकोरा-४ भजनों की लोकप्रियता को श्री पं० बस्तीराम जी का 'धन धन तेरी कारीगरी करतार' व प्रकाश जी का 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' बड़ी सुगमता से प्राप्त कर पाया :

गीत के पहले ही पद पर आर्यजन झूमने लगते हैं ।

अज्ञान अविद्या की चहुं दिश ।
घनघोर घटाएँ छाई थीं ।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश ।
फैला दिया ऋषि दयानन्द ने ।

इस पद में कवि ने ऋषि को श्रद्धांजलि नहीं दी, आर्यों के सीने में ठाठें मार रहे अरमानों के तूफान का चित्र खींच दिया । ऋषि के सैनिकों की लड़ाई अंध अज्ञान से रही है और रहेगी । आर्य अन्धेरे का अस्तित्व सहन नहीं कर सकते ।

जो चीख चीख कर आठ पहर,
करते थे निन्दा वेदों की ।
सर उनका वेदों के आगे
झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने ।

यह पद सुनते ही आर्यों की धमनियों में गर्म रक्त का संचार होता रहा है । आर्यों का गौरव गुमान, स्वाभिमान उछलने और नाचने लगता है । आर्य को परम धर्म वेद से अधिक प्यारा क्या हो सकता है ? कुछ भी नहीं ।

सचमुच 'प्रकाश' जी ने आर्यों की भावनाओं को छूकर आर्यजन को अपने उद्गारों की लहरों पर नचाया है ।

श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय मद्रास में वेद प्रचार के लिये गये । मदुराई के मन्दिर देखे तो किसी ने पूछा मन्दिर कैसे हैं ? आर्य दार्शनिक ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा, 'Physically dark, mentally dark, and spiritually dark." अर्थात् इन मन्दिरों में भौतिक, मानसिक व आध्यात्मिक अन्धेरा ही अन्धेरा है । तभी तो भगवान को दीपक दिखाना पड़ता है ।

ऋषि दयानन्द तो अन्धकार का संहार करने पर कृत–संकल्प थे । 'प्रकाश' जी ने कितने कोमल शब्दों में कहा —

दयानन्द देव वेदों का उजाला ले के आये थे ।
करों में ओ३म् की पावन पताका ले के आये थे ।

इसी में कहा:—

अविद्या सिन्धु से अगणित जनों को पार करने को, परम सुखदायिनी सत्ज्ञान नौका ले के आए थे। ऋषि दयानन्द किसी धाम अथवा नदी को तीर्थ नहीं मानते। वह शुभ कर्म, ज्ञान, सत्संग, स्वाध्याय आदि को तीर्थ मानते हैं। उपर्युक्त पद में बड़े अछूते ढंग से यह बात दर्शाई गई है।

आर्य ऋषि के उपकारों का वर्णन करते हुये अभागे कृतघ्न देशवासियों द्वारा ऋषि से किये गए व्यवहार को, आर्य जाति के साहित्य कानन के कोकिल आचार्य चमूपति ने तो अपना कलेजा चीर कर यूं रख दिया:—

जहरें भी पिलाईं अपनों ने खंजर भी चलाये अपनों ने
अपनों के यह अहसां क्या कम है गैरों से शिकायत क्या होगी?
सदियों को खिजां के बाद खिला इक फूल उसे भी तोड़ लिया
कलियों के मसलने वालों से फूलों की हिफाजत क्या होगी?

भला, प्रकाश का कवि हृदय इस पर क्यों मौन रहे।
पिलाया जहर का प्याला, उन्हीं नादान लोगों ने।
कि वे जिनके लिये, अमृत का प्याला ले के आये थे।

मुझे भली-भांति स्मरण है कि महर्षि दीक्षा शताब्दी पर मथुरा में गुरु विरजादन्द कुटी के समीप लाउड स्पीकर पर इस गीत के इस पद को सुन कर मैं फूट-फूटकर रोया था।

मैंने भी इस विषय पर लिखा है:—
कौतुक गये सभी के कौतुक तेरे निराले,
तुझ पर चलाये भाले विष के पिलाए प्याले॥
खण्डन खड्ग चला कर पाखण्ड मिटाने वाले।
ज्ञानी सजग ऋषि थे जग को जगाने वाले॥

कविरत्न जी ने महर्षि जीवन के महाकाव्य में ऋषि के गृह त्याग का वर्णन करते हुए एक अनूठी बात लिखी है। मैं समझता हूँ कि सब रसिक इसका स्वाद चखेंगे:—

था विजन बन मार्ग में, कज्जल निशा बरसा रही थी।
वायु की अति तीव्र ध्वनि, सन सन सुनाई आ रही थी॥
हिल रहे थे पात डाली, झाड़ियाँ थर्रा रही थीं।
थे सभी मानों अंधेरी, रात से भय खा रही थीं॥
जा रहे थे उस घड़ी, निर्द्वन्द्व एकाकी दयानन्द।
ज्योति थे उर में लिए, प्रभु भक्ति श्रद्धा की दयानन्द॥

घोर अन्धेरे में, डरानी रात में, उर में, प्रभु भक्ति की ज्योति लेकर दयानन्द कैसे आगे बढ़ रहे थे? यह भी 'प्रकाश' के भक्ति विलीन हृदय से पूछिये:—

स्रवित निर्झर नीर होता।
कठिन पर्वत तोड़कर ज्यों,
लक्ष्य और प्रबुद्ध बढ़ते,
मोह बन्धन तोड़कर त्यों?

इन पदों के सौन्दर्य पर मैं क्या लिखूं? मान्य 'प्रणव' अथवा 'शरर' जी या कविवर राम निवासजी विद्यार्थी की कोटि का कोई विद्वान कवि ही इनका मूल्यांकन कर सकता है।

□□

प्रकाश जी के प्रति

हे प्रकाश कविवर सत्य का प्रकाश कर
असत्, अज्ञान, अन्धकार तू मिटाये जा
शत् शत् वर्षों लौं अशान्त भ्रान्त मानवों की
सरस ललित गाव्य सुधा तू पिलाये जा
निहृट निराश की नितान्त तू विनष्ट कर
अमिय उल्लास, आशा, ओज तू बढ़ाये जा
विकृत काया से कर काया बल्प जगती का
वातावरण अशुद्ध स्वच्छ तू बनाये जा

नागेन्द्र झा०

□□

बधाई

आज सुमंगल गीत गा रहे, बन के पंछी, नभ के तारे ।
अभिनन्दन कविवर 'प्रकाश' का, थिरक रहे हैं गात हमारे ।।
सर्व दिशायें गीत गा रहीं, जगमग जगमग करते तारे ।
नभ प्रकाश की ज्योति जगाता, आर्य प्रतिज्ञा मन में धारे ।।
शिशिर काल की वायु सुगंधित, मीर समीर बहा कर लाई ।
यौवन पर है सुमन वाटिका, पुष्प खिले, वेला लहराई ।।
कली चली घूंघट पट खोले, सजधन कर मंडप में आई ।
ठुमक, ठुमक, इठलाती, गाती, अभिनन्दन पर देन बधाई ।।
कविरत्न प्रकाश चन्द्र जी का, यह अभिनन्दन, कवि सम्मेलन ।
कवियों को रचनायें सुन कर, पुलकायमान होता तन मन ।।
विद्वित समाज की शोभालखि, हर्षाय रहे हैं श्रोता गन ।
वेदों की ध्वनी से गूंज उठा, आना सागर तट का आंगन ।।
कविरत्न श्री प्रकाश चन्द्र, अर्पित हैं श्रद्धा सुमन आज ।
शुभ अभिनन्दन के अवसर पर, ऋषि मेले के हैं सजे साज ।।
अध्यक्ष सुदर्शनदेव श्री, हैं शाहपुरा राजाधिराज ।
जो आर्य नरेश कहावे हैं, परिचित है सब विद्वित समाज ।।
प्रकाशचन्द्र के छन्दन में, उत्तम विचार और गहराई ।
वेदों का डंका आलम में, बजवा दिया ऋषि दिया गाई ।।
ऋषि दयानन्द के अनुगामी, बरती वेदों की प्रभुताई ।
सब आर्य जगत को है भाई, मीठे शब्दों की मृदुताई ।।
इनका कवि ऊँचा कलाकार, साहित्यकार, संगीतकार ।
माँ सरस्वती की वीणां का झन्कार उठा है तार तार ।।
आना सागर तट पर आई, देखो बहार छाई बहार ।
मैं चन्दनहार सजा लाया, कविगण लाये हैं पुष्पहार ।।
हैं शब्दशास्त्र के जादूगर, अनुआस सुप्रास लगाते हैं ।
गायक भी बड़े सुरीले हैं, संगीत कुशल कहलाते हैं ।।
सुर, ताल, अलाप तराने में, संगीत कला दर्शाते हैं ।
हैं राग, रागनी के ताता, बन्दिश भी खूब निभाते हैं ।।
है धन्य धन्य यह अभिनन्दन, है धन्य धन्य आर्यसमाज ।
पंडित प्रकाश, श्रोता समाज, रहे कविगण साहित्यक विराज ।।
ऋषि दयानन्द की महिमा का, दिगदर्शन सांचा हुआ आज ।
'त्रिभुवन' में छाये सुयश कीर्ति, वेदों का साजे अमर साज ।।

त्रिभुवन शंकर शर्मा 'आरिफ़'

□□

प्रकाश चन्द्र जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सुनीति देवी

"अति मिकट विकट संकट का ठठ शिर पर है,
परवाह नहीं जब रक्षक जगदीश्वर है।"

शैशव में गुनगुनाई हुई इन पंक्तियों के रचनाकार के जब दर्शन किए तो वास्तव में वे गीत की साकार प्रतिमा से जान पड़े। विशाल उन्नत भव्य ललाट, तेजोद्दीप्त नयन, शारीरिक क्लेश की थोड़ी भी परवाह न करती हुई चन्द्रमा के समान शीतल, प्रकाश की किरणें बिखेरती मुस्कान, भावनाओं से भरा हृदय और कल्पना की धुँधिलमा से परे, शब्दों की मूर्ति गढने वाला उदात्त मस्तिष्क, कुल मिलाकर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की कथा कहते प्रतीत हुए।

अनूठा व्यक्तित्व

जब सहसा ही असाध्य रोग मनुष्य पर आक्रमण कर बैठता है तो साधारण व्यक्ति विचलित हो कर भाग्य को कोसता आँसू बहाता दिखाई पड़ता है परन्तु प्रकाश जी का असाधारण व्यक्तित्व, शरीर से परे, आत्मा के प्रकाश से आलोकित सहस्रों मानवों के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह अविचलित खड़ा दृष्टिगत हुआ।

उस अनोखे व्यक्तित्व के सम्मुख, हृदय अनायास ही श्रद्धा से नत हो उठता है। प्रेरणा के अजस्र स्रोत प्रकाश जी की वाणी व लेखनी के प्रभावशाली जादू का रहस्य, तभी खुलता है जब कि कोई उस पावन मूर्ति के दर्शन कर लेता है।

उनके गीत, हृदय मस्तिष्क पर एक अमिट प्रभाव अंकित कर देते हैं। इसका कारण यही है कि उनका कवि रूप, मात्र शब्दों से खिलवाड़ करने या केवल जन मानस के मनोरंजनार्थ न हो कर, एक विशेष लक्ष्य को लिए हुए है। हृदय की अनुभूति, मस्तिष्क के ज्ञान की खराद पर चढ़ कर, असाधारण हो जाती है।

सोद्देश्य काव्य रचना

उनका मानस महर्षि दयानन्द और आर्य समाज पर उसी तरह न्यौछावर है, जैसे कि सूर का कृष्ण पर, तुलसी का भगवान राम पर तथा रसखान एवं मीरा

का साँवरे सलोने कृष्ण के माधुर्य पर न्यौछावर था। यदि कहीं आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के घेरे से निकल कर उनकी काव्य कला जन मानस के मनोरंजनार्थ शब्द विलास करती तो उनकी भी गणना समकालीन कवियों की तरह 'यशसे अर्थकृते' आदि के रूप में कुछ काल तक व्यापक बन जाती। परन्तु उद्देश्य को समर्पित उनका काव्य शाश्वत व चिरन्तन है। युगों युगों तक उनका धवल प्रकाश आर्य जगत् को आलोकित करता रहेगा।

अपनी अनूठी काव्य रचना से जहाँ उन्होंने ऋषि की गौरव गाथा गाई है, आर्य समाज का सन्देश विश्व के कोने-कोने में पहुँचाया है, वहाँ उस सन्देश को जीवन में उतार कर पारलौकिक सिद्धि के सोपान को छूने का भी सफल प्रयास किया है। भक्ति रस से आप्लावित ईश्वर के अनूठे रस में पगा उनका हृदय अन्यत्र सुख पा ही नहीं सकता था।

अनन्य ईश्वर भक्त, सिद्धान्तों के दृढ़ विश्वासी प्रकाश जी ने अध्यात्म सुधा का जी भर पान किया है और उसी पीयूष रस से भरे प्याले वे जनता जनार्दन को पिलाकर उसे भी मस्त करते रहे हैं। लक्ष्य के लिए उन्होंने अपने कवि रूप को समर्पित कर दिया। उनका यह समर्पण ही, उन्हें सहज ही अन्य कवियों से ऊपर उठा देता है।

महकता सौरभ

काँटो के बीच भी हँसता, गुलाब का सा उनका व्यक्तित्व, अपनी काव्य सुरभि से समस्त आर्य उपवन को महकाता प्रतीत होता है! ऋषि दयानन्द की वाटिका का यह अनुपम पुष्प अपनी मदमाती सुगंध से युग के जन मानस का हृदय सुवासित करता चला जा रहा है।

काव्य की त्रिवेणी

प्रकाश जी की काव्य धारा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक अध्यात्म की शान्त धारा, दूसरी राष्ट्रप्रेम उद्बोधन, समाज सुधार की भावना से ओतप्रोत उफनाती धारा, तीसरी राष्ट्र नायकों के चरित्र वैशिष्ट्य की गंभीर धारा। किसी भी एक धारा में स्नान कर हृदय पावन हो उठता है और फिर कहीं त्रिवेणी संगम में ही अवगाहन कर लिया जाय तो फिर उस आनन्द को अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह अनुभूति का ही विषय बन जाता है।

यूँ तो प्रकाश जी की कृतियों पर स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है, परन्तु इस लघु लेख में उसका एक संक्षिप्त परिचय ही पर्याप्त होगा। देखिए इस त्रिवेणी की एक झलक—

प्रभु प्रेम का प्यासा भक्त हृदय और कुछ नहीं चाहता उसे तो बस प्रभु की कृपा के कुछ कण ही पर्याप्त हैं—

न मैं धाम धरती न धन चाहता हूँ
कृपा का तेरी एक कण चाहता हूँ

अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों से खींचकर एक मात्र प्रभु चिन्तन की ओर अग्रसर करने के लिए कवि कहता है—

रटे नाम तेरा वो चाहूँ मैं रसना
सुने गान तेरा श्रवण चाहता हूँ।

कभी-कभी उनका भक्त हृदय परमात्मा के स्वरूप का दर्शन करने लालायित हो उठता है—

तुम्हारे दिव्य दर्शन की मैं इच्छा लेके आया हूँ
पिला दो प्रेम का अमृत पिपासा लेके आया हूँ।

फिर अपने गहन चिन्तन व अनुभूति के बल पर वह सृष्टि के कण-कण में उसी परमात्मा के दर्शन कर कृत-कृत्य हो जाता है—

'सूर्य की लाली में और चन्द्र की उजाली में बोलो तुम कौन हो?' पूरी कविता में नाना प्रकार की ऊहापोह के पश्चात चराचर जगत् के दृश्य सौन्दर्य में उसी अदृश्य के दर्शन पा कर कवि भाव विभोर हो उठा है। यह एक कविता ही उनकी योग्यता के प्रमाण के लिए पर्याप्त है।

इसी तरह राष्ट्र के सोये हुए मानस को झकझोरते हुए वे अपनी तेजस्विनी वाणी में हृदय के उद्गार इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

जगत् युद्ध की ज्वाल में जल रहा है
प्रबल चक्र अन्याय का चल रहा है

मनुजता जगत् को सिखाये चला जा
जो सोये हैं उनको जगाये चला जा।

राष्ट्रीय भावनाओं से भरा हुआ उनका हृदय कहीं अपनी देश की प्रशस्ति में झूम-झूम उठता है और वे कह उठते हैं—

सब देश देशन से न्यारा
सखि भारत देश मोहे प्यारा
या
भारत मात बसी मेरे मन में

राष्ट्र में फैले अनाचार भ्रष्टाचार को देखकर यह स्वतंत्रता सेनानी व्यथित हो जाता है परन्तु फिर भी प्रेरणा का स्रोत बनकर नवयुवकों को राष्ट्र निर्माण के लिए प्रेरित करते हुए उन्होंने अपना एक काव्य संग्रह 'राष्ट्र जागरण गीत' नाम से लिखा है जिसमें हर एक गीत नवयुवकों के हृदयों को झिझोड़ कर रखने वाला है। अपनी सीमाओं पर वैरीजनों के आक्रमण को लक्ष्य में रखकर लिखे गये उनके प्रयाण गीत अनूठे बन पड़े हैं—

तू सिंह सा दहाड़ वैरी का मान झाड़
झण्डा विजय का गाड़ दे पलट तू पहाड़
तोड़ गगन के सितारे महा सिन्धु चीर
बढ़ आगे वीर धीर

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को त्याग और सेवा का पाठ पढ़ाते हुए वे कहते हैं—

धनवान् दें धन कोष भामाशाह के समान
उत्पन्न करें अन्न अधिक से अधिक किसान
कल कारखाने वाले दें उपयोग के सामान
सेवा के रंग में रंगा हर एक का मन हो
वह काम करो जिस से सुखी अपना वतन हो

वे हिन्द के सैनिकों में पवन सुत हनुमान का सा क्षात्र तेज जगाना चाहते हैं। भविष्य के कर्णधारों को जातपांत, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता आदि से ऊपर उठाकर भारतीयता के रंग में रंगाने के लिए उन का कवि हृदय मचल उठता है। राष्ट्र के हर व्यक्ति को जागरूक रहने की चेतावनी देते हुए वे सबको कर्तव्य-निष्ठ बने रहने का उद्‌बोधन देते हैं।

कीट पतंगों की तरह शय्या पर पड़े मरने की अपेक्षा अपने कर्तव्य को पूर्ण कर हँसते-हँसते राष्ट्र की बलिवेदी पर न्यौछावर होना उनकी दृष्टि में गौरव-पूर्ण कार्य है।

कीड़े और मकोड़ों सदृश,
घर में सड़कर मरना क्या रे!
समरांगण में उतर पड़े तो,
फिर पीछे पग धरना क्या रे!

राष्ट्र के भाल को उन्नत करने वाले शहीदों के प्रति श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए वे उनका गुणगान करते अघाते नहीं है और उन बुझती प्रकाश किरणों से वे एक नया आलोक बिखेरना चाहते हैं। नई जवानी को ललकारते हुए उसे अँगड़ाई लेकर उठ खड़े होने का उत्साह भरने वाले कवि प्रकाशजी की एक-एक पंक्तियाँ अनुपम बन पड़ी हैं। विश्व भर का इतिहास इस बात का साक्षी है कि क्रान्ति या परिवर्तन का पौधा हमेशा से नये खून से सींचा जाता रहा है। मदमस्त जवानी ने अन्यायी शासकों के तख्ते पलट दिये हैं—

हाँ यही जवानी दीवानी धरती आकाश हिलाती है
हाँ यही जवानी मरुस्थली में सुरभित सुमन दिलाती है
हाँ यही जवानी हीन मृतक राष्ट्रों को पुनः जिलाती है
हाँ यही जवानी क्रूर शासनों को धूल मिलाती है
करती न जवानी समझौता गद्दारों बेईमानों से
लड़ती आई हैं जवानियाँ विपदाओं के तूफानों से।

केवल हलचल मचाना ही पर्याप्त नहीं। नव-निर्माण की नींव व प्रासाद निर्माण भी इन्हीं नव-युवकों की जवानियाँ करेंगी इसी आशा के साथ कवि-हृदय जवानों का आह्वान करता है।

कह दो यह बात जवानों से
करके चरित्र निर्माण प्रथम
निर्माण राष्ट्र का कर जाओ

प्रकाशजी का 'बढ़े चलो बढ़े चलो' प्रयाण गीत प्रसाद के प्रयाण गीत का स्मरण करा देता है। राष्ट्र की पताका को ऊँचा किए विपत्ति व विघ्न की बाधाओं को चीर कर आगे बढ़ने का सन्देश उनकी एक-एक पंक्ति में भरा हुआ मिलता है।

अतीत के उज्ज्वल चरित्र, छत्रपति शिवाजी अमरसिंह राठौर, अभिमन्यु, हाड़ा की रानी आदि

कई वीर पुरुषों पर उनकी ओजस्विनी लेखनी चली है अतीत से प्रेरणा प्राप्त कर वर्तमान को संवार कर एक मधुमय देश बनाने की भविष्य की कल्पना का स्वप्न उन्होंने संजोया हुआ है। वीर रस से भरे हुए उनके विचार हृदय में वीरता की तरंगे प्रवाहित कर देते हैं। अन्तस्तल से निकले हुए भाव पाठक को झकझोर देते हैं।

रस, अलंकार, भाषा

भावों की दृष्टि से उन का काव्य वीर और शान्त रस से आपूरित है। राष्ट्रीय भावना वीर रस से सनी हुई है और अध्यातम शान्त रस से आवेष्टित है। वीर रस और शान्त रस का अद्भुत संगम प्रकाशजी की अपनी विशेपता है। उन की रस फुहारों से पाठक तृप्त हो जाता है। कहीं कहीं एकाध स्थल पर हास्य रस की छटा भी क्वचित् दिखाई पड़ जाती है। इसी तरह कहीं कहीं करुण रस भी भावों की हरियाली पर ओस के मुक्ता कणों की तरह अपनी आभा प्रदर्शित करता है। शृंगार रस को तो उन्होंने राष्ट्र प्रेम व प्रभु भक्ति में ही आत्मसात् कर दिया है यही कारण है कि आज का सामान्य पाठक उन से दूर है। शृंगार रस से भरे हिन्दी साहित्य के इस वातावरण में प्रकाशजी का काव्य मेघों में कौंधने वाल विद्युत् प्रकाश की तरह ही कहा जा सकता है जिसके तेज के सम्मुख मेघ मण्डल भी हतप्रभ सा हो उठता है। उन की रस निर्झरिणी सहृदय पाठक को अभिभूत कर लेती है। अनुप्रास उन का प्रिय अलंकार है। उपमा, रूपक, यमक, श्लेप आदि भी यथा स्थान पाये जाते है, काव्य की भापा ओज पूर्ण, उन्नत, साहित्यिक एवं संस्कृत निष्ठ है। भापा भावों की अनुवर्तिनी बन प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। कला और भावों का परस्पर सामञ्जस्य अनायास ही उन्हें उच्च कोटि के कवियों के समकक्ष बैठा देता है।

उनका काव्य सत्यं शिवं सुन्दरं का अनुमोदक है वे कवि पहले हैं, संगीतकार वाद में। काव्य और संगीत का यह मणि काञ्चन संयोग भी उन की ऐसी दैवी प्रतिभा है जो सहज ही अन्य कवियों के लिये ईर्ष्या की वस्तु बन सकता है।

धन और यश लिप्सा से दूर सरस्वती मन्दिर का यह साधक अपनी साधना के सौ वसन्त पूर्ण करे यही हार्दिक अभिलाषा है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रस सिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्

□□

अमर काव्य ! अमर गीत !

विद्या भास्कर शास्त्री

रहेगा गौरव भी जगत जब तक यह रहेगा।
धरा जबलों होगी गगन जब तक यह रहेगा ॥
तुम्हारे काव्यों का कवि, सदा सम्मान होगा।
तुम्हारे गीतों का सतत जग में मान होगा ॥

□□

प्रकाश जी : एक जिन्दा शहीद

राम नारायण चौधरी

शहीद दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो अपने धर्म, देश अथवा किसी पवित्र ध्येय के लिये प्राण देते हैं। वे मरकर शहीद होते हैं। दूसरे शहीद वे होते हैं जो इन्हीं तीनों चीजों के लिये जीते हैं, जो इन्हीं के लिये सतत् कार्य करते हैं और यही उनके रोम रोम में बसे होते हैं। फारसी के विख्यात संत कवि हाफिज के शब्दों में 'हर रगे मा तार गश्ता हाजते जुन्नार नेस्त' (हमारी रग रग तार हो गई है, हमें जनेऊ की जरूरत नहीं।)

कविरत्न प्रकाश जी को मैं ऐसा ही एक जिन्दा शहीद मानता हूँ। उनका सारा जीवन धर्म और राष्ट्र की सेवा में ही बीता है। आर्य-समाज के जितने उदेपशकों से मेरा परिचय हुआ उन सबमें–और उनकी संख्या काफी है–मैं प्रकाश जी को शिरोमणि मानता हूँ। उनमें से कई इनसे अधिक विद्वान, कई अधिक अच्छे वक्ता और कई बढ़िया लेखक हैं मगर जिसे इन्होंने अपने जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य बनाया उसके लिये जो तड़प, सर्वार्पण भावना प्रकाश जी में देखी गई वह औरों में नहीं पाई गई। इस बारे में इनका बाह्य और अभ्यन्तर एक है।

मैं प्रकाश जी को चालीस वर्ष से जानता हूँ। ये असहयोग आन्दोलन में हमारे साथी थे, नमक सत्याग्रह में हमारे सहयोगी और कारावासी थे। इनकी कविताएं उस समय भी जादू का असर करती थीं। बाद में तो वे और भी प्राणदायक हो गई। मैंने कई बार इन्हें संकीर्तन करते–गाते और बोलते–सुना है और हर बार मुझे ऐसा लगा कि यह इनकी वाणी नहीं बोलती, इनका हृदय बोलता है, इनकी आत्मा बोलती है, इसीलिये उसका असर होता है।

अगर इस आदमी को योगी भी कहा जाय तो क्या अतिशयोक्ति होगी ? जिस मनुष्य का शरीर एक प्रकार से पंगु हो गया है, जिसके अनेक महत्वपूर्ण अंग बेकार हो गये हैं, जिसे अपनी प्रारंभिक आवश्यकताएँ पूरी करने को भी दूसरों का सहारा लेना पड़ता है और साधारण अर्थ में जिसका जीवन अत्यंत दुःखी माना जा सकता है, वह

यदि हमेशा अपनी कलम, जवान और दिमाग से देश, धर्म और पवित्र जीवन के लिये सोचता, बोलता और लिखता रहे, जिसके मुख पर कभी विषाद, क्रोध या द्वेष की छाया तक नहीं झलकती हो और सदा प्रसन्न वदन रहता हो उसे योगी न कहें तो क्या कहें ?

प्रकाश जी समग्र रूप में कवि ही हैं। इसी रूप में अपनी उदात्त भावनाएँ, अपने उच्च विचार, अपनी पीड़ा, अपनी प्रेरणा, अपना व्यंग्य और अपनी भर्त्सनाएँ प्रकट करते हैं और जब वे संगीत के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, तब वे महर्षि दयानन्द के मूर्तिमान संदेश बन जाते हैं। वे जितने उच्च कोटि के कवि है उतने ही बढ़िया गायक भी हैं। उन्होंने प्राचीन गुरुओं की भांति कितने ही युवकों को इन दोनों विधाओं की निःशुल्क शिक्षा दी है।

इनकी कृतियां अनेक हैं। वे एक से एक श्रेष्ठ हैं। वे हज़ारों की संख्या में छपी हैं और लाखों भारतीयों को अनुप्राणित कर चुकी हैं। विषयों के चयन में भी इनकी सूझबूझ मौलिक है। वे धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी हैं। उनके व्यवहार में आर्य संस्कृति हर समय हर जगह झलकती है। वे मुझसे उम्र में छोटे हैं, मगर में उन्हें अपने मन में बड़ा मान कर मानसिक नमस्कार करता हूँ लेकिन वे तो जब मिलते हैं अपनी नम्रता और आदर भावना स्पष्ट ही व्यक्त करते हैं। मैंने उनके मुख से किसी की निन्दा नहीं सुनी। उनका चरित्र उज्जवल है।

मुझे कोई सन्देह नहीं कि प्रकाशजी की अंतिम इच्छा वही होगी जो उर्दू के राष्ट्र-कवि लालचंद फलक के इस शेर में प्रगट हुई है :—

दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत।
मेरी मिट्टी से भी खुशबुए वफा आयेगी।

लेकिन प्रकाशजी का वतन वह स्वदेश होगा जिसमें धर्म प्रधान और राजनीति उस की सहचरी होगी, अनुगामिनी होगी।

एक प्रार्थना प्रकाशजी से मेरी भी है और मुझे विश्वास है कि समस्त आर्य जगत मुझसे सहमत होगा कि जब तक बंगला देश की समस्या वहां की जनता की इच्छानुसार और इसलिये भारत की इच्छानुसार भी हल न हो जाय तब तक प्रकाश जी अपनी पूरी प्रतिभा देशवासियों को यह प्रतीति कराने में लगा दें कि आर्य धर्म, आर्य संस्कृति और भारतीय राष्ट्र का कल्याण बंगला देश के हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और ईसाई से बने धर्म निरपेक्ष अर्थात् सर्व धर्म समभाव वाले राष्ट्र को स्वाधीन बनने में सब प्रकार की सहायता देने में है। मेरे विचार में प्रकाश जी का यह कार्य उनके जीवन में सर्वोत्तम माना जायगा और वे भारतीय इतिहास में अमर हो जायेंगे।

□□

प्रकाश जी के भजनों को मैं और मेरे बच्चे बड़ी रुचि और श्रद्धा से गाया करते हैं क्योंकि उनमें प्रत्येक प्रकार के गुण भरे हुए हैं। विशेषता यह है कि वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं हैं बल्कि योग्यता से पुष्टि करते हैं।

—रामचंद्र देहलवी

बहुमुखी व्यक्तित्व

गणेशदत्त आर्य

श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न को कौन नहीं जानता। पं० जी ने लगभग १६ वर्ष की आयु में ही वेदों का डंका आलम में खूब घूम-घूम कर बजाया और शायद ही भारत का कोई भाग आपसे अछूता रहा होगा। आर्य जगत आपकी सेवाओं का सदैव ऋणी रहेगा।

सन् १६४८ में आपके परिवार के सदस्य के रूप में मुझे भी आपके सामीप्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परिवार में वृद्ध माता, विधवा बहन, बड़े भाई साहब और आपकी धर्मपत्नि व एक सुपुत्री, इतने ही सदस्य थे।

स्वतन्त्रता आन्दोलन—विद्यार्थी जीवन से ही आप देश प्रेम की लगन से प्रभावित हुए। अल्पायु में पिता श्री का स्नेह टूट गया। घर का सारा दायित्व आप पर आ पड़ा फिर भी बराबर राष्ट्रीय कार्य में भाग लेते रहे और जेलों में भी गये। स्वतन्त्रता के बाद यह क्षेत्र आपको रुचिकर नहीं लगा और महर्षि दयानन्द सरस्वती की इच्छानुसार समाज सुधार और वैदिक धर्म का प्रचार कार्य ही आपने उचित समझा।

वैदिक धर्म के प्रति लगन—दक्षिण हैदराबाद के सत्याग्रह में आपकी सेवाओं का अनुपम उदाहरण हमें सदैव आपकी स्मृति दिलाता रहेगा। वृद्ध माता अस्वस्थ्य, धर्मपत्नि मृत्यु के मुंह में और स्वयं १०४ डिग्री ज्वर से पीड़ित अवस्था में रात दिन कार्य में लगे रहे।

आर्थिक स्थिति—आपके जीवन में अनेक आर्थिक प्रलोभन आये परन्तु आपने दृढ़तापूर्वक सब को अस्वीकार किया। कई संस्थाओं ने आपकी सेवाओं के लिये अधिक धन का प्रस्ताव रक्खा और चलचित्र जगत आपकी सेवाओं के लिये सदैव तरसता रहा परन्तु महर्षि के प्रति आपकी निष्ठा ने आपको अपने पथ से कभी विचलित नहीं होने दिया। यही कारण है कि आज इस तपस्वी के पास रहने को अपनी कुटिया भी नहीं है। वह अपने विदुषी बहन के मकान में रहते हैं। २५ वर्ष

से लगभग गठिया रोग से पीड़ित होते हुए भी अपने प्रचार कार्य में आज तक लगे हुए हैं। यद्यपि आर्य बन्धु, बहिनों ने पर्याप्त आर्थिक सहयोग दिया है। फिर भी अर्थाभाव में आपका अपार साहित्य अप्रकाशित रूप में है। महाभारत काव्य इसी समय की देन है। आपका कुछ साहित्य जो प्रकाशन में आया है, वह इस प्रकार है। प्रकाश भजनावली भाग ५, प्रकाश भजन सत्संग, कहावत कवितावली, प्रकाशतरंगणी, गो गीत प्रकाश—प्रकाश गीत भाग ४ आदि हैं।

विद्यार्थियों के प्रति स्नेह भाव—आपके जीवन में अनेक उदाहरण हैं कि ऐसे कई होनहार बालक आपके आश्रित रह कर अपना जीवन बनापाये हैं, जिनमें कई अध्यापक, प्रचारक और अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रहे, हैं। आज भी कुछ विद्यार्थी आपकी कृपा के पात्र अवश्य हैं। श्री पं० पन्नालालजी पीयूष आपके ही उत्तराधिकारी हैं, जो आर्य जगत में अपने मधुर कंठ से आपके साहित्य व भजनों की धूम मचा रहे हैं। यह—सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है।

आपकी भाषा एवं काव्य साहित्य—काव्य में सभी अंगों को स्पर्श किया है। धर्म प्रचार, समाज सुधार, नारीसुधार, शिक्षासुधार, प्रकृति सौन्दर्य, ईश्वर स्तुति, राजस्थानी वीर गाथाएँ और महाभारत मुख्य रहे हैं। कविता, भजन, गीत, दोहे, सोरठे, छन्द और बारह भाषाओं की कविता प्रसिद्ध है। आपकी भाषा सरल, सुमधुर है। हिन्दी खड़ी बोली एवं बृज भाषा के शब्दों का सुन्दर प्रयोग झलकता है। आपके गीत, भजन और ईश वन्दना घर-घर में व विद्यालयों में बड़े प्रेम से सुने जाते हैं। आर्य समाजों के उत्सवों पर भजनोपदेशकों द्वारा सुनने को मिलते हैं। श्री के. एल. वर्मा सा० के प्रयत्न से श्री पीयूषजी के नेतृत्व में रेकार्डिंग भी किये गये हैं।

कुछ अनोखे संस्मरण—आप जब कभी अपने निवास स्थान में साहित्य व संगीत में इतने तल्लीन हो जाते कि खाना-पीना ही भूल जाते। आपके परिवार के सदस्य आपकी प्रतीक्षा में ही रह जाते।

एक बार अस्वस्थ्य होने पर भी किसी रचना में खो गये। पास में औषधि पड़ी थी परन्तु ध्यानावस्था में हाथ दवात पर चला गया और पानी के ग्लास में स्याही डालकर पी गये। कविता पूर्ण होते ही पूज्य माताजी को सुनाने विह्वल हो उठे। कविता सुनने के बाद इनके मुंह के सामने ग्लास रख कर सब खूब हंसने लगे। सभी ने स्वास्थ्य के प्रति ध्यान रखने का आग्रह किया।

अप्रेल-मई की बात है। भीषण गर्मी में पं० जी हाथ छड़ी ऊंची किये किसी कविसम्मेलन की अध्यक्षता हेतु पधार रहे थे। पास में विरजानन्द विद्यालय है। यहां के प्रधानाचार्य श्री पं० बृजनन्दनजी शर्मा, जो बड़े मृदु विनोदी और पड़ौसी हैं। देखकर पूछ बैठे पं० जी इस तेज धूप में किधर पधारना हो रहा है। अन्य सभी साथी बन्धु अपनी हँसी रोक न सके और वह शीघ्र ही ताड़ गये और कहने लगे क्या करूँ भाई कभी-कभी अपनी दुनियां में खो जाता हूँ। अपनी धुन में कविजी छड़ी को छाता जाने हुए थे।

एक बार आपको मेयोकॉलेज में आमंत्रित किया गया साथ में मैं भी था। रात्रि को ठीक ८ बजे पहुँचना था। ७-४५ पर हम भिनाय कोठी के पास पहुंचे, जब ख्याल आया कि ८ बजे मेयो कॉलेज पहुँचना था। उसी समय एक तांगे वाले ने इस दुविधा को ताड़ लिया और उसने ठीक ८ बजे कॉलेज पहुँचा दिया। वहां सभी बड़े आतुर होकर आपके स्वागत के लिये लालायित थे।

यह घटना आपने स्वयं से सुनाई थी। गुजरात में किसी आर्यसमाज के उत्सव की बात है। किसी आर्य प्रेमी ने अपने यहां भोजन के लिये सबको आमंत्रित किया था। भोजन में खीर थी। सभी खीर भरे कटोरों से बात कर रहे थे, इतने में किसी ने मीठे की इच्छा व्यक्त की और एक तश्तरी में मीठा (नमक) आ गया। पं० जी अपनी दुनियां में थे। इन्होंने बूरा समझ कर खीर में अधिक मात्रा में डाल दिया। सभी साथियों का ध्यान आपकी ओर लगा और चुपचाप देखने लगे। पं० जी ने एक घूंट भरी तो मुश्किल हो गया। सभी का हँसी का फव्वारा फूट पड़ा।

पं० जी स्वयं भी बड़े अच्छे विनोदी हैं और आपमें सभी स्तर के लोगों में घुलमिल जाने का एक विशिष्ट गुण है। छोटे बच्चों से आपको बहुत अधिक स्नेह है। आतिथ्य सत्कार में भी आप कभी पीछे नहीं रहते हैं। अजमेर में कोई भी साहित्य प्रेमी और संगीत का विद्वान आपके निवास स्थान की शोभा अवश्य बढ़ाता है। आपका निजी छोटा पुस्तकालय है। व्यस्त एवं शरीर से पीड़ित होते हुए भी अध्ययनशील आज भी हैं। आपको बचपन में कुश्ती, घुड़सवारी, क्रिकेट खेल और तैराकी का अच्छा शौक रहा है। इतना सब होते हुए भी सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक दृष्टियों से आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

श्रद्धेय पं० जी के अखिल भारतीय स्तर पर मनाई जाने वाली ७० वीं वर्षगांठ पर, मैं हृदय से अपने परिवार और इष्ट बन्धुओं की ओर से शुभकामना अर्पित करते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आपको इस अवस्था में भी स्वस्थ्य एवं चिरायु रक्खे। कष्टों से जूझने की अपार शक्ति प्रदान करे, जिससे अपने वैदिक धर्म प्रचार के सत-संकल्प को पूर्ण कर सकें।

इस सुअवसर पर ऐसे तपोनिधि, कर्मठ, त्यागी और निस्वार्थी पुरुष की सेवाओं के लिये अपनी हार्दिक शुभकामना के साथ आर्य जगत तन, मन व धन से आपके साथ है।

□□

अभिनन्दन

धर्मदत्त आनन्द

दयानन्द ऋषि राज प्रदर्शित पावन पथ के धीर पथिक बन
विचरे धर्म प्रचार हेतु कर दिया समर्पण अपना तन मन
अत्र तत्र सर्वत्र हो रहा जिनके मृदु गीतों का गुञ्जन
सुनकर जिनको अगणित मानव बना रहे हैं सात्विक जीवन
बुद्धि विरोधी भ्रान्त मतों का करते रहते निर्भय खण्डन
प्रभु प्रदत्त वैदिक विवेक का तर्क प्रमाण युक्ति से मण्डन
ईश्वर धर्म तत्व का करते सतत् अध्ययन मनन चिन्तवन
राष्ट्र देव का निज अनुपम प्रतिभा से करते हैं नीराजन
यद्यपि भीषण वात व्याधि से जीर्ण-शीर्ण हो गया सकल तन
किन्तु सदा ही स्वस्थ शान्त सात्विक सचेष्ट रहता है मन
सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ही साहित्य सृजन करते नित नूतन
जिसके श्रवण पठन से सत्वर होता है बुध जन मन रञ्ज
अमित स्नेह श्रद्धा विभोर हो मस्तक नत कर शत् शत् वन्दन
महामान्य कविवर प्रकाश का मैं करता हूँ प्रिय अभिनन्दन।

कवि प्रकाश की काव्य साधना

उत्तम चन्द 'शरद'

कवि हृत्तंत्री का वादक होता है। उसकी वाणी से निकला शब्द वस्तुतः उसके हृदय की पुकार होती है जो श्रोताओं और पाठकों के हृदय में उतर जाता है। काव्य रसमय रचना का नाम है। "वाक्यम् रसात्मकं काव्यम्" और यह रस हृदय से निसृत होता है। मजा यह कि कवि आवेगों से व्यथित होकर ही लिखता है पर स्वयं भी उससे झूम जाता है और श्रोता भी मस्ती में खो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि वेदना और व्यथा ही आवेग का रूप धारण कर कल्पना की उड़ान से कवि को रवि से भी अधिक समर्थ बना देती है। तभी तो इंगलिश कवि शैले लिखता है, Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts.

इस को हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पन्त ने अपने शब्दों में कहा—"वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान। उमड़कर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।" यह हमारा सौभाग्य है कि आर्य राष्ट्र के प्रसिद्ध कवि प्रकाशजी को यह पीड़ा और व्यथा अपने आचार्य दयानन्द से धरोहर रूप में मिली है। दयानन्द को भी राष्ट्र तथा मानवता का पतन देखकर जीवन भर आकुलता रही और इसी व्याकुलता में उस क्रान्त दर्शी ने रस पाया है, एक उर्दू के कवि के शब्दों में "कितने-कितने दिले बेताब में अरमां तरसे-तुम वह बादल थे जो धरती पे न खुल कर बरसे।" ऋषि ने यह पीड़ा प्रत्येक आर्य को प्रदान की पर उसका सफल अंकन और व्यंजना तो कवि ही कर पाता है, प्रकाशजी के काव्य में यह पीड़ा यत्र-तत्र दिखाई देती है।

पास है साधन न किंचित, भाव है उर में अपरिमित
क्यों ? नहीं दृग सीप के मोती तरल दो चार दूँ मैं।

कवि अपने मनोभावों को पूर्ण रूप से व्यक्त भी तो नहीं कर पाया, जो कुछ उसने वाणी से अथवा लेखनी से कहा है वह हृदय की अग्नि की सीली हुई चिन्गारियाँ ही हैं, आग तो हृदय में धधक रही है पर इसे सब भी तो नहीं जान सकते।

मुझ व्यथित हृदय को देख सभी, हँसते हैं देते हैं ताने
नहीं पांव पड़ा जिसके छाला, वह पीर पराई क्या जाने!

कवि का भाषा पर पूरा अधिकार है स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का प्रयोग इसे स्पष्ट कर रहा है, उसकी करुणा कथा कौन जाने ? पर क्या इससे कवि विह्वल हो कर गिड़गिड़ायेगा ? कदापि नहीं। कवि स्वभावतः स्वाभिमानी होता है और प्रकाशजी तो कविरत्न हैं, लिखते हैं—

मैं अपने आधार रहूँगा
अपने मन की करुण कहानी,
सुर तरुवर से भी नहीं कहूँगा।

कितना स्वाभिमान है ! कवि हृदय में इसी स्वाभिमान को उर्दू कवि इकबाल ने भी लिखा था

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है ?

आर्य कवि प्रकाश भी सुर तरुवर तक से मन की व्यथा कहने का इच्छुक नहीं, कल्प वृक्ष स्वयं पूछे तो बात अलग है।

कवि की व्यथा समाज को चेतना प्रदान करती है। कण्टकाकीर्ण पथ पर बढ़ने वालों के पग कवि वाणी को सुनकर सुदृढ़ और गति युक्त हो उठते हैं। वीर गाथा काल के कवियों ने राज्याश्रित होकर भी अपने ओज भरे काव्य से कायरों तक में भी नव जीवन भर दिया था। यहाँ तक कि वीर रमणियां भी कायर पति को सहन न कर पाती थीं वीर रस के प्रवाह में जान पर खेल जाना बच्चों का खेल बन गया था और यह लोकोक्ति सी बन गई थी।

बारह वर्ष तक कूकर जीवे,
तेरह वर्ष तक जिये सियार
बरस अठारह क्षत्री जीवे,
आगे जीने पर धिक्कार

आर्य राष्ट्र में विलासिता की धूम मचा कर वीरों को भी कायरता का पाठ पढ़ाने वाले तथा कथित कवि न तो समाज की पीड़ा को अनुभव करते हैं न स्वयं कोई पीड़ा रखते हैं पर आर्य कवि तो वीरों का आवाहन करता है। भारत माता की सेवा का व्रत लिये आर्य वीर बढ़ा है तो कवि यह कह कर उसका मार्ग प्रशस्त करता है

विपत्ति विघ्न जाल हो—प्रचण्ड ज्वाल भाल हो
प्रमत्त गज विशाल हो—कि केहरी कराल हो
विशाल वंक व्याल हो, समक्ष खड़ा काल हो
तदपि न मन्द चाल हो, व्यथित न अन्तराल हो
मरण करो भले, सुनीति पंथ से नहीं टलो-
बढ़े चलो बढ़े चलो !

अनुप्रास की छटा का तो यहाँ क्या कहना और भाषा पर अधिकार भी खूब, पर उससे कहीं अधिक सुन्दर राष्ट्र के लिये मर मिटने की तड़प। यही काव्य ही तो था जिसके द्वारा भूषण ने शिवाजी के बाहुओं को फड़का दिया था, आज के विलासी युग में नवयुवकों के लिये इस प्रकार के वीर काव्य की कितनी आवश्यकता है, इसे देश का प्रत्येक हितचिन्तक भली प्रकार अनुभव कर सकता है। वस्तुतः राष्ट्र भक्ति कवि को अपने आचार्य से प्राप्त है। वह भारत राष्ट्र का गौरव गान करते अघाता नहीं, कभी राणा प्रताप का ज्वलन्त बलिदान उसकी प्रेरणा को बरबस खींचता है तो कभी देश भक्त कुम्भा जी के यशोगान में वह खो जाता है। वह अभिमान पूर्वक कहता है "हम नहीं किसी से भी कम हैं" और सबसे बढ़कर उसका माथा आकाश को छूने लगता है जब वह आचार्य दयानन्द का प्रशस्ति गान करता है

पाला ब्रह्मचर्य व्रत वीर हनुमान ने था,
अपने आराध्य देव राम के रिझाने को
सुनते हैं पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था,
आततायी क्षत्रिय समाज के नसाने को
पाला ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह ने प्रकाश,
पूज्य पिता शान्तनु को सुखिया बनाने को
किन्तु पाला ब्रह्मचर्य देवदयानन्द ने था,
कोटि-कोटि मानवों के संकट मिटाने को

भाषा पर अधिकार तथा रस

कवि को संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं पर अधिकार है, उसका ईश्वर स्तुति गान पढ़कर तो हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास के गीतों की याद आ जाती है, वही लालित्य वही रस, और वही प्रवाह—

अक्षर ओ३म् अशरण शरणं
सत्य शिव सुन्दर सनातन सकल संकट हरण
मुक्त महिमा मय मनीषी मोद मंगल करण
करत कर विन कर्म, अगणित, सुनत सब विन श्रवण
नयन विन निरखत निरन्तर चलत द्रुत विन चरण

समझ में नहीं आता भावों के आवेग पर दृष्टि डालें, भाषा के माधुर्य को देखें, अनुप्रास की छटा निहारें अथवा कवि के भक्ति रस सने हृदय पर ध्यान दें।

"सैंकड़ों हैं इस के पहलु रंग हर पहलु का और
सामने हीरा कोई तरशा हुआ पाता हूं मैं

वाली बात है! कवि कष्टों तथा यातनाओं में पला है और यही उसे वरदान मिला है कि वह अपनी अश्रु धारा से जन मानस को सींचकर न केवल उसे उर्वरा बना दे अपितु अपने आचार्य का ऋण भी चुकाये। पन्त को गिला रहा है—

"वन की सूखी डाली पर सीखा कली ने मुस्काना
मैं अब तक सीख न पाया, सुख से दुख को अपनाना

पर कवि प्रकाश को यह दुख रास आ गया है—

"थे शूल कभी वे आज हुये,
मुझ को फूलों की पंखड़ियां
सहते सहते हो जाती है,
सुख में परिणित दुःख की घड़ियां

उर्दू कवि गालिब ने भी इस रस को लेकर कहा था—

रंज से खूंगर हुआ इन्सां तो मिट जाता है रंज
मुशकलें मुझ पर पड़ी इतनी कि आसां हो गई

लेखक को कविरत्न प्रकाश जी के काव्य को पढ़ कर अनायास ही शंकर सरोज के रचियता कवि शंकर की स्मृति आ गई पर आश्चर्य हुआ कि स्वयं कवि को उसी वाटिका का कमल पाया। कवि शंकर का यशोगान तथा अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हुए कविरत्न क्या खूब लिखते हैं—

"गुरुदेव शंकर कृपा से मैं प्रकाश तुच्छ
आज जन, गण, मन, मंजु माल हो गया
अथवा यह कह दूं कबीर के वचन भांति
लाली देखने चला था मैं भी लाल हो गया"

कबीर के वचन को किस सौन्दर्य से निभाया है इस का मर्मज्ञ कवि ही आनन्द ले सकता है।

कवि की अभिलाषा

कवि की भावना तथा हृदय की कसक उसके काव्य में स्थान-स्थान पर व्यक्त होती है, वैदिक धर्म उस की अभिलाषाओं का केन्द्र है, वेद के सिद्धान्त उस की रग-रग में समा गये हैं उस की हृत्तंत्री की झंकार में भी उसी सिद्धान्त की ध्वनि गुंजती है—

निराकार प्रभु अजर अमर है
चर्म चक्षु से नजर न आवे,
है यह मनुज एक देशी जो
तन धारी जन्में मर जांवे
वह जड़ प्रतिमा जिस को मानव
गढ़ कर मन्दिर में बिठलावे
चोर चुरा ले जायें,
रक्षा अपनी भी जो कर नहीं पाये

नाशवान उस नर को अथवा जड़ को ईश्वर में न कहूँगा। ध्यान रहे कि सिद्धान्त वर्णन में भी कवि केवल उपदेशात्मकता अथवा इति वृत्तात्मकता तक न रह कर कल्पना की चासनी से अपनी बात को सरस तथा सजीव बना देता है। हास्य रस का पुट देकर बात को और भी आकर्षक बना देता है।

औघड़ शंकर ने लक्ष्मीपति विष्णु से
मौज में आ यूं हंसी की
सादर पूजा करें हैं सभी जन,
मात के रूप में पारवती की
लोग अनेक बने लक्ष्मीपति आप के
होते यह बात न नीकी
यूं हंस के तब विष्णु जी बोले
गरीब की जोरू है भाभी सभीकी

सम्भवतः एक सौ से अधिक कहावतों को कवि ने काव्य कौशल से सौन्दर्य प्रदान किया है पर ऊपर की कहावत को जिस सुन्दर प्रकार से कवि ने सजाया है उस से उस का आर्यसमाजीपन स्पष्ट लक्षित होता है। लक्ष्मीपति विष्णु पर सचमुच क्या बीतती होगी जब वह अपने परम भक्तों को "लक्ष्मीपति" पद से सुशोभित पाता होगा।

आर्य समाज को अपने इस सशक्त प्रतिभा सम्पन्न सहृदय कवि पर जितना गौरव हो कम है। कवि के काव्य में उसकी हृदय की टीस तथा कसक केवल और केवल आर्यसमाज है, ऋषि दयानन्द उसके प्रेरणा स्रोत हैं तो ऋषि का समाज उस के मन का अरमान। आज कवि शारीरिक रोग में ग्रस्त है फिर भी क्या उस के मानसिक तथा आत्मिक आकर्षण में कोई कमी आई ? ऐसा कहाँ सम्भव है, वह तो इस रुग्णावस्था में भी कहता है —

माना व्याधि ग्रस्त हुआ हूं अति क्षीण काय
पोर-पोर में अपार वेदना है दाह है
माना जरावस्था में है सेवा सुश्रूषा के हेतु
सन्तति न कोई इस की क्या परवाह है

परम कल्याणी वेद वाणी का प्रचार कर
ऋषि राज ऋण के उतारने की चाह है
रुग्णावस्था में भी कहता है इस दीवानगी का क्या जवाब ? और इस मस्ती के भी क्या कहने ? महाराणा प्रताप के सम्बन्ध में किसी कवि ने लिखा था—

"जमा हैं सब दोस्त और सबको कफन की फिक्र है
मरने वाले को मगर अब भी वतन की फिक्र है"

आर्य समाज ऐसे नर रत्न की सेवाओं का क्या बदला दे सकता है ?

धन्य तुम्हारी सरस साधना,
रे कवि धन्य तुम्हारा जीवन।
जुग-जुग जिये तुम्हारी कविता,
जुग-जुग करे तेरा अभिनन्दन ॥

अभिनन्दन

जयदत्त शास्त्री

"सत्यं रक्षितुमात्मनोऽप्यगणयत् प्राणान्न यः संकटे,
सत्यादेव च वेदसम्मतमतं यस्योन्नतं भूतले।
तस्यैवार्यसमाजजन्मदमुनेः शिष्येषु विद्वद्वरः,
काव्यं गीतिमयं प्रणीय जयते श्रीमान् "प्रकाशः" कविः ॥ १ ॥

सत्यार्थस्य विचारमकरोद् ग्रन्थोपबद्धं मुनि-[1]
र्यं प्राग् विश्वनृणां हिताय कविना तेनाप्यसौ वर्धितः।
पद्यैर्गीतिमयैः सुललितैर्धर्मस्य संस्थापकैः,
कुर्मस्तस्य शुभाभिनन्दनमिमं प्रेम्णा कवेः सादरम् ॥ २ ॥

प्रकाशार्यो नामानुगुणमपि कार्यं च कृतवान्,
तमोऽज्ञानाच्छन्नं जनममलवाचा पवितवान्।
सुगेयैस्तत्पद्यैः सहृदयवरा मोदमधुना,
लभन्ते, नो दुःखं सततमखिलेशस्य भजनात् ॥ ३ ॥

साहित्यसंगीतकलाप्रवीणः, काव्यानि श्रेष्ठानि प्रणीय राष्ट्रम्।
चारित्र्यदृष्ट्या ह्युदनेष्ट विद्वान्, भूयाच्चिरायुरयमार्यवर्यः." ॥४॥

---

[1] स्वामी दयानन्दः सत्यार्थप्रकाशं रचयित्वा।

अभिनन्दन शत बार आपका !

ईश्वरी प्रसाद प्रेम

कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी 'प्रकाश', आर्य जगत् की एक ऐसी पुण्य विभूति हैं, जिन पर जितना गर्व किया जाय, कम है। आर्य जगत् में वे महाकवि नाथूराम 'शङ्कर' पं० पद्मसिंह शर्मा, सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त जी और पूज्यपाद पं० हरिशङ्कर जी शर्मा की पंक्ति में आते हैं। भ्रातृवर श्री 'प्रकाश' जी कवि और प्रचारक से भी अधिक एक 'साधक' हैं। उनकी काव्य-साधना अनूठी है। रुग्णावस्था में भी उनका 'कवि' चैतन्य है, वे जिस उच्चकोटि के गीतों और कविताओं का सृजन कर रहे हैं, उससे उनके तपस्वी जीवन की झाँकी सहज ही मिल जाती है। शारीरिक अपङ्गता, आर्थिक अभाव और व्यक्तिगत एवं पारिवारिक दुःख द्वन्द्वों के बीच भी श्री 'प्रकाश' जी के चेहरे पर अविराम खेलने वाली अमन्द मुसकान उनके अन्तर की महत्ता और सन्त हृदय की ही सहज अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि श्वेत वस्त्रों में रहने वाले आर्यसमाज के इस सन्त के काव्य में 'दरद दीवानी मीरा' का दर्द, सूर की अनन्यता और तुलसी की समर्पण वृत्ति की 'त्रिवेणी' बहती है, जिसमें नहाकर कोई भी धन्य जीवन हो सकता है।

मैं पूज्य प्रकाश जी के भक्तों में रहा हूँ। हर समय सिनेमा के गीत गुनगुनाने वाले युवकों की भाँति ही उनके—'वेदों का डङ्का आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' इस अमर गान के स्रष्टा इस महाकवि के––"आनन्द स्रोत बह रहा पर तू उदास है, 'प्रभु तुम चन्दा मैं चकोर हूँ' 'हमारा हमें प्राण प्यारा मिला ना' 'जब प्रिय तुम हो मेरे सङ्गी' 'प्रभु को विसार किसकी आराधना करूँ मैं' 'वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा' 'मधुर वेद वीणा बजाए चला जा' 'बतायें तुम्हें आर्य क्या चाहते हैं?' 'सत्सङ्ग की गङ्गा बहती है" आदि न जाने कितने ही गानों को प्रायः गुनगुनाते रहकर मैं अपने तन-मन को पवित्र करने का यत्न करता रहता हूँ महामान्य श्री 'प्रकाश' जी के गीत और कवितायें मुझे सर्वाधिक प्रिय होने से ही मैंने स्व_सम्पादित "नित्य कर्म विधिः" में उनका प्रचुरता से उपयोग किया है

पूज्य 'प्रकाश' जी के हम ऋणी हैं, अत्यधिक ऋणी।

आर्य समाज चौक, मथुरा के रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर उनके पुण्य पावन चरणों में अमित श्रद्धा होने से ही, उनका अभिनन्दन करना चाहा था। वह उनकी रुग्णावस्था के कारण शक्य नहीं हुआ। आज सम्पूर्ण आर्य जगत् की ओर से २३ अक्टूबर को अजमेर में इन पूज्य चरण के सार्वजनिक अभिनन्दन के अवसर पर हम सम्पूर्ण 'तपोभूमि परिवार' और मथुरा नगर के आर्य-परिवारों की ओर से इस देवता की अर्चना करते हैं।

प्रभु चरणों में कामना है कि हमारा यह देव पुरुष शताधिक आयु वाला हो। प्रभु उन्हें स्वस्थ और नीरोग करें जिससे हम अपने 'प्रकाश' जी की प्रकाशमयी वाणी चिरकाल तक सुनें।

मृतक श्राद्ध अवैदिक है, पर जीवित पितरों का श्राद्ध (श्रद्धापूर्वक सेवा और सर्वविध सम्मान) पूर्ण वैदिक एवं करणीय 'कर्त्तव्य' है। सच्चे कवि और साहित्यकार निस्सन्देह हमारे 'पितर' हैं, क्योंकि उनका मार्ग दर्शन हमें शक्ति देता और हमारा संरक्षण करता है। वे हमारे 'देव' हैं, चूंकि उनकी रचनाओं से प्राप्त दिव्य प्रकाश हमें और हमारे राष्ट्र को नई चेतना, गति और स्फूर्ति प्रदान करता है। कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी 'प्रकाश' निस्सन्देह 'पितर' और 'देव' कोटि के महापुरुष हैं। और 'देव पूजा' एवं 'पितृ पूजा' तो आर्यजनों का नित्य कर्म ही है। शतत अभिनन्दन !

□□

प्रकाश चन्द्र

द्रुत-विलम्बित

मधुर मञ्जुल मञ्जु-लता-युता, मनुज-मानस-मान समन्विता।
सरस भाव-सुभाव, सुभूषिता, ललित-काव्य-कला सुखदायिनी॥
अमित काव्य-कला प्रतिभान्विता, सकल काव्य-सुधा-रस धारिणी।
विमल वेद-विचार प्रचारिका, ललित-काव्य-कला सुखदायिनी॥

हरि गीतिका

तव काव्य-प्रतिभा मानवों की भ्रान्ति-भाव विदारिणी।
तव काव्य-प्रतिभा नीति-रीति-प्रभूत प्रीति प्रसारिणी॥
तव काव्य-निधि में पूर्ण प्रभु की भक्ति का उपदेश है।
तव काव्य-निधि में रुद्र का रिपु-दमन कारी वेश है॥
तव गीतिकायें लय, मधुर स्वर, ताल, छन्द, समन्विता।
हैं प्रिय प्रकाश ! प्रभूत पावन चन्द्र सम ज्योत्स्नान्विता॥
हर गीत ही तेरा प्रकाश ! प्रकाश-मय श्रुति सार है।
तव गीत सब के लिये "भास्कर" अमित उपहार है॥

आचार्य विद्याभास्कर शास्त्री "भास्कर"

□□

प्रकाशचन्द्र जी का काव्य साहित्य

पं० रामचन्द्र जी 'आर्य मुसाफिर'

काव्य प्रकाश के निर्माता आचार्य मम्मट ने काव्य का प्रयोजन निम्न शब्दों में व्यक्त किया है। यथा—

काव्यं यशसेदर्थ कृते व्यवहार विदेशिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निवृत्तये कान्हा सम्मिततयोपदेशयुजे ।।

अर्थात्—उत्तम कविता का प्रयोजन यह है कि जो कवि अपने काव्य द्वारा स्वयं तथा पाठक जनता को यश की प्राप्ति, सम्पत्ति लाभ, सामाजिक व्यवहारों की शिक्षा, रोगादि विपत्तियों का विनाश, तुरन्त ही उच्च कोटि के आनन्द का अनुभव और प्यारी स्त्री के समान मन भावन उपदेश देने के लिये सृजित करने में समर्थ हो।

उपरोक्त कसौटी पर यदि हम गहराई के साथ विचार करके कविरत्न श्री पं० प्रकाशचन्द्रजी के काव्य साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करें तो निश्चय ही उनका समस्त साहित्य आचार्य मम्मट की प्रदर्शित कसौटी पर पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होगा।

आर्य सामाजिक क्षेत्र में श्री प्रकाशजी सन् १९२५ में श्रीमद्दयानन्द शताब्दि जो मथुरा में मनाई गई थी, आज से ४६ वर्ष पूर्व ही "वेदों का डंका आलम में बजवादिया ऋषि दयानन्द ने" इस अमर गीत को लिखकर महान् यशस्वी हो चुके हैं। आर्य समाज के विशाल उत्सवों में उक्त गीत नगर कीर्तन के रूप में आबाल-वृद्धों द्वारा बड़े उत्साह से जब गाया जाता है तो उस समय श्रोतागणों को उत्साह एवं उमंगों में भरे हुए देखा जाता है।

आर्य समाज के क्षेत्र में विशेष रूप से तथा उससे बाहर भी हम बड़े ऊँचे-ऊँचे गायकों को कवि प्रकाश जी के गीतों को गाता हुआ देखते हैं। अनेक गायकों के अर्थोपार्जन का साधन कविरत्न जी का साहित्य ही है।

आपके ग्रन्थों में यत्र तत्र व्यवहार की सुन्दर सुरुचिपूर्ण शिक्षा और अकल्याणकारी दुर्व्यसनों से पाठक को आत्मरक्षा के उपदेशप्रद वाक्य देखने को

मिलते है, लोकोक्तियों से मिश्रित कविता में इसके उदाहरण हैं। प्रकाश भजन सत्संग उच्च कोटि के प्रभु-भक्ति परक गीतों का अनुपम संग्रह है, इसमें अनेक गीत तो प्राचीन भक्त कवियों जैसे सूर, तुलसी, मीरा, रविदास आदि कवियों की कविता की समानता में ऊंचे ठहरते हैं यथा—

मन अब प्रभु के हो रहिये,
जगतपिता सबके आधार,
सुख चाहे यदि नरजीवन इत्यादि।

विस्तार-भय से अधिक उदाहरण देना सम्भव नहीं है।

कविरत्नजी की कविता के विषय

ईश्वर भक्ति, आध्यात्मिकता, मानवता, दार्शनिकता, धार्मिक, सामाजिक, दलितोद्धार, प्रेम-तत्त्व, कुरीति निवारण, देश प्रेम, खण्डन-मण्डनात्मक, मद्य माँसादि दुर्व्यसन निन्दा, नारी जागरण, राजनीति आदि रहे हैं। समय समय पर देश और समाज में पैदा हुई समस्याओं पर भी काव्य रचना करके कविरत्नजी जनता का उचित मार्ग दर्शन करते रहे हैं।

कविरत्नजी की कविता में गुण

साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के तीन गुण माने हैं यथा-ओज, माधुर्य और प्रसाद। आपकी कविताएँ उक्त तीनों ही गुणों से भरपूर हैं। भक्ति, प्रेम तत्त्व, मानवता कुरीति निवारण आदि विषयों में माधुर्य गुण पाया जाता है, देश-भक्ति की कवितायें ओज गुण से पूरित हैं, प्रसाद गुण तो प्रायः सभी विषयों की रचनाओं में दृष्टिगोचर हो रहा है।

कविरत्न जी की कविता में छन्द अलंकार, रस और भाषा

श्री प्रकाशजी की कविता में विविध छन्दों, अलंकारों और रसों के प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—कवित्त, सवैय्या, दोहा, सोरठा, घनाक्षरी आदि मुक्तक काव्य भी आपके अनूठे हैं। अलंकार अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, श्लेष, वक्रोति, सन्देह, स्मृति, भ्रमादि, रसों की दृष्टि से वैसे तो प्रायः सभी रसों का प्रयोग साहित्य में देखने को मिलता है किन्तु विशेष रूप से वीर, करुणा, भयानक, वीभत्स, शान्त रसों का बाहुल्य पाया जाता है। भाषा की दृष्टि से आपने हिन्दी, ब्रजभाषा और उर्दू में भी उच्च कोटि की रचनाएँ की है। बारह भाषाओं का एक गीत जिसका विषय ईश्वर भक्ति है बड़ा ही मनोहारी है। जो भी सुनते हैं आनन्द विभोर हो जाते हैं।

कविरत्नजी का प्रकाशित साहित्य

(१) प्रकाश भजनावली ५ भाग (२) प्रकाश तरंगिणी १ भाग (३) प्रकाश भजन सत्संग १ भाग (४) गो गीत प्रकाश १ भाग (गो रक्षा आन्दोलन से सम्बन्धित) (५) राष्ट्र जागरण (चीन के भारत-आक्रमण के समय) (६) प्रकाश गीत ४ भाग (७) कहावत कवितावली (लोकोक्तियों पर बड़ी उत्तम शिक्षाप्रद मार्मिक कवितायें हैं)। इन कविता पुस्तकों के कई कई संस्करण हो चुके है।

अप्रकाशित काव्य ग्रन्थ

१. महर्षि दयानन्द जी का जीवन वृत्त—छन्दोबद्ध उत्कृष्ट रचना है।

   महाभारत के पात्रों पर काव्य ग्रन्थ—जो काव्य गुणों से ओत-प्रोत हैं, निम्न हैं—

२. कीचक वध (विराट पर्व की कथा)
३. पार्थ प्रतिज्ञा (जयद्रथ वध)
४. जरासंध वध
५. द्रोपदी चीर हरण
६. विवाह संस्कार सम्बन्धी (वेद मंत्रों के आधार पर) रचनायें।

लगभग २० वर्षों से कविरत्नजी सन्धिवात (गठिया) रोग से पीड़ित हैं। इस दशा के अतिरिक्त पारिवारिक चिन्ताओं ने भी कभी उनके मस्तिष्क को विश्राम नहीं दिया। फिर भी बड़े आश्चर्य की बात है कि स्वयं शरीर से रोगी होकर, मस्तिष्क की शान्ति अनुभव से शून्य, फिर भी कितनी उच्च कोटि का काव्य साहित्य निर्माण किया है उसे देखकर आश्चर्य ही होता है। आगामी दीपावली पर ऋषि निर्वाण उत्सव में उनके प्रेमी और भक्त जन उनकी

७० वीं जन्म जयन्ती मना कर उन्हें श्रद्धा-सुमन भेंट कर रहे हैं। इस अवसर पर समस्त उनके प्रेमियों का कर्त्तव्य है कि उनका अप्रकाशित साहित्य प्रकाशित हो सके ऐसी व्यवस्था की जावे। इस अवसर परम्पिता परमात्मा से मैं उनके दीर्घ और स्वस्थ जीवन की कामना करते हुए याचना करता हूँ कि हे प्रभु! इस अपने भक्त देश, समाज प्रेमी कवि को आशीर्वाद दें कि—

युग युग जिये कवि प्रकाश।
रहे करते अज्ञान-तिमिर का नाश॥

□□

कविरत्न प्रकाश जी से

उत्तमचन्द 'शरर'

कविता कामिनी कान्त सरस्वती के ओ सच्चे साधक कविवर,
निज प्रतिभा से जन जन की ओ हृतत्त्री के वादक कविवर,
ओ अपने उर की पीड़ा में जग पीड़ा पनपाने वाले,
अनायास ही भूले भटकों को प्रकाश दिखलाने वाले,
तेरा काव्य मनोरम, मादक, सुन्दर सरस जगत् हितकारी,
तेरे गीत भावना गुम्फित, जैसे हो रस को पिचकारी
शब्दों के साँचे में कैसा, मन के आवेगों को ढ़ाला,
तू ने रातों जाग जाग कर निज उर की पीड़ा को पाला
तेरी कल्पना की उड़ान को कब गिरि ने गह्वर ने रोका?
तारे तोड़ तोड़ लाई धरती पर, कब अम्बर ने टोका?
भावों के स्वर साथ साथ जब छन्दों का नूपुर बजता है
लगता है ज्यों दूर कहीं पर कोई वंशी बजा रहा है
रे कवि! है सौभाग्य तेरा जो तू ने पाया ऐसा प्रेरक
दयानन्द सा क्रान्तदर्शी, वह प्रभु के अमर काव्य का गायक
जिस ने था आमूल चूल परिवर्तन कर डाला जल थल में
जिस की वाणी गूंज रही अब तक भी तो नभ मण्डल में
वही सहृदय, जिस ने निज हत्यारे को भी गले लगाया
ऐसा गुरु मिला जिस को उस का कविकर्म सफल हो पाया
धन्य तुम्हारी सतत साधना रे कवि धन्य तुम्हारा जीवन
जुग जुग जिये तुम्हारी कविता जुग जुग करें तेरा अभिनन्दन

□□

काव्य वाटिका के माली

महादेव ईनाणी

विधाता की रचना काव्यमय है। इस विश्वरंगशाला का प्रत्येक पात्र कवितामय है। इस उपवन के चारों ओर कविता का अखण्ड साम्राज्य है। सृष्टि का सौन्दर्य, सुखमा सुख कविता है, कविता इस संसार सागर का ऐसा उज्ज्वल कांतिपूर्ण मोती है जिसका प्रकाश काल-चक्र के प्रभाव से कभी फीका नहीं पड़ा। जिस भाग्यवान ने इस काव्य सागर में गोता लगाया, जिसने इसके अलभ्य छिपे हुए मोतियों की खोज की, जिसकी इस गहरे पानी में पहुँच हो गई, जिसने इस अथाह सागर को पा लिया, जहाँ उस मोती की आभा से स्वयं मस्त तो हुआ ही, औरों को भी उसकी प्रभा से प्रसन्न किया।

कवि प्रकृति वाटिका का चतुर माली है, वह इसमें यत्र तत्र बिखरे हुए सुन्दर पुष्पों की माला गूंथ कर रस राज प्रेम को अर्पित करता है। जिस प्रकार वाटिका में सब प्रकार से सुन्दर से सुन्दर पुष्पों के उपलब्ध होते हुए भी उनकी शोभा, सुगन्धि तथा सुन्दरता का पता .संसार को चतुरमाला की गुंथन चातुरी से ही पूर्णरूपेण मिलता है, ठीक यही दशा कविता और उसके चतुर शब्दकार कवि की है। वैसे शब्दभाषा के भव्य भंडार में बहुत पहिले से ही विद्यमान होते हैं, पर उनका चमत्कार उनकी सुन्दरता व उसका आनन्द कवि की लेखनी द्वारा प्रकट होने पर ही मिलता है।

श्री प्रकाश जी की 'भजन सत्संग' पुस्तक सोमरस की भी भांति रस वर्षाती है। इनकी कविता पान करने वाले को वीर बनाती है, इनकी कविता जो अत्यंत रसीली धार के रूप में प्रवाहित हो कर सुमति प्रदान करती है, अन्तःकरण की सोई हुई शक्तियों को जगा देती है ऐसी कविता जो दार्शनिक तथा आध्यात्मिक तत्वों का प्रत्यक्ष कराती है।

आज जो वैदिक धर्म का प्रचार दृष्टिगोचर होता है, उसमें आपके भजनों व कविताओं का भी प्रभाव रहा है। कई भजनोपदेशक महानुभाव भी आपके ही

भजनों का प्रयोग करते हैं। मेरे वैदिक धर्मोविचार होने के उपरांत भी मैं आपके भजनों को मंदिरों में जा कर गाया करता हूँ और सुनने वाले मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। उनकी वैदिक धर्म के प्रति दृढ़ आस्था हो जाती है। इस प्रकार कई कट्टर पौराणिक वैदिक धर्मी विचारों के हो गये और वे प्रभावित होकर जहाँ आजकल मंदिरों में रात्रि जागरण होता है (जहाँ २ मुझे बुलाते हैं) श्री प्रकाश जी के अतिरिक्त अन्य भजन गाये ही नहीं जाते । श्री प्रकाश जी के अभिनन्दन के विषय में यदि लिखा जाय तो लिखते-लिखते तृप्ति ही नहीं होती।

जब मैं गांव में रहता था उस समय एक मंदिर के महन्त श्री रामचरण दास जी जेठाना(अजमेर)वाले आते रहते थे। उन्होंने आपकी कविताओं से मुग्ध होकर आपका सारा प्रकाशन खरीद लिया और उसमें प्रकाश भजन सत्संग में तो उनकी अटूट श्रद्धा है। वे लिखते हैं कि जिज्ञासुओं की जिज्ञासा इन भजनों द्वारा ही निवृत हो जाती है।

श्री प्रकाशचन्द जी ने स्वामी ओ३म भक्त जी (श्री पी. रामसहाय जी) के साथ व स्वामी लक्ष्मणा नन्द जी के साथ रह कर प्रान्त में नवीन समाजों में खूब प्रचार कार्य किया उस समय आपको इतनी कठिनाइयाँ उपस्थित हुई कि भूखे रहकर भी प्रचार कार्य किया क्योंकि नवीन समाजों में कहीं कहीं आतिथ्य की व्यवस्था न होती थी।

अजमेर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के समय नगर कीर्तन में आपकी गाड़ी के पास श्रोता गण अधिक संख्या में उपस्थित रहते थे। मुझे स्मरण है कि नगर कीर्तन में दरगाह ख्वाजा साहब के सामने गाड़ी रोकी गई उस में अधिक आग्रह मुसलमान भाइ का था। मुग्ध होने का कारण एक भजन प्रहलाद की भक्ति का था।

'आता है प्यारा नजर मुझे तेरी तलवार में' 'बकरे मारे दोनों ने देवी खुदा के नाम' 'मैं वो दाढ़ी और चोटी देखते ही रहगयी,' 'बता दिलवर कहाँ पर तू छिपा है।' आदि-आदि।

ऐसे कवि को सरकार द्वारा राष्ट्र कवि घोषित कर सम्मानित करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीय भजन, सामाजिक, वीर रस, प्रेमरस आदि कई प्रकार के भजन रचे गये हैं, उन सब में राष्ट्रोत्थान की शिक्षा है।

श्री प्रकाशजी की कविताएँ साहित्य जगत में स्वर्णाक्षिरों में लिखने योग्य अनुपम काव्यरत हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि घर-घर में प्रकाश जी के भजनों का प्रचार हो जिसके द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार में सुगमता हो। प्रभु आपको स्वास्थ व दीर्घायु प्रदान करे ताकि कविताओं की रचना आपके द्वारा चलती ही रहे।

सरस्वती के वरद पुत्र

डा० भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज के प्रख्यात कवि और संगीतज्ञ श्री प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न का जन्म आश्विन शुक्ला नवमी 1960 वि० के दिन अजमेर में हुआ। इनके पिता पं० बिहारीलालजी कट्टर पौराणिक थे। साथ ही कवि तथा संगीत के जानकार भी थे। इनका प्रारम्भिक शिक्षण डी. ए. वी. हाई स्कूल में हुआ। पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण इनका अध्ययन मिडिल कक्षा तक ही हो सका। तत्पश्चात् ये भड़ौंच (गुजरात) की प्रसिद्ध सरस्वती जिनिन्ग मिल के लिपिक के पद पर कार्य करने लगे। प्रकाशजी को क्रिकेट के खेल से अत्यन्त रुचि थी तथा कविता लिखने तथा संगीत विद्या का भी शौक था, उनके इन्हीं गुणों के कारण मिल के मैनेजर इनके प्रति अत्यन्त स्नेह का व्यवहार रखते थे। उन्हीं दिनों में अमृतसर का प्रसिद्ध जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ, जिसने सम्पूर्ण भारत राष्ट्र को झकझोर दिया। प्रकाशजी ने मिल की सेवा से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने लगे।

इसी बीच उन्होंने देखा कि शुक्लतीर्थ (गुजरात) के मेले में बहुत से भोलेभाले ग्रामीण हिन्दू विदेशी पादरियों के चंगुल में फंसकर ईसाई बन रहे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि आर्यसमाज के कार्यकर्ता और उपदेशक अपने साहस और धर्म निष्ठा के गुणों के कारण पादरियों से मुकाबिला कर रहे हैं और ग्रामीण हिन्दूओं को धर्म परिवर्तन करने से बचा रहे हैं। मालाबार में मोपला मुसलमानों के द्वारा वहाँ के हिन्दुओं पर अवर्णनीय अत्याचार हुए। आर्यसमाज ने वहाँ भी बलात् मुसलमान बना लिये गये हिन्दुओं को पुनः शुद्ध कर अपने समाज का अटूट अंग बना लिया। आर्यसमाज की इस हिन्दुत्व रक्षा की भावना ने प्रकाशजी को आकृष्ट किया। वे विधिवत् आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। गुजरात में रहते समय ही उन्हें स्वामी श्रद्धानंदजी, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पं० मुकुन्द, पं० शंकरदेव विद्यालंकार, पं० माथुर शर्मा आदि आर्यपुरुषों का सत्संग प्राप्त हुआ।

अजमेर लौट कर वे पण्डित रामसहायजी शर्मा, वर्तमान स्वामी अभेदानन्द जी सरस्वती, सम्पादक (आर्य मार्तण्ड) की प्रेरणा से आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रचारक बनकर प्रांत में उन्हीं के साथ वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। उन्हें अनेक बार जोधपुर जाने का भी अवसर प्राप्त हुआ। उन दिनों की एक घटना है। एक दिन प्रातःकाल 4 बजे पं० रामसहायजी ने उन्हें जगाया और कहा कि देखो कोई स्त्री गुलावसागर (जोधपुर का प्रसिद्ध तालाव जिसके किनारे पर आर्यसमाज मंदिर वना हुआ है) में गिर गई प्रतीत होती है। प्रकाशजी तुरन्त गये और वस्त्र सहित कड़ी सर्दी में तालाव में कूदकर डूबती स्त्री को निकालकर वाहर ले आये। यह थी उनकी दिव्य सेवा भावना। अजमेर के आर्यनेता स्व० देशभक्त कुंवर चाँदकरणजी शारदा तथा पंडित जियालालजी के साथ वे दयानंद जन्म शताब्दी के उत्सव में भाग लेने मथुरा गये। इसी अवसर पर उन्होंने अपना विश्व प्रसिद्ध गीत 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने' गाया जो न केवल मथुरा की गलियों में अपितु सम्पूर्ण देश में अल्पकाल में ही प्रसिद्ध हो गया।

मथुरा में ही उन्हें कविता कामिनिकान्त पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा के दर्शन हुये, जिन्हें वे गुरु मानते थे। महाकवि शंकर का प्रसाद और आशीर्वाद प्राप्त करने का अवसर प्रकाशजी को मथुरा में ही प्राप्त हुआ। शंकर रचित काव्य ग्रन्थ 'शंकर सरोज' तथा 'अनुरागयन' प्रकाशजी की काव्यप्रेरणा को उद्‌बुद्ध करने वाले थे। अतः उन्होंने अपने आदरणीय गुरुदेव के चरणों में भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये निम्न कविता लिखी—

शंकर सरोज सुललित मृदु मकरन्द
पान जिसने भी किया वो निहाल हो गया।
अनुराग रत्न की अनूप आभा अवलोक
अनुराग से विभोर अन्तराल हो गया।
गुरुदेव शंकर कृपा से मैं प्रकाश तुच्छ
आज जन गण मन मञ्जुमाल हो गया।

अथवा यूं कह दूं कवीर के वचन भांति।
लाली देखने चला था मैं भी लाल हो गया।

आदरणीय शङ्कराचार्य के लोक विश्रुत कवि पुत्र स्व० डा० हरिशङ्करजी शर्मा का भी प्रकाशजी पर सदा वरद हस्त रहा। वे प्रकाशजी को रुग्णावस्था में उनकी सहायता में सदा तत्पर रहे। प्रकाशजी भी उन्हें गुरु तुल्य आदर देते रहे हैं।

1930 में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर प्रकाश जी कारावास चले गये। वहां जेल जीवन की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये उन्होंने निम्न घनाक्षरी लिखी—

नङ्गी देह पै उड़ाते चाबुक थे अधिकारी,
किन्तु यों हमारे लिये फूल की सी छड़ियां।
स्वाद आता था सुधा सा रूखी सूखी रोटियों में,
मारे भूख जव सूख जाती थी अंतड़ियां॥
गाते थे तराने देश प्रेम के दीवाने बन,
तसले की ताल पै बजा के हथकड़ियाँ।
था हर्षोन्माद न था किन्चित विषाद, अहा,
आती है वो याद जेल जीवन की घड़ियाँ॥

उनके कुछ अन्य गीत भी अत्यन्त लोक प्रिय हुये, जिनमें ये उल्लेखनीय हैं—'मरना है एक रोज क्यों न मरें वतन की शान पर' तथा 'भारतवासी वीरो आओ ऐसा जौहर क्रान्ति मचाओ; फिर प्रकाश फहराये तिरङ्गा झण्डा हिन्दुस्तान पर।'

प्रकाश जी को आर्यसमाज तथा हिन्दी काव्य जगत् के महत्वपूर्ण पुरुषों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिनमें कतिपय नाम उल्लेखनीय है—स्वामी श्रद्धानन्द, वीतराम स्वामी सर्वदानन्दजी, लाला लाजपतराय, पण्डित पद्मसिंह शर्मा, पं० बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', महाकवि निराला, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', पं० अनूप शर्मा, पं० जगदम्बा प्रसाद हितैषी, श्री हरिकृष्ण प्रेमी, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री हरिवंशराय बच्चन, कवि शिशुपालसिंह तथा बलवीरसिंह रङ्ग आदि। राष्ट्रीय संग्राम के दौरान वे पं०

जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, पं० मदन मोहन जी मालवीय तथा नेताजी सुभाष के स्नेह पात्र रहे।

लगभग पच्चीस वर्षों तक वे आर्यसमाज अजमेर की ओर से समस्त भारत में वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति का प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहे। विगत 20 वर्षों से वे वातरोग से ग्रस्त हैं। उनका भ्रमण और प्रचार यात्रायें बन्द हैं परन्तु कवि और गायक की सरस्वती ने विश्राम नहीं लिया है। अब तक उनके कितने ही काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, उदाहरणार्थ—प्रकाश तरंगिणी, प्रकाश भजनावली 5 भाग, प्रकाश भजन सत्संग, प्रकाश गीत, वीर अभिमन्यु, कहावत कवितावली आदि। उनके शिष्यों में संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ पं० पन्ना लालजी पीयूष तथा पं० धर्मदत्त आनन्द आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

□□

संसार में सब से उत्तम विद्वान् वह है जिसको माता, पिता और गुरु यह तीनों ही धर्मात्मा अच्छे पढ़े लिखे मिलते हैं, इसीलिये शास्त्र में कहा है कि 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् जब तीन उत्तम शिक्षक, एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे। तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती



प्रकाश जगमगाता रहे !

वेदभूषण

राजस्थान का वह प्राचीन इतिहास स्मरण हो आता है, जिसमें भाट व चारण अपनी ओजस्विनी वाणी से वीर सैनिकों के हृदय में विजय प्राप्ति के लिए मृत्यु का स्वागत करते हुए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देते थे और भुजाओं में चमचमाती तलवार लेकर शत्रु का मान मर्दन भी करते चले जाते थे। जब जब मैं महान् योद्धा कविरत्न श्रद्धेय प्रकाशजी के दर्शन करता हूँ तो यही दृश्य आखों में घूमने लगता है। बस उनमें और इनमें यही अन्तर है कि वे भाट अन्नदाता सम्राट् के गुणों का गान करते थे और प्रकाशजी परमैश्वर्यशाली प्रभु और जीवन के पथ प्रदर्शक देव दयानन्द एवं आर्य समाज के गुणगान में अपनी कविता कामनी को गौरवान्वित कर रहे हैं।

प्रकाशजी का जीवन किसी भी योद्धा से कुछ कम नहीं। वे स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक ही नहीं सेनापति रहे हैं। उस युग में जब निजाम हैदराबाद में आर्य समाज के मंच से भाषण देना मृत्यु को निमन्त्रित करना माना जाता था उस समय भी प्रकाशजी ने अपनी वीर रस से भरी कविताओं से हैदराबाद की जनता को कुछ कर गुजरने की प्रेरणा प्रदान की थी।

आर्य समाज की अहर्निश सेवा करते हुए आप दारुण गठिया रोग से ग्रस्त हो गए। युद्ध क्षेत्र में लड़ने वाला सैनिक घायल होकर अस्पताल पहुँच जाता है पर यह आर्य सैनिक घायल होता हुआ भी आज कर्म क्षेत्र में ललकारता हुआ युद्ध कर रहा है।

लगभग दो दशक से चलने फिरने में असमर्थ यह महारथी अपने अस्थि पंजर देह में आध्यात्मिक शक्ति के बल से बराबर मृत्यु को धकेलते हुए मृत्युञ्जयी भीष्म पितामह का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। निरन्तर अपनी लेखनी द्वारा आर्य समाज की, मानवता की सेवा में रत है।

मैं जब कभी अजमेर आता हूँ तो आप के दर्शन करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। मैं आप के निवास स्थान को आर्यों का तीर्थ स्थल कह सकता हूँ, जहाँ एक ऐसी

आध्यात्मिक भावना निरन्तर फैल रही है जिससे अनेक व्यक्तियों के जीवन बदल जाते हैं।

आर्य समाज के उत्सव हों या सार्वदेशिक महा-सम्मेलन, वहां गाये जाने वाले गीतों में प्रकाशजी के गीत न हों यह असंभव है। आर्य समाज के धुरंधर भजनोपदेशक भी जब तक प्रकाशजी के अन्तस्तल से फूटे भाव भरे गीत नहीं गाते तब तक जनता की तृप्ति ही नहीं हो पाती है। अनेक अवसरों पर, प्रकाशजी के बनाये गीतों की गूंज सुनकर मैंने लोगों को आखों से अश्रुधार बहाते देखा है।

श्रद्धेय प्रकाशजी की कविता अन्तस्तल से निकली वह ध्वनि है जो कविता के रूप में श्रोताओं के हृदय को जाकर बींध देती है। यूं तो आप सभी सामाजिक सुधार वादी विषयों पर कविता करते हैं और गीत बनाते हैं पर आपकी रचनाओं में आध्यात्मिक रचनायें और देव दयानन्द की प्रशंसा में लिखे गीत एकदम मर्मस्पर्शी होते हैं।

आप से अनेक बार मिल चुकने के बाद मैं यह अधिकार पूर्वक कह सकता हूँ कि प्रकाशजी जीवनमृत्यु की सेज पर दवाइयों से नहीं अपितु आध्यात्मिक शक्ति से ही विजयी होते रहे हैं। आप की भक्ति भावना कविता में फूट कर स्वयं गूंज उठती है।

आर्यसमाज के गद्य साहित्य में जो कार्य गंगा प्रसादजी उपाध्याय ने किया है पद्य के क्षेत्र में वही कार्य श्रद्धेय प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न ने किया है। आर्य समाज के क्षेत्र में, देश के इस छोर से उस छोर तक या यूं कहें विदेशों में भी जहाँ हिन्दी गीतों का प्रचलन है श्री प्रकाशजी के गीत व भजन गाये जाते हैं।

अच्छे अच्छे लेखक, कवि, साहित्यिक राजनीतिक विचारक, चिन्तक और यहां तक कि साधारण योगीजन भी जब मृत्यु रोग या आपदा को सामने आता हुआ देखते हैं तो अपनी प्रतिभा को खोकर सुध-बुध तक खो बैठते हैं पर धन्य हैं प्रकाशजी! जिनकी धुन और धैर्य के सामने यमराज भी अपनी सुध खो बैठा है।

श्री प्रकाशजी को एक बार मैंने हैदराबाद के कार्यक्रम के लिये पधारने का आग्रह किया कि वे स्ट्रेचर के सहारे रेल यात्रा करें। आपने तुरंत स्वीकार कर लिया पर मुझ में इतना साहस न हुआ और मैं इतनी लम्बी यात्रा का कष्ट देने के लिये भय भीत हो गया पर दयानन्द के इस दीवाने की धुन के सम्मुख मस्तक स्वयं श्रद्धा से झुक जाता है।

श्री प्रकाशजी केवल स्वयं ही कवि नहीं हैं अपितु वे कवि निर्माता भी हैं। आर्य समाज के प्रसिद्ध सुयोग्य भजनोपदेशक पन्नालालजी पीयूष का नाम उल्लेखनीय है। प्रकाशजी की पुत्री स्नेहलता भी सुविख्यात गायिका है।

निरन्तर दो दशक से रोग से संघर्ष करते हुए प्रकाश जी अपनी पहिये की गाड़ी में बैठे-बैठे आर्य समाजों में घूम कर अपने गीतों से आर्यों में नव जीवन फूंकने का प्रयत्न करते रहते हैं। आपने अनेक एति-हासिक रचनायें भी की हैं। आप की काव्य धारा में राष्ट्रीयता भी यत्र तत्र पूरे गौरव से गूंजती प्रतीत होती है। वे धन्य हैं जिन्होंने आर्यसमाज के इस मृत्यु-ञ्जयी महारथी का अभिनन्दन आयोजित किया है। अन्यथा आर्य समाज कृतघ्नता के पाप से बच न पाता।

वैसे तो प्रकाश जी की सेवाओं का कोई मूल्य नहीं हो सकता उनकी सेवायें अमूल्य हैं। फिर भी आर्य जगत् का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने इस महारथी को किसी प्रकार का अर्थ संकट न अनुभव होने दें।

प्रभु करे हमारे प्रकाश जी इसी प्रकार आर्य जगत् के प्रकाश स्तंभ बने रहें और वैदिक सिद्धान्तों के इस अद्भुत प्रकाश से जन मानस को आलोकित करते रहें। यह प्रकाश चिरकाल तक जगमगाता रहे, यही प्रभु से प्रार्थना है। इन्हीं भावाञ्जलियों से मैं प्रकाश जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

साहित्य, संगीत, और संस्कृति सङ्गम

गनपत लाल डांगी

कवि और कलाकार, बनाये नहीं जाते, वह तो पैदा होते हैं (जन्मते हैं) जो व्यक्ति कवि भी हो, और कलाकार भी, गायक, नायक और उन्नायक भी हो, स्वयं की रचना को गाकर प्रस्तुत करने में निपुण हो, उस पर सरस्वती (हंसवाहनी) की विशेष कृपा होती है (हंस की सवारी वाली) सरस्वती देवी जब जीवन पर्यन्त कलाकार, कवि की जिह्वा पर आसन जमाले तो वह व्यक्ति महान् से भी महान् हो (कुछ आगे बढ़) जाता है। प्रशंसा सुनने के आदी दूसरों की प्रशंसा कम करते हैं अधिकतर ऐसा देखा गया है, और यह गुण कहें या अवगुण विशेष कर पेशेवर गायकों व नायकों में अधिक पाया जाता है इस श्रेणी में अधिकतर व्यवसायी कलाकार कवि आते हैं किन्तु जब कलाकार व कवि की आत्मा झुक जाये और वह प्रशंसा के पुल बांध दे तब समझना चाहिये कि—सचाई सिर चढ़ कर बोल रही है।

कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्रजी से मेरा निकटतम् सम्पर्क रहा है। मेरे बड़े भ्राता, नाट्य सम्राट स्व० बाबू मानिकलालजी से भी प्रकाशजी भली-भांति परिचित व उनकी कला के पारखी व प्रशंसक रहे हैं। जो व्यक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी प्रीति निभावे, रीति निभावे और अपने व्यावसायिक भाई को मैदान में जिताये वह वास्तव में सच्चा प्रेमी है। यही हाल प्रकाशजी का रहा मेरे बड़े भाई के बाद भी प्रकाशजी की कृपा व स्नेह का मैं पात्र रहा और पात्र को स्नेहरूपी पदार्थ सदा मिलता रहा।

सन् १९५२ व १९५३ की बात है नाटक कम्पनी बन्द होने के कारण मैं (अपनी सुसराल) किशनगढ़ में कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ था, समाज सुधार की धुन सवार थी. जो अब भी है केवल सुधार करने की ट्राफिक बदली हुई है तो इसी सन्दर्भ में कई बार अजमेर आना-जाना रहता था मैं संगीताचार्य श्री पन्नालाल जी पीयूष का आभारी हूँ जिनके माध्यम से प्रकाशजी के दर्शन केसरगंज आर्यसमाज में हुए।

फ़क़त देखा मगर मुँह से न वो बोले न मैं बोला।
नज़र उनकी तराजू थी निगाहों में मुझे तोला।

कुछ ही क्षण बाद जब दोनों बोलने लगे तो बोलते ही गये। प्रकाशजी कविता में और मैं पुराने नाटकों के सम्वाद में अन्तर इतना ही था कि प्रकाशजी अपनी रचना में सरस्वती के लाडले पुत्र हैं और मैं गोद दिया हुवा था। मुझे भी पुत्र श्रेणी में ही बड़ी प्रेरणा मिली बहुत प्रभावित हुवा। प्रकाशजी की सहधर्मणी और पुत्री स्नेहलता ने बड़ी खातिर की। इसी तरह यह मिलना-जुलना जारी रहा है, मैंने ब्यावर में श्यामजी और वैद्य चतुरभुजजी के सहयोग से भारतीय रंगमंच नाम की संस्था बनाई। कुछ दिन ब्यावर में कार्यक्रम किये। और बाद में गिरती-पड़ती हालत में चलती-फिरती संस्था को लेकर अजमेर आया और अजमेर में रेलवे विसिट के अन्दर ५ दिन तक अपना कार्यक्रम किया, उन दिनों प्रकाशजी को पीयूषजी का सम्पूर्ण सहयोग आश्वासन के रूप में नहीं, कार्यक्रम रूप में तन मन और धन से मिला। मेरा नाटक सीता वनवास देखने के लिये प्रकाशजी बालकृष्ण गर्ग और चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय पधारे हुवे थे। मैं राम का अभिनय कर रहा था। आगाहश्र कश्मीरी का लिखा नाटक। अजमेर नगर। और कलाकार कवि और कला पारखी की उपस्थिति अभिनय करने वाले की क्या स्थिति होती है इसे अखाड़े में कुश्ती लड़ने वाला पहलवान ही जानता-पहचानता है।

सीता को वनवास दिये जाने का दृश्य था। मैं राम के रूप में प्रजा से निवेदन कर रहा था।

मेरे शीश का छत्र और ताज ले लो।
मेरा धन मेरा यश मेरा राज ले लो॥
मगर जिससे जीता हूँ उसको न छीनो।
जगत छीन लो, मेरी सीता न छीनो॥
स्नेह में संगीत के प्रति जो रुचि है यह,
पिता की देन है उसमें पीयूषजी ने और भी
चार चाँद लगा दिये।

इस सम्वाद पर जहां दर्शकों की ओर से तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही थी वहां प्रकाशजी की आंखों से आंसुओं की धार बह रही थी। उन्हें रोता देख मैं भी ग्लेसरीन के आंसुओं के बदले सचमुच रोने लगा। नाटक बहुत सफल रहा और प्रकाशजी लगातार अस्वस्थ होने पर भी देखने बराबर आते रहे वह (तारीफ) प्रशंसा जो हमें प्रकाशजी से मिली शायद वो कहीं न मिली होगी। सांस्कृतिक कार्यक्रम का एक गीत जो मेरी संस्था में गाया था, वह प्रकाशजी की पुत्री स्नेह को बहुत अच्छा लगा और वह गीत बिना सिखाये उन्हें याद हो गया। "मैं तो जाऊंली सजनजी रे गांव ऊंट कोई भाड़े कर दो।"

सन् १९५५ जयपुर में आकाशवाणी केन्द्र की स्थापना हुई और प्रकाशजी की पुत्री स्नेह के सुगम संगीत और लोक संगीत का लाभ आकाशवाणी के माध्यम से श्रोताओं को मिला। प्रकाशजी कुछ दिनों स्वास्थ्य लाभ के लिये जब जयपुर के सवाई मानसिंह अस्पताल में भर्ती रहे तब भी मैं कई बार उनसे मिला, परन्तु जब-जब मैं उनसे मिला दर्शन किये तब-तब मुझे यही पता चला कि यह बीमार नहीं है। न घबराहट, न परेशानी, न चेहरे पर बल, न आंखों में पानी, न जीवन से निराशा, न अपनों से कुछ अभिलाषा, स्वास्थ्य का उल्टा पड़ा हुआ पासा सीधा हो जाये इस आसन में भगवान से अवश्य प्रार्थना करते देखा। पास बैठने वाले, सुख पूछने वाले पड़ोस में सोये रोगी उनसे कोई अप्रसन्न नहीं, दुःखी नहीं होता था धुन के धनी सिद्धान्त व आदर्श की नींव पर (जो कि पल-पल में गिरना चाहती है) कलम और कागज के साथ स्वयं लिखते या शिष्य से कुछ लिखाते देखे गये।

सच बात तो यह है कि प्रकाशजी की कविता से, गीतों से हम अधकचरे लेखकों को प्रेरणा मिली और हमने तुक बन्दियां करनी सीखी।

धन्य है, प्रकाशजी के अनन्य भक्त, विश्वास पात्र और परम आदरणीय गुरु के, आदरणीय शिष्य श्री पन्नालालजी पीयूष को। जो प्रकाशजी के जीवन के साथ छाया बन कर चल रहे हैं, ऐसा आदर्श आजकल जहां भारत में दूर, घर महाभारत बना हो—कम देखने को मिलता है।

हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और आर्य जगत के लिये प्रकाशजी की सेवायें अमर हैं रोग शैय्या पर पड़े हुवे कवि की वाणी में ओज है, प्रभा है प्रसन्न और प्रफुल्लित करने की शक्ति है, अपनी ओर आकर्षित करने की मधुर वाणी है, वाणी में हास्य का पुट हैं ऐसी कवि गायक, लेखक प्रकाशजी का समाज ऋणी है उनकी कलाकृतियां अमर हैं। और अमर रहेगी।

उपदेशक और भजनोपदेशक

रामेश्वर दयाल गुप्त

कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्रजी प्रकाश का अभिनन्दन केवल उनके व्यक्तित्व के प्रति न होकर भजनोपदेशकों की संस्था और शृङ्खला के प्रति है। जिस शृङ्खला ने ग्राम-ग्राम में घूमकर अर्धशिक्षित और अशिक्षित जनता के प्रचुर जन-समुदाय को महर्षि दयानन्द को अमृत वाणी का पान कराके उन्हें आर्यसमाज माता के अंचल में ला दीक्षित किया है। आजकी संख्या के साम्राज्य में एक करोड़ के विशाल जन-समुदाय की आर्य नाम से दुहाई देने की गर्वोक्ति में कृति तो वास्तव में हमारे भजनोपदेशक की छिपी है। कम दक्षिणा पर और अपेक्षाकृत कम सम्मान में ही सन्तुष्ट हमारी इस मुक्ति वाहिनी ने धर्म प्रचार की इस प्रक्रिया में अपने को आहुत कर दिया है। अतः उसकी वंदना करना स्वयं एक सौभाग्य है।

मैंने छः वर्ष की आयु में पं० ज्ञानीरामजी भजनोपदेशक (सोरों निवासी) के भजन सुने थे। न कंठ में कोई माधुर्य था, न कविता में अलंकार। पर पीले रँग का पैर तक आया चौगा और हाथ में करतालें। सर्वोपरि तो मन में दयानन्द के सैनिक होने का उत्साह ! यह तेजसिंह पद्धति थी। बस मैंने 30 दिन में इकट्ठा किया जेब खर्च का रुपया उस दिन आर्यसमाज में दे दिया। वह गुरु दक्षिणा थी। और तब से ऐसा दीक्षित हुआ कि आज ५२ वर्ष की आयु में शायद ही कोई रविवार आर्यसमाज में जाने से छोड़ा हो।

उपदेशकों की गूढ़ वाते समझने की बुद्धि ही बाद में आई। उपदेशकों ने बुद्धिवर्गियों को तो आकृष्ट किया है। उपदेशक को अपनी बात कहने को गद्य-मय भाषण और एक घन्टे का समय मिलता है। कवि तो १०-१२ लाइनों में ही छन्द, तुक और अलंकार शास्त्र के अनुशासन में बँधा हुआ एक विषय पर सब कुछ अल्प समय में ही कह डालने को बाध्य है। परन्तु प्रतीत होता है कि उसकी वाणी में सरस्वती उतर आती है और वह मन्त्र-दृष्टा ऋषियों की भांति इस दुरूह कार्य में सफल भी हो जाता है और उन १० लाइनों में सब कुछ कह डालता है। वह

कविता गेय बन जाती है। श्रोता और पाठक नित्य प्रातः उसे उठकर गाता है और अपने बौद्धिक व्यायाम से उन पंक्तियों में भरे गूढ़ भाव को स्वयं खोलता है। कवि की आत्मा का श्रोता की आत्मा से सम्पर्क होता है। यही तो वास्तविक मोद (Ecstasy) है। इस परम्परा का "प्रकाशजी" ने निर्वाह किया है और मुझे तो नित्य प्रातःकाल सन्ध्योपरान्त प्रभुभजन गाते समय उनकी आत्मा का सानिध्य प्राप्त होता है। अस्तु उनके प्रति कृतज्ञता प्रगट न करना पाप होगा।

उनकी साधनहीनता की निष्पक्षता किसी को सुनाई नहीं दी। अतः मैं सुनाता हूँ—

(१)

धन नहीं धाम नहीं, विद्या बल बुद्धि नहीं,
पागल जन्म का, मुसीबत का मारा हूँ।
तज तव चरण "प्रकाश" अब कहाँ जाऊँ ?
कोई मेरा प्यारा न मैं किसी का प्यारा हूँ।
हो गया हूँ मार्ग की धूल मुर्झाया फूल,
हाथ लगते ही छिन्न भिन्न हो वह पारा हूँ।
अवगुन कोई एक नाथ न गिनो तू मेरो,
भला बुरा जो कुछ हूँ तो, मैं तुम्हारा हूँ॥

(२)

गुणी हूँ न गायक हूँ न कवि नर-नायक हूँ,
नगरी का न नायक न कोई बन चारी हूँ।
रसिक रँगीला ना "प्रकाश" हूँ छबीला छैल,
साधु हूँ न सन्त ना महन्त मठधारी हूँ।
दाता हूँ न दानी हूँ, न ज्ञानी हूँ न ध्यानी मानी,
राजा हूँ न रंक ना निशंक अधिकारी हूँ।
शूर शस्त्र धारी ना वणिक व्यापारी मैं तो,
कुछ भी नहीं हूँ, एक प्रेम का पुजारी हूँ।

पाठक गण विश्वास रखें, मैं कवि का अपमान नहीं कर रहा हूँ। मुझे इन लाइनों में वेदना पिरोई हुई दीखी, सो व्यक्त कर दी। पर यह गेय गीत हैं तो सूरदास, मलूकदास और रैदास की दैन्य परम्परा के। पर तीनों सांसारिक साधन विहीन सन्त ही थे। तीनों की समानार्थक तीन "दैन्य" रस की कविता देख कर तुलना कीजियेः—

सूरदास

अ-पतित पावन हरि विरद तुम्हारो कौने नाम धरयो ?
हौं तों दीन-दुखित अति दुर्बल द्वारे रटत परयो।
ब-अब मैं नाचो बहुत गुपाल,
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल॥
भरम भयो मन भयो पखावज, चलत कुसंगत चाल।
स-हरि हौं सब पतितन को राव
को करि सके बराबरी मोरी सो तौ मोहि बताव॥

मलूक दास

दीन बन्धु दीनानाथ, मेरी तन हेरिये।
भाई नाहिं; बन्धु नाहिं, कुटुम परिवार नाहिं।
ऐसो कोई मित्र नाहिं, जाके ढ़िग जाइये।
सोने की सलैया नाहिं, रूपै का रुपैय्या नाहिं।
कौड़ी पैसा गांठि नाहिं, जासैं कछु लीजिये।
खेती नाहिं वारी नाहिं, बनिज व्यापार नाहिं।
ऐसो कोई साहु नाहिं, जासैं कछु माँगिये।
कहत "मलूक दास", छाँड़ि के पराई आस।
तो सो धनी पाइकैं, अब काकी सरन जाइये।

रैदास

प्रभु समान दाता कोऊ नाहीं, सदा विराजैं संतन माहीं।
नाम विसंभर विश्व जियावैं, सांझ विहान रिजिक पहुँचावैं॥
देइ अनेकन मुखपर ऐंन, जो करैं सो गुन करि मानैं।
काहू भाँति अजार न देही, वाही को अपना कर लेही॥
घरी घरी देता दीदार, जन अपने का खिजमतगार।
तीन लोक जाके औसाफ, जन का गुनह करे सब माफ॥

बस इनकी तुलना से आर्य कवि और निराकार ईश्वर के भक्त "प्रकाश" का गौरव निखरने लगेगा। आर्य-कवि अपने को पतित और नीच नहीं मानता, गुनाहों की माफी की प्रार्थना नहीं करता—उनके फल को भुगतने को तैयार है। अपनी अश्रु उद्वेलन दीनता और मजबूरी में भी प्रभु तक से धन वैभव नहीं माँगता। केवल प्रभु की शरण माँगता है और अपने ईश्वर प्रेम से आश्वस्त है। जिस समाज में दैन्य स्वीकार करके; कुछ न चाहते हुये अपने प्रचार-पथ के दीवाने कवि और भजनोपदेशक देने की शक्ति है वह अजेय है, अमर है। ◻◻

आर्य-मणि प्रकाश जी

भगवानदेव शर्मा

स्वतन्त्रता से पूर्व जब कांग्रेस के अधिवेशन होते थे तब देश की प्रजा कांग्रेसी नेताओं को सुनना इतना पसन्द नहीं करती थी; जितना आर्य समाजी नेताओं, पंडितों, प्रचारकों और विशेषकर गायकों-भजनोपदेशकों को पसन्द करती थी। अनेकों बार कांग्रेस के अधिवेशनों में उपस्थिति बढ़ाने के लिए प्रसिद्ध आर्य समाजी भजनीक-प्रचारकों को बुलाया जाता था। जिनमें कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी, कुँवर पं० सुखलालजी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

जब हमें स्वतन्त्रता नहीं मिली थी; तब देश के विभिन्न क्षेत्रों में साधनों के अभाव के रहते हुए श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी ने राष्ट्रीय, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जो क्रान्ति पैदा की और इस समय रुग्णावस्था में होते हुए भी कर रहे हैं। वह अभिनन्दनीय है।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू।
यथातथ्यतोथानि व्यदधात् शाश्वतीभ्यः सभाभ्यः॥

अर्थात्—"कवि मन का स्वामी, विश्व प्रेम से भरा हुआ, आत्मनिष्ठ, यथार्थ भाषी और शाश्वत काल पर दृष्टि रखने वाला होता है।"

ईशावास्योपनिषद् की यह बात पंडित जी के जीवन पर अक्षरशः घटती है—ऐसा मैंने निकटता से अनुभव किया है।

वैराग्य मूर्ति भर्तृहरि ने ठीक ही लिखा है—

तज्जाडयं वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्थी विनापीश्वराः।
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका न मणयो यैरर्धतः पातिताः॥

अर्थात्—"कवि लोग बिना धन के ही श्रेष्ठ हैं और वह राजा उस जौहरी के समान मूर्ख है जो मणि को न पहचानकर उसका मूल्य घटाता है।"

हमने अपने मणि (कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी) को पहचाना यह परम सन्तोष की बात है। यह अभिनन्दन उनका नहीं, आर्य-जगत् अपना कर रहा है।

कविः करोति काव्यानि स्वादु जानन्ति पण्डिताः।
सुन्दर्या अति लावण्यं पतिर्जानापि नो पिता॥

अर्थात्—"कवि काव्य रचता है पर स्वाद पंडित जानता है। जैसे सुन्दर स्त्री के लावण्य को उसका पति जानता है—पिता नहीं।"

वास्तव में जनता ने कविरत्न, आर्य भूषण श्री पंडित प्रकाशचन्द्र जी की काव्य रचनाओं का एक अच्छे गायक के नाते, संगीत के निपुण पंडित के नाते, एक सुयोग्य शिष्य के नाते, जो स्वाद लिया है और उसका जन साधारण को रसास्वादन कराया है—वह कम महत्व की बात नहीं है। हीरे की कीमत जौहरी ही जानता है।

"वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" तथा "मधुर वेद वीणा बजाए चला जा—"जो सोते हैं उनको जगाते चला जा"—आदि इस प्रकार की अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं ने पंडित जी की कीर्ति को चारों ओर चमकाया है। उनकी तमाम रचनाएं बहुत ही सुन्दर और सुमधुर हैं।

मैं प्रभु से पंडित जी के निरोगी एवं सुन्दर स्वास्थ्य की कामना करता हूँ। जिससे वह अपनी रचनाओं के द्वारा जनसाधारण का हौसला बुलन्द रखते रहें, क्योंकि कवि—"गिरे हुए उत्साह को उठाता है, रोती हुई आँखों के आँसू पोंछता है, निराशावादियों के सामने आशा का दिव्य दीपक जलाता है। सुप्त भावनाओं को जागृत करता है।"

इन शब्दों के साथ मैं पंडित जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

●

प्रकाश जी की काव्य-कला

डा० सूर्यदेव शर्मा

वेद में परमात्मा के अनेक गुणों के वर्णन में उसको "कवि" भी कहा गया है। "कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भूः" (यजुर्वेद 40-8)। अतः जो सज्जन काव्य-प्रतिभा से संचलित होकर इस धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं वे परमपिता परमात्मा की दिव्य विभूति के एक अंश को अपनी आत्मा के पूर्व संस्कारों में संजोये हुये आते हैं। इसीलिये कहा गया है, (Poets are born and not made) अर्थात् कविगण जन्मना ही होते हैं—वे बनाये नहीं जाते। परमात्मा की ऐसी ही दिव्य विभूतियों में एक हमारे पं. प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न हैं। एक प्रकार से उनका समस्त जीवन ही मधुर काव्य-मय है। श्री विद्वद्वर्य पं. ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है :—

"कविवर प्रकाशजी अपने ढँग के एक अनोखे कवि हैं। अनेक प्रकार के लोभ लालचों के आते हुये भी वह अपनी धुन में मस्त हैं। असंख्य नर, नारियों को अपनी मधुर वाणी और रसमयी कविता से जीवन का अमर सन्देश सुनाकर उन्होंने उनकी हृदय-कलिकाओं को अद्‌बुद्ध किया है। उनके जीवन में एक उन्माद है पर्वतीय निर्झर जैसा, जो कि बाधाओं से अठखेलियाँ करता है, प्रहारों से टक्कर लेता है और शून्य घाटियों को निरन्तर अमर संगीत सुनाता है और तब तक सन्तुष्ट नहीं होता जब तक कि मैदानों में फैलकर शुष्क भूमि के हृदय को हरित एवं सरस नहीं बना देता। इनकी कविता में इनके इस स्वभाव का रंग पद-पद पर झलकता है। अपने काव्य में जहाँ कवि मेघ के समान उच्च सुनील गगन में वायु-तरंगों पर उड़ान भरता है, वहाँ नीचे ही नीचे उत्तप्त धरा के उच्छ्वसित अन्तस्तल को भी मधुर, शीतल वारिधारा से परितृप्त एवं आल्हादित करने से भी नहीं चूकता। इनकी कविताओं में जहाँ माधवी की मादकता है, वहाँ प्रभात का जागरण भी है, जहाँ रसज्ञों के लिये सरसता है, वहां सर्व साधारण के लिये मार्ग-दर्शन भी है।"

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कविरत्न पं. प्रकाश चन्द्र जी केवल "कला

के लिये ही कला" के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखते जैसा कि अन्य अनेक कवि मानते और करते हैं, किन्तु प्रकाश जी की कविता में कला के साथ कोई प्रयोजन एवं उपदेश भी अन्तर्निहित रहता है। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

"केवल कला की कृति न कवि का कर्म होना चाहिये।
उसमें अमित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।"

कविरत्न जी की कविता में आर्य समाज, ऋषि दयानन्द, वैदिक धर्म, देश और राष्ट्र, समाज सुधार, भारतीय संस्कृति एवं अनेक वैदिक सिद्धान्त पूर्णत: पदे-पदे ओत-प्रोत प्रतीत होते हैं। आर्य समाज के लिये तो उन्होंने अपना जीवन ही अर्पण कर रखा है, जैसा कि हिन्दी के महान कवि एवं साहित्यकार श्री पं. हरि शंकर शर्मा ने लिखा है—

"श्री पं. प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न ने अपनी कविता कला द्वारा आर्य समाज की प्रशंसनीय सेवा की है, आप जहाँ एक उच्च कोटि के कवि हैं, वहाँ मधुर गायक एवं संगीतज्ञ भी बड़े प्रभावशाली हैं।"

पं. प्रकाश जी की काव्य-कृतियों में "साहित्य, संगीत, कला" का जो त्रिवेणी-संगम हुआ है, वह हिन्दी के बहुत कम कवियों में उपलब्ध हो सकेगा। वह कवि भी हैं, गायक भी हैं, वादक भी हैं, विचारक एवं कला-मर्मज्ञ भी हैं, भाषा, भाव, रस अलंकार एवं छन्दानुबन्ध पर उनका पूरा-पूरा अधिकार है। भक्ति रत्न के तो वह अजस्र स्रोत हैं यद्यपि अभी तक उनका कोई बड़ा महाकाव्य प्रकाशित नहीं हुआ है ("दयानन्द प्रकाश" एवं "महाभारत-भारती" जैसे महाकाव्य निर्माणाधीन हैं) फिर भी उनकी निम्नांकित जो काव्य-कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, उनमें उनकी उच्च साहित्यिक प्रतिभा, अनूठा अनुप्रास, संगीतमय छन्दोबद्धता, अद्भुत अलंकार नव रसों का पुष्ट परिपाक, सुन्दर शब्द-संकलन, भावाभिव्यञ्जना पद-पद पर अभिव्यक्त एवं परिलक्षित होती हैं। पाठक इन लघु कृतियों में उपर्युक्त गुणों का दिग्दर्शन सरलता एवं सरसता से कर सकते हैं:—

1. प्रकाश तरंगिणी।
2. प्रकाश गीत (4 भाग)
3. प्रकाश भजन-सत्संग।
4. कहावत कवितावली।
5. प्रकाश भजनावली (5 भाग)
6. गोगीत-प्रकाश।
7. स्फुट-कवितायें।

अलंकार आभा

प्रकाश जी की शायद ही कोई ऐसी कृति हो जिसमें अनुप्रास की आभा परिलक्षित न होती हो। वृत्यनुप्रास संमन्वित एक पद देखिये—

"संकट-समूह का समूल हो संहारसदा,
समुचित सब के समीप सुख साज हो।
साहसी सुभट सविवेकी सहृदय सभ्य,
सर्व भांति से समर्थ सकल समाज हो॥
सारयुत सभ्यता ही सम्मानित हो सदैव,
सरस सुहृद सत्य धर्म सरताज हो।
स्वस्ति स्वावलम्ब स्वप्रकाश स्वीय भाषा वेश,
स्वर्गसम सुखद स्वदेश में स्वराज हो॥

देखा आप ने?

स - का साज सजाया कैसा?
अनुप्रास अपनाया कैसा?

यमकालंकार

(1) फूटी हुई किस्मत का, अब तक न गया रोना।
सोना गया भारत का, फिर भी न गया सोना॥

(2) लक्ष्मी का तो नाम ही है कमला।
ममता उसकी मन में कम ला॥

मालोपमा (मनहरण छन्द)

देव दयानन्द ब्रह्मचारी हनुमान सम,
बाधाविघ्न विपद-वारिधि रहा चीरता।
कृष्ण सम जिसमें पुनीत नीति-परताथी,
असुर-संहारी राम के समान वीरता॥
सूर्य सी तेजस्विता तो चन्द्र सम शीतलता,
शैल सी विशालता, समुद्र सी गंभीरता।

शंकर सा प्रखर पाँडित्य, बुद्ध-वैराग्य,
भागीरथ भांति तप, ध्रुव सम धीरता ।।

सन्देहालंकार

देख दिव्य दीप्ति दयानन्द की वे ग्रामवासी,
सोचने लगे ये कोई योगी अवधूत है।
है ये कोई जादूगर या है मल्ल वीरवर,
ओत प्रोत ओज अंग-अंग में अकूत है ।।
अथवा ये रावण की लंका का निशंक ध्वंस-
कारी अवतारी ब्रह्मचारी पौन पूत है।
या है कोई उपकारी सत्यव्रतधारी या,
स्वतंत्रता-पुजारी कोई या कि क्रान्तिदूत है ।।

इस प्रकार इन चार उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि प्रकाश जी की कविताओं में अलंकार किस प्रकार से भरे पड़े हैं। उपरोक्त 4 अलंकारों के अतिरिक्त— (1) रूपक (2) उल्लेख (3) उत्प्रेक्षा (4) भ्रान्ति (5) सन्देह (6) शुद्धापन्हुति (7) भ्रान्त्यापन्हुति (8) निदर्शना (9) तुल्य योगिता (10) उल्लास (11) दृष्टान्त (12) विरोधाभास (13) विशेष (14) सम्भावना (15) अतिशयोक्ति (16) अन्योक्ति (17) लोकोक्ति (18) श्लेष (19) अनुज्ञा (20) प्रहर्षण (21) सम (22) विषम आदि अनेक अलंकारों की छटा आपकी कविता देवी के कलेवर को आभूषणवत् आलोकित कर रही है। [इस लघुलेख में सबके उदाहरण देना संभव नहीं।]

रस परिपाक

पं. प्रकाशजी की कविता में रसों का समावेश भी यत्र-तत्र अति सुन्दर बन पड़ा है। प्रत्येक रस के प्रयोग में स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, विभाव आदि स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ कुछ छन्द देखिये—

अद्भुत रस

कहीं ऊँचे शैल कहीं कोसों हरे खेत मानो,
प्रकृति नटी का हरा पट लहराया है।
कहीं जल बरसे है मूसल की धार सम,
कहीं प्राणी बूँद-बूँद को भी तरसाया है ।।
कहीं है "प्रकाश" से ही चका चोंध आँखों में,
कहीं अधिकार अन्धकार ने जमाया है।
पार नहीं पाया, चतुरों का चित्त चकराया,
ईश्वर की माया "कहीं धूप कहीं छाया है ।।"

हास्य रस

"शादीलाल" की न हुई शादी, कुँवारे ही रहे,
"हनुमन्त राव" ब्रह्मचर्य से विमुख है।
सेठ श्री "अमर लाल" मृत्यु-शैय्या पैपड़े,
"प्रेम चन्द" जी का भेड़िये सा कड़ा रुख है ।।
"दौलत नरायन" के पास नहीं फूटी कौड़ी,
"सुन्दर स्वरूप" का लंगूर जैसा मुख है ।।
एक है हमारे मित्र, उनकी न पूँछो कछु,
आँखों के हैं अन्धे अरु नाम नयन सुख है ।।

इसी प्रकार का हास्य रस
"प्रभु जी, मैं लीडर बन जाऊँ"
आदि कविताओं में पूर्णतया परिलक्षित होता है।

शान्त रस

यह जगजीवन क्षणभंगुर है।
जल बुद्बुद् सम है चंचल अति।
सन्ध्या राग भाँति अस्थिर-गति ।।
ढाक पात पर पड़े ओस-कण,
सदृश ढलने को आतुर है।
यह जग-जीवन क्षण-भंगुर है ।।१।।
क्या कंगाल और क्या राना,
एक दिवस सबको है जाना।
पलपल सम्मुख अजगर सम मुख,
खोले खड़ा काल निष्ठुर है।
यह जग-जीवन क्षण-भंगुर है ।।२।।
मिले "प्रकाश" परम अक्षय सुख,
छूटे जन्म-मरण दारुण दुख।
हो उपलब्धि अमर जीवन की,
उर में यह अभिलाष मधुर है।
यह जग-जीवन क्षण-भंगुर है ।।३।।

रौद्र रस

अलाउद्दीन खिलजी ने छल से महाराणा भीमसिंह को बन्दी बना लिया और कहा "पद्मिनी मेरे हवाले करो"।

सुन के ये वैन राणा भीमसिंह उर माँहिं,
ज्वालामुखी सा फूटा क्रोध, क्रोधानल भड़की ।
दाँतों से चबाने लगे ओठ अपने ही भुजा,
गजशुण्ड सी प्रचण्ड बारबार फड़की ॥
झपटे वे केसरी ज्यों खिलजी की ओर तभी,
हथकड़ी लोह की भी तड़-तड़ तड़की ।
पकड़ा तुरन्त उन्हें शाह के सिपाहियों ने,
बोले वाणी ओजमयी मानो बिज्जु कड़की ॥

इसी प्रकार वीर रस, करुण रस, वात्सल्य रस, भक्ति रस आदि के भी अनेक छन्द पं० प्रकाश जी की कविताओं से समुद्धृत किये जा सकते हैं जो स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं ।

मुक्तक

कभी-कभी कवि कलाकार की कल्पना कुरंगिनी काव्य–कानन में किल्लोल करती हुई ऐसी कुलांचें लगाती है कि उनसे कदम कदम पर 'मुक्तक" झड़ते चले जाते हैं—लीजिये, कुछ आप भी ये बिखरे हुए मणि-मुक्तक ।

मुक्तक-मणि-माला

(१)

सोना चाँदी न मुक्त माल रतन लाया हूँ,
मधुर आहार न बहुमूल्य बसन लाया हूँ ।
तीव्र शूलों से पोर पोर छिदाकर अपने,
भेंट को तेरी मैं कविता के सुमन लाया हूँ ॥

(२)

द्वेष छल मन में भरा है न दया प्रेम यहाँ,
बन के बैठे हैं सन्त, धूर्त कालनेम यहाँ ।
जाँच करले गरल अमृत की तू हनुमान सदृश,
जो पथिक चाहता है अपनी कुशल क्षेम यहां ॥

(३)

देखकर जलती शमा परवाने,
ख़ुद ही आ जाते हैं जलने के लिये ।
अरे उठ चल तेरे पीछे पीछे,
लाख आ जायेंगे चलने के लिये ॥

(४)

रात अंधेरी है, बादल है बिकट जंगल है,
क्या है चिन्ता ये आत्मबल हमारा सम्बल है ।
बचने को माघ महीने की कठिन सरदी से,
उसको कम्बल की जरूरत है जिसमें कमबल है ॥

(५)

धन मिटे, धाम मिटे, मैं मिटूँ न कुछ चिन्ता,
गीत यदि विश्व में मेरे ये अमिट हो जायें ।
फेंकता हूँ सभा में टोपियाँ विचारों की,
काश, दो-चार सिरों पर ही वे फिट हो जायें ॥

बस, लेखनी को विराम देते हुये ईश्वर से प्रार्थना है:—

जुग जुग जिये "प्रकाश" हमारा ।
बहती रहे काव्य-रस-धारा ॥
"सूर्य" सदृश साहित्यिक नभ में ।
करता रहे "प्रकाश' पसारा ॥"सूर्य"॥

हार्दिक अभिनन्दन

भूदेवशास्त्री

शायद सन् १९३० की बात है। मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन की पांचवीं कक्षा का विद्यार्थी था। अप्रेल मास के अन्तिम सप्ताह में गुरुकुल की रजत जयन्ती का महोत्सव चल रहा था। दिनभर की खेलकूद और दौड़ धूप के बाद एक दिन, रात को अपनी शय्या पर लेटा ही था कि पंडाल में से गूंजती हुई एक स्वरलहरी मेरे कानों में पड़ी—"वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने"। उस गीत में इतना ओज और स्वर लहरी में इतना आकर्षण था कि मैं पड़ा न रह सका। उठकर पंडाल की ओर चल दिया। वहाँ जाकर देखा कि प्रकाश जी के कंठ में से उत्साह एवं ओज का प्रवाह बह रहा है और जनता मंत्र-मुग्ध सी उनके गीत को दुहरा रही है। वह प्रथम दिन था, जब मैंने प्रकाश जी से प्रथम परिचय प्राप्त किया था।

उस दिन से मैं प्रकाशजी के गीतों पर मुग्ध सा रहा हूँ। मैनपुरी, ग्वालियर, आगरा, वृन्दावन, जहाँ कहीं भी मैं रहा और मुझे उनके आगमन की सूचना मिल गई, मैंने मीलों जाकर तथा रात में देर तक बैठकर उनके गीतों का रसास्वादन किया है। सन् १९३९ में, जब हैदराबाद के निज़ाम ने आर्यसमाज के सम्मान और यौवन को चुनौती दी थी, तब मैंने प्रकाश जी के मुख से "लहरायेगा लहरायेगा यह झंडा हमारा ओ३म् का" यह गीत सुना था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि आर्य समाज का उत्सव समाप्त हो जाने पर भी उनका यह गीत नगर की गली-गली में गूंजता रहा था। मेरे मानस में तो वह गीत, जब कभी मैं प्रकाश जी को देख लेता हूँ, अब भी गूंजने लगता है।

प्रकाश जी कवि भी हैं और गायक भी। बहुत से गायक प्रतिभा से कवि नहीं होते परन्तु वे गाते-गाते लिखने भी लगते हैं। उनकी कविताओं में तुकबन्दी तो होती है परन्तु उनका हृदय नहीं बोलता। प्रकाश जी के गीतों में उनका कवि हृदय भी बोलता है और साथ में बोलती है वैदिक धर्म और दयानन्द के प्रति उनकी श्रद्धा

भी। यदि ऐसा न होता, तो उनके गीत जनता के हृदय को वैदिक धर्म एवं दयानन्द के प्रति इतनी गहराई से छू न पाते।

प्रकाश जी के गीतों की एक विशेषता उनकी प्रगतिशीलता भी है। । 'प्रगतिशीलता' शब्द का प्रयोग मैं एक विशेष अर्थ में कर रहा हूँ। यहाँ 'प्रगतिशीलता' से मेरा अभिप्राय है जनता की रुचि के साथ – साथ भाषा, विषय-वस्तु एवं लय की परिवर्तनशीलता। प्रकाश जी ने आर्य-समाज के आदि युग की शैली से लेकर नवीनतम शैली में गीत लिखे हैं। इसी का परिणाम है कि श्रोता किसी भी प्रकार के हों, प्रकाश जी के गीतों का पूरे विश्वास के साथ उपयोग किया जा सकता है। मैंने बहुत से प्रचारक ऐसे देखे हैं, जिनके पास प्रकाश जी के गीतों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है परन्तु वे अपने श्रोताओं पर छाये रहते हैं।

आर्यसमाज का आन्दोलन एकमुखी सुधार आन्दोलन नहीं रहा है। वह तो आरम्भ से ही राष्ट्रीय नव निर्माण का आन्दोलन रहा है। वह तो, राष्ट्र शरीर में जहाँ कहीं उसे रोग दिखाई दिया, वहीं चिकित्सा-क्रिया करता रहा है। फलतः आर्यसमाज के प्रचार की विषय वस्तु भी विविध रही है। प्रकाश जी आर्यसमाज के कवि और गायक हैं अतः उनके गीतों की विषयवस्तु भी वैविध्य पूर्ण है। उनके गीतों में राष्ट्रजीवन के सभी पक्ष बोलते हैं। ऐतिहासिक आत्म-गौरव, स्वदेश प्रेम, संस्कृति में श्रद्धा, कुरीति निवराण आदि सभी कुछ उसमें मिल जाता है। जिन गीतों में उन्होंने युवकों को उत्साहित किया है, वे तो बेजोड़ हैं।

प्रकाश जी के गीत सिद्धान्तों की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। गायक और कवि प्रायः अपनी सहृदयता के कारण सिद्धान्तों की मर्यादा को लांघ जाते हैं। प्रकाश जी के गीतों में यह दोष बिल्कुल नहीं है। सिद्धान्तों की मर्यादा में रहते हुए भी सरलता उनकी अपनी विशेषता है।

प्रकाश जी आर्यसमाज के उन सेवा-कर्ताओं में नहीं हैं, जिन्होंने सेवा के नाम पर बहुत सी मेवा भी बटोरी है। वे सदैव एक कार्यकर्त्ता ही रहे। आज भी, वे, जब कि उनका शरीर गम्भीर रूप में अस्वस्थ है, कार्य में निरत हैं। मेवा न कभी पहले मिली और न आज मिल रही है। इतनी अस्वस्थता में भी सुन्दर – सुन्दर प्रेरक गीतों की रचना द्वारा आर्यसमाज के सन्देश को घर – घर पहुंचाने में लगे रहते हैं। प्रभु उन्हें शारीरिक स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन प्रदान करें, जिससे कि उनकी लेखनी से वैदिक सिद्धान्तों की सरस स्रोतार्स्विनी दीर्घ काल तक प्रवाहित होती रहे। इन शब्दो के साथ मैं कविरत्न प्रकाश जी को अपना हार्दिक अभिनन्दन अर्पित करता हूँ।

□□

प्रकाश चन्द्र चंद्रिका

बिहारी लाल शास्त्री

(१)

कवित्व रूप धारिणी
पवित्रता प्रचारिणी
तमः प्रपंच नाशिनी
सुभावना प्रकाशिनी
मराल वाहिनी स्वयम्
प्रकाश चन्द्र चन्द्रिका
मनः करोति निर्मलम्
जनं करोति विह्वलम्

(२)

प्रकाश चन्द्रस्य :गुणैः प्रमुग्धा
मराल मुत्सृज्य पदैः प्रयाति
संगीतमाकार्ण्य विहाय वीणाम्
सरस्वती ताल लयं तनोति

संस्मरण

स्वामी ओम् भक्त परिव्राजक

पं. प्रकाश चन्द्रजी प्रकाश जन्मजात गायक और कवि हैं। बाल्यकाल में इनका नाम दुर्गा प्रसाद था। इनके पिता श्री पं. बिहारी लाल जी थे। ये रेलवे कारखाने में कर्मचारी थे, परन्तु कविता भी कहा करते थे और गाया बजाया भी करते थे। स्थानीय (रामायण मण्डल) सनातन धर्म का जबभी उत्सव होता था तो ये भजनों द्वारा प्रचार किया करते थे और आर्य समाजियों को भी खरी खरी सुनाने में नहीं चूकते थे। बालक दुर्गाप्रसाद बाल्यकाल से ही भजन गाया करते थे। ठेले पर खड़े हो कर अपना खूब रंग जमाया करते थे। ये बातें सन् १९११, १२ की हैं। मैं उन दिनों स्थानीय दयानन्द शाखा शाला में अध्यापन कार्य किया करता था और दुर्गाप्रसाद उसी विद्यालय में पढ़ते थे। मैं समय पा इनसे कहता था भाई तुम अच्छे भजन गाते हो आर्य समाजके भजन गाया करो। ये कहते, समाजी तो देवता को नहीं मानते और राम कृष्ण को ईश्वर नहीं बताते। मैं इनसे कहता भाई ये नकली, देवता देवी और ईश्वर हैं। इस पर झगड़ने लगते। माध्यामक विद्यालय की पढ़ाई करके ये कारखाने जाने लगे। इनके पिताजी का देहान्त हो जाने पर कुछ वर्ष पश्चात् ये गुजरात प्रान्त में चले गये। और वहां से आर्यसमाज के विचार लेकर सन् २३, या २४ में अजमेर आ गये और ये दुर्गाप्रसाद से श्री प्रकाश चन्द्र 'प्रकाश' बनकर वैदिक धर्म के प्रचारक बन गये। मैंने सन् १९१८ नवम्बर में डी. ए. वी. हाईस्कूल का अध्यापन कार्य त्याग कर काशी से आने के पश्चात आ० प्र० सभा राजस्थान व मालवा के तत्वावधान में पवित्र वैदिक धर्म का प्रचार करने लगा था। अजमेर में जब उनकी मुझसे भेंट हुई तो वह कहने लगे :- "अब मेरा सारा जीवन महर्षि दयानन्द के प्रतिप्रादित सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्राचार में लगेगा"। समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में झूम २ कर वैदिक भजन गाने लगे और तत्सम्बन्धी भजन बनाने लगे। प्रकाश भजनावली का प्रथम व द्वितीय भाग छप गया था। सन् २५ को मथुरा शताब्दी में "वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्दने" भजन बनाकर। बड़ा नाम कमाया। सन् २६ में मेरे साथ प्रान्त में शिरोमणी आ० प्र० सभा० राज० के द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। सन् २८ में स्वतन्त्र हो भारत के भिन्न २ प्रान्तो में घूम २ कर जनता जनार्दन को पवित्र वैदिक सन्देश देने लगे। प्रचार अवस्था में मेरे साथ बड़े ही कष्ट सहन करने पड़े परन्तु कभी हिम्मत नहीं हारे। बड़ी लगन और तन्मयता के साथ आर्य समाज का सत्य संदेश देने में कभी प्रमाद नहीं किया। सन् २२ वर्ष से गठिया रोग से रुग्ण होने पर भी उसी लगन ओर धुन के साथ वैदिक धर्म प्रचार के भाव बने हुए हैं। और आज भी कवितायें और भजन लिखकर अपने कर्तव्य पालन में प्रमाद नही लाते हैं। ईश्वर इन को दीर्घायु करे। इनके प्रति मेरी यही शुभकामना है।

□□

प्रभावशाली व्यक्तित्व

—हरवंश लाल "हंस"

सन् १९६० में आर्य महासम्मेलन के अवसर पर दिल्ली में आपके प्रथम बार ही दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ख्याति से पूर्व परिचित था। उन दिनों लगभग तीन मास आपकी चरण शरण में रहा—इस काल के अन्तर्गत आपके व्यक्तित्व, कवित्वकला तथा अन्य ईश्वर प्रदत्त विभूतियों का मेरे मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। उस प्रभाव को मैं वाणी अथवा लेखनी द्वारा अभिव्यक्त करने में असमर्थ हूँ। आपमें मैंने हर विपरीत परिस्थिति में भी फूलों की मधुर हँसी, आकाश समान विशालता, दिनकर जैसी प्रचण्डता, सिन्धु जैसी गहराई, तथा पृथ्वी जैसी सहनशीलता का अनुभव किया। तात्पर्य यह कि मिश्री की डली की भाँति जिधर से भी देखा कोई न कोई अद्‌भुत विशेषता ही पाई। आपके प्रत्येक क्रिया कलाप ने मुझ पर जादू सा असर किया—सचमुच आप असाधारण व्यक्तित्व के स्वामी तथा विलक्षण कलाओं की साक्षात् प्रतिमा हैं।

उन्हीं दिनों साथ रह कर कुछ सीखता भी रहा तथा अनेक सभाओं में आपके सुमधुर सङ्गीत एवं उपादेयता से ओतप्रोत वेद प्रवचन भी श्रवण करके अपने कानों को पवित्र करता रहा। आज भी वह सुखद वातावरण मेरे समक्ष चल चित्र को भांति घूम सा रहा है। मुझे स्मरण है कि एक दिन आर्यसमाज जंगपुरा भोगल के वार्षिकोत्सव के समय आपने मुझे कुछ सुनाने को कहा था—मैंने गीत बोलकर अभी समाप्त किया ही था कि तुरन्त आपने मुझे उसको स्वर लिपि बना कर सुनादी दी थी। तभी मेरे मन पर आपकी सङ्गीतज्ञता की भी छाप पड़ गई। इस से पूर्व मैं आपको केवल एक कवि समझता था। आपकी कविता की शैली से मुझे बहुत प्रेरणा मिली है। इसी कारण मैं आपको हृदय से गुरु मानता हूँ—आपके प्रति मेरे वही भाव हैं जो किसी भी कृतज्ञ शिष्य के होते हैं। यह ठीक है कि अधिक देर आपके श्री चरणों में रहकर कुछ अधिक सीख नहीं पाया—इसमें परिस्थितियां बाधक रही हैं। कभी अनुकूलता होने पर आपकी चरण शरण में रहने का विचार बनाए हुए हूँ। आगे ईश्वरेच्छा।

□□

पुण्य-पुञ्ज

चञ्चल चकोर चिर चारु चन्द्र चितवती
चातक चतुर चहें स्वाति जल-आश है
जिमि मेघ माल पै मयूर मन मोह जात
लागी नेह मेह की सुप्रबल पियास है
दिनकर विलोक ज्यों पद्‌म हू प्रफुल्लित होत
कमल के लिये अलि केर अट्टहास है
अङ्ग ना समात आज "प्रणव" पतङ्ग क्योंकि
पायो पुण्य पुञ्ज पिय पावन "प्रकाश" है
"प्रणव" पिता का पूर्ण प्रिय, पावन कृपा-प्रकाश।
पाकर दीर्घायुष्य को विहरें "चन्द्र प्रकाश"॥

ओंकार मिश्र 'प्रणव'

काव्यमय अभिनन्दन

⊙ रमेशचन्द्र शास्त्री

कवि का कर्म कठोर कुलिश से भी कर्कश है।
व्यंग्यशरों से भरा हृदय उसका तरकस है॥

कविबाणों से विद्ध न कोई घायल जग में।
सोया सुख की नींद कभी निज जीवन-मग में॥

कवि की सृष्टि स्वतन्त्र नियति के नियम तन्त्र से।
कवि की सृष्टि विचित्र विश्व के विषय यन्त्र से॥

कवि की सृष्टि महान ईश की महिमा से भी।
कवि की सृष्टि विशाल दिव्य गुरु गरिमा से भी॥

कविवाणी कर सकती है विस्फोट व्योम में।
भर सकती है ज्योति जगत् के रोम–रोम में॥

कर सकता रवि दूर नहीं जिस अन्धकार को।
सह सकता वह कभी न कवि के व्यंग्य-वार को॥

चमकाता है कवि का काव्य कृपाणों को भी।
समराङ्गण में ले जाता निष्प्राणों को भी॥

हार–जीत का निर्णय उससे होता आया।
'चन्द और भूषण' ने जग को यह बतलाया॥

कवि की छाया है असह्य सम्राटों को भी।
कर सकता वह फूल पलक में काँटों को भी॥

मरुस्थली में वह घन घोर वृष्टि कर सकता।
ब्रह्मा से भी अलग नवीन सृष्टि रच सकता॥

बञ्जर में भी वह उद्यान उगा सकता है।
जलधारा में आग तीव्र सुलगा सकता है॥

भर सकता है वह सागर को लघु गागर में।
भाग्य रेख को भी उलटा सकता पलभर में॥

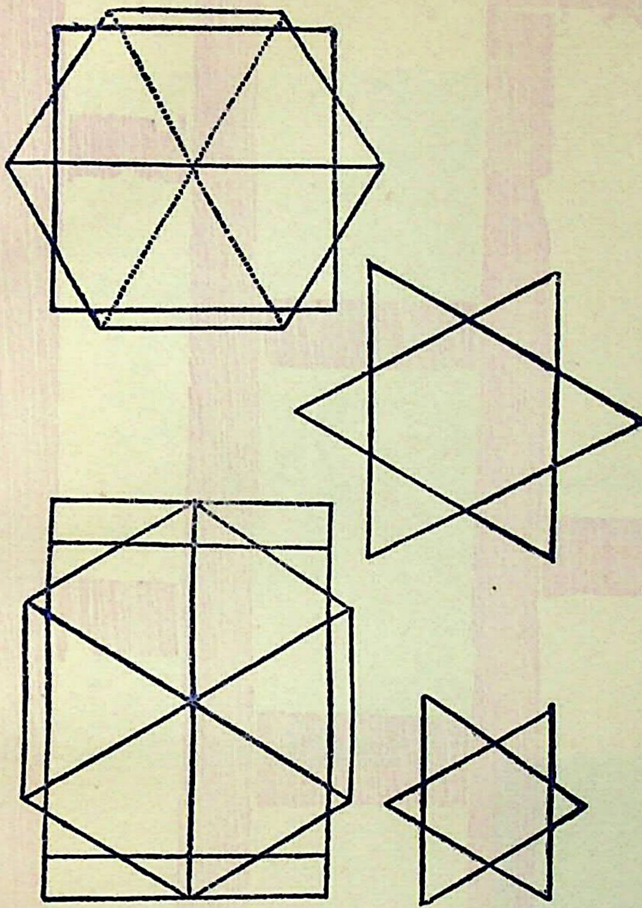
छेड़ा जिसने कवि को उसका अपयश निश्चित।
पूजा जिसने कवि को उसका सुयश सुनिश्चित॥

वाल्मीकि का मारा रावण मरता जाता।
वाल्मीकि का गाया राम उभरता जाता॥

'कवि प्रकाश' ने दिया मनुज को अमर उजाला।
कानों में उसके मधुमय मृदु अमृत डाला॥

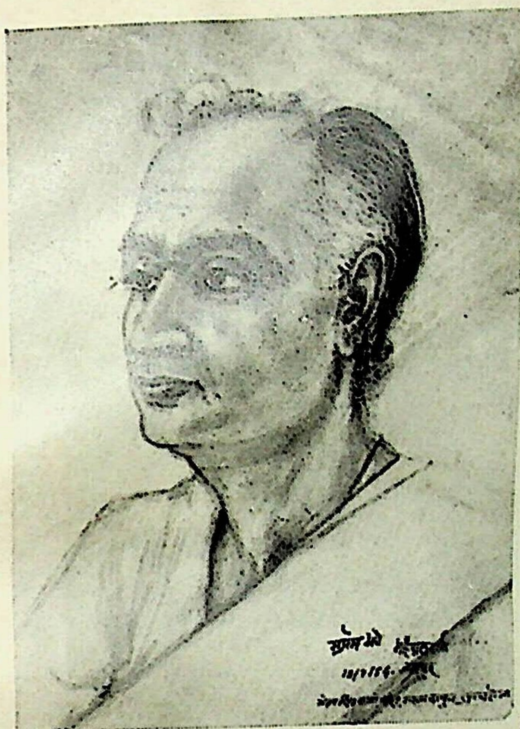
इन शब्दों के साथ करों से कर अभिवन्दन।
करता हूँ मैं भी उनका सादर अभिनन्दन॥

□□

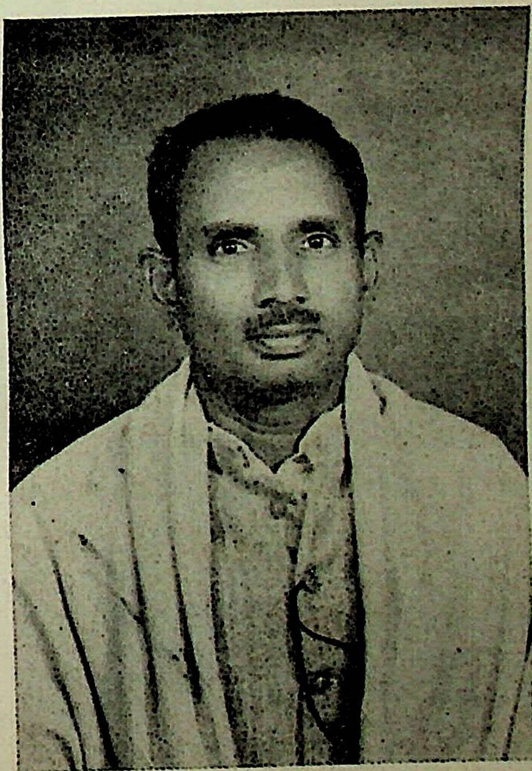


स्मृतियाँ, बैसाखियों के साथ

गुरु-शिष्य



श्री प्रकाशजी का
रेखा चित्र : महिपाल शर्मा, जयपुर



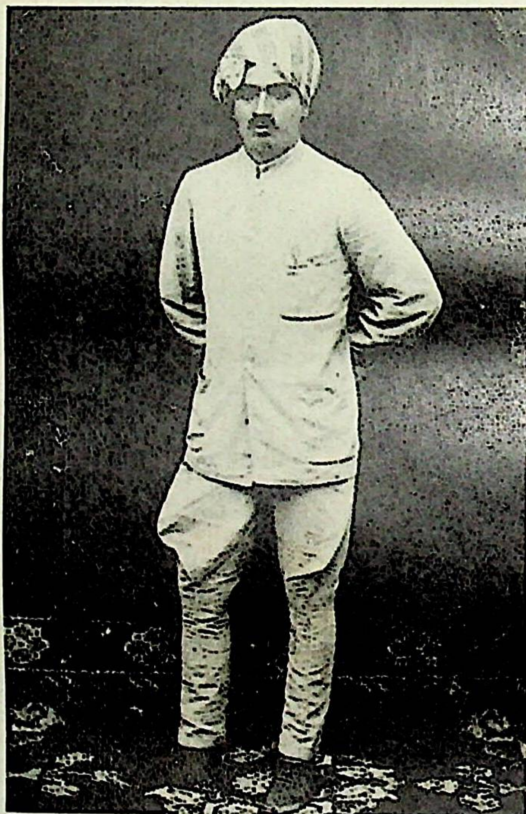
अभिनन्दन समारोह के केन्द्र विन्दु

श्री पन्नालालजी पीयूष
सह-संयोजक, अभिनन्दन समिति.

स्मृतियाँ

बीते दिनों के साथी





क्या भूलूँ !



क्या याद करूँ मैं !



समस्त अंगों की शक्ति जैसे नेत्रों में केन्द्रित

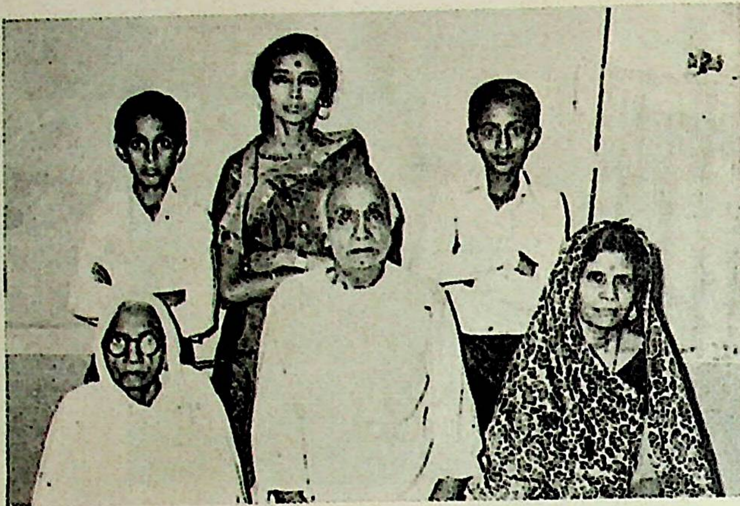


बीत गई सो बात गई

वैसाखियों के साथ

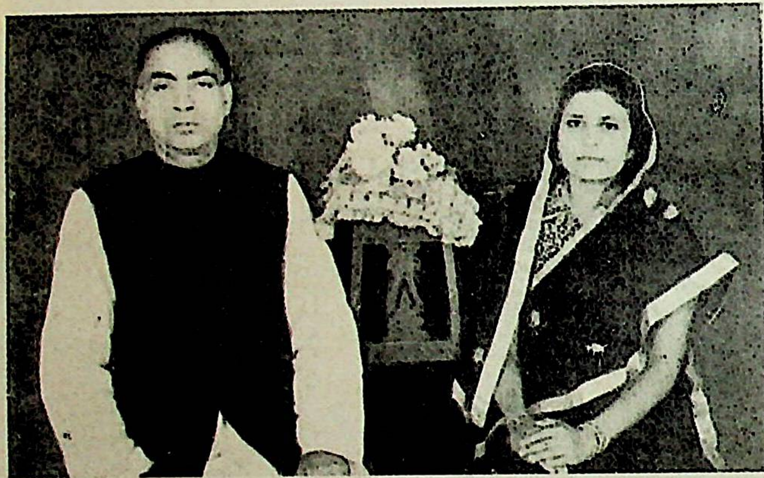


स्मृतियों से वैसाखियों तक



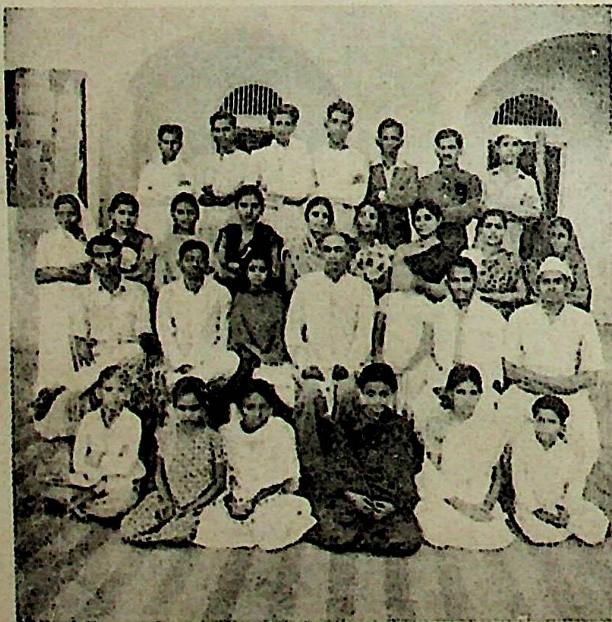
परिवार के बीच

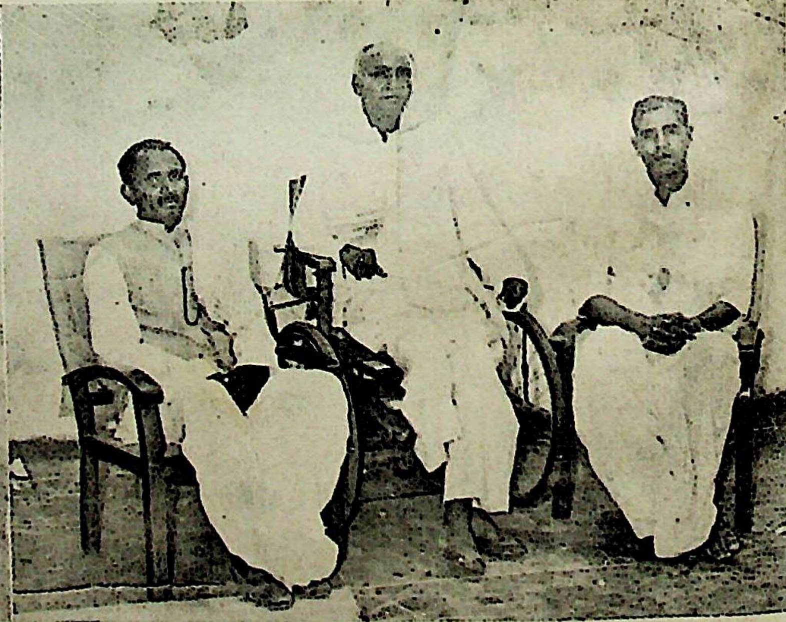
सबसे पीछे, आत्मजा स्नेहलता शर्मा अपने दोनों पुत्रों के साथ. (बैठी हुई) बाईं ओर भगिनी हरदेवी जी तथा दाईं ओर धर्मपत्नी पुष्पा देवीजी.



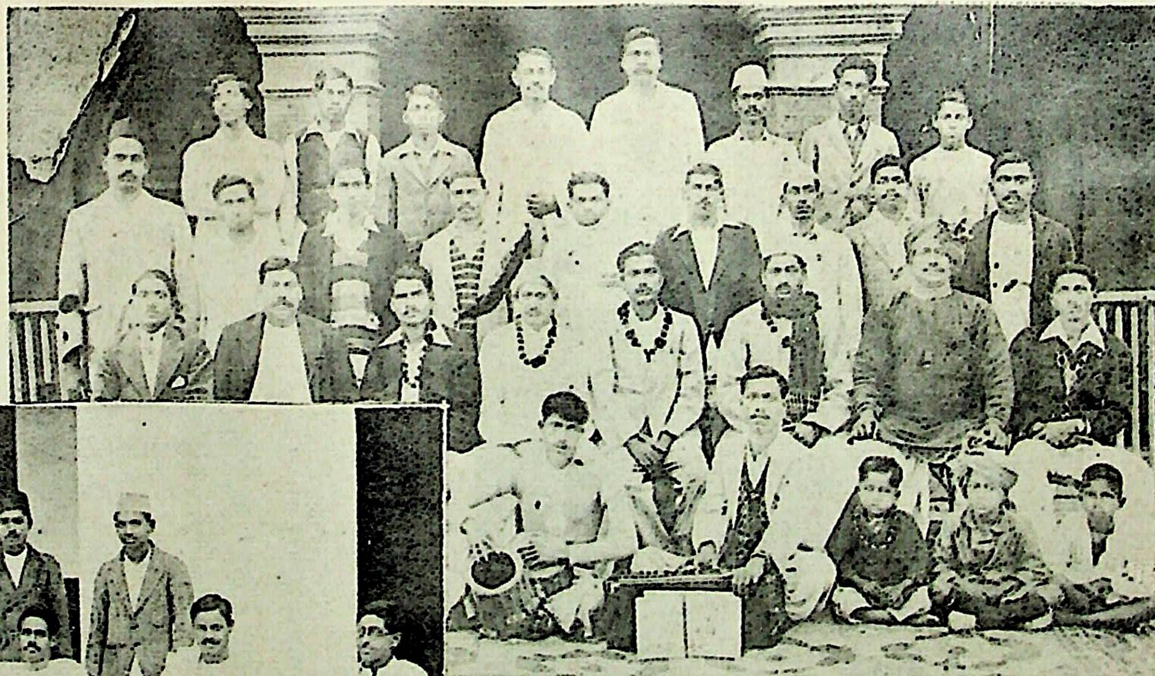
जीवन-संगिनी के साथ

प्रकाशवीरजी के साथ प्रकाशचन्द्रजी एवं गायक पीयूष जी (बाईं ओर) तथा (दाईं ओर) संगीत कला मन्दिर के आचार्य के रूप में शिक्षक एवं विद्यार्थियों के साथ.





आर्यसमाज आसनसोल के
वार्षिकोत्सव के अवसर पर, कुर्सी पर बैठे हुए, दाएँ से तीसरे,
श्री प्रकाश जी

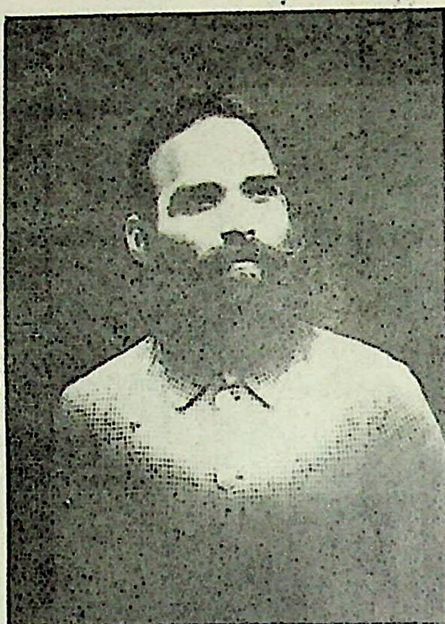


मित्र-मण्डली के साथ श्री प्रकाशजी सन् १९३२



(बाईं ओर से खड़े हुये)—श्री नारायणलाल, श्री बाबूराम 'भोंदू', श्री कन्हैयालाल 'आजाद', श्री विश्वनाथ वर्मा,
श्री पन्नालाल पीयूष ।

(बाईं ओर से बैठे हुये)—श्री ओंकारलाल, श्री धर्मेन्द्रवीर शिवहरे 'अनघ', श्री प्रकाशचन्द्र 'प्रकाश',
श्री कुँ० सुखलाल' आर्य्यमुसाफिर', श्री रामनाथलाल 'सुमन', श्री शीतलचन्द्र 'शीतल',
श्री कृष्णराव वाब्ले ।

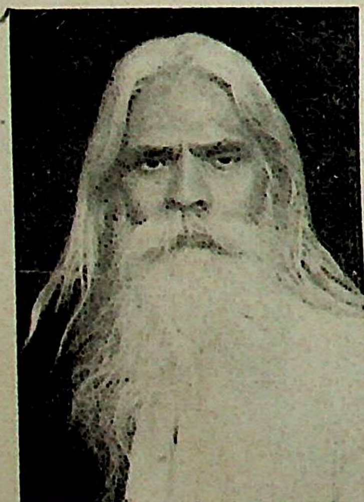
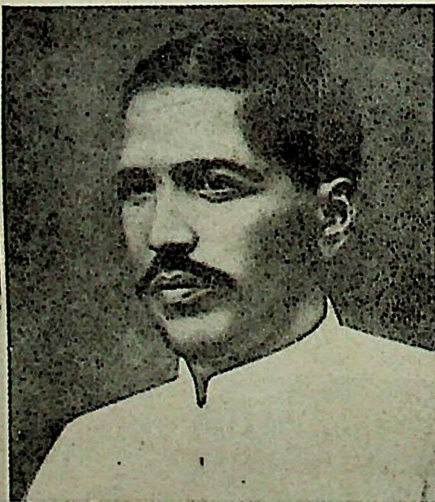

पं० रामचन्द्रजी देहलवी

कर्मवीर भाई वंशीलाल जी वकील

दक्षिण केसरी विनायकरावजी विद्यालंकार

श्री बंसीलालजी व्यास

हुतात्मा श्यामलालजी

प्रकाशजी के साथी, स्नेही, क्रांतिकारी कार्यकर्त्ता



श्री हरविलास जी शारदा



श्री रामविलास जी शारदा

स्नेही, सहयोगी-प्रसिद्ध आर्य कार्यकर्त्ता

कर्मवीर पं. जियालाल जी



कुँवर चांदकरण जी शारदा



डॉ० दुःखनरामजी

महात्मा आनन्द स्वामीजी









ला० रामगोपालजी शालवाले

पं० प्रकाशवीरजी शास्त्री

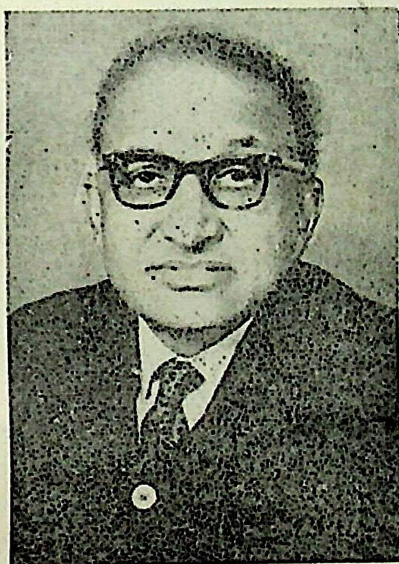
स्नेही, सहयोगी आर्य कार्यकर्त्ता

श्री मानकरण जी शारदा



पं. भगवानस्वरूपजी न्यायभूषण



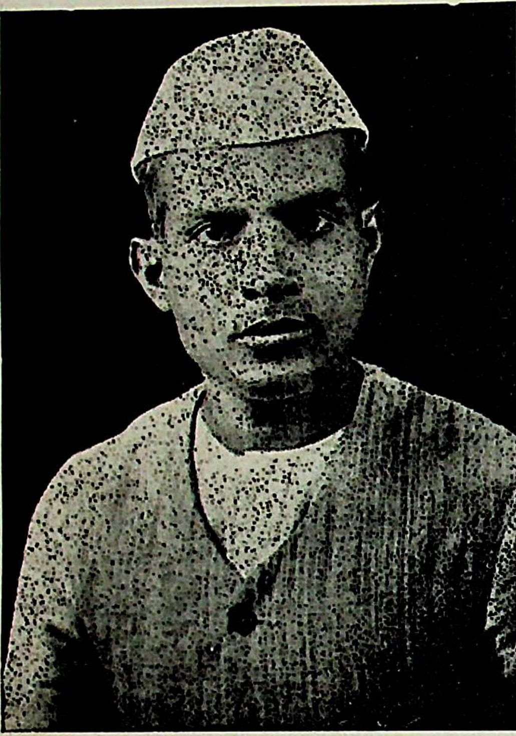


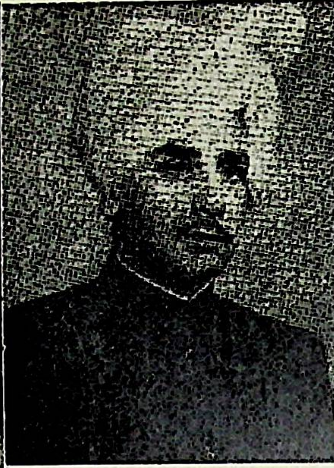


श्री दत्तात्रेय जी वाब्ले

श्री श्रीकरण जी शारदा

स्नेही, सहयोगी आर्य कार्यकर्त्ता



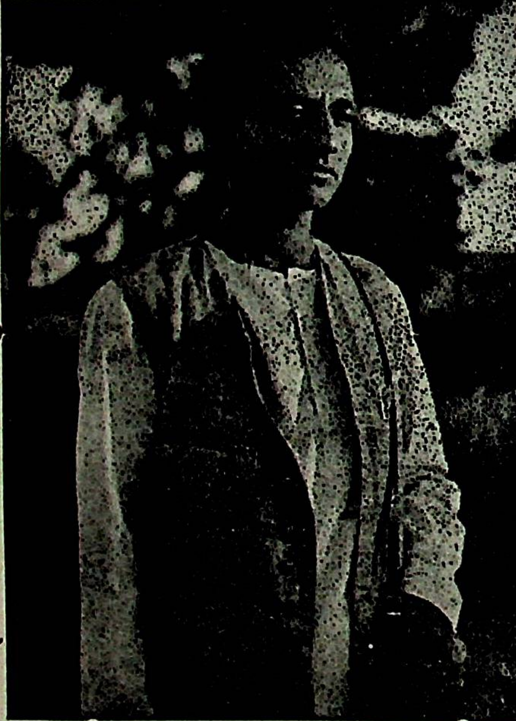


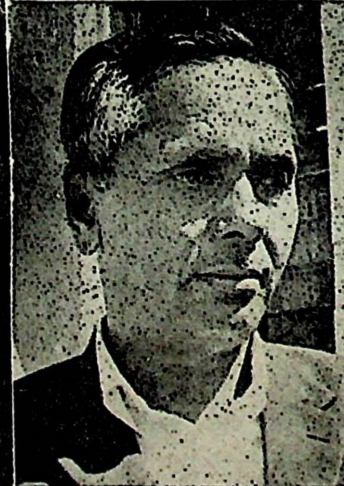
पं० नरेन्द्रजी हैदराबाद
स्वागताध्यक्ष

महाराजा श्री सुदर्शनदेव जी
शाहपुरा
अध्यक्ष
अभिनन्दन समारोह



डॉ० भवानीलालजी भारतीय
संयोजक एवं संपादक





सदाविजय आर्य
संपादक

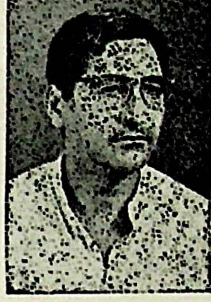
श्री सुरेन्द्र प्रकाशजी शर्मा
कोषाध्यक्ष

अभिनन्दन समिति

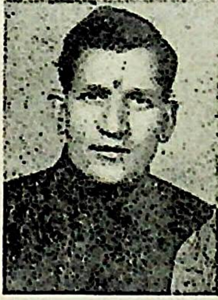
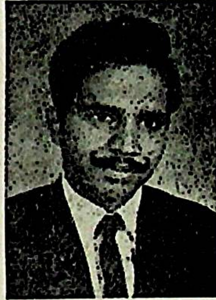




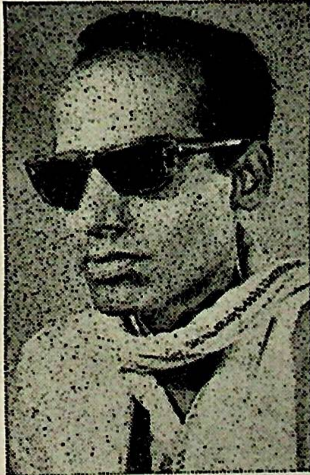
श्री बाबूराम 'ब्रह्मकवि'
श्री भद्रपाल सिंह चौहान
श्री भगवती प्रसाद 'अभय'


श्री हरवंश लाल 'हंस'
श्री ओम् प्रकाश वर्मा
श्री अनन्तराव


श्री देवदत्त राममूर्त्ति
श्री इन्द्रदेव
श्रीमती गायत्री देवी



श्री कन्हैयालाल 'मधुकर'

शिष्य-मंडल

सामयिक चिन्तन

आर्यों के प्रमाण-ग्रन्थ : मदनमोहन विद्यासागर

एक शताब्दी से भी अधिक समय हुआ, वि० सम्वत् १८०४ की माघ बदी १४ की शिवरात्री के दिन वर्तमान सौराष्ट्र प्रदेश के भू. पू. मौरवीराज्य के टंकारा नामक ग्राम के एक शिवालय में एक पवित्रात्मा अबोध भक्त मूल जी दयाराम शिवदर्शन की लालसा से पत्थर के शिव-लिङ्ग के सामने व्रतोपवास किये प्रस्तर मूर्तिवत् दृढ़ स्थिर शान्त मौन बैठा था। शिव जी दर्शन देने न आये, हां ! एक छोटा सा चूहा अपने भोजन की खोज में आया और शिव जी के नाम पर चढ़ाया भोग उड़ा गया। और जाते समय शिवलिंग पर मूत्र पुरीष का उत्सर्ग कर गया।

सच्चे शिव की खोज में भटकती अबोध भक्त की आत्मा जाग उठी। शिव जी तो न मिले, पर उसका बोध मिल गया। उसने तपस्या की, वेदों का स्वाध्याय किया। अन्तरात्मा ज्योतिर्मय हो गया और उसका आलोक चारों तरफ वैदिक धर्म के रूप में दिग्दगन्त में सर्वत्र फैल गया। मूल जी दयाराम बुद्ध ही नहीं; 'प्रबुद्ध' हो गया। उसने मतमतान्तरों द्वारा फैले विद्वेष, कलह वादविवादों का अन्त कर प्राणी-मात्र को सच्ची सुख-शान्ति देनेवाले, "ब्रह्मा से लेकर जैमिनी ऋषि पर्यन्त ऋषियों से समस्त सत्य अर्थ के प्रतिपादक (स. प्र. ४९६), निस्सन्देह सर्वशंकानिवारक (स. प्र. ३६३), सत्य विद्याओं के भण्डार (स. प्र. ४८३), सब का उद्धार करने वाले (स. प्र. ५८३), धर्ममय वेदमत (स. प्र. ६५८)" का प्रचार किया। उसने स्वार्थ और अविद्या जनित पाखण्ड और अधर्मयुक्त चाल-चलन का विरोध कर कहा—"भला अब लौं जो हुआ सो हुआ, परन्तु अब तो अपनी मिथ्या प्रपंच आदि बुराइयों को छोड़ो और सुन्दर *ईश्वरोक्त वेदविहित सुपथ* में आकर अपने मनुष्य रूपी जन्म को सफल बनाकर..........आनन्द भोगो (स. प्र. ४९६)।" *अच्छा तो वेद मार्ग है; जो पकड़ा जाये, तो पकड़ो। नहीं तो, सदा गोता खाते रहोगे* (स. प्र. ४८५)।"

शुद्धान्तःकरण ऋषि दयानन्द ने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो मनुष्य सकल विद्यामय सत्यधर्म प्रतिपादक वेद मत को स्वीकार करता है, उसको

सर्वत्र सर्वदा सुख-लाभ और जो विपरीत वर्तता है, वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है। "जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत-मतान्तर का सत्यबाधक विरुद्धवाद न छूटेगा और वेदमत का प्रचार नहीं होगा, तब तक सब को आनन्द नहीं होगा।

(स. प्र. ३६४)

परम ज्ञानी ऋषि दयानन्द ने मानवजाति पर कृपा करके उसे उन "सर्वतंत्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक सनातन नित्य धर्म" (स्व. म. प्र.) का ज्ञान कराया, "जिसको सदा से सब मानते आये हैं, मानते हैं और मानेंगे भी......जिसका विरोधी कोई भी न हो सके" (स्व. म. प्र.) क्योंकि "अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मतवाले के भरमाये जन जिसको अन्यथा जानें वा मानें, उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते। किन्तु जिस को सब सत्यमानी सत्यवादी सत्यकारी परोपकारक पक्षपात रहित आप्त विद्वान् मानते हैं, वही सबको मन्तव्य [होने से प्रमाण योग्य] और जिसको नहीं मानते, वह अमन्तव्य होने से किसी के प्रमाण के योग्य नहीं होता (स्व. म. उपक्र)।" उस ऋषि ने "जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए (ईश्वर, जीव, प्रकृति) आदि पदार्थ हैं (स्व. म. प्र.)" उन्हीं को "सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित (स्व.म.प्र.)" किया। 'तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य (स्व. म. प्र.)' मन्तव्य ही उनका था। उनका "कोई नवीन कल्पना या मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नही है; किन्तु जो सत्य है, उसको मानना मनवाना और जो असत्य है, छोड़ना छुड़वाना (स्व. म. प्र.)" उनको अभीष्ट है। ऋषि "यदि पक्षपात करते, तो आर्यावर्त* में प्रचरित किसी एक मत के आग्रही होते (स्व. म. प्र)" और आर्यावर्त्त में प्रचलित अधर्म-युक्त चाल-चलन का स्वीकार करते। परंतु वे सत्यवादी धर्मात्मा आप्त विद्वान् थे। सच्चे मनुष्य थे, देवता थे, फरिश्ते थे, ज्ञानदूत थे। 'अन्य देशों में प्रचलित अधर्मयुक्त चाल-चलन तथा पाखण्ड मतों का जैसा खण्डन किया है (सत्यार्थ प्रकाश के १३ वें, १४ वें समुल्लासों में) वैसा आर्यावर्त्तीय मतों का खण्डन कभी (स. प्र. ११, १२ समु० में) न करते, क्योंकि यदि वे पक्षपाती होते। क्योंकि उनकी सम्मति में पक्षपाती होकर "जो जो आर्यावर्त्त वा अन्य देशों में प्रचलित अधर्मयुक्त चाल-चलन है, उसका स्वीकार और उनमें जो जो धर्मयुक्त बातें हैं; उनका त्याग करना...मनुष्य धर्म से बहिः है (स्व. म. प्र.)।"

ऋषि दयानन्द ने जिस सत्य-सनातन धर्म का प्रचार किया उसका आधार 'ऋग् यजु साम अथर्ववेद' को माना इनके अर्थ का सम्यग् बोध करने कराने के लिये मनुस्मृत्यादि अन्य नाना आर्ष शास्त्रों का प्रमाण भी स्वीकार किया। वेद तथा उन प्रमाण मूल ग्रन्थों का परिगणन नीचे किया जाता है।

ज्ञान का आदिस्रोत, वेद

"ऋग्, यजुः, साम, अथर्व नाम से प्रसिद्ध जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याधर्मयुक्त वेदचतुष्टय (संहिता मात्र मंत्रभाग) है, वह निर्भ्रान्त नित्य स्वतः प्रमाण (ऋ. भा० भू० ७७) है। इसके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। इससे मनुष्यों को सत्या-सत्य का ज्ञान होता है, ये सत्यार्थ प्रकाशक हैं (ऋ. भा भू, ६९८)। सूर्य व प्रदीप के स्वरूपतः स्वतःप्रकाशक व अन्य पृथ्वी आदि पदार्थों के प्रकाशक होने की तरह ये स्वयं प्रमाणरूप हैं (स्व. म. प्र. २; आ. उ. र. ६५; स. प्र. ७ स. २६६; ऋ. भा. भू- ६८९। व ७७; स. प्र. ८४-८५; ऋ. द. पत्र विज्ञा. २११-२१२, २१४) क्योंकि—

(१) उनमें प्रतिपादित सब सिद्धान्त सार्वभौम, सार्वजनिक और सर्वकालिक हैं। वे किसी देश काल विशेष में मानवजाति के किसी विशिष्ट समुदाय के निमित्त प्रकाशित नहीं किये गये (द्र. स. प्र. २६६,७ समु०)

(२) मनुष्य के सर्वतोमुख विकास के साधनों के द्योतक हैं।

(३) इनमें वर्णित कोई भी सिद्धान्त, बुद्धि विज्ञान व अनुभव के विरुद्ध नहीं। ये पक्षपातशून्य भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं (भ्रान्तिनि. शता. सं.८७७)। वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध है (स. प्र. अनुभू. ३६३)।

---

*जिसे ऋषि दयानन्द 'सब विद्या और भलाइयों का भण्डार' एवं 'जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं'... इसी देश से प्रचलित हुए हैं...ऐसा मानते हैं (स.प्र.३६९)

(४) इनमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्त और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कोई कथन नहीं (स. प्र.; ऋ. भा. भू.)।

(५) इनमें ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल वर्णन है (स. प्र. २६०, ७ समु.)।

(६) सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त ब्रह्मा, मनु, व्यास, जैमिनि, दयानन्द आदि जो भी आप्त पुरुष होते आये हैं; वे सब वेदों को नित्य सर्वविद्यामय और प्रामाणिक मानते आये हैं।

आप्तोपदिष्ट आर्षग्रन्थ

भारत भूमि में रचित वेदभिन्न साहित्य आर्ष (ऋषि प्रणीत, आप्तोपदिष्ट) व अनार्ष (स्वार्थी धूर्त्तजन विरचित) दो प्रकार का है। (ब्रह्मा-मनु-जैमिनी से लेकर दयानन्द ऋषि पर्यन्त) आप्तोपदिष्ट (वेदों के व्याख्यान रूप) आर्ष-ग्रन्थों का आर्य परम्परानुसार वेदानुकूलतया ही प्रमाण है। ये सब ग्रन्थ पौरुषेय होने से परतः प्रमाण हैं। इनमें यदि कहीं वेद-विरुद्ध वचन हैं, तो वे अप्रमाण हैं (स्व. म. प्र. २; स. प्र. ८४, ३ समु.; ऋ. द. प. व्य. वि. १ म. सं २४, ४२; भ्रमो. शता. सं. ८५८; ऋ. भू. ५९)। परन्तु सबसे अधिक प्रामाणिक और मानने योग्य धर्मशास्त्र तो चार वेद हैं; उनसे विरुद्ध वचन चाहे किसी भी पुस्तक में पाये जायें वे मानने योग्य नहीं हो सकते। वेद-बाह्य कुत्सित पुरुषों के ग्रन्थ त्याज्य हैं क्योंकि वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है। ब्रह्मा से लेकर दयानन्द महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना और वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है (स. प्र. ४१९. ११ समु; भ्रमोच्छे. ५५८-८६०; ऋ. भा. भू. ७३, व ६८९; ऋ. द. प. व्य. वि. १ म. सं. १६१७)।

प्रक्षेप

समय-समय पर पुराने ऋषियों के नाम से स्वार्थान्ध मतवादी लोगों ने आर्ष ग्रन्थों में बहुत प्रक्षेप कर दिये हैं, बहुत भाग निकाल भी दिये हैं और मिथ्यावादों से पूर्ण नये ग्रन्थ रच डाले हैं। इन प्रक्षिप्त भागों व ऐसे कपोलकल्पित अनर्थगाथा युक्त नवीन ग्रन्थों का त्यागना ही श्रेष्ठ है (ऋ. भा. भू. ६९८; स० प्र० ८४, ३ समु; स० प्र० ३५१, ११ समु.)।

एतद्भिन्न (आर्ष व आप्तोदिष्ट) विश्वसाहित्य को यथा योग्य आदर की दृष्टि से देखना चाहिये। उनमें निर्दिष्ट तर्क और अनुभव द्वारा प्रतिष्ठित विज्ञानसिद्ध व वेदानुकूल अंश ही प्रामाणिक है। विज्ञानसिद्ध एव तर्क प्रतिष्ठित प्रत्येक सत्य विषय की यथार्थता स्वीकार करनी चाहिये, चाहे, वह किसी ने किसी समय में किसी भी देश या परिस्थिति में क्यों न कहा हो (मु. सत्यप्रकाश की भूमिका (ऋ. भा. भू. २१९)।

वेदप्रचारक, चार ऋषि

सृष्टिकर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर ने इन वेदों का ज्ञान मानव-सृष्टि करने पर पूर्व सृष्टि में जिन जीवों के गुण कर्म स्वभाव सबसे पवित्र थे उन अयोनिज सृष्टि में जन्म लेने वाले तपस्वी ज्ञानी पवित्रात्मा चार ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया; क्योंकि वे उस ज्ञान के बिना कुछ भी सीख-समझ नहीं सकते थे कि धर्माधर्म कर्त्तव्याकर्त्तव्य क्या हैं? और वे ही उस उपदेश को अन्तःकरण की शुद्धता के कारण हृदयस्थ रूप में ग्रहण कर सकते थे (स. प्र. २६५, ७स. मु; ऋ. भा. भू. २७, २९, ३१,३४, ४१, १७५)।

अग्नि ऋषि को ऋग्वेद
वायु ऋषि को यजुर्वेद
आदित्य ऋषि को सामवेद
अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद

इन ऋषियों ने वेदों के ज्ञान का ब्रह्मा द्वारा अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश दिया। सर्गारम्भ में सर्वज्ञ ईश्वर के सिवा कौन मनुष्यों को ज्ञान दे सकता है? यदि वह ज्ञान न देता, तो मानव जाति को ज्ञान न होता और न धारा रूप में ज्ञान आगे बढ़ता। यदि पीछे ज्ञान देता पूर्वसृष्टि उसके लाभ से वंचित रहती। सर्ग मध्य में तो आप्त पुरुष भी ज्ञान प्रसार कर सकते हैं (ऋ. भा. भू, ६१-८२; ऋ. भा. भू. ३४-४१)।

परतः प्रमाण

(वैदिक साहित्य अथवा आर्य-वाङ्मय

चारों वेदों के ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण, शिक्षा व्याकरण आदि ६ अङ्ग, ६ उपाङ्ग, धनुर्वेद गन्धर्ववेद आदि

चार उपवेद और ग्यारह सौ सत्ताइस (११२७) वेदों की शाखायें जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, वे परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं, वे अप्रमाण हैं; (स्व. म. प्र. २)। (ऐसे ग्रन्थों का परिगणन स. प्र. ३ समु. तथा ऋ. भू. ३८६ में द्रष्टव्य है)। जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थों का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें। क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है, वही नास्तिक कहाता है (स. प्र. १० स., ३४४)।

पुराण—जो ब्रह्मादि के बनाये प्राचीन ऐतरेय शतपथ, गोपथ और ताण्ड्य आदि ब्राह्मण आदि ऋषि-मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं; उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं। अन्य विष्णु शिवपुराण भागवतादि को नहीं (स्व. म. प्र. २३; आ. उ. र. ६६; ऋ. भा. भू. ६८६ स. प्र. ३ समु- ८६)। ये प्राचीन सत्य ग्रन्थ वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं; परतः प्रमाण के योग्य हैं (ऋ०भा०भू० ६६०)।

उपवेद—जो आयुर्वेद=वैद्यकशास्त्र; धनुर्वेद=शस्त्रास्त्र सम्बन्धी राजविद्या राजधर्म; गान्धर्ववेद=गानविद्या और अर्थ-वेद=शिल्पशास्त्र हैं; इन चारों को उपवेद कहते हैं और ये भी वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं (आ. उ. र. ६६; ऋ. भू. ६६०; स. प्र. ३ समु.)।

वेदाङ्ग—जो शिक्षा=पाणिन्यादिमुनिकृत; कल्प=मन्वादिकृत मानवकल्पसूत्रादि तथा आश्वलायनादिकृत श्रौत सूत्रादि; व्याकरण=पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ गणपाठ उणादिपाठ प्रातिपदिक और पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य, ऋषि-दयानन्द कृत वेदांगप्रकाश; निरुक्त=यास्कमुनि कृत निरुक्त और निघण्टु; छन्द=पिङ्गलाचार्य कृत सूत्र भाष्य; ज्योतिष=वसिष्ठादि ऋषि कृत रेखागणित और बीजगणित युक्त ज्योतिष ये छः आर्य सनातन शास्त्र हैं, इनको वेदांग कहते हैं। ये भी परतःप्रमाण के योग्य हैं (आ० उ० र० ६८, ऋ० भा० भू० ६६२)।

उपांग=जिनका नाम षट्शास्त्र भी है। पहला मीमांसाशास्त्र=व्यासमुनि आदिकृत भाष्यसहित जैमिनि-मुनिकृत पूर्व मीमांसा शास्त्र, जिसमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्म तथा धर्मी दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है। दूसरा वैशेषिक शास्त्र=यह विशेषतया धर्म=धर्मी का विधायक शास्त्र है, जो कि कणादमुनिकृत सूत्र और गौतममुनि कृत प्रशस्तपाद भाष्यादि व्याख्या सहित है। तीसरा न्याय शास्त्र=यह पदार्थविद्या का विधायक शास्त्र है, जो कि गौतममुनि कृत सूत्र और वात्स्यायनमुनि कृत भाष्यसहित है। चौथा योगशास्त्र=जिसके द्वारा उन पदार्थों का साक्षात् ज्ञान होता है, जिनका मीमांसा, वैशेषिक तथा न्यायशास्त्र से श्रवण तथा मनन के द्वारा आनुमानिक निश्चय होता है, जो पतंजलिमुनि कृत सूत्र और व्यासमुनिकृत भाष्य सहित है। पाँचवाँ सांख्यशास्त्र=जिसके द्वारा प्रकृति आदि तत्त्वों की गणना होती है और उनका आत्मा से विवेक ज्ञान होता है। जो कपिलमुनिकृत सूत्र और भागुरिमुनि-कृत भाष्यसहित है। छठा वेदान्तशास्त्र=जो कि ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दश उपनिषद् तथा व्यासमुनिकृत सूत्र जो कि बौधायनवृत्त्यादि व्याख्यासहित है। ये छः वेदों के उपांग कहाते हैं और ये भी परतः प्रमाण के योग्य हैं (आ० उ० र० ६६; ऋ० भा० भू० ६६२-६६३; स० प्र० ३ समु.)।

स्मृति=वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र (स० प्र० ६२, ३ समु०; २१२ षष्ठ समु०; ३४४, १० समु०; ४ स० १५२; ३ स० ८५)।

अन्य आर्ष ग्रन्थ—वेदोद्धारक सत्यधर्म प्रचारक योगीश्वर परमहंस सुचेता महावैज्ञानिक महर्षि दयानन्द विरचित समस्त ग्रन्थ भी सत्यार्थ के प्रकाशक होने से और वेदानुकूल होने से परतः प्रमाण के योग्य हैं। इनमें से सत्यार्थप्रकाश सर्वाधिक मान्य पुस्तक है, विश्वविद्याओं का भण्डार है, सन्मार्ग प्रदर्शक है।

वेदों के चार काण्ड

वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादित करने में है (स० प्र० ८३; ऋ० भा० भू० २१०)। इस लोक और परलोक के व्यवहारों के फलों की सिद्धि और यथावत् उपकार करने के लिए

सब मनुष्यों को वेदों के विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान इन चार विषयों के अनुष्ठान में पुरुषार्थ करना (ऋ० भा० भू० २६१) चाहिये। क्योंकि इससे धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि होती है और यही मनुष्य-देह धारण करने का फल है (ऋ० भा० भू० ६८-८६, १४३)।

(१) विज्ञान काण्ड*—उसको कहते हैं कि सब पदार्थों का यथार्थ जानना अर्थात् परमेश्वर से लेके तृण पर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध होना और उनसे यथावत् उपयोग लेना व करना। यह विषय इन चारों में भी प्रधान है; क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य है। परिणामत: विज्ञान दो प्रकार का है—

क० परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना।

ख० उसके रचे हुए सब पदार्थों (=प्राकृतिक वस्तुओं) के गुणों को यथावत् विचार करके उनसे कार्य सिद्ध करना अर्थात् कौन-कौन से पदार्थ किस-किस प्रयोजन के लिए रचे हैं, इसका जानना।

(२) कर्म काण्ड—यह सब क्रिया प्रधान ही होता है। इसके विना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते। क्योंकि बाह्य व्यवहार तथा मानस व्यवहार का सम्बन्ध बाहर और भीतर दोनों के साथ होता है (ऋ० भा० भू० १००-१०२, १४१)। वह अनेक प्रकार का है; किन्तु उसके दो मुख्य भेद हैं—

क० एक परमार्थ मार्ग। इससे परमार्थ की सिद्धि करनी होती है। इसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उसका आज्ञापालन, न्यायाचरण अर्थात् धर्म का ज्ञान और अनुष्ठान यथावत् करना। मनुष्य इसके द्वारा मोक्ष प्राप्ति में प्रवृत्त होता है।

जब मोक्ष अर्थात् केवल परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिए धर्म से युक्त सब कर्मों का यथावत पालन किया जाय तो यही निष्काम मार्ग है, क्योंकि इसमें संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती। इसका फल सुखरूप और अक्षय होता है।

ख० दूसरा मार्ग लोकव्यवहार सिद्धि। इससे धर्म के द्वारा अर्थ काम और उनकी सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है। यह सकाम मार्ग है, क्योंकि इसमें संसार के भोगों की इच्छा से धर्मानुसार अर्थ और काम का सम्पादन किया जाता है। इस लिए इसका फल नाशवान् होता है, जन्म-मरण का चक्र छूटता नहीं।

अग्निहोत्र से लेके अश्वमेघ (राष्ट्रसेवा, राष्ट्रपालन, देशरक्षण, राष्ट्रसमृद्धि, राष्ट्रविस्तार) पर्यन्त यज्ञ आदि इसके अन्तर्गत हैं।

विहित और निषिद्ध रूप में कर्म दो प्रकार के होते हैं। वेद में कर्तव्यरूप से प्रतिपादित ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि विहित हैं; वेद में अकर्तव्य रूप से निर्दिष्ट व्यभिचार, हिंसा, मिथ्याभाषणादि निषिद्ध हैं। विहित का अनुष्ठान करना धर्म, उसका न करना अधर्म और निषिद्ध का करना अधर्म और न करना धर्म है (स० प्र० ४१७, ११ समु०)।*

(३) उपासना काण्ड—जैसे ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं, उनको वैसा जान अपने को वैसा करना, योगाभ्यास द्वारा इनका साक्षात् करना, जिससे परमेश्वर के ही आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको उपासना कहते हैं।

यह कोई यान्त्रिक व ज्ञानरहित क्रिया नहीं, जैसे बिना समझे किसी शब्द का या वाक्य का बार-बार जाप करना।

(४) ज्ञान काण्ड—वस्तुओं के साधारण परिचय को ज्ञान कहते हैं (स. प्र. ४४. २ य. समु.)।

उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड तथा कर्मकाण्ड के निष्काम भाग में भी परमेश्वर ही इष्टदेव, स्तुति, प्रार्थना पूजा और उपासना करने के योग्य है। कर्मकाण्ड के निष्काम भाग में तो सीधे परमात्मा की प्राप्ति की ही प्रार्थना की जाती है, परन्तु उसके सकाम भाग में अभीष्ट विषय के भोग की प्राप्ति के लिये परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

अपरा विद्या, परा विद्या

वेदों में दो विद्या हैं, अपरा और परा। जिससे पृथिवी और तृण से लेके प्रकृति, जीव और ब्रह्मपर्यन्त

* देखो ऋ० भा० भू० ६१-६४; स० प्र० ८६, समु० ३; २४६, समु० ७।

*कइयों के मत में निषिद्ध का न करना न धर्म है और न अधर्म।

सब पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक-ठीक कार्य सिद्ध करना होता है, वह अपरा और जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह परा विद्या है। इनमें परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम हैं; क्योंकि अपरा विद्या का ही उत्तम फल परा विद्या है।*

धर्मशास्त्र

वस्तुतः ये ईश्वरोक्त सत्यविद्यामय चारों वेद ही सब मनुष्यों के पवित्र आदि धर्म-ग्रन्थ और सच्चे विद्या पुस्तक (आ० वि० ४०; ऋ० भा० भू० ७६७) और सर्वोच्च धर्मशास्त्र हैं। इनकी शिक्षाओं पर आचरण करना मनुष्य मात्र का परम कर्त्तव्य है। 'ईश्वर की आज्ञा है कि विद्वान् लोग देश-देश और घर-घर जाके सब मनुष्यों को इनकी सत्यविद्या का उपदेश करें (ऋ. भा. भू. ६६१)।' क्योंकि 'जो ग्रन्थ सत्यविद्याओं के प्रतिपादक हों, जिनसे मनुष्यों को सत्य-शिक्षा और सत्यासत्य का ज्ञान होता हो, ऐसे शास्त्रों के स्वाध्याय एवं तदनुकूल आचरण से शरीर मन आत्मा शुद्ध होते हैं (आ. उ. र. ६४)।

अन्तिम निष्कर्ष

ऋषि दयानन्द ने कोई बात अस्पष्ट नहीं लिखी। लगभग उन्हीं के शब्दों में आर्यों के प्रमाण ग्रन्थों का परिगणन ऊपर कर दिया है। उस सूचि में अन्य ग्रन्थों का, चाहे वे कैसे भी क्यों न हों, समावेश करना उचित नहीं। अन्य ग्रन्थों का स्वाध्याय कोई भी विद्वान् कर सकता है; पर वह उन्हें 'आर्यों के प्रमाण ग्रन्थों' की सूचि में डालने का अधिकार नहीं रखता।

जो वेदानुकूल व बुद्धितर्क के अनुसार है, वह ग्राह्य है; यह बात तो ठीक है। पर वे सब ग्रन्थ आर्यों के प्रमाणग्रन्थों की सूचि में शामिल किये जावें, यह गलत है। जैसे कई विद्वान् कुरान की कुछ आयतों को वेद मंत्रों का अनुवाद सा मानते हैं अर्थात् वेदों की अमुक बात कुरान में गई है, ऐसा मानते हैं। पर इससे कुरान आर्यों के प्रमाणग्रन्थों में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। यही बात धम्मपद व गीता व तमिल वेद के सम्बन्ध में समझना चाहिये। □□

* उपनिषदों को परा विद्या और वेदों को अपरा विद्या के ग्रन्थ मानना महाभ्रान्ति है।

"मनुष्य-जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद-विवाद, विरोध करने कराने के लिये, इसी मत मतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत-मतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा।"

—महर्षि दयानंद सरस्वती

आर्य समाज का भावी रूप : गुरुदत्त

इस लेख में आर्य समाज के रूप के विषय में लिखना चाहता हूं। रूप का अभिप्राय इसके बाहरी लक्षण ही हैं। आर्य समाज की एक आत्मा भी है। उसके विषय में यह लेख नहीं, परन्तु प्राणी के आत्मा का आभास स्वरूप में होता है। अत: आर्य समाज के स्वरूप में भी इसके आत्मा का आभास हो सकता है।

आर्य समाज की आत्मा है वेद (ऋक्, यजु, साम और अथर्व में वर्णित ज्ञान)। और इसके स्वरूप के वर्णन में वेद की झलक दिखायी देनी चाहिये। कहने का अभिप्राय यह है कि इस समाज की गतिविधि में, इसके कथनों में, प्रदर्शनों में तथा साहित्य में वेद ज्ञान के दर्शन होने ही चाहियें। इस पर भी उस आत्मा के विषय में न लिखकर केवल स्वरूप पर ही अपने विचार इस लेख में लिखना चाहूंगा।

आर्य समाज के स्वरूप से मेरा अभिप्राय आर्य समाज के कार्यक्रम का, इसके सदस्यों का आचार-विचार, उनके साथियों और सहयोगियों, इसके संस्थानों और मन्दिरों इत्यादि से है।

अभी तक आर्य समाज का स्वरूप इसके स्कूल, कालेज, गुरुकुल, मन्दिर, अनाथालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय इत्यादि ही रहे हैं। एक प्रकाशन संस्था भी इसके स्वरूप के दर्शन में है।

श्री स्वामी महर्षि दयानन्द सरस्वती के देहावसान उपरान्त आर्य समाज ने शिक्षा संस्थान खोलने और चलाने अपना मुख्य कार्य बना लिया। यह कार्य आज तक चला आता है। जहां भी कोई आर्य समाज बलशाली होती है वहां वह स्कूल, कालेज खोलना अपना कर्त्तव्य समझ लेती है।

शिक्षा कार्य के आरम्भ में ही आर्य समाजियों में मतभेद हो गया था। इस मतभेद का वृत्तान्त बताने में कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हां, इतना बता देना उचित होगा कि जो भेद दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल कालेजों की शिक्षा में और गुरुकुलों की शिक्षा में था, वह काल व्यतीत होने के साथ कम होता जा रहा है।

दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल, कालेज अब सरकारी स्कूल कालेज के समान हो रहे हैं और गुरुकुल ऐंग्लो वैदिक स्कूल तथा कालेजों के समान। इन सब की शिक्षा में अन्तर दिन-प्रतिदिन न्यून होता जाता है।

अतः मेरा यह मत है कि न तो दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल, कालेज आर्य समाज का स्वरूप कहे जा सकते हैं और न ही गुरुकुल। स्कूल, कालेजों के खोलने का मुख्य उद्देश्य ईसाइयों के हिन्दू समुदाय पर आक्रमण का विरोध करना था। गुरुकुल आर्य समाज के स्वरूप को लुभायमान और कल्याणकारी प्रकट करने के लिये भी थे। अब तो ये दोनों प्रकार की शिक्षण संस्थायें सरकारी शिक्षण संस्थाओं के समान होती जा रही हैं। अतएव ये दोनों आर्य समाज के उन उद्देश्यों को पूर्ण नहीं कर रहीं जिनके लिये यह खोली गयी थीं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि ये आर्य समाज के स्वरूप का दर्शन नहीं करातीं।

अनाथालय भी हिन्दू समाज की ईसाइयों से रक्षा के लिये खोले गये थे और वे भी आर्य समाज के स्वरूप को प्रकट नहीं कर रहे। एक तो देश की वर्तमान दशा में उनकी आवश्यकता न रही है और न ही इनसे उस उद्देश्य की पूर्ति हो रही है जिनके लिये यह खोले गये थे।

इन दो कर्मों को छोड़कर शेष कार्य रह गया है मन्दिर निर्माण करना और वार्षिक तथा साप्ताहिक जलसे करना एवं जलूस निकालना। ये आर्य समाज की सामर्थ्य का एक मिथ्या दर्शन करायें, परन्तु जो दशा आर्य समाज के मन्दिरों की है और जिस प्रयोग में वह आते हैं, वह आर्य समाज के स्वरूप का किसी प्रकार भी उज्ज्वल अंग नहीं है।

बड़ी से बड़ी आर्य समाज का मन्दिर सप्ताह में एक-आध बार एकत्रित होने का स्थान मात्र रह गया है। इस एकत्रित होने में संध्या, हवन, भजन, उपासना गौण अंग हैं और सत्संग में व्याख्यान मुख्य अंग है। इस साप्ताहिक सत्संग के मुख्य अंग किसी उपदेशक व्याख्यान के समय भी अधिकांश मूढ़ व्यक्ति और वह भी बहुत कम संख्या में उपस्थित होते हैं।

इन मन्दिरों में कुछ दर्शनीय नहीं होता। इनमें होने वाले सत्संगों में कुछ श्रवणीय अथवा मननीय नहीं होता। अत एव आर्य समाज मन्दिरों में साप्ताहिक सत्संगों में उपस्थिति नगण्य होती है। पढ़े-लिखे युवक वर्ग बहुत कम होते हैं।

एक शब्द में यदि कहा जाये तो यह होगा कि आर्य समाज का स्वरूप दिन-प्रतिदिन मलिन हो रहा है।

मैं यह मानता हूँ कि आर्य समाज की आत्मा तो अति श्रेष्ठ, अपूर्व महिमा मय और अत्यन्त कल्याणमय है, परन्तु स्वरूप फीका, मलिन और एक रुग्ण प्राणी का सा ही दिखायी देता है।

मैं समझता हूँ कि आर्य समाज ने अपना कार्यक्रम, अपना व्यवहार और अपने संस्थान ऐसे बनाये थे जो आर्य समाज के न तो उद्देश्य के प्रतीक थे और न ही समाज को दर्शनीय, श्रवणीय, एवं संगत योग्य प्रकट करने में सफल हुए थे। किसी मन्दिर में जाकर बैठने पर जो चित्त की शान्ति एकाग्रता तथा परमात्मा की समीपता का अनुभव होना चाहिये, वह आर्य समाज के मन्दिरों में दिखायी नहीं देता।

यह क्यों हुआ है? आर्य समाज के स्कूल, कॉलेज और गुरुकुल क्यों आर्य समाज के मुख को उज्ज्वल नहीं कर सके? यह एक गम्भीर चिन्तन का विषय है। इस असफलता के कारणों के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है। वह अपने पूर्वजों अर्थात् आर्य समाज के भूतपूर्व नेताओं के विषय में लिखना होगा। इस विवाद में पड़ना नहीं चाहता। केवल इतना संकेत करना चाहता हूँ कि आर्य समाज आत्मविहीन अथवा अति दुर्बल आत्मा वाले प्राणी की भांति हो गया है। यही कारण है कि मृत अथवा प्रायः मृत प्राणी के निस्तेज स्वरूप कि भांति इसका स्वरूप हो रहा है।

इस कारण इसके मृत प्रायः देह में प्राण फूंकने तो अत्यावश्यक हैं। बाहर का रूप-रंग मृत अथवा प्रायः-मृत होने पर क्रीम, पाउडर लगाने से नहीं निखर सकेगा। आत्मा अथवा प्राण का संचार तो आवश्यक ही है। वेद-ज्ञान को प्रबल करने का आयोजन तो होना ही चाहिये, परन्तु जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया है, यह लेख बाहरी स्वरूप से सम्बन्ध रखता है।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि बाहरी रूप लुभायमान बन नहीं सकेगा जब तक समाज जीवित, जागृत प्राणी की भांति प्राणी के सब गुण से युक्त नहीं होगा। परन्तु प्राण के तथा आत्मा के रहते हुए भी बाहरी स्वरूप कैसा हो, यह ही इस लेख का अभिप्राय है।

इसके स्वरूप की कल्पना करते हुए यदि ऐसी व्यवस्था हो जाये जिससे आत्मा का ही हनन होने लगे तो वह स्वरूप भी स्वीकार करने योग्य नहीं होगा। तब वह स्वरूप आर्य समाज का नहीं होगा, भले ही किसी अन्य समाज का हो। इस कारण स्वरूप की कल्पना करते हुए यह ध्यान तो रखना ही होगा कि वह आर्यसमाज के आत्मा वेद ज्ञान को ही निःशेष करने वाला न हो।

मैं स्वरूप के कुछ लक्षण इस प्रकार मानता हूं:—

(१) सबसे प्रथम आर्य समाज के सदस्यों और पदाधिकारियों का विषय ही देखना चाहिये।

अभ्यान्तरिक आचार-विचार की बात तो मैं इस लेख में करूंगा नहीं। मैं आर्य समाज के आत्मा के विषय में नहीं लिख रहा। अतः इस समाज के सदस्य वेद निन्दक न हों। वे वेद पर श्रद्धा भक्ति रखते हुए दिखायी दें। उनके घरों में वेद की महिमा का गान होता हो और एक आर्य जीवन के बाहरी लक्षण हवन, सन्ध्या, उपासना दिखायी देते हों। कम से कम वेद पाठ होता हो

आर्य समाजों में पदाधिकारियों का निर्वाचन वोट डालकर न हो। यह विद्वत्ता और आर्य जीवन के आधार पर हो। जब मैं पदाधिकारियों का उल्लेख करता हूं तो मैं कोषाध्यक्ष अथवा लेखाकार की बात नहीं करता। ये लोग तो मतदान से निर्वाचित हो सकते हैं, परन्तु मैं आर्य समाज के प्रधान, मन्त्री तथा अन्तरंग सभा के सदस्यों के विषय में लिख रहा हूं। आर्य समाज के प्रधान इत्यादि पदाधिकारी सदस्यों के मतदान से निर्वाचित हों, यह युक्तियुक्त बात प्रतीत नहीं होती। क्या सम्मति से विद्वान्, चरित्रवान और कार्य कुशल पदाधिकारी ही चुने जायेंगे? यह निश्चय नहीं। इसमें कुछ अन्य उपाय होने चाहियें। कुछ भी उपाय हों। यह आवश्यक है कि समाज के सदस्य और पदाधिकारी कम से कम प्रत्यक्ष रूप में ऐसे हों जैसे कि हमने ऊपर लिखे हैं।

(२) आर्य समाज के मन्दिर दूसरी बात है जो इसके स्वरूप का अंग होंगी। मन्दिर अति स्वच्छ, सुन्दर, सुदृढ़ और पुष्प वाटिका, जल की पुष्करिणी, फव्वारे इत्यादि से सुसज्जित होने चाहियें। जहां इमारत भव्य हो वहां यह सुदृढ़, स्वच्छ, सुन्दर भी हों। एक चिह्न विशेष कलस, गुम्बज, द्वार, खिड़कियों के बनावट इत्यादि में होना चाहिये जिसे देखते ही ज्ञान हो जाये कि दर्शक आर्यसमाज मन्दिर में खड़ा है।

मन्दिर में संगीत की ध्वनि उठती रहे। वहां आने वाले को वेद मन्त्रों का गान सुनायी देता रहे। यदि वह चौबीस घण्टे न हो सके तो नित्य निश्चित समय और नियत अवधि तक यह गान होना चाहिये।

मन्दिर में समाज की सामर्थ्यानुसार यज्ञशाला, व्याख्यान भवन, पुस्तकालय, चिकित्सालय एवं यात्रियों के ठहरने का स्थान होना चाहिये।

प्रत्येक मन्दिर में किसी विद्वान् पुरोहित का वास स्थान हो। पुरोहित प्रौढ़ावस्था का विवाहित परिवार सहित व्यक्ति होना आवश्यक है। पुरोहित, जहां तक सम्भव हो वेतनधारी न हो। वह निष्काम भाव से सदस्यों को ज्ञान देने वाला तथा उनके कर्मकाण्डों का निरीक्षक हो।

मन्दिर में ऐसा स्थान अथवा कई स्थान होने चाहियें जहां कोई भी व्यक्ति बैठ स्वाध्याय, चिन्तन, ध्यान, समाधि, सन्ध्योपासना इत्यादि कर सके।

मन्दिर स्थानीय लोगों की ज्ञान-गोष्ठियों के लिये खुले रहने चाहियें। मन्दिर चौबीस घण्टों में अधिक से अधिक काल तक खुला रहना चाहिये और यदि यह संभव हो तो ऐसा प्रबन्ध हो कि वहां ऐसा वातावरण सदा बना रहे कि मन्दिर का दर्शन करने के लिए आने वाला चित्त की शान्ति, मन और बुद्धि के विकास के लिये साधन पा सके।

मन्दिर, धर्मशाला, पुस्तकालय, चिकित्सालय, ज्ञानालय, विश्रामालय सब सम्मिलित होने चाहियें। कम से कम नगर में एक आदर्श मन्दिर हो। राज्य में कई ऐसे मन्दिर होने चाहियें जो यात्रियों और ज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए आकर्षण के केन्द्र हों।

आर्य समाज के मन्दिर सब दृष्टियों से दर्शकों के लिए आकर्षण का केन्द्र होने चाहिएं।

(३) आर्य समाज का स्वरूप एक मजहब का न हो। यह एक समाज का स्वरूप रखें। समाज और मजहब में अन्तर है। मजहब आचार-व्यवहार भाषा-भूषा इत्यादि में स्थिर लक्षण वाला होता है। इसमें सदस्यों एवं सहायकों के लिये ऐसे स्थिर लक्षण नहीं होने चाहियें जो देखने मात्र के हों और जिनका तात्विक प्रयोजन कुछ न हो। जब भी किसी तात्विक प्रयोजन की सिद्धि के लिये भिन्न लक्षणों की उपयुक्तता हो तो वे भी स्वीकार हों। समाज बाहरी लक्षणों की स्थिरता पर नहीं बनती। यह तात्विक सिद्धान्तों की स्थिरता पर आधारित होती है।

उदाहरण के रूप में वेद ज्ञान आर्य समाज का एक तात्विक आधार है। परन्तु वेद मन्त्रों के अर्थों पर मत-भेद हो सकता है। ऐसा आदि काल से होता रहा है। इस कारण समय समय पर निरुक्त रचे गये। किस आचार्य के वेदार्थ स्वीकार हों, यह यदि एक स्थिर बात हो गयी तो आर्य समाज एक मजहब अर्थात् सम्प्रदाय हो जायेगा। यह समाज नहीं रहेंगे।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। 'सत्य के ग्रहण' में और असत्य के त्याग के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिये। यह समाज का नियम है। परन्तु सत्य अमुक स्थिर बात ही है। यह मजहब अर्थात् सम्प्रदाय का लक्षण है। सत्य का निर्णय वेद की कसौटी पर ही हो सकता है। ज्यों ही पता चले कि अमुक वेदार्थ अमान्य हो गया, त्यों ही उसके त्याग के लिए तत्पर रहना समाज का लक्षण है।

(४) विश्व भर के सब मानव जो वेद को अपना पूज्य और मान्य ज्ञान का ग्रन्थ मानते हैं, वे आर्य समाज के विशाल घेरे में आते हैं। इस लक्षण से भारत की पूर्ण हिन्दू समाज सामान्य रूप से आर्य समाज के अन्तर्गत हो जाती है। अतः आर्य समाज का स्वरूप तो हिन्दू समाज के अन्तर्गत ही है। हिन्दू समाज में श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान, मन, बुद्धि और शरीर रखने वाले आर्य समाजान्तर्गत हैं। रही संगठन की बात। वह तो कार्य के आधार पर होती है। उदाहरण के रूप में दिल्ली पटेल नगर की आर्य समाज तो पटेल नगर की जनता में वेद प्रचार, ज्ञान-विज्ञान के प्रसार और धर्म के प्रचार के लिये एक संगठन है, परन्तु सामान्य रूप में आर्य समाज तो पूर्ण दिल्ली नगर, भारत वर्ष और उससे भी अधिक विश्व के वेदानुयाइयों में श्रेष्ठ आर्य ज्ञान-विज्ञान, मन, बुद्धि और शरीर रखने वालों का समाज हो।

(५) लोक कल्याण के कार्य आर्य समाजी करें अथवा न? इस विषय में हमारा मत है कि वास्तविक रूप में वेदानुयायी तो लोक कल्याण का कार्य किये बिना रह ही नहीं सकता। परन्तु यह आर्य समाज का कार्य नहीं। यहां लोक कल्याण के कार्य से मेरा अभिप्राय शिक्षण संस्था, अनाथालय, राजनीतिक दल, रुग्णालय अथवा अन्य मानव सेवा के कार्य से है।

इन कार्यों में आर्य समाजी संगठनों को सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिये। हिन्दू समाज के सब आर्य-जन स्वभावानुसार इसमें कार्य लेंगे ही। उनके अपने अपने कार्य की आवश्यकता के अनुसार अपने-अपने संगठन होंगे।

इसमें भी एक उदाहरण दे दिया जाये तो बात स्पष्ट हो जायेगी। आर्य सभा है। यह एक राजनीतिक कार्य करने का संगठन है। यह किसी भी आर्य समाज के संगठन से सम्बन्धित नहीं। इसका सम्बन्ध हिन्दू समाज के आर्य (श्रेष्ठ) जनों से होना चाहिये। किसी स्थानीय अथवा देशीय आर्य समाजीय संगठन से नहीं।

एक बात इस दिशा में आर्य समाजियों के ध्यान रखने की है। वह यह कि हिन्दू समाज के श्रेष्ठ (आर्य) जन किसी वेद विरोधी कार्यक्रम एवं संगठन में आयेंगे तो वे सामान्य रूप में आर्य समाजी नहीं रह सकते। एक उदाहरण ले सकते हैं। एक ऐसे राजनीतिक संगठन में कार्य करने वाला हिन्दू घटक आर्य समाजी नहीं हो सकता जो विश्व की मस्जिदों अथवा किसी एक भी मस्जिद की रक्षा के लिये चिन्तित हो जब कि वह जानता है कि मस्जिदों में वेद विरोधी भावनाओं का छल और बल पूर्वक यत्न होता रहता है।

इसी प्रकार आर्य-जन यदि वह आर्य हैं तो निश्चय ही लोक कल्याण कार्यों में भाग लेंगे। उनको अपने आर्य विशेषण को सार्थक करने के लिये अपने कार्य में किसी भी वेद निन्दक अथवा वेद घातक का सहायक नहीं होना चाहिये। □□□

आर्य भजनोपदेशक-वर्तमान और भविष्य : जगत्कुमार शास्त्री "साधुसोमतीर्थ"

१—महर्षि दयानन्द जी के जीवन की प्रसिद्ध घटना है कि जब महर्षिवर रावलपिण्डी में धर्म प्रचार करते थे, तब उनके प्रवचनों के आरम्भ वा अन्त में एक तहसीलदार महोदय का मधुर-गायन भी कभी-कभी होता था। गायक अच्छे थे—कण्ठ मधुर, शब्द-योजना सन्तुलित, विचार शुद्ध और सात्विकता से परिपूर्ण। जब स्वर-लहरी गूंजती थी, तब श्रोतागण झूम-झूम उठते थे। महर्षि जी भी उनके गायन की प्रशंसा किया करते थे।

२—एक दिन महर्षि जी ने सबके सामने गायन और गायक की प्रशंसा की। बाद में किसी ने महर्षि जी को बतलाया कि यह तहसीलदार गाता तो अच्छा है; परन्तु यह अनाचारी भी बहुत अधिक है। मानव-जीवन के सभी खोट इसमें मौजूद हैं। महर्षि जी ने जाँच-पड़ताल करके वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप में जान लिया। साथ ही तहसीलदार के उद्धार का संकल्प भी कर लिया।

३—तहसीलदार का नाम था—महता अमीचन्द। एक दिन श्रोताओं के सामने ही महर्षि जी ने तहसीलदार से कहा:—

'अमीचन्द! तू है तो हीरा, लेकिन कीचड़ में पड़ा है।"

सच्ची बात सद्भावना और सहानुभूति के साथ कही गई थी। बहुत उत्तम प्रभाव हुआ। उत्तर में अमीचन्द ने कहा:—

"भगवन्! आपके कथन का अभिप्राय मैंने समझ लिया है। मैं हीरा हूँ, तो अब विशुद्ध हीरा बनकर ही दिखलाऊँगा। किसी प्रकार के कीचड़ के लव-लेश को भी मैं अपने पास न आने दूंगा।"

४—महर्षि दयानन्द जी के सत्संग का परिणाम तहसीलदार व धर्म प्रेमी जनता के लिये बहुत ही उत्तम निकला। तहसीलदार सुपथ का अनुगामी बन गया। जनता को एक सुकवि और उत्तम गायक मिला। अमीचन्द के भजनों की धूम मच गई। उसके जीवन में जो शुभ परिवर्तन हुआ, उसने सोने पर सुहागे का काम किया।

आजतक भी महता अमीचंद जी के भजन विशेष उत्साह के साथ गाये जाते हैं सच है:—

सुख देवें, दुःख को हरें, दूर करें अपराध।
कहे कबीर जब भी मिलें, परम स्नेही साध॥

५—श्री अमीचंद जी के भजन संख्या में अधिक नहीं हैं। थोड़े होने पर भी वे रसीले, सार-सम्पन्न, चिर-जीवी और अधिक महत्वपूर्ण तो हैं ही। शब्दाडम्बरपूर्ण भजनों के घास-कूड़े के भण्डार से क्या लाभ? उत्तम भजन तो थोड़े ही भले। जैसे कि—'उत्तम मनुष्य तो थोड़े ही भले।" श्री अमीचंद जी के कुछ भजनों के बोल हैं:—

आज मिल सब गीत गाओ, उस प्रभु के धन्यवाद।

और—

तेरी कृपा से जो आनन्द पाया,
वाणी से जाये वह कैसे सुनाया॥

और—

जय-जय पिता परम आनन्द दाता।

६—आर्य समाजी प्रचार-प्रसंगों में भजनों का उपयोग महर्षि दयानन्द जी के सामने ही आरम्भ हो गया था। देशकाल गत प्रभाव की छाप भाषा-शैली, गायन-वादन और साहित्य-सृष्टि पर लगा ही करती है। बहुत वर्ष पहले लाहौर से श्री अमीचंद जी के भजनों का एक छोटा-सा संग्रह प्रकाशित हुआ था। उसका सम्पादन आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान् और सुकवि स्वर्गीय आचार्य चमूपतिजी एम० ए० ने किया था। वह संग्रह श्री राम-लाल कपूर ट्रस्ट नई सड़क देहली ने फिर छपवा दिया है।

७—आर्यसामाजिक क्षेत्रों में जो भजनोपदेशक प्रथा रूढ-सी हो चली है, इसके आरम्भ और विकास का कोई अनुक्रमबद्ध विवरण खोज लेना तो अब कठिन है। संगीत-शास्त्र का महत्त्व निर्विवाद है। गायन-वादन के आकर्षणों और चमत्कारपूर्ण प्रभावों से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता। देश, काल, पात्र, प्रकार, शैली, स्वर, शब्द-योजना, अलंकार और भाव विस्तारगत विभिन्नताओं के होने पर भी संगीत-विद्या तथा उसके आकर्षणों वा प्रभावों में एक प्रकार की समानता का आदि और अन्त-रहित सूत्र सुस्पष्ट रूप में वर्तमान है। वह सूत्र सार्वभौम है, सर्वकालिक है, सत्य-सनातन है। शब्द-ब्रह्म अथवा अनादि और अनन्त नाद की प्रतिध्वनि भी उसे कहा जा सकता है। यह अनादि नाद ही संगीत-शास्त्र के अनुसार षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरों और इनके अनेकविध तारतम्य द्वारा प्रादुर्भूत अनेकशः राग-रागिनियों के रूप में विकसित एवं प्रवाहित होता रहता है।

८—आर्यसमाज के संगठन का मुख्य उद्देश्य वेद-प्रचार = वैदिक–धर्म का उद्धार = मानव–जीवन में वैदिक–विचार-धारा की सुप्रतिष्ठा ही है। परिस्थितिवश समाज-सुधार, कुरीति-निवारण, स्वराज्य-संग्राम, सुराज्य-व्यवस्था, साम्प्रदायिक सद्भाव-संवर्धन, विश्वबन्धुत्व, स्त्री-शिक्षा और सामान्य विद्या-प्रसार, जिसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी और देववाणी संस्कृत का प्रसार भी शामिल है, इत्यादि कार्य भी आर्य समाज के कार्यक्रमों में महत्त्व प्राप्त कर चुके हैं। कुछ संकुचित विचार के लोग आर्य समाज के मुख्य-उद्देश्य को समझने में भूल किया करते हैं। उन्हें एक समय में एक ही अंश वा अंग आर्य समाज के कार्यक्रम का दिखाई देता है। अन्धों के हाथी वाली कहानी उन पर चरितार्थ होती है। जो इसे छूत-छात निवारक, विधवा-विवाह विधायक, हिन्दू जाति उद्धारक आदि-आदि सीमित-से रूपों में ही देखा करते हैं। आर्य समाज का मुख्य-ध्येय इनसे अधिक बड़ा, व्यापक और महत्वपूर्ण है। ये तो यात्रा के छोटे-छोटे मोड़ अथवा पड़ाव हैं।

९—आरम्भ-आरम्भ में आर्य समाज के प्रचार कार्यों को अधिकाधिक आकर्षक, प्रभावपूर्ण और शीघ्र परिणाम कारी बनाने के लिये ही आर्य-मनीषियों ने गायन-वादन आदि को अपने प्रचार-प्रसंगों में अधिक स्थान=अवकाश दिया होगा। उत्साह की कोई कमी तो तब थी ही नहीं। नये-नये भजनकार, गायक और वादक आदि बिना किसी स्वार्थ के आत्म-प्रेरित होकर, कर्त्तव्य-पालन के लिये लंगर-लंगोटे कस कर कार्य-क्षेत्र में आ जुटे थे। आर्य समाज से उनको लक्ष्य-बोध मिला था। आर्य समाज के प्रचार-मंच ने उन्हें आत्म-अभिव्यक्ति, आत्म-विकास एवं आत्म-ज्ञापन का भी अवसर प्रदान किया था। बाद में जब आर्य-मंच-प्रचार के सुव्यवस्थित आयोजन होने लगे, तब वेद-विवेचन, शास्त्रीय-रहस्योद्घाटन, सिद्धान्त-प्रतिपादन खण्डन और

मण्डन आदि के सभी कार्यक्रमों में गायन-वादनपटु लोगों को भी यथोचित स्थान मिला। वेदादि शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान् और गायक, वादक आदि मिलकर, पारस्परिक सहयोग से वैदिक-धर्म-प्रचार करने लगे। बढ़ती हुई आवश्यकता और लोक-प्रियता के कारण आर्य भजनोपदेशकों की शिष्य-परम्परा भी चलने लगी।

१०—जब धर्म-प्रचार के लिये, जहां-तहां सार्वजनिक सभाओं के आयोजन होने लगे, तब आरम्भ-आरम्भ में व्याख्यान के साथ ही सामूहिक भजन-गान के उपक्रम भी चालू हो गये। आर्य-भजनों ने जनता को विशेष रूप से आकर्षित किया। भजनों को असाधारण सर्वप्रियता मिली। वे जन-मानस में बस गये। बच्चों, बूढ़ों, युवक-युवतियों आदि की ज़बान पर सवार होकर गली-गली, डगर-डगर और नगर-नगर में प्रतिध्वनित होने लगे। अच्छे गायकों को अनुरोधपूर्ण निमन्त्रण मिलने लगे। भेंट, पूजा, दक्षिणा आदि के प्रलोभन भी व्यवहार में आये। प्रवचनकारों और गायकों के सहयोग तथा सहचार के अवसर बहुत बढ़ गये।

११—विद्वान् व्याख्यानदाताओं के लिये "उपदेशक" पद मौजूद ही था। गायकों को भजनोपदेशक कहा गया। विद्वान् व्याख्यानदाताओं को उपदेशक, महोपदेशक और महामहोपदेशक भी कहा जाने लगा। भजनोपदेशकों को "प्रचारक" पदवी दी गई। साधारणतया उनका सन्मान भी कम होने लगा। परन्तु यह सब कुछ तब हुआ जब बहुत से पेशेवर उपदेशकों और भजनोपदेशकों की श्रेणियाँ सुसंगठित हो चुकी थीं, पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी थी, तथा संस्थावाद के राक्षस ने भी आर्य सामाजिक क्षेत्रों में भारी उत्पात आरंभ कर दिये थे, बहुत से परोपकारी एवं तथाकथित अधिकारी उत्साह और धर्म-भीरुता का अनुचित लाभ उठाने लगे थे। इस स्थिति का थोड़ा उल्लेख आगे है।

१२—जैसे शास्त्र-मर्मज्ञ व्याख्यानदाता अपने विषय के पक्ष-विपक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करते थे, शब्दों की यौगिक, योगरूढ़िक और रूढ़िक व्याख्या करते हुए निरुक्ति, व्युत्पत्ति, व्याकरण-प्रक्रिया दर्शाते थे, युक्तियों-प्रयुक्तियों तथा ऐतिहासिक और काल्पनिक दृष्टान्तों के आधार पर कई-कई प्रकार से अपने विषय का प्रतिपादन या स्पष्टीकरण करते थे, उसी का अनुकरण अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार भजनोपदेशकों ने भी किया।

क्योंकि ग्रामीणों, अर्ध शिक्षित समुदायों और मेले-ठेले आदि में उनको जो विशेष आदर मिलता है, वह उन्हें उत्साहित भी किया करता है। वे आत्म-प्रवंचना-अभिभूत से होकर रह जाते हैं। कमी और त्रुटि को समझने पर भी वे स्थिति पालक ही बने रहते हैं।

१३—आर्य भजनोपदेशकों के निर्माण वा प्रशिक्षण के लिये कोई समुचित प्रबन्ध अभी तक कहीं भी नहीं किया गया। कहते हैं कि स्वर्गीय श्री पं० भोजदत्तजी ने आगरे में जो "आर्य मुसाफिर विद्यालय" खोला था, उसमें आर्य भजनोपदेशक भी तैयार किये जाते थे। वह आयोजन शीघ्र ही विफल हो गया था। जो संगीत विद्यालय जहाँ-तहाँ खुले थे, या अब भी हैं, उन में तो संगीत-विद्या का ही प्रशिक्षण होता है, जो कि आर्य-सामाजिक भजनीकवाद से सर्वथा ही दूर की बात है। आर्य भजनोपदेश को तो संगीत-विद्या की एक नई अनुविद्या ही कहा जा सकता है। शुद्ध संगीतकार तो इस से घबराकर दूर ही भागते हैं। आर्यसामाजिक क्षेत्रों में जो भजनोपदेश विषय रूढ़िवाद अब प्रतिष्ठित हो चुका है, उसकी मौजूदगी में शुद्ध संगीत मर्मज्ञ कलाकारों का गुजारा यहां नहीं हो सकता। जो लोग आर्यभजनोपदेशक बनने की इच्छा करते हैं, वे प्रयत्न करके, अपनी सुविधा के अनुसार किसी भजनोपदेशक का सहयोग लेकर ही इस क्षेत्र में आते हैं। विशेष सफलताओं की प्राप्ति के लिए उन्हें कष्टपूर्ण और दीर्घकालव्यापी साधनायें भी करनी पड़ती हैं।

सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक स्वर्गीय श्री नत्थासिंहजी बड़े हँस-मुख, मधुरभाषी, सदाचारी और सिद्धान्त प्रेमी प्रचारक थे। अपने जीवन की मनोरंजक कहानियाँ, अपने मित्रों को वे स्वयं ही सुना दिया करते थे। आर्य समाज के पहले अधिकांश उपदेशक उत्तरप्रदेश के अलीगढ़, बुलन्दशहर, बिजनौर, मैनपुरी, मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहारनपुर, मुरादाबाद, आदि ज़िलों से, हरयाणे के रोहतक, हिसार, करनाल ज़िलों तथा जींद और पटियाला राज्यों से मिले थे।

१४—आर्यसमाज के प्रसार और भारतीय जन-

जागरण में आर्य भजनोपदेशकों का योग-दान बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण और विशेष सराहनीय है। पंजाब में, जब वह हमारा भी था, संयुक्त भी, तब, जनता को मन्त्र-मुग्ध कर देने वाले बड़े-बड़े नामी आर्य भजनोपदेशक मौजूद थे। श्री महता अमीचन्द जी, श्री चुन्नीलाल खन्ना, श्री डोरीलाल, श्री नत्थासिंह, श्री ठाकुर प्रवीणसिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पंजाबी और हिन्दी के एक महान् गायक और वक्ता थे—श्री सन्तरामजी। वे जोशीले भजन गाते-गाते एक दिन व्याख्यान मंच पर ही मृत्यु को प्यारे हो गये थे। पटियाला दरबार के श्री धर्मवीर जी, लुधियाने के श्री विद्याधर जी, श्री बलदेव जी भी अच्छे थे।

१५—पंजाब के भजनोपदेशकों में श्री गीताराम "वीर" श्री हरवंशलाल "हँस" श्री सोहनलाल, श्री बलराज, श्री अमर नाथ "प्रेमी" श्री हरिश्चन्द्र मुलतानी, श्री तेजभानु, श्री राजपाल और मदनमोहन जी की चिमटा मण्डली, श्री प्राणनाथ यात्री, श्री शेरसिंह, श्री शमशेरसिंह आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। हरयाणे में श्री ओमप्रकाश वर्मा, श्री हरिश्चन्द्र करनालवी, श्री मुन्शीराम जी की भजन मण्डली, श्री भगतराम मशहूर हैं। श्री ठाकुर उदयसिंह और स्वर्गीय श्री गोकुलदत्त जी भी हरयाणे में ही चमके थे। स्वामी वेधड़क जी तथा स्वामी भीष्म जी भी प्रसिद्ध प्रचारक हैं। श्री नन्दलालजी भी पंजाब के उत्साही, कर्मठ प्रसिद्ध आर्य प्रचारक हैं।

१६—दादा बाल मुकन्द जी, श्री लालसिंह जी, श्री ईश्वरसिंह जी, श्री छाजूराम प्रेमी हरयाणा के प्रसिद्ध भजनोपदेशक थे। श्री दादा बस्तीराम जी का नाम तथा काम तो जग जाहिर है। श्री दादा जी के समय के ही श्री घीसाराम भी बहुत प्रसिद्ध थे। एक ही व्यवसाय के लोगों में जैसी प्रतिस्पर्धा प्रायः होती है, वैसी ही कभी-कभी दादा बस्तीराम और श्री घीसाराम में भी ठन जाती थी। कहते हैं एक सभा में दादा बस्तीराम मंच पर मौजूद थे। उनको ओर लक्ष्य करके श्री घीसाराम ने तान छेड़ी—

यह बस्ती नहीं उजाड़ है,
जिसे कहते बस्ती, बस्ती।
क्यों भोली दुनिया फँसती॥

१७—दादा बस्तीराम जी प्रज्ञाचक्षु थे। ग्रामीण वेश-भूषा थी ही। बुढ़ापे का आक्रमण भी हो चुका था। चौधरी की चोट ज़ोरदार थी। दादा जी की हँसी उड़ाई गई। श्रोताओं को आनन्द मिला। तथापि लोगों की धारणा थी कि अपनी बारी में दादा भी चौधरी को कोई करारा-सा जवाब जरूर देगा। जब दादा जी की बारी आई, तो लोगों ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ उनका स्वागत किया। वहाँ अधिक भीड़ तो दादा जी के नाम पर ही एकत्रित हुई थी। समय बान्धकर दादा जी ने सचमुच ही बदला ले लिया। उन की हाज़िरजवाबी मशहूर थी। लोग हँसते-हँसते लोटपोट हो गये। चौधरी साहेब की अकल ठिकाने आ गई। दादा जी ने गाया था—

यह बिल्कुल तेल कढेल है,
जिसे कहते घी-सा, घी-सा।
क्यों खोते लोगो पीसा॥

ग्रामीण लोग उजाड़ के तो अभ्यासी ही होते हैं; परन्तु तेल और वह भी कढेल बहुत ही ना पसन्द किया जाता है, विशेष रूप से हरयाणे में।

१८—हरयाणे के ग्रामीण लोग अधिकतया भजन प्रेमी ही होते हैं। वे तो आर्योपदेशक का अर्थ भी आर्य भजनोपदेशक ही समझते हैं। हरयाणे के प्रचार—प्रसंगों में भजनीकों को अधिक पसन्द किया जाता है, व्याख्यान-दाताओं को कम। हरयाणे वाले भजनोपदेशकों में श्री स्वामी केवलानन्दजी ने भी खूब नाम पाया था। वे खण्डन-कुठार के धनी थे। उनकी पुस्तक "पोप की पोपनी" बहुत प्रसिद्ध हुई थी। ग्रामीणों में तो वे सफल होते ही थे, नगरों के सुशिक्षितों में भी उनका भजनोपदेश खूब जमता था। कलकत्ता, पटना, कानपुर देहली आदि नगरो के निमन्त्रण भी उन्हें मिलते थे। वे एक तारा और खड़ताल बजा-बजाकर गाते थे, अच्छा रंग जमता था। हँसाते भी खूब थे। लम्बा कद था, लम्बोतरा मुख-मण्डल। कहा करते थे—'मैं स्वावलम्बी हूँ। मेज, कुरसी, ढोलक, हारमोनियम की जरूरत मुझे नहीं है। अवसर आने पर एकतारे से ही लाठी का काम भी ले लेता हूँ।

१९—अधिक खण्डन करने और हँसाने वाले

हरयाणवी भजनोपदेशकों में चौधरी मोहलासिंह भी बहुत नामी थे। श्री मोहलासिंह से भी कुछ सवाये थे, श्री पं० शिवनारायणजी, जो सोनी पण्डित भी कहलाते थे। छोटे क़द, पतले शरीर, हरी मिर्चों जैसी मूछों, चमकदार आंखों, सादे धोती-कुरते और पगड़ी वाला वह आर्यसमाज का दीवाना, साहस का पुतला था। कम पढ़ा लिखा होने पर भी बहुश्रुत था। अच्छा कलाकार था। श्रोताओं के मन मोह लेता था और मुकाबले पर आनेवाले पौराणिकों के बड़े-बड़ों के भी छक्के छुड़ा देता था। श्री शिवनारायणजी का देहान्त अस्सी वर्ष की आयु में कुछ समय पूर्व ही हुआ है। वे नरवाना के पास किसी ग्राम के निवासी थे। हमें याद है अपरिचित होने के कारण एक बार आर्यसमाज दीवान हाल के उत्सव पर उन्हें बोलने का समय देने से इन्कार किया गया था। फिर मेरे आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी की शिफारिश पर उन्हें समय मिला था। उनका भजनोपदेश खूब ही जमा था। जनता के आग्रह पर समय बढ़ा दिया गया था। वह छोटे क़द का वीर पुरुष मेज़ के पीछे से उछल-उछल कर गाता था, खूब समझाता था।

२०—ऐसा कौन अभागा आर्य भजनप्रेमी होगा, जिसने स्वर्गीय श्री चौधरी तेजसिंहजी का नाम न सुना होगा। वे ग्राम पारसौल जि. बुलन्दशहर उत्तर-प्रदेश के रहने वाले थे। उत्तम वक्ता, सुकवि, गायक और सिद्धान्त मर्मज्ञ आर्य पुरुष श्री चौधरी तेजसिंह जी के भजनों के "भजन—शतक" आदि कई संग्रह छप चुके हैं, और कई-कई बार छप चुके हैं। उनके लम्बे-लम्बे भजनों को कविता-बद्ध निबन्ध ही समझना चाहिये। जिस किसी भी बात को उठाते थे, उसके सभी अंगों पर वे विस्तृत प्रकाश डाला करते थे। असाधारण ऊँचा कद था, घुटनों से ऊँची धोती, कुरता-पगड़ी धारी, सरल चित्त का वह जोशीला और अनथक भजनोपदेशक खड़ताल हाथ में लेकर गाता था। पीछे बैठी हुई उनकी शिष्य-मण्डली संगती करती थी। समय बन्ध जाता था। उन्होंने सैंकड़ों नवयुवकों को सफल आर्य भजनोपदेशक बनाया था। श्री भाई ईश्वर-दयाल जी, जो नजफगढ़, देहली में रहते हैं, उनके ही सुयोग्य शिष्य हैं।

२१—बिजनौर जिले के श्री चन्द्रकविजी की गणना आर्य समाज की पहली पीढ़ी के भजनोपदेशकों में होती है। उनके भजन संख्या में भी अधिक थे और खूब पसन्द किये जाते थे। श्री ऋषीरामजी और श्री छेदालालजी भी बिजनौर वालों में प्रसिद्ध थे। अरणिया जिला बुलन्द-शहर निवासी श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर तो प्रभु की कृपा से इस समय भी हमारे मध्य विराजमान हैं। ये उत्तम गायक भी हैं, अच्छे शायर भी, पानी में आग लगाने वाले श्रेष्ठ व्याख्यानदाता भी। स्वराज्य-संग्राम आदि आन्दोलनों में कई बार जेल के महमान भी बन चुके हैं। बुढ़ापे में भी उनका जवान जोश खूब काम करता है। इन्हें प्रभूत यश मिला है। इनके भजनों की संख्या बहुत अधिक है। कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और खूब पसन्द किये जाते हैं। इनकी शायरी में ओज, तेज, प्रवाह, लोच, चुभन और लालित्य खूब है। भारत भर में धूम मचा चुके हैं। सभी प्रकार से अभिनन्दनीय इनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व के विषय अधिक विस्तार से लिखने का मेरा विचार है। कहते हैं कि इनका प्रशिक्षण "आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा" में हुआ था।

२२—बिजनौर और बुलन्दशहर जिलों से भी बढ़कर अलीगढ़ जिले का नाम और काम है। आर्य समाज को सबसे अधिक नेता, कार्य-कर्त्ता, उपदेशक, अध्यापक और भजनोपदेशक अलीगढ़ जिले से ही मिले हैं। भजनोपदेशकों की तो खान ही है—अलीगढ़। श्री ज्ञानेन्द्र जी तो अली-गढ़ के सुखलाल ही माने जाते थे। श्री ठाकुर आत्मा-रामजी, श्री श्रवणसिंह जी, श्री मुकन्दी राम जी, श्री छेदा-लाल पुजारी, श्री मास्टर कंवरपाल,श्री साहिबसिंह, दूसरे कंवरपाल जी, जो कि जवानी की मौत ही मरे और कवित्त-सवैयों के सुप्रसिद्ध गायक थे—अलीगढ़ वाले ही थे। श्री प्रकाश चन्द्र जी कविरत्न भी अलीगढ़ के ही हैं। ठाकुर भद्रपाल जी, भाई महेश जी, श्रीदेवकीनन्दन "देव", श्रीधर्म-राज सिंह, श्री खेमचन्द, श्री रामचन्द्र, श्री रामसिंह बेधड़क आदि इस समय के सुप्रसिद्ध आर्य भजनोपदेशक अलीगढ़ की ही देन हैं। कविताकामिनीकान्त श्री नाथूराम शर्मा "शंकर", आर्य समाज के महान् साहित्यकार और भजन-कार अलीगढ़ के ही थे। श्री शंकर जी के ही सुपुत्र थे

सम्पादकाचार्य श्री डॉक्टर हरिशंकर शर्मा "कविरत्न", श्री कर्ण कवि जी का नाम भी अलीगढ़ का ही गौरव बढ़ाने वाला है। श्री शंकर जी का अनुरागरत्न मशहूर है। उनका "शंकर-सरोज" नामक भजन-संग्रह भजन प्रेमियों के लिए अधिक उपयोगी है।

२३—देहली में कभी श्री जयप्रकाश जी धनुर्धर और श्री रामसेवक लहरी बहुत प्रसिद्ध हुए थे। मेरे साथी श्री भाई रामलाल जी तथा कवि छेदालालजी भी अच्छे आर्य प्रचारक थे। मथुरावासी श्री शीतलचन्द जी 'शीतल' जो अब राजस्थान की शोभा बढ़ाते हैं और स्वामी सोमानन्द बन चुके हैं, कभी देहली में बहुत सर्वप्रिय हुए थे। श्री भाई तुलसी देव जी सुप्रसिद्ध संगीतकार श्री मंगतराम के सुयोग्य शिष्य पंजाबी और हिन्दी के अच्छे गायक हैं। पन्तनगर देहली के श्री पं० बृजलालजी शास्त्री बहुत अच्छे भजनोपदेशक हैं। श्री हरिदत्तजी आर्य समाज सीताराम बाजार वाले भी मशहूर हैं। दिल्ली के तिलोकचन्द्र राघव भी सफल प्रचारक हैं।

२४—मुजफ्फरनगर जिले के आर्य नेता शामलीवासी श्री वीरेन्द्रसिंह जी "वीर" धनुर्धर उत्तम भजनोपदेशक हैं। इनका शिष्य-मण्डल भी बड़ा है। श्री वेगराजजी इस समय के नामी भजनोपदेशक हैं। इनके जोड़ के ही श्री शोभाराम जी भी प्रसिद्ध हैं। श्री ब्रह्मानन्द और दयाचंद दो भाई भी बहुत अच्छे हैं। खेद है कि श्री ब्रह्मानन्द जी कई वर्ष से बीमार हैं। उनका रोग असाध्य बताया जाता है।

२५—आर्य भजनोपदेशकों के क्षेत्र में राजस्थान की देन कुछ विशेष नहीं है। एक श्री पण्डित भगवती प्रसाद जी "अभय" है,जो कवि भी हैं, गायक भी आर्य, सिद्धान्तों के अच्छे ज्ञाता भी। "प्रकाश' जी तो उत्तर-प्रदेश के ही हैं। हाँ जन्म तो राजस्थान अजमेर का है। श्री पन्नालाल जी "पीयूष" एम. म्युजिक सलूम्बर ज़िला उदयपुर के निवासी बहुत अच्छे भजनोपदेशक संगीतकार और मिलनसार हैं। ये श्री "प्रकाश" जी के अन्यतम शिष्य और अभिन्न रूप हैं। उनसे पृथक् इनकी गणना करने को मेरा मन तैयार नहीं। "प्रकाश" जी की पुत्री स्नेहलता अच्छी गायिका और संगीत प्रशिक्षका है। श्री पीयूष जी का पुत्र इन्द्रदेव बी. ए. भी अच्छा गायक है, जो कि उदयपुर में अध्यापक है।

२६—उत्तरप्रदेश के आर्य भजनोपदेशकों में बरसाने के श्री जोरावरसिंह जी सिंहकवि और उनकी धर्मशीला पत्नी स्नातका प्रभावती जी की गणना इस समय के प्रसिद्ध आर्य भजनोपदेशकों में होती है। सिंहकवि जी की कविताएँ भी खूब पसन्द की जा रही हैं। इनकी "पाकिस्तान-पच्चीसी" अधिक मशहूर है। बरेली के श्री मुरलीधर जी और उनके श्री जानकी प्रसाद आदि कई शिष्य प्रसिद्ध हैं। मथुरा के प्रेमानन्द और स्वामी शान्तानन्द भी अच्छे हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गाज़ीपुर के श्री नन्दलाल जी गणना भारी धूम मचाने वाले आर्य भजनोपदेशकों में होती है। श्री भाई वेदपाल जी और महिपाल जी बहुत अच्छे भजनोपदेशक हैं। मेरे एक पुराने साथी आजकल सीतापुर में रहते हैं—श्री धर्मदत्तजी "आनन्द"। ये अच्छे गायक और कवि हैं। मेरे एक अन्य साथी श्री खेमचन्द जी भी उत्तम भजनोपदेशक हैं। काशी में श्री ठाकुर गगासिंह जी और श्री विन्देश्वरी प्रसाद जी अपने समय के अच्छे भजनोपदेशक थे। आगरे के श्री श्याम शर्मा जी पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार में अच्छे प्रचारक माने जाते थे।

२७—बिहार में कभी श्री ठाकुर यशपाल जी के नाम की धूम थी। अब उनका नाम कम सुनने में आता है। शायद बुढ़ापे का हमला उन पर हो चुका है। हाँ बिहार के ठा. इन्द्रदेव सिंह भी बड़े प्रभावी आर्य प्रचारक हैं। नये और पुराने मध्य-प्रदेश की आर्य भजनोपदेशक मण्डल में किसी विशेष देन का हाल मुझे मालूम नहीं। शायद कुछ है भी नहीं। हैदराबाद दक्षिण में उदगीर के श्री प्रहलाद जी कभी अच्छे प्रचारक माने गये थे। इनका प्रशिक्षण धर्मवीर श्री श्यामलाल जी ने किया था, जो कि स्वयं भी उत्तम गायक, वादक और सुवक्ता थे। धारूड़ के श्री आर्यभानुजी उत्तम भजनोपदेशक थे। आजकल श्री पण्डित नरदेव जी "स्नेही" मध्य-दक्षिण के सफल उपदेशक हैं, जो कि उत्तर प्रदेश के ही हैं। आर्य सामाजिक क्षेत्रों में और भी बहुत से उत्तमोत्तम गायक-वादक हैं। प्रचारकार्यों में उनका योगदान भी अच्छा है। वे अन्य कार्यों में

संलग्न होने के कारण स्थानीय प्रचार-प्रसंगों से दूर नहीं जाते अतः उनकी प्रसिद्धि भी कुछ कम ही है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि मध्यम, और निम्न मध्यम तथा निम्न वर्गों के होने के कारण आर्य भजनोपदेशकों में अल्पशिक्षित और अर्धशिक्षित लोग ही अधिक रहे हैं। कुछ तो ऐसे भी हुए जो सफलता की विशेष ऊँचाइयों पर पहुँचकर, पतन की गहराइयों में भी जा गिरे। उन्हें कामिनी और कांचन के प्रलोभन ले डूबे।

२८—मैं उन लोगों में हूँ, जो आर्यसामाजिक प्रचार प्रसंगों में आर्यभजनोपदेशकों के विरोधी नहीं, अपितु पक्षपाती हैं। अच्छा यह होगा कि सुयोग्य और प्रशिक्षित आर्यभजनोपदेशक तैयार करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। वह विशेष उत्साह तो अब सर्वत्र ही समाप्त हो चुका है, जिसके प्रभाव से अनायास ही उत्तमोत्तम भजनोपदेशक तैयार हो जाते थे। अयोग्यजनों को प्रोत्साहित करना ठीक नहीं। इसके भयङ्कर परिणाम निकल चुके हैं, जिनके उल्लेख को मैं छोड़ देता हूँ। एक कुप्रवृत्ति आज कल यह भी देखने में आ रही है कि भजनोपदेशक बन्धु अपने ही जोड़-तोड़ से बनाये हुए भजनों को अधिकतर गाते हैं और पुराने अच्छे-अच्छे भजन पूर्णतया ही उपेक्षित रह जाते हैं। कुछ लोगों ने तो बिक्री के लिए अपने काव्य-कला रहित भजन-संग्रह भी छपवा रक्खे हैं, जो कि उलटा प्रभाव ही डाला करते हैं।

साखी लाये बनायकर, इत-उत अच्छर काट।
कहे कबीर कब लौं जिये, झूटी पत्तल चाट॥

२९—मुसलमान भाई दरगाहों में गाते थे —

अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू, अल्लाहू।

श्री प्रकाश जी ने इसे नया चोला पहिना दिया—

ओम् भूः, ओम् भूः, ओम् भूः, ओम् भूः।

मुसलमानों का गाना था—

तौहीद का डंका आलम में बजवा दिया कमली वाले ने।

प्रकाश जी का ध्यान वेदों वाले की तरफ चला गया फिर तो सर्वत्र वेदों का डंका ही बजने लगा—

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने।

किसी ने अपने बापू की अमर-कहानी लिखी थी—

सुनो-सुनो अय दुनिया वालो ! बापू की यह अमर कहानी।

किसी ने ध्वनि उड़ाकर लिखा—

सुनो-सुनो अय दुनिया वालो !
दयानन्द की अमर कहानी।

३०—आर्यसमाज की कोई सर्वमान्य वा प्रामाणिक भजन-पुस्तक नहीं है। किसी भजन पुस्तक को सर्वांश में और अन्तिम रूप से प्रामाणिक घोषित करना सरल भी नहीं है, विशेष रूप से आर्यसमाज में। यहाँ बाल की भी खाल उतारी जाती है। भजनों के निर्माण और चयन में आर्य सिद्धान्तों की अनुकूलता के साथ ही भाषा की शुद्धता और उनके गान वा पठन-पाठन से उत्पन्न होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का ध्यान रखना भी जरूरी है। यदि संख्या की दृष्टि से देखें तो जितने भजन और भजनपुस्तक आर्यसमाज के हैं, हिन्दी में इतने अधिक किसी और के शायद ही होंगे। अब तो छोटे-बड़े प्रायः सभी भजनोपदेशकों की अपनी-अपनी रची हुई या संग्रह करके छपवाई हुई नित नई भजन-पुस्तकें तैयार होती रहती हैं।

३१—कुछ उत्तम भजन पुस्तकों के नाम ये हैं—

(१) श्री पं० मुरारीलाल शर्मा का "भजन-पचासा" अब दुर्लभ है। खण्डनात्मक भजनों का संग्रह फिर भी छपे तो अच्छा।

(२) संगीत-रत्नप्रकाश-पांच भागों वाला बहुत बड़ा यह भजन-संग्रह कई बार छप चुका है। अब देखने में नहीं आता। इस में सब प्रकार के भजन हैं। पुराने प्रायः सभी कवियों और भजनोपदेशकों के भजन इसमें हैं। इसका संक्षिप्त-संस्करण छपे तो उत्तम रहेगा।

(३) लाहौर में जो आर्य भजन पुष्पांजलि छपा करती थी, उसका संक्षिप्त संस्करण देहली में भी छपने लगा है।

(४) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का "भजन-भास्कर" उत्तम भजन-संग्रह अब दुर्लभ सा है। इसका भी संक्षिप्त संस्करण छपना चाहिये।

(५) मैंने एक "गीत-मंजरी" प्रकाशित की थी। अब दुर्लभ है। यह संग्रह मेरे अनुरोध पर संगीताचार्य श्री रामावतारजी "वीर" ने तैयार किया था। अब एक नई पुस्तक भी "गीत-मंजरी" नाम से ही छप चुकी है।

(६) मधुर-भजन-पुष्पांजलि भो अच्छी है। इसका प्रकाशन—मधुर-प्रकाशन सीताराम बाजार देहली–६ ने किया है।

(७) चौधरी तेजसिंहजी, दादा बस्तीराजी, कुँवर सुखलालजी आर्य मुसाफिर और कविरत्न श्री पण्डित प्रकाशचन्द्रजी 'प्रकाश' की सभी भजन पुस्तकें अच्छी हैं। इनके अधिक प्रसिद्ध भजनों के नये संग्रह भी कोई छपवाये तो अच्छा होगा।

□□□

महर्षि की तपश्चर्या

एक दिन व्याख्यान देते-दते कण्ठ से आर्तनाद निकल पड़ा—ईश्वर कृपा के बिना कुछ न हो सकेगा—अभी कोई त्रुटि है, जो प्रभु कृपा होने नहीं देती, अधिक त्याग, विशेप तप की आवश्यकता है। उसी समय 'सर्वं वै पूर्णं᳘ स्वाहा' कह कर महर्षि ने अपने सारे वस्त्र, कम्बल, दुशाले, पीताम्बरी, धोतियाँ, रेशमी कपड़े, सारी पुस्तकें और नकदी सब कुछ वहीं बांट दिया. शरीर पर रख ली केवल एक कौपीन, और चल पड़े ऋषिकेश को, और १९२४ से १९३१ वि. सम्वत् तक सात वर्ष गंगा के किनारे किनारे तपश्चर्या करने लगे. उन दिनों कभी मौन रहते, कभी बोलते तो संस्कृत ही में बोलते, ब्रह्मचर्यपूर्वक तप करते हुए, हर प्रकार के द्वंद्व सहन किये। तब गंगा रज ही सिरहाने का काम देती, आकाश या कोई पर्णकुटी ही उनके विश्राम के ठिकाने थे। अनेक बार समाधिस्थ हुए, पातञ्जल का अष्टांग योग ही उनका प्रिय योग था, तितिक्षा भी पराकाष्ठा तक जा पहुँची थी, आत्म अनात्म-विवेक—विवेकख्याति से भी आगे बढ़ चुका था, वैराग्य के तो मूर्तिमान् देवता थे। षट्क संपत्ति ही उनका धन था। तीन-तीन दिन भोजन नहीं मिला, तो न सही, निराहार ही दिन व्यतीत हो जाते, कुटिया नहीं तो किसी वृक्ष या गंगा की रेती में ही पड़े रहते। क्यों हो रही थी यह तपश्चर्या? केवल प्रभु-कृपा प्राप्त करने के लिये ताकि वेद प्रचार में सफलता मिले, और दुःखी दुनिया सुखी हो। □□

आर्य समाज कैसे संगठित रहे : नरेन्द्र हैदराबाद

ऋषि-मुनियों की पुण्य भारतवर्ष की सांस्कृतिक परम्परा युगों से विश्वव्यापिनी रही है। यद्यपि इस धरती पर अनेक आक्रान्ताओं ने कदम रखकर निज पद-तल में भारतीय संस्कृति व उसकी सरणि को धूमिल व धूलिसात् करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु उनके सारे प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए। हां, उनके प्रभाव ने यहां की सभ्यता व जन-जीवन को अवश्य प्रभावित किया है जो आज भी अपना प्रभाव दिखा रहा है। इसका एकमात्र कारण भारतीयों की दैन्य मनोवृत्ति तथा पारस्परिक वैमनस्यता व स्वार्थपरता ही है। युगों से दासता की बेड़ियों में बन्धा भारतवर्ष कभी यह सोचने का साहस तक न कर सका कि उसका आस्तित्व व सामर्थ्य क्या है?

समय ने करवट ली, युग बदला, परिस्थितियां बदली। जन-जीवन में नवजीवन की लालसा प्रबल हो उठी परन्तु उसे कोई सच्चा राह दिखाने वाला न था। सभी मतावलम्बी अपनी संकीर्ण सीमाओं में आबद्ध थे। ऐसे समय महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। ऋषि को यह समझते देर नहीं लगी कि इस पतनोन्मुखता का एकमात्र कारण सांस्कृतिक अवनति ही है। उन्होंने पुरातन-वैदिक धर्म की पुनः घोषणा की। स्वधर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया। उनके सबल तर्कों ने जड़ पूजकों को चुप करा दिया। विरोधियों ने भी ऋषि के आगे घुटने टेक दिये। निडर स्वामी ने पाखण्ड-खण्डनी पताका कर में लेकर हरिद्वार की घाटियों से लेकर समुद्रीय तट पर्यन्त अहर्निश वैदिक धर्म का प्रचार व बाह्याडम्बरों का खण्डन किया। समुद्र तट पर आकर उन्हें इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि प्रचार का कार्य एक व्यक्ति की अपेक्षा सामाजिक अथवा संगठनात्मक रूप में अधिक सम्भव है। अतः उन्होंने प्रथमतः बम्बई नगर में सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की। उनके विचार में आर्य समाज अन्य समाजों की भांति एक दल अथवा मतान्ध सम्प्रदाय न होकर वह संगठन था जो वेदोक्त सिद्धान्तों के प्रचार में तत्पर रहे। आर्य समाज उन व्यक्तियों का संगठन होगा जो प्राचीन ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में आस्था रख उनके प्रचार व प्रसार में प्राण-पन से

सदाचरण पूर्वक लगा रहेगा। सज्जनों अर्थात् श्रेष्ठों के समूह का नाम आर्य समाज है न कि ऋषि की दुहाई मात्र देकर नारे लगाने वालों का।

महर्षि दयानन्द की मनोभिलाषा को उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज कहां तक पूर्ण कर सका इसका निर्णय आर्य समाजी कहलाने वाले सज्जन ही कर सकेंगे किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ऋषि की कार्य प्रणाली इतनी द्रुतगति से नहीं चल सकी है जितनी कि अपेक्षित है। इसकी मन्दता के कारणों में एक प्रधान कारण यह है कि आर्य समाज के सूत्रधार स्वयं सिद्धान्त-विहीन अथवा सिद्धान्तानभिज्ञ हैं। वे स्वयं नहीं जानते कि समाज को किस दिशा में ले जाएं और कैसे ले जाएं। कहना न होगा कि उन्हें दिशा ढूंढने की आवश्यकता ही नहीं है। महर्षि ने अपने द्वारा निर्धारित उद्देश्यों अर्थात् प्रचलित आर्य समाज के नियमों द्वारा आर्य समाज को युगों की दिशा दी है। आज आवश्यकता इस बात की है कि आर्य समाज उस पर आचरण करे। आचरण के अभाव में ही आर्य समाज शिथिल हो गया है।

जहां ऋषि ने अपने सिद्धान्तों को सार्वभौमिक व सार्वकालिक बनाने का यत्न किया वहां आज ऋषि का तथाकथित अनुयायी उन सिद्धान्तों को अपनी थाती समझ बैठा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि उसे यह पता नहीं कि उस सिद्धान्त का उपयोग क्यों कर हो सकता है। महर्षि ने जिन संकीर्णताओं के विरुद्ध आवाज उठायी थी, वही संकीर्णता आर्य समाज में आ गयी है। परिणामतः आर्य समाज के प्रति लोगों की आस्था और विश्वास नहीं के बराबर है। क्या इसका दोष हम आर्य समाजी अपने ऊपर लेने को उद्यत हैं? नहीं, क्योंकि हम अपने को "आर्य" अर्थात् श्रेष्ठ, संसार में सर्वश्रेष्ठ कहने का दम्भ जो भरते हैं। कैसी विडम्बना है कि हम आंख बंद किये हुए अपने को दूरदर्शी सिद्ध करने का दुस्साहस कर रहे हैं। जब तक यह दुराग्रह आर्य समाजियों में रहेगा। आर्य समाज कभी आगे नहीं बढ़ सकता।

आज आर्य समाज-में व्यक्ति पूजा बल पकड़ती जा रही है। जहां महर्षि ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्त्व प्रदान किया था, वहां आर्य समाजी ऋषि के मार्ग से उलटे चलने में ही अपनी महत्ता माने हुए हैं। जब तक व्यक्ति पूजा समाप्त न होगी आर्य समाज प्रगति नहीं कर सकता। हां, व्यक्ति का व्यक्तित्व, समाज को मति दे सकता है किन्तु व्यक्ति ही सब कुछ नहीं है। व्यक्ति के लिए समाज न होकर समाज के लिए व्यक्ति की सत्ता होती है। यदि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेंगे तो परिणाम यह होगा कि मान्य व्यक्तित्व के समाप्त होने के साथ ही समाज विघटित होगा।

आर्य समाज के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनके व्यक्तित्व ने समाज को आगे बढ़ाया था किन्तु उनके जाते ही समाज की गति अवरुद्ध प्राय हो गयी।

महर्षि दयानन्द के अनन्तर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, महात्मा नारायण स्वामी जी, महात्मा हंसराज जी, पं० लेखराम जी, श्री पं० गुरुदत्त जी, स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, प्रभृति नेताओं ने आर्य समाज को अपनी निष्ठा व सामर्थ्य से गति प्रदान की थी। आज ऐसे व्यक्तियों के अभाव के कारण आर्य समाज जहां का तहां खड़ा है। क्या आर्य समाजियों ने इस दिशा में कभी सोचा है। यदि सोचा है तो क्या परिणाम निकला है। आज समाज प्रतिष्ठा का पात्र क्यों नहीं, बन पा रहा है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि आर्य समाज में नेतृत्व का अभाव है। नेता 'ले चलने वाले' को कहते हैं। यहां तो चार आना चन्दा देने वाला प्रत्येक आर्य समाज का सदस्य नेता बनने की दौड़ में भाग लेता है। चुनाव में विजयी होकर वह समाज की निःस्वार्थ सेवा करने के स्थान पर पारस्परिक मतभेद तथा दलबन्दी को प्रोत्साहन देता है। क्या आर्य समाज के सदस्य बनने मात्र से वह आर्य समाजी हो जाता है? यह कसौटी कहां तक उपयुक्त है मैं नहीं समझता। मेरी दृष्टि में तो आर्य समाजी वह है जो वेदोक्त सिद्धान्तों को स्वयं समझकर, उन पर आचरण कर अन्यों को भी इस दिशा में प्रेरणा देकर उनके जीवन को सफल बनाता है। हृदय पर हाथ रखकर प्रत्येक आर्य समाजी सोचे कि क्या हम उपर्युक्त कथन पर ठीक उतरते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आर्य समाज में सच्चरित्र व्यक्तियों का अभाव है। कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो आर्य समाज से दूर रहकर ही अपने कार्य व सिद्धान्तों के

प्रचार में लगे हैं। ऐसे सत्पुरुषों को आर्य समाज अपनी ओर क्यों नहीं आकृष्ट करता है। सच तो यह है कि सिद्धान्त विहीन आर्य समाज के नेताओं के हाथ में ये विद्वान् बिकना पसन्द नहीं करते। वे ऋषि के भक्त अवश्य हो सकते हैं किन्तु आर्य समाज के सदस्य कहलाने में शायद उन्हें आकर्षण नहीं।

आज आर्य समाज में कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की कमी है। स्वार्थी, पदलोलुप, यशाभिलाषी नेताओं का बोलबाला है। समाज के इन तथाकथित नेताओं में चरित्र लेशमात्र भी दिखायी नहीं देता है। ऐसी स्थिति में वे अन्यों का नेतृत्व क्या कर पायेंगे। नेता को स्वयं अनुशासन प्रिय बनकर सामाजिक कार्यों पर भी अनुशासन बनाये रखना चाहिए।

एक बात और आर्य समाज के क्षेत्र में "यथा योग्य बर्ताव" के स्थान पर मनमाना का साम्राज्य है। इस प्रवृत्ति से आश्चर्य नहीं आर्य समाज अवनति को प्राप्त हो रहा है। क्योंकि "अपूज्या : पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।" अर्थात् आज समाज में अपूज्यों का सत्कार तथा पूज्य पुरुषों की अवहेलना की प्रवृत्ति सामान्य हो गयी है। जब तक यह दूषित मनोवृत्ति दूर नहीं होती समाज आगे बढ़ नहीं सकता। आश्चर्य तो यह कि जो युवक आर्य समाज में जोश और उमंग को लेकर कदम रखते हैं, भरी जवानी को झोंक देते हैं उनका भविष्य प्रश्नवाचक तथा अन्धकारमय बना दिया जाता है। उनके कार्यों का कोई मूल्यांकन नहीं किया जाता, अपितु उनके व्यक्तित्व को धूमिल करने का प्रयास किया जाता है। इससे किसी को लाभ नहीं। ह्रास अवश्य हो जाता है क्योंकि कमजोर संस्कार विहीन, सिद्धान्तों से बेखबर अधिकारियों के हाथ में समाज की बागडोर आ जाने पर वह स्वयं डूबेगा ही अन्यों को भी ले डूबेगा। उक्ति है—

"अन्धा अन्धा ठेलिया दोनों कूप पड़न्त"

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्य समाज में सिद्धान्तों की नहीं अपितु अनुकरण करने वालों की कमी है। बुद्ध के उपदेशक बुरे न थे किन्तु उनके अनुयायियों ने बुद्ध की अमर वाणी को मिट्टी में मिला दिया। शंकर के वेदान्त का कालान्तर में उनके अनुयायियों ने गलत अर्थ कर अवैदिक भावनाओं के प्रचार द्वारा शंकर को बदनाम कर दिया। हम आर्य समाजी भी कहीं इसी चाल पर तो नहीं चल रहे हैं, इस पर विचार करना है। मैं समझता हूँ कि आर्य समाजी (जो सदस्यता फार्म मात्र भरकर आर्य समाजी बनते हैं) वैदिक विचार धारा से पूर्णतः अवगत होने का प्रयास नहीं करते। क्योंकि उन्हें तो आर्य समाजी कहलाना है, सिद्धान्तों एवं सेवावृत्ति से कोई वास्ता नहीं। वे इसी में मस्त हैं कि वे आर्य समाजी हैं। आर्य समाजी बनने मात्र से स्वयं को महान् समझने लगे हैं। यह भी अविद्या है। आंखें खोल कर आर्य समाजियों को एक बार फिर ऋषि का रास्ता पकड़ना होगा। जब तक वे ऐसा नहीं करते आर्य समाज को बचा नहीं सकते।

हमें हर्ष एवं गर्व है कि आर्य समाज के कविरत्न पं. प्रकाशचन्द जी जैसे ऋषि भक्त तथा सिद्धान्तप्रिय व्यक्ति भी उपस्थित हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन ऋषि चरणों में समर्पित है और वे निरन्तर आर्य समाज को जीवन प्रदान कर रहे हैं। हमें उनका अनुकरण कर अपने जीवन को भी आर्यमय बनाना चाहिए तभी आर्य समाज में नवजीवन तथा संगठन की भावना आ सकती है। परम पिता परमात्मा की कृपा से हमारे हृदय, मन, चित्त, बुद्धि एक हों। हम एक होकर मिल जुलकर आर्य समाज को उन्नति के शिखर पर पहुंचायें। हमे नयी योजना अथवा नियमों के बनाने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम ऋग्वेद के संगठन सूक्त एवं ऋषि प्रतिपादित दस नियमों पर आचरण करें तो कोई आश्चर्य नहीं कि आर्य समाज सुसंगठित हो जाय। □□□

आर्य समाज और हिन्दी साहित्य : डा० सुषमा पाल

विषय अत्यन्त व्यापक है जिसमें पर्याप्त अनुसन्धान की संभावना है। संक्षिप्त लेख में यद्यपि संभाव्य समस्त दिशाओं का स्पर्श भी संभव नहीं तथापि एक आंशिक चेष्टा प्रस्तुत है।

सन् १८७५, में आर्य समाज की स्थापना हुई। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के वाद का समय था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के अवसान के उपरान्त आधुनिक काल एक नई करवट ले रहा था। संवत् १९०० (सन्-१८४३) से भारतेन्दु युग प्रारम्भ होता है। वह वस्तुतः प्रत्येक दृष्टि से संक्रांति काल था। राजनैतिक, सामाजिक, वैचारिक सभी क्षेत्रों में युग को एक नया मोड़ प्रदान करने के लिये अनेक प्रतिभाएँ गतिशील थीं, महर्षि तथा उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने प्रत्यक्षतः धर्म लेकिन साथ साथ ही राष्ट्रीय सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में भी नई मौलिक क्रान्तिकारी विचारधारा का संस्कार डाल दिया था।

वस्तुतः वह युग और उसका प्रत्येक प्रवुद्ध व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक क्रान्ति लाना चाहता था। नूतनता का संचार करना चाहता था, तर्क की कसौटी पर खरा उतारे बिना वह किसी भी विचार को ग्राह्य मानने को तैयार न था, चाहे वह कितना ही पुराना या कितना ही बहुप्रचलित क्यों न हो। आज का सम्पूर्ण युग ही बौद्धिकता प्रधान है। कोई भी व्यक्ति किसी बात को तभी स्वीकार करता है, जब वह उसके मस्तिष्क में बैठ जाय। आधुनिक काल के प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य में इस तर्क प्रधान बुद्धिपरक दृष्टिकोण की झलक दिखाई देती है। पर्याप्त समय तक विषयवस्तु के चयन में तथा उसके प्रस्तुतिकरण में यही प्रवृत्ति प्रधान रही।

सौभाग्य की बात यह है कि उस समय तक हिन्दी का साहित्य-स्रष्टा विदेशी-पन की गन्ध से मुक्त था। इसी कारण आर्य समाज की विचारधारा ने उसकी चेतना को प्रभावित किया तथा साहित्यिकों ने भी उस प्रभाव को अंगीकार किया। आर्य समाज की विचारधारा ने उस समय के साहित्यिक जगत् को एक नहीं अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आर्य समाज का उद्देश्य देश के जनमानस में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, सभी दृष्टियों से स्वाभिमान का संचार करना था, अपनी भारतीय संस्कृति में आस्था को पुनर्जागृत करना था, अपने आदर्श महापुरुषों के प्रति श्रद्धा भावना को जागृत कर, देश को वर्तमान अधःपतन से बचाना था। इसी कारण जहाँ आर्य समाज ने अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदर्शों का यशोगान किया वहाँ जन जन में स्वतन्त्रता की कामना को सबल बनाया, मातृभूमि के गौरवगीत गाये। अपनी संस्कृति की प्रतीक गाय की रक्षा का संकल्प किया। निज गौरव की रक्षा करने के लिये स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति का महत्त्व स्थापित किया। प्रत्येक श्रेष्ठ परिवर्तन के लिये नैतिक, आध्यात्मिक, वेदसम्मत आधार की अनिवार्यता प्रतिपादित की। समाज में प्रचलित कुरीतियों का खण्डन किया। समाज के उत्थान के लिये नारी का महत्त्व स्वीकार किया तदर्थ विधवा विवाह, बालविवाह, सदृश कुप्रथाओं की घोर निन्दा की। अन्धानुकरण न कर स्वयं सोच समझकर किसी बात को स्वीकार करने की प्रेरणा दी। तदर्थ शास्त्रार्थ-प्रणाली को प्रोत्साहन दिया। पौराणिक कथाओं एवं प्रतीकों की तर्कसंगत व्याख्या की। जन जागरण के लिए शिक्षा का प्रसार आवश्यक माना नारी शिक्षा पर भी बल दिया। वेदवाणी प्रत्येक मानव के लिये है। किसी पर भी उसके पठन-पाठन का प्रतिबन्ध नहीं है, ऐसा प्रतिपादन कर अछूतोद्धार के व्यापक आन्दोलन की नींव रख दी। धर्म के संकीर्णतामुक्त सम्प्रदाय निरपेक्ष शुद्ध स्वरूप का प्रतिपादन किया। मानव-कल्याण, स्पष्टता, निर्भीकता, सत्यवादिता आदि विविध गुणों से सम्पन्न आर्यसमाज एक महान् लक्ष्य सामने रख कर बड़ी तीव्रगति से कर्म-क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ।

समाज सुधार की प्रवृत्ति

सामाजिक कुरीतियों को सुधारने तथा रूढ़ियों को मिटाने के लिये उस समय कई आन्दोलन चल रहे थे। महर्षि समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे। उस समय यद्यपि ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज भी नवीन जागृति का संदेश लेकर आये थे किन्तु उनके सुधारवाद पर पश्चिम की छाप थी। उन्हें सरकारी प्रतिष्ठा भी प्राप्त थी। फलतः उनमें भारतीयता और स्वाभिमान की रक्षा न हो पा रही थी। महर्षि दयानन्द ने भारतीय भाव-भूमिका पर सम्पूर्ण क्रान्ति लाने का प्रयत्न किया। इसी कारण भारतीय दृष्टिकोण से समाज सुधार के आकांक्षी विचारकों, लेखकों, कर्मयोगियों पर महर्षि का प्रभाव निः-संकोच स्वीकार किया जा सकता है।

विवाह सदृश पवित्र संस्कार की आड़ में प्रचलित बालविवाह, अनमेलविवाह, बहुविवाह, सदृश कुप्रथाओं का विरोध किया तथा समाज के स्वस्थ विकास के लिये नारी के महत्त्व की स्थापना की। महर्षि के अनुयायी नाथूराम शर्मा शंकर तो विधवाओं के करुण क्रन्दन से विचलित हो गये। समाज सुधार की भावना से उन्होंने इस करुणा को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। कवि देखता है कि सामाजिक कुरीतियों के बोझ तले दबी भारतीय नारी विवश होकर मरण का आलिंगन करना श्रेयस्कर समझती है, लेकिन यह निर्दय समाज उसकी चीख-पुकार को अनसुना कर देता है। कवि का भावना प्रवण हृदय चीत्कार कर कहता है—

सारी सहें शोक सन्ताप, व्याकुल विधवा करें विलाप।
जरो सुहाग पिया के संग, तरसत रहे अछूते अंग।
तवहि ते अबलों बेचैन, मैं दुःख भोगत हूं दिन रैन।
इन अन्यायिन को अन्याय, अब तो सह्यो न देख्यो जाय।
भयो कठोर अरे करतार, हम को मार कि संकट टार।

कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध सभी पत्रों में लेखकों ने नारी जीवन की क्रूरता भरी विडम्बनाओं को चित्रित किया है। विधवाओं की दुर्दशा, वृद्धविवाह, दहेजप्रथा आदि के कारण सजग लेखकों ने समाज तथा समाज के ठेकेदारों को खूब लताड़ा है। प्रेमचंद के उपन्यास, मैथिलीशरण गुप्त का काव्य, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हरिऔध ने "ठेठ हिन्दी का ठाठ" में सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया है। "आदर्श नारी" में लज्जाराम मेहता ने नारी स्वतन्त्रता पर बल दिया और नारी पुरुष समानता का प्रश्न उठाया है।

स्वर में केवल सम्वेदना ही नहीं है। समाज की ललनाओं को अत्यन्त कुलीना, गुणशीला देखने की अभिलाषा से कवि शंकर आशा भरे स्वर में परमपिता से निवेदन

करते हैं कि :—

विदुषी उपजै, समता न तजै, व्रत धार मजै, सुकृति वर को।
सधवा सुधरें, विधावा उबरें, सकलंक करें न किसी घर को।
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें कुलबोर छिकें, तरसें दर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को।

श्रीधर पाठक भी तत्कालीन नारी समाज से एक उच्चतर आदर्श की कामना करते हैं :—

अहो पूज्य भारत महिलागण अहो आर्य कुल प्यारी।
अहो आर्य गृह लक्ष्मि, सरस्वती आर्य लोक उजियारी।
आर्य जगत् में पुनः जननि, निज जीवन ज्योति जगाओ।
आर्य हृदय में पुनः आर्यता, का शुचि स्रोत बहाओ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो इतिहास प्रसिद्ध वीरांगना दुर्गावती की इस सहज स्वाभाविक ललकार में आर्य नारी का गौरवभरा व्यक्तित्व निहित देखते हैं :-

अरे अधम ! रे नीच !! महा अभिमानी !
दुर्गावती के जियत चहत गढ़ मंडेल निजकर।
म्लेच्छ ! यवन की हरम केर हम अबला नाहीं।
आर्य नारि नहीं कबहुँ शस्त्र धारत सकुचाहीं।

आर्य समाज अपनी मातृभूमि पर स्वतन्त्रता का विहान लाने के लिए देश के जनमानस में अनेक दृष्टियों से क्रान्ति लाना चाहता था। विदेशी पराधीनता, स्वाभिमान का अभाव, मानसिक गुलामी, आर्थिक शोषण, अन्धविश्वास, रूढ़ियों का जंजाल, अपने ही भाई कहलाने वाले लेकिन संकीर्ण स्वार्थवश देश की पीठ में छुरा भौंकने का दुष्चक्र रचने वाले कुचक्रियों का समूह, सब मिलकर समस्या को गम्भीर बना रहे थे। राजाओं में परस्पर संगठन का अभाव था। देश में एक राष्ट्रीय भावना या एकसूत्रता न थी। राष्ट्रहित में इस विघटनकारी प्रवृत्ति को समाप्त करना अनिवार्य था। जो प्रयास सरदार पटेल ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त छोटी-छोटी अनेक रियासतों के भारत में विलीनीकरण के लिये किया वही कार्य प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय राजाओं को संगठित करने के लिये महर्षि ने किया था। उसी प्रयास में ही उन्हें अपने प्राणों का बलिदान तक कर देना पड़ा। वैष्णव कवि होते हुए भी मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में उसी विचार की प्रतिध्वनि विद्यमान है—

जहां तक है आपस की आंच
वहाँ तक वे सौ हैं हम पांच
किन्तु यदि करे दूसरा जांच
तो गिने हमें एक सौ पांच

वैर विरोध का निराकरण कर परस्पर मेल जोल बढ़ाने का आग्रह कई कवियों ने किया। कवि शंकर कहते हैं :—

सब वैर और विरोध का बल बोध से वारण करो।
है भिन्नता में खिन्नता, ही एकता धारण करो।
आपस में कर मेल भूल भ्रम भेद भगा दो।
हिलमिल खेलो खेल सुकृति की ज्योति जगा दो।

आर्य समाज ने स्वदेशी की भावना को काफी महत्त्व दिया। काव्य में भी यह स्वर काफी भास्वर रहा। स्वराज्य का उद्घोष महर्षि ने तिलक से भी आधी शताब्दी पूर्व किया था। साहित्यकारों ने समय-समय पर उसे अपनी रचनाओं में प्रतिध्वनित किया। राष्ट्र की विपन्नावस्था को देखते हुए महर्षि ने अपनी जरूरतों में अधिकतम कटौती की। राजनीतिक नेताओं की तरह दिखावा करके नहीं प्रत्युत शुद्धतः व्यावहारिक रूप प्रदान करके आदर्श की स्थापना की। साहित्यकार ने भी इस प्रवृत्ति को साहित्य में गौरव प्रदान किया, लेकिन खेद इस बात का है कि उस प्रभाव को राजनीतिक रंगत देकर मात्र किन्हीं राजनेताओं से सम्बद्ध कर दिया गया।

परिवर्तन के इस युग में सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की लहर व्याप्त थी। जनता में अपने भारत देश को स्वतन्त्र देखने की आकांक्षा अत्यन्त बलवती थी। हिन्दी के कवियों ने भारत माता का स्तवन किया, उसकी स्वतंत्रता के लिए बलिदान तक दे देने की उत्कट भावना प्रकट की। ओज भरे स्वर में कवि से कुछ ऐसी तान सुनाने का आग्रह किया जिससे उथल पुथल मच जाए। स्वतन्त्रता संग्राम की इस हलचल को वही कवि पृथ्वी आकाश सर्वत्र व्याप्त देखने का आकांक्षी है। बालकृष्ण शर्मा नवीन का यह भावोद्गार अपनी राष्ट्रीय भूमिका में पूर्णतया शुद्ध है। भारत मां को पराधीनता की शृंखला में बंधा देखकर कवि क्षुब्ध हो गया। उसने मां को पीड़ा

से मुक्त करना चाहा। इस निमित्त अपना सर्वस्व अर्पित करने में भी संकोच का अनुभव न किया। अपनी मनो भावना को प्रकृति में प्रतिबिम्बित होते देख कर भावविभोर कवि ने तो यहां तक अनुभव किया कि एक पुष्प भी मातृभूमि के लिये अपना शीश चढ़ाने के लिये जा रहे सेनानियों के मार्ग में बिछ जाने में ही अपने अस्तित्व की सार्थकता स्वीकार करता है। इस युग में जहां वीर नायकों का चित्रण कर राष्ट्रीयता को उभारा गया है वहां भारतीय क्षत्राणियों की गौरव गाथाओं से भी भारती की अर्चना की गई है।

राष्ट्रभाषा का गौरव

अहिन्दी भाषी, गुजराती भाषी, महर्षि ने राष्ट्रीय अपेक्षा को पहचान कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव दिया। स्वयं हिन्दी में ग्रन्थों का प्रणयन किया। हिन्दी (खड़ीबोली) के विकास में आर्यसमाज का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। भावाभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान कर हिन्दी गद्य को सुष्ठु परिमार्जित रूप प्रदान करने में आर्य लेखकों का बड़ा भारी हाथ रहा है। अंग्रेजी शासन द्वारा किये जा रहे ईसाई प्रचार का प्रतिरोध करने के उद्देश्य से आर्य लेखकों ने हिन्दी गद्य का माध्यम अपनाया। आज कोई भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि ईसाई गद्य की तुलना में आर्य लेखकों का गद्य अनेक गुणा अधिक समृद्ध था।

व्यापक प्रभाव

हिन्दी के अनेक साहित्यकारों में आर्य विचारधारा का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। भारतेन्दु तथा उनके साथियों में राष्ट्रीय भाव बोध अत्यन्त प्रखर था। स्वाभिमानपूर्ण आत्मबोध उनके काव्य का मूल आधार था। महावीर प्रसाद द्विवेदी की नैतिक मान्यताओं ने अपने संपूर्ण युग का मार्गदर्शन किया। सत्यनारायण कविरत्न का "भ्रमरदूत" भ्रमरगीत, परम्परा की रचना होने पर भी उत्कट राष्ट्रभक्ति की परिचायक है। मुकुटधर पाण्डेय के काव्य में धर्म की संकीर्णताओं पर तीव्र चोट है। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में ऐसे भावरत्न अनेक स्थानों पर बिखरे पड़े हैं। बालकृष्ण शर्मा नवीन की "उर्मिला" में तो रामवनगमन तक को भारतीय संस्कृति के प्रसारार्थ प्रतिपादित किया गया है। अक्खड़ प्रकृति के तीखे व्यंग्यकार नाथूराम शर्मा शंकर तो कविता करना और ऋषि दयानन्द के दर्शन को जीवन का फल मानते थे।

एक ओर जहाँ शास्त्रार्थ के क्षेत्र में विजयश्री आर्य-महारथियों का अभिनन्दन करती रही, वहां दूसरी ओर युगचेतना पर इसका इतना अकाट्य प्रभाव रहा कि मात्र भारतेन्दु या द्विवेदी युग के साहित्यकार ही नहीं अथवा मात्र आदर्शवादी साहित्य लिखने वाले लेखक ही नहीं इन सबकी प्रतिक्रियाजन्य विकसित कहे जाने वाले छायावादी काव्य में भी इसका प्रमाण उपलब्ध हो जाता है। शिव के उपासक जयशंकर प्रसाद भी आर्यसमाज के प्रभाव को अस्वीकार न कर सके। उनका चाणक्य तो आर्यत्व की ही प्रतिमूर्ति है। आनन्दवादी जीवन दर्शन उनके काव्य की चरमसिद्धि है। शक्ति के उपासक हनुमान के भक्त निराला ने युग प्रवर्तक दयानन्द की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। आधुनिक मीरा कही जाने वाली तथा बौद्ध प्रभावापन्न महादेवी ने भी वैदिक ऋचाओं का भावानुवाद किया। पन्त के काव्य में तो अनेक वेदमंत्रों का अक्षरशः अनुवाद तक उपलब्ध होता है।

यह ठीक है कि महर्षि को किसी काव्य का नायक न बनाया गया। उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज को आदर्श संस्था के रूप में किसी आदर्शवादी साहित्यस्रष्टा ने प्रस्तुत न किया। शायद बुद्धिपरक व्यक्तित्व और विचारधारा में इन साहित्यकारों को भाव और सरसता का पुट न मिला हो। लेकिन यह भी सत्य है कि क्रान्तदर्शी महर्षि तथा बलिदानी आर्यसमाज और आर्य नेताओं के संघर्षपूर्ण इतिहास में अनेक भाव भरे प्रसंग सन्निहित हैं। यह ठीक है कि इस क्षेत्र में भावुकता नहीं, भावुकता का अन्धप्रवाह भी नहीं, लेकिन भाव है, भावमयता है, भावनाओं का उद्दाम वेग भी है। इसी भावमयता ने महर्षि के हृदय को उद्वेलित किया था। यही भावप्रवणता सामाजिक जीवन के परिवर्तन के आकांक्षी साहित्यस्रष्टाओं में दृष्टिगत होती है।

शेष रही बात सरसता की। कौन कहता है महर्षि का जीवन सरस न था। काव्य में जिसे रस कहते हैं, काव्य शास्त्रीय शब्दावली में उसे ही ब्रह्मानन्द सहोदर, कहा गया

है। और महर्षि घंटों समाधि में उस ब्रह्मानन्द को लूटते थे। यही नहीं निन्दा, उपहास के पत्थर खाकर भी उस दिव्य आनन्द को जन-जन के लिए उन्मुक्त हृदय से निःसंकोच भाव से बिखेरते थे। भला आत्मिक और सामाजिक व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर उस आनन्द की उपलब्धि तथा वितरण का अनुपम सन्तुलन करने वाले अनुपम कर्मयोगी को क्या नीरस कहा जा सकता है?

सत्य तो यह है कि भावभरे करुणा एवं मानवीय संवेदना को उभारने वाले प्रसंगों को आर्यजगत् के हृदय को–उसके स्पन्दन को अब तक लेखकों ने पहचानने की चेष्टा नहीं की। परन्तु भाव और रस के ये संरक्षक बुद्धि तत्त्व से जरा कतराने पर भी अपने चिन्तन को उस युगव्यापी प्रभाव से अछूता न रख सके जो प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप में आर्यसमाज के क्रान्तिपूर्ण आन्दोलनात्मक स्वरूप का प्रभाव था।

समग्रतः भारतेन्दु युगीन कवियों का राष्ट्रीय प्रेम, द्विवेदी युगीन कवियों की सांस्कृतिक निष्ठा एवं नैतिकता के प्रति प्रबल आस्था, राम एवं कृष्ण को महामानव के रूप में देखना, पौराणिक घटनाओं को तर्कसंगत व्याख्या प्रदान करना, छायावादी कवियों का वैदिक साहित्य का अनुशीलन और वेदऋचाओं का सरस भावानुवाद, आधुनिक कवियों का सजग युगबोध, मौलिक चिन्तन, बुद्धिपरक विश्लेषण, रूढ़िविरोध, सबको आर्यसमाज की चिन्तनधारा का एक सहज युगव्यापी प्रभाव कहा जा सकता है।

साहित्य समाज का मात्र दर्पण नहीं है, वह समाज का प्रेरक भी है, मार्गदर्शक भी है। मुझे साहित्यस्रष्टा क्षमा करें—आज साहित्य का अधिकांश इस उत्तरदायित्व से परे हट रहा है। कारण स्पष्ट है, मात्र भावना के प्रवाह में बुद्धि के कपाट पर अर्गला लगा दी गई है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अपने दायित्व की गम्भीरता की रक्षा करने के लिए एक बार फिर, आज नहीं तो कल, साहित्य-स्रष्टा को बुद्धि और हृदय पक्ष को कलात्मक सन्तुलन प्रदान करना पड़ेगा। प्रत्येक युग में शाश्वत कही जाने वाली साहित्यिक कृति में यह प्रवृत्ति सुरक्षित रही है। मात्र-भेद भाव है लेकिन किसी भी युग में यह प्रवृत्ति सर्वथा शून्य नहीं हो सकती।

किंचित् विचार करें, यदि मध्ययुगीन विभिन्न धर्म सम्प्रदायों के अनुयायी भक्त-कवि लगभग दो शताब्दियों तक की साहित्यिक कृतियों को भक्तिकाल का अभिधान प्रदान करवा सकते हैं, तो क्या आज के बुद्धिप्रवण, तार्किक, वैज्ञानिक युग में बढ़ रही नास्तिकता पर रोक लगाने के लिए आर्यक्रान्ति साहित्यजगत् पर छा नहीं सकती? □□□

"विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं" "जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख दुःख, परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है"।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

नवयुवक शक्ति आर्य समाज में कैसे आये : ओम प्रकाश त्यागी

किसी भी परिवार, संस्था व देश का भविष्य उसके बच्चों पर अर्थात् नवयुवकों की शक्ति पर ही निर्भर करता है। इसके बिना भविष्य को अन्धकारमय ही समझना चहिए। इस माप-दण्ड पर यदि हम आर्य समाज को तोलें तो निराशा के अतिरिक्त हमें कुछ हाथ नहीं लगेगा। भारत के किसी भी आर्य समाज के निरीक्षण करने पर यही ज्ञात होगा कि वहां वृद्ध-वर्ग का ही साम्राज्य है। और उसकी सदस्य संख्या लगातार गिरती जा रही है या स्थिर है। नई सदस्यता उसके लिये शब्दकोष में ही अंकित है।

आखिर नवयुवक-शक्ति आर्यसमाज में क्यों नहीं आती? इस प्रश्न का पहला उत्तर तो यही है कि सत्ता के मोह में वर्तमान समाज अधिकारी नये सदस्यों का समाज में भर्ती होना पसन्द ही नहीं करते। यदि भूले–भटके कोई नवयुवक सदस्य बन जाता हैं तो फिर वह उसे अधिकार नहीं सौंपते हैं। उनका कहना है कि उनके अलावा नये हाथों में चले जाने पर आर्य समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

जिन आर्य समाजों के साथ स्कूल, पाठशाला, कन्या-पाठशाला लगी हैं, और दुकान आदि से अच्छी आर्थिक आय है उसमें तो नये सदस्य का प्रवेश होना असंभव जैसी बात है। नये सदस्य के आने पर उन समाजों के अधिकारियों को ऐसा लगता है जैसे उनके राज्य व जमींदारी पर आक्रमण हो रहा है। पूरी शक्ति लगाकर नवागंतुक को रोकने का प्रयास करते हैं। यदि कभी नये सदस्यों की भर्ती होती है तो उन्हीं अधिकारियों में से किसी के धन के सहारे उक्त समाज पर अधिकार जमाने के लिए ऐसे व्यक्तियों को लाया जाता है जिनका आर्य समाज से दूर का भी संबन्ध नहीं होता है वे अधिकारियों में से किसी की फैक्ट्री, दुकान आदि में कार्य करने वाले कर्मचारी मात्र होते हैं।

दूसरा कारण आर्य समाज में नये रक्त के न आने का यह है कि उनकी रुचि के अनुसार समाज में कार्य-क्रम नहीं होता है। अपनी रुचि के विरुद्ध कार्य-क्रम में तीन घण्टे तक लगातार उनके लिये बैठना कठिन है। इसके अतिरिक्त वृद्धों के मध्य गम्भीर वातावरण में अधिक बैठना नवयुवकों के स्वभाव व प्रकृति के भी विरुद्ध है।

आर्य समाज के प्रति नवयुवक कैसे प्रेरित हों? इसका यही उत्तर है कि मनोविज्ञान का यह साधारण सा नियम है कि कि जिस प्राणी को अपनी ओर आकर्षित करना है उसकी रुचि के अनुसार उसके सन्मुख कार्य-क्रम रखा जाय। उदाहरणार्थ मछली पकड़ने वाला व्यक्ति उसे फंसाने के लिये उसे आटे की गोली या मांस का टुकड़ा खाने को देता है और उसके अन्दर अपने कांटे को छिपा देता है। मछली अपनी रुचि के भोजन को पाकर आती है और उस पर फंस जाती है। बस यही सिद्धान्त दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए है। इसी का आर्य समाज को सहारा लेना चाहिए।

नवयुवकों की रुचि खेल-कूद तथा संघर्ष करने में होती है। बस इन्हीं के आधार पर अपने कार्य क्रम की रचना कर समाज को नवयुवकों के सन्मुख उपस्थित होना चाहिए। आर्य जगत् की शिरोमणि आर्य प्रतिनिधि सभा, ने इस तथ्य को सन्मुख रखकर सार्वदेशिक आर्यवीर दल की स्थापना की और सभी आर्य समाजों को अपने यहां इसकी शाखाओं की स्थापना करने का निर्देश दिया, परन्तु अधिकांश आर्य समाजों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। जिन आर्य समाजों ने इसकी स्थापना की उनमें नवयुवक शक्ति विराजमान है और इसी कारण उनकी गतिविधियों में जीवन है।

आर्य वीर दल के अतिरिक्त आर्य कुमार सभा की भी स्थापना स्वतन्त्र रूप से हुई और उसमें भी छोटी आयु के कुमारों को आकर्षित करने के अनेक उपाय अपनाये गये जिसके परिणामस्वरूप हजारों कुमार आर्य समाज की सम्पत्ति बन गये।

आज आर्य वीर दल व आर्य कुमार सभा, आर्य समाजों तथा आर्य सभाओं की उपेक्षा के कारण अच्छी अवस्था में नहीं हैं, परन्तु फिर भी प्रति वर्ष हजारों नवयुवक इनके द्वारा आर्य समाज में प्रविष्ट होते हैं। नवयुवक भी ऐसे आते हैं जिनके परिवारों को आर्य समाज से कोई संबंध नहीं है।

यदि भारत के समस्त आर्य समाजों से यह आंकड़े संग्रहीत किए जांय कि अपने जन्म काल से प्रतिवर्ष उन्होंने कितने नये व्यक्तियों को आर्य समाज का सदस्य बनाया? तो निराशा के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगेगा। परन्तु यदि यही प्रश्न आर्य वीर दल की शाखाओं से कर दिया जाय तो यही उत्तर मिलेगा कि प्रति वर्ष उसमें पुराने आर्य वीरों के स्थान पर नये आर्य वीर आते रहे अर्थात् प्रति वर्ष उनके यहां नये बच्चे प्रशिक्षण प्राप्त कर दयानन्द के मिशन के सदस्य बन जाते हैं।

आर्य वीर दल में नवयुवकों को जहाँ खेल-कूद, व्यायाम आदि करने को मिलते हैं वहां खेलों के साथ सरल भाषा में उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का उपदेश भी मिलता है। जो आर्यवीर शिक्षणशिविर में दीक्षित हो जाता है वह दयानन्द का पूर्ण भक्त बन जाता है। यदि उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना है तो मध्य प्रदेश आर्य वीर दल इसके लिए उपस्थित है। मध्य प्रदेश आर्य वीर दल का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः मध्य भारत में है। आर्य वीर दल की लगभग सभी शाखाएँ ऐसे नगरों व ग्रामों में हैं जहां आर्य समाज का कोई नाम तक नहीं जानता, परन्तु दल की शाखाओं की कृपा से आज जहां ग्रामों की जनता आर्य समाज की भक्त बनती जा रही है वहाँ स्कूल कॉलेजों के अध्यापक, प्रोफेसर, वकील तथा विद्वान् लोग दल के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य कर रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा, मध्य भारत की आर्य वीर दल आज वहां एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गई है। और दल-शाखाओं को धीरे-धीरे आर्य समाजों का रूप दिया जा रहा है। अभी वहां के आर्य वीर दल का शिविर २३ मई से ३० मई तक होशंगाबाद में लगा जिसमें अधिकांश शिक्षार्थी बी० ए० एम० ए० तथा अध्यापक हैं।

इसलिए यदि आर्य समाज चाहता है कि आर्य समाज में नवयुवक शक्ति का आगमन हो तो उसे अपने यहां आर्य वीर दल की शाखाओं की स्थापना करनी चाहिए। एवं अपने वार्षिक बजट में आर्य वीर दल के लिए एक राशि निश्चित करना चाहिए।

आर्य वीर दल की स्थापना के अतिरिक्त आर्य समाज के अधिकारियों का प्रयत्न रहना चाहिए कि वह आर्य समाज का उत्तरदायित्व धीरे-धीरे नवयुवकों के कंधों पर डाले। अधिकार के प्रलोभन से नवयुवकों का आकर्षित होना स्वभाविक है। अपने साप्ताहिक सत्संगों को भी रुचिकर बनाना चाहिए। ताकि जनता आर्य समाज की ओर अधिक से अधिक आकर्षित हो सके। □

आर्य समाज के भावी कार्य की एक दिशा : हरिश्चन्द्र रेणापुरकर

आज से छानवे वर्ष पूर्व साक्षात् कृतधर्मा, आदित्य ब्रह्मचारी भगवान देव दयानन्द ने परमपिता परमात्मा की अमरवाणी वेदामृत का पान कराकर संसार का कायाकल्प करने के पावन उद्देश्य से आर्यसमाज नामक महान् संगठन का सूत्रपात किया था। यद्यपि इसकी स्थापना भारत की महानगरी बम्बई में हुई थी और इसका कार्यक्षेत्र भी प्रमुख रूप से भारत ही रहा तथापि यह एक सार्वभौम संगठन है और उसकी शाखाएं और उपशाखाएँ आज संसार के लगभग सभी देशों में विद्यमान हैं। आर्यसमाज के दस नियमों में से एक नियम इसके सार्वभौम उद्देश्य की घोषणा करता हुआ कहता है—"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

किन्तु "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के महान् उद्देश्य से स्थापित देव दयानन्द का यह महान् संगठन विगत सौ वर्षों में पूरे विश्व में तो दूर ही रहा अभी पूरे भारत वर्ष में भी नहीं फैल पाया है। सौ वर्षों के प्रचार और प्रयत्नों के बाद भी आज पूरे भारतवर्ष में एक प्रान्त और एक जिला भी ऐसा नहीं है जो सर्वांश में महर्षि दयानन्द की वैदिक विचारधारा से प्रभावित कहा जा सके। किन्तु लगभग इतने ही वर्ष पूर्व स्थापित कार्ल मार्क्स (Karlmarx) की साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने वाला कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन आज संसार के सभी देशों में प्रबल वेग से फैल रहा है और विश्व का लगभग एक तिहाई भाग काम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित होकर उसके अधीन हो चुका है। और स्वयं भारत में भी दो तीन प्रान्त उसकी चपेट में आ चुके हैं। रामकृष्ण मिशन जैसा सांस्कृतिक और धार्मिक संगठन भी जो आर्य समाज के वर्षों बाद स्थापित हुआ, यूरोप और अमेरिका में आज प्रबल रूप से सक्रिय है। अभी पिछले वर्ष सम्पन्न विवेकानन्द स्मारक शिला की स्थापना के अवसर पर करोड़ों रुपयों के व्यय से अपने प्रचार और प्रसार की अनेक योजनाओं का उसने शुभ संकल्प किया है। किन्तु महर्षि दयानन्द की सर्वांगपूर्ण वैदिक विचारधारा को

संसार में फैलाने की दिशा में आर्यसमाज ने कोई योजनाबद्ध और संगठित प्रयास नहीं किया है।

आज तक आर्यसमाज का जो कुछ भी कार्य हुआ वह अधिकतर उत्तर भारत के हिन्दी भाषी प्रदेशों में ही हुआ। दक्षिण भारत में पूर्व हैद्राबाद राज्य को छोड़कर उसका कार्य लगभग नगण्य सा है। जिस बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना महर्षि स्वामी दयानन्द ने स्वयं अपने करकमलों से की थी उसकी आज अत्यन्त शोचनीय अवस्था है। केवल कुछ ऊँची इमारतों और भवनों से किसी संस्था के कार्य का यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो सकता। बम्बई, पूना और कोल्हापुर जैसे शहरों में आर्यसमाज के बड़े-बड़े भवन और लाखों की संपत्ति है। पर कोई आर्य समाजी नहीं जो उनका सदुपयोग कर आर्यसमाज के कार्य को आगे बढ़ा सके। बम्बई और पूना जैसे नगरों में तो आर्यसमाज प्रायः उन्हीं लोगों तक सीमित है, जो पंजाबी या उत्तर भारतीय हैं। बहुत कम आर्यसमाजी ऐसे मिलेंगे जो मराठी भाषा भाषी और महाराष्ट्रीय हैं। इतने वर्षों के प्रचार के बाद भी महाराष्ट्र के इन शीर्षस्थ नगरों में में किसी महाराष्ट्रीय विद्वान् का आर्यसमाजी न होना आर्यसमाज की प्रचार विषयक विफलता का महान् परिचायक है। आर्यसमाज जैसी सार्वभौम संस्था को आज भी लोग एक उत्तर भारतीय हिन्दी प्रचारक संस्था और ऋषि दयानन्द को एक समाजसुधारक मात्र समझते हैं। इसके कारणों की हमने कभी खोज नहीं की। पूर्व हैद्राबाद राज्य में भी आर्यसमाज का विस्तार एक बाढ़ और आन्धी की तेज गति से हुआ। पर यह सब कुछ हुआ निजाम की तानाशाही सत्ता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में। बाढ़ और आन्धी तो सदा ही नहीं रहते। क्रिया के रुकते ही प्रतिक्रिया भी स्वयमेव रुक जाती है। यहां भी वही हुआ। स्वाधीनता के बाद राजनीतिक पट परिवर्तन के साथ ही आर्यसमाज में भी भारी शिथिलता आगई। क्योंकि लोगों के जीवन में आर्यसमाज का प्रवेश हुआ ही नहीं। यही महाराष्ट्र में हुआ और यही दूसरे अहिन्दी प्रदेशों में हुआ। इन अहिन्दी भाषी प्रदेशों में आर्यसमाज का पौधा क्यों पनपा इसके अनेक कारण हैं। उनमें आर्यसमाज की भाषा विषयक नीति और साहित्य के प्रति उदासीनता भी प्रमुख कारण हैं। आज इनकी ही यहां संक्षेप में चर्चा की जाती है।

साहित्य निर्माण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय

किसी संस्था या समाज का मूलाधार वह मौलिक साहित्य होता है जो जनता की भाषा में लिखा जाता है। वाणी की अपेक्षा लेखनी का प्रचार अधिक स्थायी और अधिक व्यापक होता है। वाणी का प्रचार जहां देश और काल की परिधि में सीमित होता है वहां लेखनी का प्रचार दिक्कालातीत होता है। और वही किसी संस्था को चिरकाल तक जीवित रख सकता है। आचार्य शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद को आज तक संसार में जीवित रखने का श्रेय वाचस्पति मिश्र, सुरेश्वराचार्य, मधुसूदन सरस्वती, विद्यारण्य जैसे उनके शिष्यों के उन सैकड़ों ग्रन्थों को हैं जो उन्होंने शंकराचार्य के ग्रन्थों पर भाष्य के रूप में लिखे। इसके विपरीत महात्मा गौतम बुद्ध के मौखिक उपदेश उनके निर्वाण के कुछ वर्षों के बाद ही जनता ने भुला दिये और उनके दार्शनिक सिद्धांतों के विषय में लोगों में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गये। उनको निश्चित करने के लिए देश विदेश के बौद्ध विद्वान् एकत्रित हुए और काफी विचार विमर्श के बाद उनको लिपिबद्ध किया गया, उन्हीं को 'त्रिपिटक' कहते हैं। शायद इसीलिए बुद्ध के वास्तविक विचार आज भी अनिश्चित हैं।

किन्तु महर्षि स्वामी दयानन्द; साहित्य के इस महत्त्व को भली प्रकार समझते थे। वे जानते थे कि उनके शास्त्रार्थ और भाषण आज नहीं तो कल हवा में उड़ जायेंगे और उनके वास्तविक सिद्धांतों के विषय में जनता और विद्वानों में तरह-तरह के विवाद खड़े हो जायेंगे। इसी लिये भाषण, शास्त्रार्थ, पत्र लेखन और निरंतर देश भ्रमणों जैसे शतशः कार्यों में रात-दिन व्यस्त रहते हुए भी केवल १० वर्षों में लगभग बीस हजार पृष्ठों का ठोस साहित्य लिखा और वह भी जनता की प्रमुख भाषा हिन्दी में। सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना के साथ-साथ ही उनका प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश भी प्रकाशित हो गया। स्वामी जी अपने जीवन काल में ही अपने ग्रन्थों को मुद्रित हुआ देखने में कितने उत्सुक और आतुर थे यह बात उन पत्रों से प्रकट हो जाती है जो उन्होंने समय-समय पर प्रका-

शकों को लिखे थे।

पर स्वामी जी के बाद साहित्य निर्माण का यह कार्य उतनी तेजी से आगे नहीं बढ़ा। उनके कई ग्रन्थ आज तक अमुद्रित पड़े हैं। उनका अष्टाध्यायी का भाष्य आधा ही छप सका है। उनका चतुर्वेद विषय सूचि जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक अमुद्रित ही था। उनके ग्रन्थों के अनुवाद देश विदेश की भाषाओं में होने अभी बाकी हैं। जिस वेद के लिए वे रात-दिन दीवाने थे उसके लिए हमने कोई ठोस कार्य आज तक नहीं किया है। चारों वेदों का प्रामाणिक भाष्य संसार की प्रमुख भाषाओं में छप कर संसार के पुस्तकालयों में आज तक पहुंच जाना चाहिए था। भगवान् मनु के बाद वेदों के सब सत्य विद्याओं की पुस्तक होने की महती घोषणा सर्व प्रथम भगवान् दयानन्द ने ही की और केवल घोषणा ही नहीं की अपितु उसकी सिद्धि में अपना महान् ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका लिखा और वेदों का भाष्य करना प्रारम्भ किया जो उनके अकालिक निधन से अधूरा ही रह गया। किन्तु उनके उत्तराधिकारी आर्य समाज ने वेद विषयक संसार की ग़लत धारणाओं को सहसा बदल डालने के लिए कोई खास संगठित प्रयास नहीं किया। संसार के विद्वान् आज भी वेदों के उन्हीं अर्थों को सही समझते हैं जो सायण, मॅक्डोनेल, रॉथ और ग्रिफिथ आदि ने किये हैं। एक मौलिक भाष्यकार के रूप में ऋषि दयानन्द को कोई मानने को तैयार नहीं। क्यों कि इस दिशा में कोई साहित्यिक ठोस प्रयास हमने किया ही नहीं। आर्य समाज स्कूल, कॉलिज, गुरुकुल, अनाथालय और शुद्धि आदि कार्यों में इतना व्यस्त रहा कि उसको इधर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। निःसन्देह ये सभी कार्य महत्त्वपूर्ण थे और इनके कारण आर्य समाज की कीर्ति को चार चांद लगे। पर ये थे सभी सामयिक। स्थायी महत्त्व का काम था वेद प्रचार और साहित्य निर्माण। जड़ को छोड़कर हम वृक्ष की शाखाओं और पत्तों को पानी देते रहे। परिणाम यह हुआ कि इतने वर्षों के प्रचार के बाद भी हम केवल एक हिन्दू समाज सुधारक संस्था ही बन कर रह गये।

किन्तु इस बीच दूसरे धर्म और संप्रदाय वाले हमसे बहुत आगे निकल गये। ईसाइयों ने अपने धर्मग्रन्थ बायबल को संसार की सैकड़ों भाषाओं में छाप कर वितरित कर दिया। ट्रेक्टों और छोटी छोटी पुस्तिकाओं से तो संसार को भर सा दिया। कुरान वालों ने भी यही किया। कम्युनिस्टों ने तो इसी साहित्यिक शक्ति के बलपर दूसरों के द्वारा स्थापित स्कूल और कॉलेजों पर अपना अधिकार कर लिया और देखते-देखते पूरे संसार पर छा गये।

प्रादेशिक भाषाओं में प्रचार किया जाय

आर्य समाज संसार में वैदिक विचारधारा का प्रचार करने वाला एक महान् सार्वभौम संगठन है। किसी भाषा विशेष का प्रचारक नहीं। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि संसार में वही विचारधारा शीघ्रता से फैलती है जो जनता को उसकी अपनी मातृभाषा में दी जाती है। इसी लिए भगवान् बुद्ध ने पाली का सहारा लिया और सम्राट् अशोक ने अपनी धर्माज्ञाएँ पाली के द्वारा प्रचारित कीं। महर्षि दयानन्द ने भी इसीलिए संस्कृत को छोड़कर हिन्दी को अपनाया क्योंकि उत्तर भारत के जिन प्रदेशों में वे घूमे उनमें हिन्दी ही सर्वाधिक जनता की प्रचलित बोध-भाषा थी। पर स्वामीजी दक्षिण में पूना से आगे नहीं जा सके और उनको उतना समय भी नहीं मिला। किंतु स्वामीजी सभी भाषाओं के अध्ययन के पक्षपाती थे। उनके जीवन चरित्र से ज्ञात होता है कि वे विदेशों में वेद-प्रचार के उद्देश्य से अपने अंतिम दिनों में अंग्रेजी भी सीख रहे थे। किन्तु उनके पश्चात् आर्यसमाज ने अपने आपको हिन्दी से इतना बाँध दिया कि केवल हिन्दी ही उसकी दृष्टि से आर्य भाषा रह गई। और अर्थापत्ति से दूसरी भाषाएँ अनार्य होने से त्याज्य ठहरीं। वास्तव में यदि कोई भाषा आर्य भाषा थी तो देववाणी संस्कृत ही थी। पर हमने केवल हिन्दी को ही आर्य भाषा समझा और उसी के ही माध्यम से सारा प्रचार कार्य किया। हिन्दी भाषी प्रदेशों से ही उपदेशक और प्रचारक अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भेजे जाने लगे और आज भी यही होता है। इस से हिन्दी का तो भला हुआ और वह राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन हुई पर आर्य समाज की अपार हानि हुई। और इसीलिए इतने वर्षों के प्रचार के बाद भी अहिन्दी प्रदेशों में आर्य समाज की जड़ें जम न सकीं। आर्यसमाज इस बात को भूल ही गया कि वह वेदों का प्रचारक था

न कि हिन्दी भाषा का। इसी भाषा विषयक संकीर्णता के कारण वह हिन्दी भाषी प्रदेशों तक ही सिमट कर रह गया और लोगों ने उसको हिन्दी का प्रचार करने वाला एक उत्तर भारतीय समाज सुधारक संगठन मात्र समझा। इसके विपरीत ईसाई धर्म प्रचारकों को देखिए। वे जिस देश में जाते हैं उस देश की भाषा को अपनाते हैं और उसी के द्वारा अपना धर्म प्रचार करते हैं। यही कारण है कि उनके सिद्धान्त नितांत भ्रामक और सृष्टि नियम विरुद्ध होते हुए भी वे देखते-देखते संसार पर छा गये। उनका बायबल संसार की हर भाषा में उन्होंने छापा। मुसलमानों के क़ुरान की भी यही हालत है। कम्युनिस्टों का कॅपिटल और कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो भी संसार की हर भाषा में मिलता है। और उनके प्रचार का माध्यम भी कोई भाषा विशेष न होकर हर देश और प्रान्त की भाषा ही होती है। रामकृष्ण मिशन वालों को ही देखिये। स्वामी विवेकानंद के ग्रंथ अनेक खण्डों में छापे हुए आज भारत की हर भाषा में मिलते हैं। पर ऋषि दयानन्द के ग्रंथ इस प्रकार सुन्दर और अनेक जिल्दों में छपे हुए आज हिंदी में भी नहीं मिलते। दूसरी भाषाओं को तो छोड़ ही दो। यही बात वेदों की है जिसका आर्य समाज अपने आपको प्रचारक कहता है। इस स्थिति में आर्य समाज की वैदिक विचार धारा संसार की तो बात ही दूर भारत में भी कभी नहीं फैल सकेगी। विदेशों में आज जहां जहां भी आर्य समाज का प्रचारक है वह भी केवल हिन्दी भाषी प्रवासी भारतीयों में ही है। अतः आर्य समाज के वरिष्ठ नेताओं को आज इस पर गंभीरता से विचार कर अपनी भाषा विषयक नीति में आमूल परिवर्तन करना चाहिए और हिन्दी के प्रति अपने दुराग्रह को छोड़ कर प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से ही प्रचार को प्रधानता देनी चाहिए। तभी हमको सफलता मिलेगी। हमको वेदों का प्रचार करना है न कि हिन्दी का। हिन्दी का कार्य करने वाले तो बहुत लोग हैं पर वेद प्रचार करने वाला सिवाय आर्य समाज के और कोई नहीं।

वेद प्रचार के लिए संस्कृत पर बल दिया जाय

संसार में वेदों का प्रचार ही ऋषि दयानन्द के जीवन का मुख्य लक्ष्य था। उन्होंने संसार को एक ही नारा दिया कि वेदों की ओर मुड़ो (Back to the Vedas)। वेद ही उनके जीवन का सार सर्वस्व था। उनका हर कार्य वेद की धुरी पर ही घूमता था। उनके समस्त कार्यकलापों का केन्द्रबिन्दु वेदप्रचार ही था। बाकी सभी कार्य उसके पूरक होने से गौण थे। वेद ही उनका श्वास प्रश्वास था। उन्होंने आदेश दिया कि 'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है और उसका पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है'। पर बिना संस्कृत पढ़े वेद कैसे पढ़ा जा सकेगा? इसी लिए ऋषि दयानन्द ने संस्कृत भाषा का अध्ययन सबको आवश्यक बतलाया था। और स्थान-स्थान पर संस्कृत की पाठशालाएँ चलाई थीं। उनके उत्तराधिकारी आर्य समाज ने भी अपने आरंभिक काल में संस्कृत प्रचार के लिए महान् कार्य किया और सैंकड़ों गुरुकुलों का एक जाल सा बिछा दिया। संस्कृत के दिग्गज पंडित और शास्त्रार्थ महारथी पैदा किये जिनकी धाक विपक्षियों पर भी बैठ गई। पर धीरे-धीरे संस्कृत के अध्ययन की यह प्रवृत्ति आर्यसमाज से लुप्त होती जा रही है। आज न कोई आर्य-समाजी संस्कृत पढ़ता है और न अपने बच्चों को पढ़ाता है। और तो और हमारे बड़े-बड़े उपदेशक भी बिना संस्कृत का एक अक्षर जाने वेदों पर घण्टों भाषण देते नहीं थकते। यह सचमुच वेद प्रचार के नाम पर एक बहुत बड़ा मज़ाक है। हमारा सभी वैदिक साहित्य और उत्तरकालीन सभी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक साहित्य देववाणी संस्कृत में ही भरा पड़ा है। इस प्रकार हमारे संस्कृति की मूलाधार ही संस्कृत है। किन्तु उसके अध्ययन की आज भारत में अत्यन्त शोचनीय अवस्था है। त्रिभाषा सूत्र के नाम पर संस्कृत पर कुठाराघात किया जा रहा है और धर्म और संस्कृति की जड़ ही काटी जा रही है। पर आर्यसमाज ने उसके विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाई। हमने हिन्दी के लिए और गोरक्षा के लिए तो आन्दोलन किया पर संस्कृति की मूलाधार संस्कृत के लिए कोई आन्दोलन नहीं किया। वेदों के नाम पर केवल चिल्लाने से थोड़े ही वेद प्रचार होगा। उसके लिए सर्वप्रथम संस्कृत को घर-घर पहुँचाना होगा। तथा-कथित त्रिभाषा सूत्र को बदलकर संस्कृत के अध्ययन को

अनिवार्य बनाने के लिए एक देशव्यापी आन्दोलन करना होगा। स्थान-स्थान पर संस्कृत की परीक्षाएं चलानी होंगी।

वैदिक व्याकरण तथा महाकोष और वेदानुवाद किया जाय

सुनते हैं कि सार्वदेशिक सभा ने वेदों के अनुवाद की एक वृहद् योजना बनाई है। निःसन्देह यह एक अत्यन्त ही आवश्यक और सराहनीय कार्य है। आज तक आर्य-समाज के विद्वानों ने इस क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से पर्याप्त कार्य किया है। इस प्रसंग में पं० जयदेवजी विद्यालंकार, श्री तुलसीरामजी, श्री क्षेमकरणदासजी, श्री आर्यमुनिजी, श्री शिवशर्माजी काव्यतीर्थ, श्री समर्पणानन्दजी, श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री, श्री सातवलेकर जी, श्री धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड आदि विद्वानों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने वेदों के अनुवाद किये और वेदों पर स्वतंत्र रूप से ग्रन्थ भी लिखे। किन्तु केवल वेदों के अनुवाद मात्र से कुछ नहीं होगा। संसार के सायण मतानुयायी वेद-विद्वानों की वेद विषयक सर्वथा भ्रांत विचार धारा को सही दिशा में मोड़ने के लिए योजना बद्ध रीति से काम करना होगा। उसके लिए वेद के शब्द-शब्द की खोज करनी होगी। इसके लिए सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में एक विशाल वेदानुसंधान संस्थान का गठन करना होगा। इसके अंतर्गत चोटी के अधिकारी वेद विद्वानों को एकत्र बिठाकर वेद महोदधि का वर्षों तक मंथन करना होगा। निघण्टु और निरुक्त के आधार पर वैदिक शब्दों के प्रसंगानुसार त्रिविध या विविध अर्थों को देने वाला एक महाकोष तैयार करना होगा जो रॉथ और बोहलिंग के सेण्ट पीटर्सवर्ग महाकोष के समान अनेक खण्डों में हो। साथ ही मैंकडोनेल के वैदिक ग्रामर के समान वेदों का एक सर्वांगपूर्ण व्याकरण तयार करना होगा। तब चलकर कहीं वेदों का अध्ययन बढ़ेगा। अन्यथा वेद तो विद्वानों के हद तक ही सीमित रहेंगे। और जो जैसा अर्थ करेगा वही सत्य समझा जायेगा। फिर संसार की वेद विषयक सर्वथा गलत विचारधारा को सफलता पूर्वक चुनौती देने के लिए वेदों के विस्तृत भाष्य संसार की प्रमुख भाषाओं में तयार कर संसार के सभी पुस्तकालयों में भेजने होंगे और Vedic age जैसी पुस्तकों का परिमार्जित अंग्रेजी में मुंह तोड़ जवाब देना होगा। तब कहीं दयानन्द की वैदिक विचार धारा का लोहा संसार मानेगा।

युवा शक्ति का आह्वान किया जाय

युवक ही किसी संस्था के भविष्य के निर्माता होते हैं। किन्तु आज युवक ही आर्य समाज से दूर होते नजर आ रहे हैं। इधर आर्यसमाजों में कुछ अधेड़ और वृद्ध ही देखे जाते हैं। युवक और बच्चे राष्ट्रीय स्वयं सेवक-संघ और दूसरी संस्थाओं में जाते हैं। युवकों और छात्रों में आजकल चरित्रहीनता, अनैतिकता और भ्रष्टाचार बढ़ते जा रहे हैं। पाश्चात्य भौतिकवाद तेजी से उनमें घर करते जा रहा है। उनका आचार-विचार और खान-पान बिगड़ रहा है। इसको रोकने के लिये आर्यसमाज को विशेष प्रयत्न करना चाहिये। आर्यसमाज के बड़े-बड़े जलसे और जुलूस इसका सही हल नहीं हैं। उसके लिए हमारे कार्यक्रम और प्रचार-प्रणाली में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।

हमारा प्रचार बड़े-बड़े शहरों में आज नहीं के बराबर है। शहरों में ही बुद्धिजीवी लोग निवास करते हैं और शहरों ही में हजारों की संख्या में युवक और छात्र शिक्षा पाते हैं। अतः हमारे प्रचार के केन्द्र ग्रामों की अपेक्षा शहरों में होने चाहिए। भ्रष्टाचार, पाखण्ड और गुरुडम के केन्द्र भी बड़े-बड़े शहर ही होते हैं। अतः शहरों पर ही हमारी शक्ति केन्द्रित होनी चाहिए। छात्रों और युवकों में अपनी विचारधारा फैलाने के लिए उनसे सीधा संपर्क स्थापित करना चाहिए। उसके लिये स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे साधना शिविर लगाने चाहिए। प्रादेशिक भाषाओं में सस्ता, सुन्दर और आकर्षक साहित्य छाप कर छात्रों में वितरित करना चाहिए।

प्रत्येक आर्यसमाज में एक व्यायाम शाला, एक पुस्तकालय और वाचनालय अवश्य होना चाहिये। जिनमें युवकों और छात्रों के लिये सस्ता और सुन्दर साहित्य प्रचुर मात्रा में होना चाहिये। समाजों में नित्य के कार्य-क्रमों के साथ बोध रात्री, ऋषि निर्वाण और आर्यसमाज स्थापना दिवसादि पर्वों पर विशेष वादविवाद और

लेखन स्पर्धाओं का आयोजन करना चाहिये जिनमें योग्य छात्रों को यथा योग्य पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया जाये। इस प्रकार युवकों को आकृष्ट करने के हर संभव उपाय करने चाहिए।

प्रचार में आमूल परिवर्तन किया जाय

आर्यसमाज के विधायक स्वरूप का जनता में प्रचार किया जाय। आर्यसमाज सनातन वैदिक धर्म का प्रचार करने वाला एक महान् संगठन है। आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों के आधार पर मानव का नव निर्माण:कर संसार का कायाकल्प करने के लिए कृतसंकल्प एक महान् आन्दोलन है। मानव का आत्मिक और चारित्रिक विकास कर उसको नर से नारायण बना देने वाला एक श्रेष्ठ अभियान है। मानवकृत सभी विषमताओं और विभीषिकाओं को समाप्त कर संसार को स्वर्ग बनाना उसका परम लक्ष्य है। मनुष्य के जन्म से मरणपर्यन्त उस पर किये जाने वाले षोडश संस्कार और गुण कर्म के आधार पर जीवन के चार वर्ण और आश्रम इसकी प्राप्ति के साधन हैं। उसका अपना एक आचार शास्त्र और एक जीवन दर्शन है।

किंतु लोगों ने आर्यसमाज के इस विधायक और रचनात्मक विराट स्वरूप को नहीं देखा। इधर आज तक लोग उसको मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतारवादादि प्राचीन प्रथाओं का खंडन करने वाला एक नकारात्मक सुधारवादी संगठन मात्र समझते आये हैं। पर केवल खंडन और विरोध उसका स्थायी भाव नहीं है। ऋषि दयानंद ने खंडन तो केवल चार समुल्लासों में किया है पर अपने विचारों के मंडन पर प्रथम दस समुल्लास लिखे हैं। पर आज तक इधर उसके केवल खंडनात्मक स्वरूप पर ही बल दिया गया है। हमने जनता से मूर्तिपूजा तो छुड़ाई पर उसके स्थान पर सच्ची भगवद्भक्ति नहीं सिखाई। इसी का परिणाम है कि हम ईश्वर भक्ति के आध्यात्मिक लाभों से वंचित हैं। इसीलिये आज हम छोटी छोटी बातों पर लड़ते हैं। तर्क के तीर हमने यहां तक चलाये कि श्रद्धा और भक्ति के सूक्ष्म तार भी टूट गये और हर बात को तर्क से काटना हमारा स्वभाव सा बन गया। वास्तव में हमारे आध्यात्मिक दीपक बुझ गये हैं। इसीलिए परस्पर ईर्षा, द्वेष, कलह और पार्टीबाजी का सर्वत्र बोलबाला है। बुझे दीपक दूसरों को क्या खाक प्रकाश देंगे। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के पहले कृण्वन्तो स्वयमार्यम् का पाठ पढ़ाना होगा।

□□□

प्रेरक प्रसंग

स्वामी विरजानन्दजी वेद तथा आर्य ग्रन्थों के प्रचार के लिये जीते थे, महर्षि दयानन्द जैसा योगी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा तपस्वी पाकर दण्डी विरजानन्द फूले न समाये। २३ वर्ष की शिक्षा के पश्चात् जब गुरु-दक्षिणा देकर विदाई का समय आया तब प्रज्ञाचक्षु विरजानन्द जी ने महर्षि दयानन्द से आध सेर लौंग भेंट लेकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूं। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन आर्यावर्त में आर्ष ग्रन्थों का प्रचार, अनार्ष ग्रन्थों का खंडन करोगे तथा वैदिक धर्म की स्थापना के हेतु अपने प्राण तक न्यौछावर कर दोगे।" इस आदेश के उत्तर में महर्षि ने सिर झुका कर कहा—'तथास्तु।'

हिन्दी काव्य में दयानन्द-प्रशस्ति : डा० भवानीलाल भारतीय

साहित्य विचाराभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। शास्त्रों के वाक्य जहाँ आदेश वाक्य बन कर 'प्रभु सम्मित' उपदेश देते हैं वहाँ काव्यकार अपनी ललित शैली में उसी बात को 'कान्ता सम्मित' बनाकर प्रस्तुत करता है। साहित्य शास्त्रियों के मतानुसार हम काव्य को चाहे 'रसात्मक वाक्य' [1] मानें या 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' [2] को काव्य कहें, इतना तो सुनिश्चित है कि कवि की सृष्टि एक दिव्य सृष्टि है जिसका निर्माता वह स्वयं प्रजापति [3] के रूप में यथेष्ट एक नूतन सृष्टि का निर्माण करता है। कवि को क्रान्तदर्शी माना गया है और वेद ने तो उसे मनीषी, परिभू तथा स्वयंभू के नामों से अभिहित किया है। निश्चय ही नूतन विचारधाराओं के प्रसार, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन एवं विभिन्न जातियों के समष्टिगत मानस में उथल-पुथल उत्पन्न कर नव क्रान्ति के लिये प्रेरित करने का कार्य कवियों और साहित्यकारों ने सदा से किया है। कवि का संवेदन शील मन विश्व प्रपंच की नाना घटनाओं एवं परिवर्तनों से जिस प्रकार की प्रतिक्रिया ग्रहण करता है तदनुकूल ही वह काव्य की अभिनव सृष्टि का सृजन करने के लिये तत्पर होता है।

यदि हम हिन्दी के काव्य साहित्य का अध्ययन उसमें निहित वैचारिक सामग्री के परिप्रेक्ष्य में करें तो सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंच जायेंगे कि इस भाषा के कवियों ने समकालीन विचारों को अपने काव्य में अभिव्यञ्जित करने का सफल प्रयास सदा ही किया है। यदि कबीर अपनी अटपटी बानी द्वारा बाह्याडम्बर, कदाचार एवं धार्मिक तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता का खण्डन करते हैं तो तुलसी जैसे कवि राम जैसे आदर्श पात्र की अवतारणा कर उसे लोक मानस में प्रतिष्ठित करने

---

१. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण

२. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—जगन्नाथ कृत रस गंगाधर

३. अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।

की चेष्टा करते हैं। हिंदी का सम्पूर्ण भक्ति साहित्य उत्तरापथ में व्याप्त तत्कालीन धार्मिक, दार्शनिक एवं नैतिक संचेतना को अपने भीतर संजोये हुये है। रीति-कालीन साहित्य निश्चय ही सामान्य जन समाज की पीड़ा और कठिनाई, उसके अभावों और अभियोगों से सर्वथा निर्लिप्त, अभिजात्य वर्ग के क्रीड़ा विलास में आकण्ठ मग्न उद्दाम ऐन्द्रिय परायणता का नग्न चित्र उपस्थित करता है, परन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस ह्रासोन्मुखी काव्य की नियति भी उसकी इस समाज विरोधी प्रवृत्ति ने ही निश्चित कर दी थी। सामन्ती समाज व्यवस्था के जीर्ण शीर्ण और मृत प्राय हो जाने के साथ ही साथ नारी के स्थूल सौन्दर्य का चित्रण करने वाला यह शृंगार प्रधान काव्य भी साहित्याकाश से झंझा प्रेरित अभ्रखण्ड की भांति सहसा विलीन हो गया और उसका स्थान जिस काव्य ने लिया उसमें सामाजिकता का स्वर अत्यन्त प्रखर था।

भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य इसी संक्रमणकालीन भारतीय समाज की वाणी को मुखरता प्रदान करता है। कवि की चेतना धर्म, राजनीति, समाज और सामयिक समस्याओं का संस्पर्श प्राप्त कर नितान्त गतिशील, प्राण-वान् एवं स्फूर्त हो उठती है। कभी वह भारत दुर्दशा की बात करता है तो कभी अकाल, टैक्स, महामारी से पीड़ित एवं त्रस्त जन समाज की आकुलता-व्याकुलता का चित्रण करने लगता है। पद्य की अपेक्षा निबंध, उपन्यास, नाटक तथा पत्रकारिता जैसी सशक्त गद्य की विधाओं में अपने संवेदन-शील मानस की अनुभूतियों को व्यक्त करने में उसे अधिक सुविधा प्रतीत होती है और द्विवेदी काल तक आते-आते हिन्दी कवि का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यन्त प्रतिबद्ध हो जाता है।

यही वह काल था जब हिन्दी काव्य पर आर्य समाज जैसी सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील एवं युगीन सत्यों के प्रति जागरूक संस्था का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। यद्यपि आर्यसमाज की स्थापना उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हो गई थी और भारतेन्दु कालीन हिन्दी साहित्य भी उससे अप्रभावित नहीं रहा, तथापि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दो दशकों में रचित हिन्दी साहित्य तो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में आर्यसमाज के ही सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों को अभिव्यक्त करता प्रतीत होता है। हिन्दी काव्य तथा गद्य की विभिन्न विधाओं पर आर्य समाज की विचारधारा का प्रभाव अपने आपमें अध्ययन, विवेचन एवं अन्वेषण का एक पृथक् विषय है।

यह एक सर्व स्वीकृत तथ्य है कि आर्यसमाज ने अपने प्रचार एवं आन्दोलन का माध्यम लोक भाषा को बनाया। उत्तर भारत में उसकी सार्वत्रिक सफलता का एक प्रमुख हेतु यह भी रहा कि अपने पूर्ववर्ती एवं अग्रज ब्रह्म समाज आन्दोलन की भांति न तो उसने वैचारिक दृष्टि से ही पश्चिम से प्रेरणा ली और न अभिव्यक्ति के लिए ही उसने अंग्रेजी जैसी किसी विदेशी भाषा को स्वीकार किया। फलतः आर्यसमाज उत्तर भारत के लोक मानस को किस प्रकार आलोड़ित एवं विलोड़ित कर सका तथा भारतीय हिन्दू समाज को परिवर्तन की एक नूतन दिशा देने में उसे किस प्रकार सफलता मिली यह इतिहास के अध्येताओं से अप्रकट नहीं है।

आर्यसमाज के प्रचारकों ने जहां वाणी और लेख के द्वारा अपने मत को प्रचारित किया वहाँ वे कविता के माध्यम को भी अपनाने में नहीं चूके। काव्य और संगीत का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यदि कबीर और जायसी ने अपने निर्गुण ब्रह्म और सूफी दार्शनिक तत्त्वों को काव्य के लोकरंजक माध्यम से निरूपित किया और और उसमें उन्हें सफलता मिली तो कोई कारण नहीं कि नाथूराम शंकर, हरिशंकर शर्मा, प्रकाशचन्द्र कविरत्न, अनूप शर्मा, डा. मुन्शीराम शर्मा और ऐसे ही अन्य शतशः कवियों को अपने आर्यसमाजी विचारों को काव्य का जामा पहनाने में कोई कठिनाई आतो। काव्य की लगभग सभी शास्त्र निरूपित तथा शास्त्रबाह्य विधाओं को अंगीकार कर आर्यसमाजी कवियों ने काव्य सृजन किया है।

आर्यसमाजी कवियों द्वारा रचित हिन्दी काव्य का स्वरूप और क्षेत्र इतना विस्तृत एवं व्यापक है कि उसकी एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करना भी दुस्साध्य नहीं तो कठिन अवश्य है, तथापि इस निबंध में आर्य-समाज के हिन्दी काव्य का सर्वेक्षण करने का विनम्र प्रयास करना ही लेखक का लक्ष्य रहा है।

सर्वप्रथम हम महाकाव्य विवेचन से आरम्भ करेंगे। साहित्यशास्त्र के नियमानुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त गुण युक्त होना चाहिये। आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द अपने युग के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। अतः यह स्वाभाविक ही था कि उनके अनुयायी हिन्दी कवि, युग-प्रवर्तक महर्षि को ही अपने काव्य का नायक बनाते। ऋषि दयानन्द के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व का विशद वर्णन महाकाव्यात्मक शैली में उपस्थित करने के निम्न प्रयास हुए हैं—

१. धर्म दिवाकरोदय काव्य अर्थात् श्री १०८ स्वा. दयानन्द सरस्वती जी महाराज का छंदोबद्ध जीवनचरित्र इसके लेखक कर्णवास जिला बुलन्दशहर निवासी कवि-कुमार शेरसिंह वर्मा थे। ग्रन्थान्त की पुष्पिका के अनुसार यह काव्य आश्विन कृष्णा सप्तमी गुरुवार सं० १९७९ वि.[1] को समाप्त हुआ। इसका प्रकाशन लेखक ने ही किया तथा यह आगरा के आर्य भास्कर प्रेस में मुद्रित हुआ। इस काव्य की भाषा खड़ी बोली है तथा मुख्य छंद दोहा व चौपाई हैं। कहीं-कहीं सोरठा, रोला, आल्हा, छप्पय आदि छंद भी प्रयुक्त हुए हैं। सम्पूर्ण महाकाव्य द्वादश मयूखों में विभक्त है। भाषा प्रसादगुणयुक्त सरल है।

कवि परिचय–कवि कुमार शेरसिंह वर्मा के पिता का नाम ठाकुर सीताराम सिंह था। ये अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। पं० अखिलानन्द शर्मा के पिता पं० टीकाराम इनके गुरु थे। इन्हीं से कवि ने काव्य रचना विधि सीखी।

धर्म दिवाकरोदय काव्य की कविता का नमूना इस प्रकार है—

मंगलाचरण का दोहा—

विभु अनन्त आनन्दघन ईश्वर सर्वाधार।
अज अचित्य अव्यक्त प्रभु अखिल जगत् करतार॥
अविनाशी अव्यय हरी शुक्र अकाय अपार।
अव्रण अनित्य असीम शिव नित्य शुद्ध ओंकार॥

इस महाकाव्य के परिशिष्ट के रूप में 'वियोग संताप चालीसा' नामक एक छोटी सी शोक गीतिका (elegy) प्रकाशित हुई थी। इसका प्रथम कवित्त द्रष्टव्य है—

आज जग अस्त भयो विद्या को प्रकाश शेर,
छूट गई धारणा विनाश भई धी धृती।
देशी विदेशनन हूँ शोक छायो गेह गेह,
लोक भयो दीन औ धरा की गई रती॥
हाय हाय हमको विसारि के पधारे आप,
परम धाम लब्ध कियो ब्रह्म की लई गती।
उन्नीससे चालीस कार्तिक अमावस कूं,
त्यागो तन स्वामी श्री दयानन्द सरस्वती॥

२. दयानन्दायन महाकाव्य—ठाकुर गदाधरसिंह ने, जो कभी गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक थे, इस महाकाव्य की रचना की। इसका रचना काल १९२७ और १९२९ ई. के बीच का है। ३८२ पृष्ठों में समाप्त हुआ यह महाकाव्य कुछ पूर्व लेखक के भाई डा० सूबाबहादुरसिंह के द्वारा प्रकाशित हुआ। इसकी भाषा अवधी और व्रज मिश्रित है। राम चरित मानस की भांति दोहा चौपाई छंद में लिखा गया यह काव्य भाषा सौष्ठव की दृष्टि से अपरिमार्जित ही है। एक दोहा उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

जह्नु सुता के तीर पर राजघाट इक ठाम।
तहं पद्मासन मारि कै बैठे ऋषि अभिराम॥

३. दयानन्द जीवन काव्य—इसके लेखक लाला रामबुझारथलाल कायस्थ (वल्द राम बहाल लाल) साकिन गांव पसिका (डा० बरहद जिला आजम गढ़) निवासी कोई सज्जन थे। स्वामी मंगलानन्द पुरी के परामर्शानुसार इन्होंने अपना नाम परिवर्तित कर हरिदत्त वर्मा रख लिया था। दोहा चौपाई शैली में ऋषि जीवन को निबद्ध करने वाला यह काव्य डाया भाई खुशाल भाई पटेल मालिक सरस्वती पुस्तकालय गिरगांव बम्बई से १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ। काव्य की परिचयात्मक भूमिका स्वामी मंगलानन्द पुरी ने ही लिखी थी। काव्य की भाषा व्रज मिश्रित खड़ी बोली है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से तो इस महाकाव्य को उत्तम नहीं कहा जा सकता, परन्तु ग्रामीण कवि ने चरित-नायक के प्रति जिस अपार श्रद्धा को अभिव्यक्त किया है वह प्रशंसनीय है। यत्र तत्र दोहा चौपाई के अतिरिक्त सवैया, कवित्त तथा लावनी आदि छंदों का भी प्रयोग हुआ है।

१ आश्विन सातें असित परव गुरुवार मध्यान।
रिद्धी ऋषि नव इन्दु का संवत् लो पहिचान।

४. श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र भाषा कविता में—कृष्ण अमृतसरी आर्योपदेशक लिखित यह ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। सन् १९२४ में श्रीमती विद्यावती दिल्ली (महरौली) द्वारा इसका प्रकाशन हुआ। ग्रन्थ के कथानक का मुख्य आधार स्वामी सत्यानन्द रचित श्रीमद्दयानन्द प्रकाश है। इस काव्य में दोहा, कवित्त, सवैया, लावणी आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। काव्य की भाषा खड़ी बोली है। एक छन्द नमूने के रूप में उद्धृत किया जाता है।

हरिद्वार का कुम्भ महा जग में,
सम्परदाइयों की है रजधानी।
झुण्ड के झुण्ड करें प्रश्नोत्तर,
पण्डित साधु जो थे महामानी॥
धूम मची सब कुम्भ के भीतर,
साधु दयानन्द है महा ज्ञानी।
सनमुख आय न बोल सके कोऊ,
युक्ति बताय न उसके सानी॥

५. दयानन्द चरितामृत—कविराज जयगोपाल रचित यह महाकाव्य व्रज भाषा में रामचरित मानस की शैली के अनुकरण में लिखा गया है।

६. ऋषि दयानन्द चरित—मुलतान निवासी महाशय रामावतार रचित।

७. ऋषि गाथा महाकाव्य—पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दो खंडों में विभक्त यह महाकाव्य आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान के भूतपूर्व उपदेशक पं० शीतलचन्द्र शर्मा 'शीतल' के पुत्र श्री विमलचन्द्र शर्मा 'विमलेश' लिखित है। इसका प्रकाशन सं० २०१० वि. में हुआ। पूर्वार्द्ध में १३ सर्ग हैं। परिष्कृत एवं सुष्ठु खड़ी बोली में लिखा गया नवीन शैली का यह महाकाव्य क्या भाव और क्या भाषा प्रत्येक दृष्टि से एक श्रेष्ठ काव्य कृति है। कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोरम शब्द रचना, अलंकार सौष्ठव, प्रकृति पर्यवेक्षण आदि गुणों से सम्पन्न इस काव्य को महाकाव्योचित शास्त्रीय लक्षणों से सम्पन्न कहा जा सकता है। द्रुतविलम्बित, हरिगीतिका, दोहा, चौपाई, गीतिका आदि छंदों के साथ साथ कतिपय उर्दू छंदों का भी प्रयोग हुआ। सर्गान्त में छंद परिवर्तन भी यत्र तत्र द्रष्टव्य है। काव्य की निम्न पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

क्या यह वह शंकर-त्रिशूल
धारण करता अपने कर।
क्या यह वह शंकर कहलाता
भक्तों का संकट हर।
बैल बना वाहन जिसका
क्या वह भगवान् यही है?
क्या गणेश का पिता, अचल-
तनया का प्राण यही है?

८. दयानन्द महाकाव्य अर्थात् दयानन्द चरित मानस—आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् और डी. ए. वी. कालेज लाहौर के प्राध्यापक महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि ने स्वामी दयानन्द के जीवन चरित को महाकाव्य की शास्त्रीय शैली में पद्यबद्ध करने का प्रयास किया। वे उसका एक काण्ड* ही लिख पाये थे। यह काव्य १९८१ वि. (१९२५ ई.) में बी. एल. पावगी के प्रबंध से हितचिंतक प्रेस, रामघाट काशी से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। कविता का उद्धरण द्रष्टव्य है।

बन्दौं प्रथम अनीह अनामा।
जासु भजे सुधरे सब कामा।
देश काल वस्तु कृत भेदा।
त्रिविध भेदकृत नहि परिछेदा॥
मुनि मुनीश जहँ पार न पावा।
मन मति अल्प विषय किमि आवा॥
कोटि कोटि नभ मंडल तारे।
कौन गणै नहि जाय विचारे॥
निगमागम जिहि पार न पावा।
अगम अगाध प्रभु की माया॥

ग्रन्थान्त के दोहों से काव्य रचना काल (१९८१ वि.) तथा रचना स्थान सूचित होता है—

पटियाला शुभ राज्य में बरनाला जिहि नाम।
तिहि में मुनि प्रस्तुत कियो महाकाव्य को काम॥

---

१ इति श्रीमदार्यमुनिकृते दयानन्दचरितमानसे महाकाव्ये जन्मकाण्डं समाप्तम्। पुष्पिका का वाक्य।

शासन श्री भूपेन्द्र हरि पाय कथा यह ज्ञान।
संवत ग्रह विधु विक्रमी एक अशीती जान ।।

महाकाव्यों के सामान्य विवेचन के पश्चात् ऋषि दयानन्द के जीवन की प्रेरणादायक घटनाओं को आधार बना कर लिखे गये खण्ड काव्यों पर विचार करना चाहिये। शिवरात्रि को बालक मूल शंकर ने प्रतिमा पूजन की निस्सारता का जो बोध किया वह उसके जीवन के लिये एक युगान्तरकारी परिवर्तन सिद्ध हुआ। इस प्रेरणादायक प्रसंग का वर्णन अनेक कवियों ने किया है। यहाँ ऐसे चार काव्यों का उल्लेख किया जा रहा है जो शिवरात्रि की घटना का चित्रण करते हैं।

१. बोध रात्रि-इसके लेखक विज्ञान मार्तण्ड वात्स्यायन थे। यह काव्य सर्व प्रथम मांडले (बर्मा) से छपा। इस काव्य में चित्रित कतिपय क्रान्तिकारी घटनाओं के कारण तत्कालीन ब्रिटिश सरकार इतनी आंतकित और त्रस्त हुई कि उसने पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया फलत: भारत में उसका यथेष्ट प्रचार व प्रसार नहीं हो सका। पं. ओम् प्रकाश आर्योपदेशक ने इसका कुछ अंश पुन: प्रकाशित किया। बोधरात्रि की कविता अत्यन्त ओजस्विनी तथा भावपूर्ण है। कविता की भाषा खड़ी बोली है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

गिरिजा समेत गिरीश का यह एक मंदिर है बड़ा,
पाखण्डकृत भारत विजय का स्तूप मानो है खड़ा।
भैरव नहीं है द्वार पर कवि कल्पना भीतर गई,
हालत वहाँ की देख कर निर्वेद से हत हो गई ।।

सत्यार्थप्रकाश में शैव सम्प्रदाय की आलोचना के प्रसंग में स्वामी दयानन्द चन्दन भस्म आदि के लेप के विधान में प्रस्तुत की जाने वाली इस युक्ति का कि भस्मादि धारण करने से यमराज के दूत डर जाते हैं, यह कह कर खण्डन करते हैं कि "जो रुद्राक्ष भस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे! जब रुद्राक्ष भस्म धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे?" कवि ने इस युक्ति को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

चन्दन घिसा रक्खा हुआ ले कल्पने तू भी लगा।
क्या अन्त मे यह शौर्य में यमदूत को देता भगा ।।
जब भारतीय सिपाहियों पर ही न बल इसका चला।
तो यह विदेशी दूत पर क्या असर डालेगा भला ।।

२. शिवबोध किंवा ऋषि दयानन्द के ज्ञानोन्मेष का काव्य मय चित्रण—इस खण्ड काव्य के लेखक हरिशरण श्री वास्तव्य-'मराल' बी.ए.एल. एल. बी. वकील मेरठ थे। इसका प्रकाशन ऋषि दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर १९८१ वि. (१९२५ ई.) में हुआ। पुस्तक की भूमिका पं. घासीराम जी ने लिखी थी। यह लघु खण्ड काव्य आयोजन, आरम्भ, आराधन, प्रबोध, संवाद और प्रयोजन शीर्षक सात शीर्षकों में विभक्त है। ऋषि दयानन्द के अविर्भाव काल की परिस्थितियों का चित्रण करते हुये कवि लिखता है—

हुआ ज्ञान रवि अस्त तामसी निशि है आई।
घोर अविद्या रूप घटा घिरि अम्बर छाई ।।
मन मानस पै बिछी तमोगुण रूपी काई।
गौरव गिरि हो चूर्ण हुआ पर्वत से राई।
सुखद भक्ति रसहीन हो शुष्क हृदय फटने लगे।
दर्दुरवत् नर पंक धंस, राम राम रटने लगे ।।

शिव प्रतिमा पर मूषक नर्तन को देखकर बालक की सहज जिज्ञासा इस प्रकार व्यक्त हुई—

"नहिं विकसित जीवन का नाम,
और न कुछ छवि ही अभिराम,
पिता! सुना, है वह बल धाम,
फिरता मूषक क्यों अविराम!
करिये इसका हेतु प्रकाश,
क्यों न जन्तु का करते नाश?"

३. दयानन्द गुरुपथ—महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक श्री रमेशचन्द्र शास्त्री ने महर्षि दयानन्द के विद्याध्ययन प्रसंग को लेकर 'दयानन्द गुरुपथ' शीर्षक एक लघु काव्य लिखा। इसका प्रकाशन १९३८ ई. में हुआ। इस काव्य में संस्कृत निष्ठ भाषा प्रयोग करते हुये कवि ने दण्डी विरजानन्द के विद्यालय में प्रविष्ट होने वाले दयानन्द का इस प्रकार वर्णन किया—

खनि नि:सृत हेम आ गया,
यह निर्धूम कृशानु अंक में।

अथवा विरही चकोर क्या
पहुंचा आज स्वयं मयंक में ॥ ४६

काव्य के अन्त में महर्षि के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये कवि ने लिखा—

भारत मे भव्य भावना के भूरि भाव भर,
कुटिल कुभावना के कंटक उखाड़े हैं।
दुष्ट दुराचार दम्भ दुरितों के दल दल,
प्रबल पिशाच पाप पूजक पछाड़े हैं॥
सरस सुधा से वसुधा का रोम रोम सींच,
लालची लवार लण्ठ लम्पट लताड़े हैं।
दिव्य दयानन्द धन्य धन्य आज आपको है,
आपने ही तोड़े धर्म ध्वजों के अखाड़े हैं॥ १०३

उपर्युक्त कविता में कवि की अनुप्रास प्रियता दर्शनीय है।

४. महर्षि दयानन्द—अनिरुद्ध शर्मा कृत तथा वैदिक संस्थान बिजनौर द्वारा प्रकाशित।

दयानन्द प्रशस्ति के स्फुट ग्रन्थ—ऐसे ग्रन्थों की संख्या पर्याप्त है जिसमें ऋषि दयानन्द के जीवन और कृतित्व पर कवियों ने बहुविध प्रकाश डाला है। भाव, भाषा, अभिव्यञ्जना और शैली में पर्याप्त विभिन्नता होते हुए भी दयानंद गुण गान इन काव्यों की सामान्य भावना है। यहां ऐसे ही कतिपय काव्यों का परिचय दिया जा रहा है।

१. महर्षि दयानन्द शतक—हरजीतलाल आर्य 'हरि' काव्य भूषण रचित यह शतक दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंदों में रचित एक सुन्दर प्रशस्ति काव्य है। कविता की भाषा खड़ी बोली है। ऋषि के निर्वाण का वर्णन करने वाला छंद यहां उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

स्वामी अजयमेरु आय त्याग क्षण भंगुर काय
प्रगाढ़ निद्रा चिर विश्रांति सुषुप्त हो गये।
दीपमालिका के दिवस सर्व दीपक प्रदीप कर,
तिमिर में प्रकाश छोड़ आप लुप्त हो गये॥
बंद सारे द्वार खोल अन्तिम यह शब्द बोल,
तेरी इच्छा पूर्ण होय काल भुक्त हो गये।
शेष काम शिष्यन को सौंप के सदा के लिये,
जन्म मरण का तोड़ बंधन पूर्ण मुक्त हो गये॥

२. दिग्विजयी दयानन्द—आर्यसमाज अजमेर के ऋषि दयानन्द के समकालीन सभासद् श्री जेठमल सोढ़ा (उपनाम युगराज) ने दिग्विजयी दयानन्द, शीर्षक एक लघु काव्य की रचना की है। यह एक शोक काव्य के रूप में लिखा गया है। लेखक के पुत्र श्री ब्रह्मदत्त सोढ़ा ने इसे प्रकाशित किया। कविता का नमूना द्रष्टव्य है—

कित गये मोह तजि हा भारत भ्रम नासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी॥

दोहा—यजुर्भाष्य पूरण कियउ ऋग किय पौन प्रमान।
द्वादशांग व्याकरण सरल किय भूगोल हित जान॥
रहि साम अथर्वण वेद भाष्य की प्यासी।
श्रीमद्दिग्विजयी दयानन्द संन्यासी॥

३. महर्षि दयानन्द (सटीक)-आशुकवि अखिलेश शर्मा ने ब्रजभाषा में ऋषि दयानन्द की प्रशंसा में यह काव्य लिखा है। इसकी रचना प्रधानतः छप्पय और कवित्त छन्दों में हुई है। कविता में ओज गुण की प्रधानता है जो महाकवि भूषण की फड़कती हुई वीर रस प्रधान कविता का स्मरण कराती है। ४७ छंदों के इस काव्य पर पं० जगत्कुमार शास्त्री ने टीका लिखी जिसमें शब्दार्थ और भावार्थ के साथ साथ अलंकारों का निर्देश किया गया है। दोहा, सोरठा और सवैया छन्द भी यत्र तत्र लिखे गये हैं। इस टीका युक्त ग्रन्थ का प्रकाशन साहित्यमण्डल, दीवानहाल, दिल्ली से ऋषि बोधरात्रि १६४६ ई० को हुआ। ब्रजभाषा काव्य के मर्मज्ञ मिश्रबंधु, डा० मुन्शीराम शर्मा सोम; पं० भगीरथ मिश्र, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि विद्वानों ने इस कृति की भूरि भूरि प्रशंसा की है। ग्रन्थारम्भ में एक दोहा और एक सोरठा लिख कर गुरुवर विरजानन्द का स्तवन किया गया है। प्रारम्भ के तीन पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

दोहा—
गुरु विरजानंद ग्यान रवि अनवऊँ सहित हुलास।
दम्भ अविद्या तिमिर दल नासत जासु प्रकास॥

सोरठा—
बंदौं विरजानंद विषय सिंधु कुम्भज सरिस।
जा रसना स्वच्छंद नाची वानी नर्तकी॥

छप्पय—

जिन तृन सम तजि भोग, जनम भरि जोगहि धार्यो।
मेटि अवैदिक कर्म धर्म वैदिक विस्तार्यो॥
ब्रह्मचर्य व्रत पालि, प्रबल पाखण्ड पछार्यो।
सुद्ध सत्य जुग थापि, देस मंह ग्यान पसार्यो।
अखिलेस अछूत समाज के सुचि श्रीखण्ड ललाम हैं।
उन दयानन्द ऋषिराज को सादर सहस प्रनाम हैं॥

काव्य के अन्त में ७ दोहों में कवि ने अपने हृदयोद्गारों को प्रकट किया है। उसके अनुसार यदि काव्य रसिक उसके काव्य म प्रसन्न होते हैं तो ठीक ही है, परन्तु कवि को तो इसी बात का संतोष है कि उसने इस काव्य सृजन के व्याज से ऋषि दयानन्द का गुणानुवाद किया है—

काव्य रसिक जो रीझिहैं तो मम भनित प्रमान।
न तु याही मिस मैं कियो, दयानन्द गुन गान॥

अन्तिम दोहे में ग्रन्थ प्रणयन की तिथि का उल्लेख हुआ है—

सवत जुग नभ सून्य दृग, मधु सित पंचमि पाय।
दयानन्द सुस्तवन किय, कवि अखिलेस सहाय॥

अर्थात् २००२ विक्रम की प्रथम चैत्र शुक्ला पंचमी को काव्य पूर्ण हुआ।

४. दयानन्द लहरी—अखिलेश शर्मा ने 'महर्षि दयानन्द' शीर्षक उपर्युक्त काव्य में ही किञ्चित् परिवर्धन कर इस ग्रन्थ की रचना की है। इस लहरी काव्य की पद्य संख्या ५२ है। ग्रन्थान्त में वंशस्थ छन्दों में महर्षि स्तोत्र लिखा गया है जिसमें चार पद्य हैं। ग्रन्थान्त की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कवि कान्य कुब्ज त्रिवेदी वंश में उत्पन्न अवधप्रान्त के अन्तर्गत सीतापुर जिले के मछरेहटा ग्राम का निवासी था। उसके पिता का नाम पं० मंगलदत्त था। दयानन्द लहरी का प्रथम संस्करण हिन्दी साहित्य भंडार अमीनाबाद, लखनऊ से दिसम्बर १९६१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका माधुरी के यशस्वी सम्पादक पं० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखी थी।

५. महर्षि दयानन्द दिग्दर्शन—सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार पं० नारायण प्रसाद बेताब ने उर्दू काव्य की मुसद्दस शैली में कुछ कवितायें ऋषि दयानन्द की प्रशंसा में लिखीं। वस्तुतः ये मुसद्दस लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू पत्र प्रकाश के ऋष्यंकों के लिये लिखे गये थे, जिन्हें बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। इस संग्रह में जो चार मुसद्दस छपे हैं वे इस प्रकार हैं—बुतपरस्ती का शुक्रिया (नवम्बर १९१२), स्वामी का समावर्तन संस्कार (अक्टूबर १९१३),

ऋषि की जिन्दगी बख्श मौत (अक्टूबर १९१६) नागरी लिपि में यह उर्दू काव्य पं० बेताब द्वारा उक्त शीर्षक से संग्रहीत होकर बेताब प्रिंटिंग वर्क्स चाहरहट दिल्ली से प्रकाशित हुआ। बेताब की कविता में व्यंग्य का पुट अत्यन्त तीव्र है। उसने धार्मिक अंधविश्वासों की कटु भर्त्सना की है। यथा, मृतक श्राद्ध के द्वारा दिवंगत पूर्वजों को भोजन खिलाया जा सकता है, इस पौराणिक विश्वास का उपहास करते हुये कवि लिखता है—

यहां तक थे हम होशियारे ज़माना।
कि भिजवाते रहते थे मुर्दों को खाना॥
बड़े पेट थे या बड़ा डाकखाना।
किये पार्सल अकसर उनसे रवाना॥
जरा देखिये डाकियों का कलेजा।
जमीं का पुलिन्दा फ़लक पर भी भेजा॥
रसीद आज तक किसी की भी न आई।
वह शय पाने वालों ने पाई न पाई॥
बहुत खो चुके जब कि अपनी कमाई।
ऋषि ने बताया कि है यह ठगाई॥
गया पार्सल यह तसल्ली है झूठी।
लुटेरों ने वह डाक रस्ते में लूटी॥

ऋषि दयानन्द विषयक स्फुट कवितायें—ऐसी कविताओं की संख्या बहुत अधिक है, जो महर्षि दयानन्द को लक्ष्य बना कर लिखी गई हैं। यहां कतिपय सुप्रसिद्ध कवियों की स्फुट रचनाओं का ही उल्लेख किया जाता है। कविता कामिनी कान्त महाकवि पं० नाथूराम 'शंकर' शर्मा ने ऋषि के सम्बन्ध में लिखा—

जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसका साहस हेर विघ्न भय संकट भागे॥

सबल सत्य की हार अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार सहित विचरा जो योगी ॥
उस दयानन्द मुनिराज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शंकर आर्यसमाज का वैदिक बल गौरव बढ़े ॥

'शंकर' ने 'दयानन्दोदय' 'शीर्षक ११ पद्यों की एक अन्य कविता भी लिखी। उनकी 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं—

जहाँ घोषणा राम के नाम की है।
जहाँ कामना कृष्ण के काम की है ॥
अहिंसा जहाँ शुद्ध बुद्धार्य की है।
प्रशंसा जहाँ शंकराचार्य की है ॥
वहाँ दैव ने दिव्य योगी उतारे।
प्रतापी दयानन्द स्वामी हमारे ॥

महाकवि शंकर के पुत्र पं० हरिशंकर शर्मा ने भी 'मूल शंकर का शंकर विवेक' शीर्षक खण्ड काव्य ४३ हरिगीतिका छन्दों में लिखा। यहाँ पं० हरिशंकर शर्मा का एक अन्य ऋषि विषयक कवित्त उद्धृत किया जा रहा है—

लेकर अनीतियों की साथ में विपुल सैन्य,
मूढ़ता दिखाई आय पाप मोह द्वन्द ने।
क्रूरता की कालिमा में दिखता न हाथों हाथ,
योग भी दिया था उसे पूरा मति मंद ने।
भारतीय बंधु सब सोते थे अचेत पड़े,
किया न सचेत किसी चिंतक के छन्द ने।
हिन्दुओं की हीनता की हद बढ़ती विलोक,
भेरी वेद-विद्या की बजाई दयानन्द ने।

'सिद्धार्थ' महाकाव्य के रचयिता पं० अनूप शर्मा अपने युग के प्रख्यात कवि थे। उन्होंने अनेक ललित पदों में दयानन्द की प्रशस्ति का गान किया है। एक घनाक्षरी यहाँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है—

जिसने विधर्मियों की धज्जियाँ उड़ाई और,
जिसने स्वदेश की कुरीतियाँ हैं बंद की।
वेद को उबारा जाति नींव को सुधारा ध्रुव,
धैर्य से अनूप धर्म ध्वजा है, बुलन्द की।
बाल ब्रह्मचारी पूर्ण पंडित पुनीत वही,
धर्म धीरता को दुनिया में है दुचंद की।
सतत रहेगी फहराती भूमि भारत में,
विजय पताका धर्म वीर दयानन्द की ॥

कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी ने तो ऋषि को लेकर अनेक कवितायें लिखी हैं। उनका ऋषि जीवन महाकाव्य अप्रकाशित ही है। स्वामीजी की निर्भीकता का उल्लेख करते हुये कविरत्न जी ने लिखा—

थे न मठ मंदिर हवेली हाट ठाठ बाट,
सोना चांदी कहाँ पास पैसा था न धेला था।
तन पै न थे सुवस्त्र, हाथ थे न अस्त्र-शस्त्र,
जोगी न जमात कोई चेली थी न चेला था ॥
सत्य की सिरोही से संहारे सब असत मत,
संकट विकट मरदानगी से झेला था।
सारी दुनिया के लोग एक ओर थे प्रकाश,
एक ओर निर्भय दयानन्द अकेला था ॥[1]

डी. ए. वी. कालेज कानपुर के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर डा० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' ने 'कर्मयोगी दयानन्द' शीर्षक एक ११ पद्यों की सुन्दर कविता लिखी। नमूने के लिये इसकी अंतिम पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

उसके प्रकाण्ड प्रकाश से तम तोप हटता जा रहा।
श्रीमद्दयानन्दर्षि दिनकर की प्रभा छाई महा ॥
है जग चला जग नींद से विश्वास मिथ्या खो रहा।
वह तर्क श्रद्धा का समन्वय सन्निकट ही हो रहा ॥[2]

डा. सूर्यदेव शर्मा ने यद्यपि अनेक कवितायें ऋषि विषयक लिखी हैं तथापि उनमें से दयानन्द के गुरुदक्षिणा प्रसंग को लेकर लिखी गई कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अहो प्रिय शिष्य मुदित मतिमान,
अखिल आशा पंजर के कीर।
अभय अति अतुलित आशावान,
अनुपम आज्ञाकारी वीर।
दक्षिण देते हो क्या तात,
थाल में रख कर आधा सेर।

---

१ प्रकाश गायन से उद्धृत (प्रकाशक पं. पन्नालाल पीयूष अजमेर १९३६ ई.)

२ आर्य मार्तण्ड २ मई १९३३ में प्रकाशित

न लौंगें लूगा आधा सेर,
आ रही अन्तस्तल से टेर ॥

श्री विद्याभूषण 'विभु' ने 'खिड़कियाँ खोल दो' शीर्षक में स्वामीजी के महाप्रस्थान का मार्मिक चित्र अंकित किया है। अपने प्राणों के दीपक को बुझा कर जिस लोकमंगल विधायक महर्षि ने मानवता का पथ प्रकाशित किया दीपावली की रात्रि का यह विचित्र विरोधाभास निम्न पंक्तियों में साकार हो गया है—

उगा कर व्योम में तारे छिपा दिनमणि अचानक है।
जलाकर दीपमालायें बुझा आकाश दीपक है॥
कहाँ है बीज वह जिसने खिलाया पेड़ कुरुबक है।
दीवाली ही दीवाली क्यों गगन से मेदिनी तक है।
दयानन्दपि दीपक ने हमें सतपथ दिखाया है।
निछावर जानकर अपनी हमें मरना सिखाया है॥ [1]

हिन्दी के अन्य साहित्यकार श्री धनीराम 'प्रेम' ने ऋषि के विषय में लिखा—

मार्ग प्रदर्शक बन सत्यपथ दिखलाने यहाँ पधारा।
डूबी हुई आर्य नौका को भव सागर से तारा॥
वैदिक धर्म प्रसार हेतु विष खा जो स्वर्ग सिधारा।
बोलो प्रेमी उस ऋषि का हो प्रमुदित जय जय कारा॥[2]

राजस्थान के कवियों ने महर्षि के विषय में जो काव्याञ्जलि प्रणत भाव से अर्पित की है उसे यहाँ निर्देश मात्र के लिये प्रस्तुत किया जाता है। शाहपुरा के कवि श्री पं० भूरालाल कथा व्यास ने 'दयानन्द की दिव्य बातें' शीर्षक कविता में लिखा—

जटिल मंत्र तंत्रादि का जाल तोड़ा,
बटुक भैरवी भूत का भाल फोड़ा।
नटक पंथ पाखण्ड पाषाण अर्चा,
दपट दम्भ लीला अहं ब्रह्म चर्चा।
लगा लम्पटों को लगातार लातें,
दयानन्द की देखिये दिव्य बातें॥[3]

कविता में ओज गुण तथा कवि की स्पष्टवादिता सहज ही आकृष्ट कर लेती है।

आर्यसमाज के प्रख्यात संगीतज्ञ, गायक और कवि श्री पन्नालाल जी 'पीयूष' ने 'दयानन्द अकेला था' शीर्षक कवित्त लिखा—

प्रबल पाखण्डों का प्रकोप छाया पृथ्वी पै,
पोप व पुजारियों का सब जग चेला था।
फैले पंथ बहु कोई किरानी कुरानी बना,
नौ सौ निन्यानवें मतों का जहाँ झमेला था।
आया तब एक वो तपस्वी बाल ब्रह्मचारी,
पत्थर प्रहार फूलों के समान झेला था।
सारे ही संसार के निवासी एक ओर,
एक ओर वो लंगोट बंद दयानन्द अकेला था॥

आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान के भजनोपदेशक तथा राजस्थानी भाषा में उत्कृष्ट काव्य की रचना करने में कुशल पं० भगवती प्रसाद 'अभय' ने 'ऋषि महिमा' का वर्णन इस पद्य में किया—

वेद-मत शोधि कियो पाखण्ड को खण्ड-खण्ड,
सत्य और असत्य की राह को बतावतो।
कपटी कुराही कूर स्वार्थियों की चाल सब,
खोल कर पोल हमें कौन दरशावतो॥
विधवाओं की लाज अरु पतित उद्धार काज,
गौओं के प्राण भला कौन आ बचावतो।
रहता न निशान शिखा सूत्र का 'अभय' कभी,
यदि दयानन्द कहीं हिंद में न आवतो॥[1]

नीमच निवासी आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के साहित्यकार श्री सेठ मांगीलाल 'कवि किंकर' ने 'मुमुक्षु दयानन्द' शीर्षक अपने नाटक के मंगलाचरण में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार पं० प्रतापनारायण मिश्र लिखित ऋषि दयानन्द विषयक एक कविता उद्धृत की थी। इस कविता की एक विशेषता यह थी कि इसके प्रत्येक पद में स्वामीजी की कतिपय विशेषताओं की पुराण वर्णित दशावतारों की विशेषताओं से तुलना कर दोनों में समत्व स्थापित किया गया हैं। उदाहरणार्थ निम्न पद्य में विष्णु के मीन अवतार के तुल्य ऋषि के वेदोद्धार के कार्य की प्रशंसा की गई है—

१ दयानन्द गुणगान (संग्रहकर्त्ता—पं पन्नालाल पीयूष) से उद्धृत पृ. ३६
२ दयानन्द गुणगान पृ. ७५
३ दयानन्द गुणगान पृ० ५६

१ आर्यमार्तण्ड २३ मई १६३३ ई०

जय जय जय अद्‌भुत अवतारी।
दयानिधि अमित आनन्दप्रद,
सरस्वति जासु हृदय हितकारी ॥
अतिहि अपार अविद्या निधि में,
लोपे लखि काढ़े श्रुति चारी।
हतिनिज आलस असुर दियो सुख,
जिन देवन विद्या रहि प्यारी ॥

आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं शास्त्रार्थ महारथी विद्वान् स्व. पं. लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति शास्त्रों के पारगामी पण्डित होने के साथ साथ सुकवि थे। उन्होंने लोक प्रसिद्ध काव्य हनुमान चालीसा की शैली पर ही 'ऋषिराज चालीसा' का प्रणयन किया। उदाहरणार्थ कतिपय पद्य द्रष्टव्य हैं—

चौपाई—

जय ऋषि राज ज्ञान के सागर।
जय हो विश्व वंद्य करुणाकर ।।
गुर्जर प्रान्त नगर टंकारा।
उसमें जन्म लिया जग तारा ॥

हनुमान चालीसा की ही भांति 'संकट मोचन ऋषि-राजाष्टक' शीर्षक से आठ पद्य लिखे गये हैं। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—

कौन नहीं जाने जग में ऋषि राज पखंड मिटाय गये हैं।
वाल समय शिव मंदिर में शिवजी का व्रत धार पधारे।
शिव पिंडी पर मूस चढ़ा तव देख उसे मन मांहि विचारे ॥
कल्पित वह शिव छोड़ दिया घर त्याग दिया बन बीच सिधारे।
संत बने पर सत्य न पाया पुनि मथुरा में आय गये हैं ।।
कौन नहीं० ॥

चालीसा की ही भांति एक संस्कृत श्लोक भी महर्षि महिमा में लिखा गया है—

सुखकर बल राशि हेम–कूटाभ–कायम्
कुटिल जन वनाग्नि पण्डितानां महेशम्।
सकल शुभ निकायं योगिनामग्रगण्यम्,
भवपतिवरदासं कार्षणिं तं नतोऽस्मि ।।

पं. लोकनाथ जी ने 'टंकारे का शिवालय' तथा 'दण्डी की कुटिया' शीर्षक दो अन्य कवितायें भी लिखीं जो अत्यन्त लोकप्रिय हुईं।

हिंदी की ही भांति पंजाबी, राजस्थानी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी ऋषि दयानंद के संबंध में विशद काव्य लिखा गया है, जिसका पृथक् विवेचन अभीष्ट है।

□□

पाठशालाओं में रहने के सम्बन्ध में महर्षि का यह आदेश है:— "सब को तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हों सब को तपस्वी होना चाहिये।"

⊙

राज नियम और जाति नियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।

○

प्राणायाम करता हुआ "मन में (ओ३म्) का जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन को पवित्रता और स्थिरता होती है।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

भजनोपदेशकों का योगदान : धर्मदत्त आनन्द

हमारे भजनोपदेशकों ने आज आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। बड़े-बड़े नगरों से छोटे-छोटे गांवों तक-सुदूर पर्वतीय प्रदेशों व निविड़ कान्तारों में वसने वाले अर्द्धशिक्षित व अशिक्षित लोगों के मध्य पहुँच कर इन शौर्य एवं साहस के पुतले वीर भजनोपदेशकों ने अपने परिवार तथा जीवन की चिन्ता न करते हुए, प्रचार मार्ग में आने वाली जीवनान्तक आपत्तियों की भी परवाह न करते हुए अपने सीधे सरल भजनों व साधारण भाषा में जनता जनार्दन को वैदिक धर्म का सन्देश सुनाने में अकथनीय सफलता प्राप्त की है।

पौराणिक विचारधारा के मानने वाले, मनु के कथन "नास्तिको वेद निन्दकः" के अनुसार जड़ पूजा, पशुबलि और मृतक श्राद्ध जैसी भयंकर वेद-विपरीत आचरण रूप नास्तिकता के प्रबल पोषक अनेकों विद्वान्, संन्यासी, महन्त, जमींदार और धनपति भी लग्नशील भजनोपदेशकों के भजनोपदेशों को सुनकर ही अपनी उस सड़ी गली विचार धारा को छोड़कर आर्य समाज के उत्साही सदस्य बने और जीवन भर सच्चे ऋषि भक्त एवं वैदिक धर्मी बनी रहे।

तीन—प्रमाण

(१)

सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के भूतपूर्व वन मंत्री स्व० श्री अलगूराय शास्त्री ने अपने "ऋग्वेद रहस्य" नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—"सन् १९०८ में जब मैं ८ वर्ष का था मेरे ऊपर आर्य समाज के क्रान्तिकारी विचारों की छाप पड़ी। मथुरा प्रसाद भजनोपदेशक "पेट किया कब्रिस्तान क्यों मान्स के खाने वालों" यह भजन मीठे स्वर में करताल बजा कर गा रहे थे। अमिला ग्राम के आर्य समाज का उत्सव था। अपने ग्राम के इस उत्सव में, मैं दर्शक की नाईं दूर खड़ा यह संगीत सुन रहा था। मैंने उसी दिन दोपहर में तालाब से अन्य लड़कों के साथ कुछ मछलियां मारी थीं। अपने ग्राम के बगीचे में जिसे हम लोग मैया की

बारी कहा करते हैं, ग्राम की सूखी पत्तियों में वे मछलियां भून कर खाई थीं। मेरा पेट कुछ निकला हुआ था, मानो सचमुच मछली का मुर्दा मेरे पेट को कब्रिस्तान बनाये हो। मैं अपने एक खेत में मक्के की रखवाली करता था, उसके पास ही कब्रिस्तान है। पृथ्वी के धरातल से जैसे ऊपर उभरी हुई कब्र होती है मुझे अपना पेट अपने शरीर के धरातल से उभरा हुआ जान पड़ा। मैं मन ही मन चौंक पड़ा, मुझे ग्लानि हुई और अपने पर घृणा। अपने पेट पर ग्लानि! और मैं आर्य समाज में इसी एक पंक्तिक भजन से दीक्षित हो गया। सप्त ऋषियों के शुभ सम्पर्क से व्याध रत्नाकर बालमीकि बने, आर्य समाज के सम्पर्क से मैं सुधरा। उसी दिन पं० मुरारीलाल शर्मा का भजन पचासा मोल लिया, उसे गांव की गली-गली में घूम कर गाता था—जैसे नगर कीर्तन में भजनीकों ने भजन गाये थे। मैं आर्य समाज के भजनों पर पागल हो गया।

२

बस्ती जनपद के एक बडे जमींदार महोदय के यहां प्रचार के सिलसिले में मुझे जाना पड़ा उन्होंने मुझे २२ दिन तक रोक कर अपनी जमींदारी के ग्रामों में खूब प्रचार कराया। एक दिन भोजन करते हुए कहने लगे—"देखिये आनन्द जी! आज हमारे इस बंगले में आपके सुन्दर भजन उपदेश हो रहे हैं, एक समय था जब कि इसी स्थान पर नित्य प्रति वेश्याओं के नृत्य और गायन होते थे और हम ठाकुर लोग खूब शराब पी-पी कर पागलों की भाँति झूमा करते थे, मान्साहार की तो बात ही मत पूछिये। भगवान् की दया हुई, आज से चार वर्ष पूर्व एक भजनोपदेशक कुंवर प्रतापसिंह जी अचानक हमारे यहां आ गये, हमने उनका कार्य-क्रम अपने यहां रख लिया। उनके भजनों और उन्होंने जो बातें शराब, मान्स और वेश्याओं के नाच आदि के खण्डन में कहीं उससे मेरी आंखें खुल गई और मैं कट्टर आर्य समाजी बन गया। अब मैं दोनों समय सन्ध्या, हवन दैनिक करता हूं, ऋषि दयानन्द तथा अन्य आर्य विद्वानों का भी साहित्य मैंने काफी खरीद लिया है, खूब स्वाध्याय करता हूं।

३

सीतापुर जनपद के एक गांव में कुछ मौर्य लोग मुझे प्रचार हेतु ले गये, रात्रि में २॥ घण्टे तक प्रचार हुआ। हमारी उस सभा में अनेक पौराणिक पण्डित भी उपस्थित थे, कार्य-क्रम समाप्त होने पर बड़े प्रेम के साथ मुझ से मिले, एक वृद्ध पण्डित जी बोले "पण्डित जी! यह ग्राम हम पौराणिक पण्डितों का गढ़ है, हम लोग कट्टर मूर्ति पूजक हैं, परन्तु आज आपके भजन और उपदेश को सुन कर हमारी समझ में यह बात भली भाँति आ गई कि सचमुच मूर्तिपूजा निरर्थक है, इससे राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि हुई, अतः हम चाहते हैं कि यहां भी आप आर्य समाज की स्थापना कर दें, और दूसरे दिन आर्य समाज की स्थापना हो गई। सभी पण्डित लोग जिन में कई शास्त्री और आचार्य भी थे। आर्य समाज के अधिकारी व सदस्य बने।

धर्म की राह में शिर की नहीं परवाह

हमारे भजनोपदेशकों ने जहां अपनी वाणी के प्रभाव से सहस्रों नर नारियों के हृदय में वैदिक धर्म के प्रति सत्य श्रद्धा का समावेश करके उन्हें आर्य समाज में दीक्षित किया वहां समय समय पर विपक्षी आततायियों द्वारा किये गये प्राणघातक हमलों को सहन करते हुए अविचल धैर्य और साहस के साथ कर्तव्य पथ पर डटे रहे और उत्साह पूर्वक निम्नाङ्कित पंक्तियों का घोष करते रहे—

हटायेंगे न हम पीछे कभी आगे क़दम रख कर।
ज़माना कर ही क्या लेगा रवां जौरो सितम रख कर॥

इस श्रेणी के भजनोपदेशकों में हम माननीय श्री कंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर को प्रथम लेते हैं। श्री कुंवर साहब प्रतिभा सम्पन्न एवं प्रत्युत्पन्न मति अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त भजनोपदेशक हैं, जो अब अपने जीवन की सन्ध्या वेला में "जो जाकर न आये वो जवानी देखी। जो आकर न जाये वो बुढ़ापा देखा" का अनुभव कर रहे हैं। आपके हृदय में आर्य समाज के प्रचार व प्रसार तथा वैदिक धर्म को विश्व-धर्म बनाने हेतु प्रतिक्षण ज्वाला धधकती रहती है।

आपकी सजीव रचनाओं एवं आग्नेय गायनों व व्याख्यानों ने भारत के कोने-कोने में धूम मचा दी। बृटिश शासन काल में पंजाब प्रान्त के गवर्नर (अब राज्यपाल) ने मुसलमानों द्वारा झूठी शिकायत करने पर आपको प्रान्त त्याग का आदेश दिया था। कई स्थानों पर विधर्मी गुण्डों ने आप पर घातक हमले किये, एक स्थान पर लाठियों भालों, गंडासों से इतना मारा कि आप गिर पड़े

ग्रौर बेहोश हो गये। गुण्डे ग्रापको मरा हुग्रा समझ कर चले गये, परन्तु ग्राप मरे नहीं। ग्रार्यों द्वारा ग्रौषधोपचार हुग्रा ग्रौर ग्राप स्वस्थ होकर पुनः द्विगुणित उत्साह के साथ प्रचार कार्य में जुट गये। ग्रापकी कविताग्रों की पुस्तकें—मुसाफिर भजनावली ३ भाग ग्रौर मुसाफिर की तड़प ग्रत्यन्त लोकप्रिय हैं।

(२) चौधरी तेजसिंह ने भी ग्रार्य समाज के प्रचार व प्रसार में ग्रपना पूरा जीवन समर्पित किया। इनकी मौलिक एवं ग्रोजस्वी रचनाग्रों की पूरे भारत में धूम रही। चौधरी साहब जिस समय मंच पर खड़े होकर करताल बजा कर गाते थे तो मृतकों में भी जीवन का संचार हो जाता था। ग्रापकी सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राष्ट्रीय रचनाग्रों का जितना प्रभाव सुदूर देहात की ग्रपढ़ जनता पर पड़ता था उतना ही शहरों की सुपठित जनता पर भी पड़ता था। विपक्षियों ने ग्रनेक बार ग्राप पर भी हमले किये ग्रौर मुकदमे चलाए। ग्रापकी तेजसिंह शतक २ भाग, भजन भास्कर ग्रौर तेजसिंह गीताञ्जलि बहुत प्रसिद्ध हैं।

(३) श्री बस्तीराम जी ने ग्रपने खंडनात्मक भजनों से हरियाणा प्रान्त में धूम मचा दी। हरियाणा का प्रत्येक नरनारी ग्रपने को ग्रार्य समाजी कहने में गौरव का ग्रनुभव करता है। वहाँ के ग्रधिकांश लोग सच्चे वैदिक धर्मी ग्रौर ऋषि दयानन्द के भक्त, श्री बाबा बस्तीराम जी के प्रयास से ही बने। ग्रापकी भजनों की पुस्तक का नाम पाखण्डखण्डनी है।

(४) श्री ठा० गंगासिंह जी उच्च कोटि के जोशीले प्रचारक थे। ग्रापकी जोशीली वक्तृता के कारण कई बार मजहबी दीवाने मुसलमानों ने वध कर डालने की धमकी भी दी थी परन्तु ग्रसफल रहे। ग्रार्य समाज रेल बाजार के नगर कीर्तन के उपरान्त रात्रि में मुसलमानों के बहुत बड़े गिरोह ने ग्रापके ऊपर हमला कर दिया, ग्रापने भी घोर गर्जना कर ग्रपना लट्ठ सम्भाला ग्रौर थोड़ी देर में उन ग्राततायियों को भागते ही बना। ग्रार्यसमाज बनारस केनगर कीर्तन में लंगड़ा हाफिज की मस्जिद के पास मुसलमानों ने ग्रकस्मात् ग्रापकी गाड़ी पर हमला कर दिया, ग्राप ग्रकेले ही लाठी लेकर गाड़ी से उतर पड़े। १५ मिनट में ही उन ग्राततायियों की उस भारी भीड़ को तितर बितर कर दिया। रसड़ा (बलिया) में महावीरी जूलूस में ग्रापके भजन हो रहे थे। एक मस्जिद में से मुसलमानों के बहुत बड़े गिरोह ने पत्थर फेंकना ग्रारम्भ किया, जुलूस में भगदड़ मच गई, परन्तु साहस व शौर्य के धनी श्री ठाकुर साहब ग्रपना फर्सा लेकर मस्जिद में कूद पड़े मुस्लिम गुण्डों को भागते ही बना। श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी के बलिदान के बाद श्री ठाकुर साहब ने सीयर (बलिया) में "शुद्धी ने लोगो ये फरमाया है" भजन गाया जिससे हिन्दुग्रों को ग्रतीव प्रेरणा मिली, परन्तु मुसलमानों में घोर ग्रसन्तोष फैल गया। दूसरे दिन बेलथरा बाजार में प्रचार था, वहां के मुसलमानों ने इनको मार डालने की धमकी का पत्र भेजा। जब ठाकुर साहब बेलथरा बाजार को चले तो लगभग एक लाख लोग इनके साथ थे। मुसलमान बेलथरा बाजार छोड़कर भाग गये, श्रोताग्रों ने बड़े प्रेम व शान्ति के साथ ग्रापके भजनोपदेशों को सुना। ग्राप सचमुच वीर-रस के ग्रवतार थे। ग्रापकी सिंह गर्जना को सुनकर विरोधियों के दिल दहल उठते थे। ग्रार्यसमाज के प्रचार व प्रसार में ग्रापका जो हार्दिक योगदान रहा वह सदैव ग्रविस्मरणीय रहेगा।

(५) श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न—ग्राप ग्रार्य समाज के ज्योतिर्मय नक्षत्र हैं। ग्रापका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही ग्रार्य जगत् तथा साहित्यिक जगत् के लिए विशेष गौरवपूर्ण हैं। ग्राप उच्चकोटि के संगीत मर्मज्ञ, कवि, गायक, वादक, विचारक ग्रौर वक्ता हैं। सरसता ग्रौर सरलता तथा सहृदयता ग्रापके विशेष गुण हैं। श्री प्रकाश जी उच्चकोटि के प्रभावशाली भजनोपदेशक भी हैं। ग्रार्यसमाज के प्रचार व प्रसार में ग्रापका हार्दिक, वाचिक, मानसिक ग्रौर ग्रार्थिक योगदान सदैव ही रहा है। राष्ट्रीय ग्रान्दोलन में भाग लेने पर बृटिश सरकार द्वारा ग्रापको भी जेल की यातनाएँ सहनी पड़ी हैं। ग्रापकी सभी कविताएँ छन्दोबद्ध एवं गेय गीत राग-रागिनियों में ग्राबद्ध हैं। ग्रापकी प्राञ्जल कविताग्रों का भारत तथा विदेशों में भी समान रूप से ग्रादर है। ग्रधिकांश भजनोपदेशक ग्रापके गीतों को गाकर प्रचार क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते हैं। ग्रापके भजन—वेदों का डंका

आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने—यह आर्य समाज सकल जग में वेदों का नाद बजायेगा—मेरे स्वामी ने आर्य बनाया मुझे—भाई वेदों का डंका बजाते चलो—मधुरवेद वीणा बजाये चला जा—लहरायेगा, प्यारा लहरायेगा झण्डा ओ३म् का, देशविदेश के आर्य नरनारियों के गेय गीत बन गये। श्री पूज्य गुरुवर पं० प्रकाशचन्द्र जी के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है। श्री पूज्य प्रकाश जी के अनेकों शिष्य देश के कोने-कोने में आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में संलग्न हैं। श्री पण्डित पन्नालाल जी पीयूष संगीत निपुण (एम म्यूजिक) विशेष उल्लेखनीय हैं। आज श्री गुरुवार प्रकाश जी की ७० वीं वर्ष गांठ के अवसर पर ऋषि दयानन्द के निर्वाण नगर अजमेर में सभी आर्य नरनारी देश के कोने-कोने से स्पेशल ट्रेनों द्वारा श्री पूज्य प्रकाश जी का अभिनन्दन करने हेतु श्रद्धा और उत्साह के साथ एकत्रित होंगे। उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हुए सबकी ओर से प्रभु से प्रार्थना है कि श्री पं० प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न चिरञ्जीवी हों जिससे आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में उनके द्वारा गति प्राप्त होती रहे। श्री प्रकाश जी की रचनाएँ—प्रकाश-भजनावली ५ भाग, प्रकाश-गीत ४ भाग, प्रकाश तरङ्गिणी, प्रकाश तरंग, आनन्द गायन, प्रकाश भजन सत्संग, कहावत कवितावली २ भाग (प्रकाशित), ऋषि जीवन काव्य, महाभारत काव्य अप्रकाशित।

इसी प्रकार श्री ठा० नत्थासिंह जी, श्री मा० धर्मसिंह जी, श्री आत्माराम जी, श्री ठा. श्रवणसिंह जी, श्री पं० मुकुन्दराम जी, श्री पं० वासुदेव जी आदि अनेक-अनेक भजनोपदेशकों ने तन, मन से अपने धन, जन की हानि सहकर भी आर्य समाज के प्रचार व प्रसार को आगे बढ़ाने के लिये पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इस समय भी हमारे अनेकों भजनोपदेशक नगर-नगर, ग्राम-ग्राम अपना हारमोनियम व ढोलक लिये हुए प्रचार कार्य रूपेण संलग्न हैं।

ये आर्य समाज के प्रचारक बन्धु ऐसे स्थानों में भी निर्भिकता पूर्वक पहुंच कर वैदिक धर्म का सन्देश सुनाते हैं जहाँ विधर्मियों द्वारा आक्रमण तथा वंध कर डालने की पूर्ण सम्भावना रहती है। कई वार ऐसा भी होता है कि धनाभाव के कारण इन भजनोपदेशकों के सामने बच्चों की शिक्षा एवं परिवार के पोषण की भयानक समस्या खड़ी हो जाती है, परन्तु इनके मस्तिष्क में आर्य समाज के प्रचार का कुछ ऐसा उन्माद है कि ये आर्यसमाज के प्रचार की समस्या उपस्थित होने पर, घरेलू समस्याओं की ओर से मुंह फेर कर प्रचार कार्य में जुट पड़ते हैं।

अतः हम यदि यह कहें कि आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में पर्याप्त योगदान भजनोपदेशकों का है तो अत्युक्ति न होगी।

□□□

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं। वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सब के अनुकूल, सब में सत्य हैं उन का ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।

○

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

हिन्दी-उन्नायक महर्षि दयानन्द : सत्यव्रत साहित्यरत्न

यह उस युग की बात है जबकि हमारे उस भारत देश में, जिसे कभी पारस-मणि या स्वर्ण -भूमि के नाम से याद किया जाता था, जो सारे संसार का सिरमौर या गुरु कहाता था, जहां पैदा होने के लिए देवता भी तरसते थे, एक ऐसी जाति ने प्रवेश किया था जो साहसी, दृढ़निश्चयी, क्रियाशील, उद्योगी, दुर्धर्ष और मेधावी थी। मुगल बादशाह की अदूरदर्शिता ने उन्हें इस देश में पैर जमाने की छूट दे दी। अंग्रेज आये। अन्य सभी चीजों के साथ-साथ अंग्रेजों ने भारत माता के घर में भारत पुत्री आर्य भाषा (हिन्दी) को हटाकर समुद्र पार देश की अंग्रेजी भाषा को एक दुलहिन के रूप में लाकर बिठा दिया। यह दुलहिन अपनी सम्पूर्ण विभूतियों के साथ इस घर में आई। इसे इस घर में प्रतिष्ठित करने में अंग्रेज जाति का स्वार्थ निहित था। यह कुलवधु चुपचाप हमारे घर के समस्त वातावरण को शनैः शनैः अपने ढांचे में ढालती चली जा रही थी। इसके यौवन, रूप, गर्व, और अपरिमित सामर्थ्य पर हमारा पूरा घर मोहित हो उठा था। इसका जादू सबके सर पर चढ़ रहा था। सब लोग इसी के सुर में अपना सुर मिलाये जा रहे थे। ब्रह्म समाज के राजा राम-मोहन राय, प्रार्थना समाज के नवीनचन्द्र राय सभी इसके रूप पर मोहित हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति में समस्त देश को इस मधुर विष कन्या से सावधान करने के लिये सन् १८२५ ई. में गुजरात देश के मौरवी रियासत के टंकारा ग्राम में एक अद्भुत बालक ने जन्म लिया, जो आगे चलकर 'महर्षि दयानन्द' के नाम से जग विख्यात हुआ।

महर्षि दयानन्द ने १८४५ में गृहत्याग किया। १८४८ में संन्यास की दीक्षा ली। सारे भारत का भ्रमण करते हुए १८५७ के स्वातंत्र्य युद्ध में प्रच्छन्न रूप में कार्य किया। स्वातंत्र्य युद्ध के असफल होने के बाद महर्षि दयानन्द भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अमृत की खोज करते हुए मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती के चरणों में पहुँचे। इस प्रज्ञाचक्षु ने अपने ज्ञान नेत्रों से भारत

की वास्तविक स्थिति को पहचान लिया था। महर्षि दयानन्द को योग्य पात्र जान कर उसने वह अमृत दे दिया। महर्षि दयानन्द सन् १८६३ में दीक्षा लेकर कार्य क्षेत्र में उतरे। जैसे महात्मा अगस्त्य के आश्रम से राम ने दिव्य शस्त्रास्त्र पाये थे उसी तरह दयानन्द ने गुरु विरजानन्द से विद्या के अलौकिक अस्त्र पाये। जैसे श्रीकृष्ण के प्रोत्साहन से अर्जुन के नस-नस में वीरता का संचार होने लगा था ठीक उसी तरह गुरु विरजानन्द के उपदेशामृत से दयानन्द के क्रियात्मक जीवन में कल्पनातीत स्फूर्ति या गति आ गई थी।

जब सन् १८६६ में महर्षि दयानन्द कार्य क्षेत्र में उतरे उस समय भारत की दशा अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी। हम अपनी भाषा. अपनी संस्कृति और अपनी सभ्यता को भूलते जा रहे थे। हम भेड़ बकरियों के झुण्ड की भांति मंदिरों की मानव-निर्मित प्रतिमाओं के सामने बैठ कर अपने को नीच, खल, कामी, अधम आदि कह-कह कर काल्पनिक स्वर्ग और ईश्वर की कल्पनायें किया करते थे या संसार की अनित्यता के रोने रोते रहते थे। साहित्य के क्षेत्र में शृंगार या मारकाट की प्रशंसा या अपनी ही वधूटियों का निर्लज्ज और अत्युक्ति पूर्ण वर्णन होता था। और इन सबके ऊपर वह नई दुलहिन (अंग्रेज़ी भाषा) अपने मोहक भावों और अनूठे शृंगार को लेकर हमारे ही घर अपना 'राक एण्ड रोल' नृत्य दिखा रही थी। इस नृत्य में मग्न होकर हम अपने कालीदास, भवभूति, भारवि, दण्डी, माघ, पाणिनि, पतंजलि, कात्यायन, मनु, भर्तृहरि, गौतम, कणाद, कपिल, सूर, तुलसी, कबीर की जगह गेटे, बैरन, शैले, कीट्स, शेक्सपियर, मिल्टन, टामस हार्डी, स्पेन्सर आदि के गुणगान करने लगे थे।

सन् १८३५ में अंग्रेज सरकार ने शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी घोषित कर दिया था। फिर १८५४ में वुड का घोषणापत्र निकला, जिसमें ग्राम पाठशालाओं में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाया गया था।

इस समय हिन्दी (खड़ी बोली) की स्थिति क्या थी इस पर भी यहाँ प्रकाश डालना आवश्यक है। वैसे पद्यरूप में खड़ी बोली के दर्शन हमें अमीर खुसरो की पहेलियों में हो जाते हैं, परन्तु गद्य के रूप खड़ी बोली का सबसे पहला रूप आचार्य चतुरसेन शास्त्री के मतानुसार गेसूदराज बंदे नवाज़ शाहबाज़ बुलंद (१३२२-१४२१) द्वारा लिखित मिरस्जुल आशक़ीन तथा हिदायत नामा में पाया जाता है, परंतु इसमें अरबी और फारसी शब्दों की ही भरमार सबसे अधिक पाई जाती है। वास्तव में खड़ी बोली के प्रसार में इन चार लेखकों, श्री सदासुखलाल (१७४७-१८२५), लल्लूलाल (१७६४-१८२६), इन्शा अल्ला खाँ (१७६४-१८१७) और पं० सदलमिश्र (१७७४-१८४६) का आदिम प्रयास रहा है। इसी समय १८०४ में इन्शा अल्ला खाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी थी इनसे भी पूर्व १७३२ में राम प्रसाद निरंजनी का योगवासिष्ठ और १७६१ में दौलतराम का जैन पक्षपुराण छप चुका था, परंतु इस पर व्रजभाषा की स्पष्ट छाप है। संवत् १९७० के कलकत्ते के तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य विवरण में अयोध्याप्रसाद खत्री को खड़ी बोली का आविष्कारक बताया गया था। R. W. फ्रेज़र ने अपनी पुस्तक लिटररी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में लिखा है कि 'आधुनिक हिंदी भाषा को दो पंडितों (लल्लूलाल सदल-मिश्र) का आविष्कार समझना चाहिये।'

सन् १८०५ में विलियम कैरे ने मालाबार में सर्व प्रथम चर्च की स्थापना की। वहाँ से वे श्रीरामपुर चले गये। इन्होंने ही सबसे पहले १८११ में हिंदी बाइबिल छपाया। प्रकाशित हिंदी पुस्तकों में यही सबसे पहला ग्रन्थ है। कैरे ने रामायण का हिन्दी अनुवाद तथा हिन्दी कोष व व्याकरण पर पुस्तकें लिखीं। सन् १८१७ में बंगाल में हिन्दू कालेज, १८१८ में बनारस में जयनारायण स्कूल, १८२४ में आगरा कालेज और १८२६ में दिल्ली कालेज की स्थापना हुई जिनमें हिन्दी को कुछ-कुछ प्रोत्साहित किया जाने लगा।

इसी समय ३० मई १८२६ को हिन्दी का सबसे पहला समाचार पत्र साप्ताहिक 'उदन्त मार्तण्ड" कानपुर निवासी युगलकिशोर शुक्ला ने कोलूटोला मोहल्ला कलकत्ते से निकाला। इसके बाद १८३० में राजा राममोहन राय का बंगदूत, १८३४ में प्रजामित्र, १८४५ में बनारस अख-बार, १८४६ में मार्तण्ड और ज्ञानदीप, १८४९ में जगदीश भास्कर, १८५० में सुधाकर और साम्यदण्ड मार्तण्ड,

१८५२ में बुद्धि प्रकाश, १८५३ में ग्वालियर गजट तथा १८५४ में दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' प्रकाशित होने लगे।

१८४८ ई. में एक सरकारी घोषणा में कहा गया कि हिंदी का जानना सबके लिये अनिवार्य करना ठीक नहीं। परंतु १८५४ में हिंदी की आवश्यकता को अनुभव किया जाने लगा। तब सन् १८५५ में सर सैय्यद अहमद ने इसका जबर्दस्त विरोध करते हुए हिंदी को गँवारू भाषा कह कर तिरस्कृत किया। हिंदी के सौभाग्य से इसी समय सन् १८५६ में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द शिक्षा विभाग के इन्स्पेक्टर बने और उन्होंने हिन्दी के प्रचार में एड़ी चोटी का जोर लगाया। इन्होंने लगभग ३५ पुस्तकें हिंदी में लिखीं।

इसी अवसर पर सन् १८५१ में भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म हुआ। १६ वर्ष की आयु में अर्थात् सन् १८६७ मे आपने चौखम्भा स्कूल के रूप में कार्य प्रारंभ किया। वास्तव में हिंदी का प्रचार पहले के सभी लोगों की अपेक्षा भारतेंदु ने सबसे अधिक किया। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि "निजभाषा उन्नति अहै सबै उन्नति को मूल।"

हिंदी की इस दुर्दशापूर्ण स्थिति में महर्षि दयानंद ने भारतेंदु से एक वर्ष पूर्व क्षेत्र में पदार्पण किया। सन् १८६६ में वे आगरा मे 'भागवत खण्डन' नामक एक संस्कृत पुस्तिका को प्रकाशित कर कार्यरत हुए। और भारतेंदु ने भी १८६७ में चौखम्भा स्कूल खोला। इस तरह दोनों ने लगभग एक ही समय कार्य आरम्भ किया।

महर्षि दयानंद का क्षेत्र बहुत विस्तृत था, उनका उद्देश्य विशाल था, उनका ज्ञान अपार था, उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, उनका तेज अपूर्व था, उनका शौर्य अपरिमित था इसलिये भारतेंदु की उनसे तुलना नहीं की जा सकती परंतु हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने (कुछ एक को छोड़ कर) साहित्यिक क्षेत्र में महर्षि दयानद की जो उपेक्षा की है, उसे देखते हुए हमें बाध्य होकर साहित्यिक दृष्टि से और उससे भी अधिक हिंदी भाषा की उन्नति और उसके प्रचार की दृष्टि से दोनों की तुलना करनी ही होगी। यह पहले ही स्पष्ट कर दिया जाय तो उचित होगा कि यह नितांत सत्य है कि प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह साहित्यिक हो, धार्मिक हो या सामाजिक महर्षि दयानंद जैसा व्यक्ति इस वर्तमान युग में न कोई हुआ है और न होगा।

भारतेंदु जी का जन्म १८५१ में हुआ। १८६७ में आपने चौखंभा स्कूल की स्थापना के रूप में, १६ वर्ष की आयु में, कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। १८६९ में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका निकाली। १८७३ में 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' नामक पत्रिका निकाली। कुल १७५ ग्रंथ लिखे। जिनमें ५८ नाटक हैं। इनमें मौलिक केवल ९ हैं। शेष संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी से अनूदित हैं। दो उपन्यास लिखने प्रारंभ किये थे, पर दोनों ही अधूरे रह गये। शेष काव्य ग्रंथ, प्रहसन आदि लिखे। इस तरह हिंदी साहित्य की सेवा करते हुए सन् १८८५ की ६ जनवरी को ३४ वर्ष की स्वल्पायु में ही आपका स्वर्गवास हो गया। इस तरह आपने कुल १८ वर्ष तक हिंदी साहित्य की सेवा की।

भारतदु जी ने जिन विषयों पर गीतों की रचना की वे निम्न प्रकार हैं:—बाल विवाह से हानि, जन्मपत्री की विधि की अशास्त्रता, शिक्षण की आवश्यकता, बालव्यवहार, अंग्रेजी, फैशन, स्वधर्म प्रेम, भ्रूण हत्या, फूट, हत्या, वैर, मैत्री, ऐक्य, बहुजातित्व व बहुभक्तित्व के दोष, योग्यता, पूर्वज आर्यों की स्तुति, जन्मभूमि प्रशंसा, आलस्यत्याग, व्यापारोन्नति, नशा, अदालत से हानि, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, भारत की दुर्दशा का वर्णन आदि।

महर्षि दयानद का जन्म सन् १८२५ में हुआ। १८६३ में गुरु विरजानंद से दीक्षा लेकर कार्य करने निकले। दो वर्ष या अढ़ाई वर्ष तक आगरे में निवास करके अपनी शंकाओं का निवारण बारम्बार गुरु के निकट जाकर करते रहे। १८६६ में "पाखण्ड खण्डन" नामक एक पुस्तिका संस्कृत में प्रकाशित कर आप कार्यक्षेत्र में आये। संस्कृत का जनसाधारण में अभाव देखकर आपने हिन्दी भाषा को अपनाया। आपके समस्त पुस्तक पुस्तिकाओं की संख्या लगभग ५० है। सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की। १८७६ में वेदभाष्य को मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। लगभग १८७९ में वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की। जिसका नाम पहले आर्य प्रकाश

यन्त्रालय रखा गया था। सन् १८७५ में सत्यार्थ प्रकाश का पहला संस्करण और १८८४ में दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। २७ फरवरी १८८३ को एक परोपकारिणी सभा की स्थापना करके अपने समस्त कार्य का उत्तरदायित्व उसे सौंप कर केवल ५६ वर्ष की अल्पायु में ३० अक्टूबर १८८३ को आपने इस संसार को त्याग दिया। इस तरह आपका कार्य काल केवल १७ वर्ष रहा। इस अवधि में आपने दस हज़ार मील पैदल यात्रा तथा हजारों मील की रेलयात्रा की। लगभग ६ करोड़ व्यक्तियों को प्रवचन दिया। १ हज़ार शास्त्रार्थ किये। ३१ बार आपको प्राण-घातक वार सहने पड़े। देश विदेश में भेजे गये पत्रों की संख्या लगभग ५०० हैं जो तत्कालीन इतिहास की अमूल्य सम्पत्ति है।

महर्षि ने शायद ही कोई ऐसा विषय होगा, जिस पर अपने विचार प्रकट न किये हों। साधारण बालकों के व्यवहार से लेकर राजधर्म तक और प्रकृति से लेकर पर-मात्मा तक तथा दैनिक दिनचर्या से लेकर मोक्ष तक का वर्णन आपके ग्रन्थों में पाया जाता है।

यहां यह कह देना असंगत न होगा कि भारतेन्दु के ग्रन्थों में पाये जाने वाले विचारों पर महर्षि दयानन्द के विचारों की स्पष्ट छाप है। भारतेन्दु यद्यपि पौराणिक थे परन्तु उन्हें भी कितने ही सिद्धांतों में महर्षि की मान्यता स्वीकारनी पड़ी है।

यद्यपि भारतेन्दु के ग्रन्थों की संख्या १७२ और महर्षि के ग्रन्थों की संख्या ५० है, परन्तु यदि विशा-लता या भार की दृष्टि से भी देखा जाय तो महर्षि का साहित्य ही अतिविशाल ठहरता है। केवल अधूरे वेद भाष्य को ही एक पलड़े में रखा दिया जाय तो भारतेन्दु साहित्य पासंग के भी बराबर नहीं आ सकता। और यदि विषय की दृष्टि से देखा जाय तब तो भारतेन्दु साहित्य 'सत्यार्थप्रकाश' के एक कोने में समा जायेगा। यह न समझा जाय कि इस लेख का उद्देश्य भारतेंदु की निंदा करना है, क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल यही है कि कतिपय लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में महर्षि को स्थान न देकर भारतेंदु को 'गद्य का जन्मदाता' मान लिया है यह अनुचित है, वास्तव में गद्य के जन्मदाता महर्षि दयानन्द हैं। हाँ, आधुनिक नाटक, उपन्यास आदि का जन्मदाता भारतेंदु को माना जा सकता है। इस इतिहास की महान् भूल का मूल कारण साहित्य की परिभाषा को गलत समझ बैठना है। अधकचरे इतिहास लेखक केवल कविता, नाटक और उपन्यास को साहित्य समझ बैठे हैं।

साहित्य के भीतर हित की भावना का सब से अधिक प्राधान्य है। "हितेन युक्तः सहितः, सहितस्य भावः साहित्य भावः साहित्यम्"। द्विवेदी जी की परिभाषा के अनुसार "ज्ञान के संचित कोश का नाम साहित्य है।" इसी तरह काव्य की परिभाषायें भी देखी जा सकती हैं। काव्य में गद्य और पद्य दोनों का समावेश होता है। साहित्य का अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्द है Literature।

इस दृष्टि से महर्षि के ग्रन्थ साहित्य की अमूल्य निधि ठहरते हैं जिनकी उपेक्षा इतिहास में कदापि नहीं की जा सकती। आश्चर्य की बात तो यह कि जिस तरह महर्षि दयानन्द ने खण्डन-मण्डल की पद्धति अपनाई है उसी तरह ही तो कबीर ने अपनाई थी। भेद केवल इतना ही है कबीर ने पद्यात्मक शैली अपनाई थी और महर्षि ने गद्यात्मक और महर्षि ने तो पूर्ण तर्क द्वारा मूर्ति पूजा आदि का खण्डन किया है, कबीर ने तो केवल मोटी युक्तियाँ ही दे रखी हैं। ऐसी स्थिति में जब कबीर को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है तो फिर महर्षि दयानन्द को उससे भी मूर्धन्य स्थान मिलना चाहिये।

हँसी भी आती है और दुःख भी होता है कि जिन लेखकों ने निरर्थक, अश्लील और भद्दे भावों के वर्णन में अपनी शक्ति लगाई और अपने गन्दे मनोभावों द्वारा सारे समाज को दूषित कर डाला ऐसे लोगों की तो हिन्दी साहित्य के इतिहास के पन्नों में प्रशंसा पाई जाती है और उन्हें हिन्दी साहित्य के अमर साहित्यकार कह कर ढोल पीटे जाते हैं, परन्तु महर्षि के उस साहित्य को, जिसने सारे समाज को नये ढाँचे में ढाला, पतन के गर्त से उठाकर उन्नति की सीढी पर चढ़ाया, जिसने एक नये युग का सूत्रपात किया, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपेक्षित किया जाता है।

यहाँ कतिपय साहित्यकारों के उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा। इन उद्धरणों की अश्लीलता पर घृणा हो

आती है। छात्र यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के पन्नों में चमकते सितारे इस तरह नीचे भी गिर सकते हैं। कोई अध्यापक अपने छात्रों के समक्ष इनके अर्थ समझाने में भी सकुचा जायेगा। (स्थानाभाव के कारण एक-एक ही उद्धरण प्रकाशित किया गया है।—सम्पादक)

सूरदास

'आज कै पर ढहै हो'॥ 'सूर सागर'

तुलसीदास

अति मचत, छुटत, कुटिल कच, छवि अधिक
सुन्दर पावहि। पट उड़त, भूषण खसत, हँसी-
हँसी अपर सखी झुलावहि॥ 'गीतावली'

केशवदास

विना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजें, किधौं सांचे हू
श्री फलै वक्षोज राजें। किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य
पूरे, वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥

बिहार

लड़का लेवे के मिसुन लंग मो ढिंग आइ।
गयौ अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाइ॥

मतिराम

केलि के रति अघानें नहीं, दिन ही में लला पुनि
घात लगाई॥

प्रवीणराय

बैठी परयंक पै निसंक ह्वै के अंक भरि, करौंगी
अधरपान मैंने मत मिलायौ॥

पद्माकर

एक ही संग इहथाँ रपटे सखी, ये भये ऊपर हौं
भई नीचे।

घनानन्द

कंचुकी तरकि मिले, सरकि उरज, भुज, फरकि
सुजान चोप चुहल महा बढ़ी॥

सेनापति

आइ कै समीप करि साहस खयान ही सौ, हँसि
हँसे बातन ही बाँह को धरत है।

ग्वाल

कपोल गोल गोरे चूम के। मैं कुच गहे धाय के।

इसके अतिरिक्त अनेक कवियों के पद इससे भी अधिक अश्लील हैं। यहाँ पर तो केवल नमूने के रूप में कुछ ही उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। इससे भी अधिक अश्लील वर्णन इन कवियों ने अपने ग्रन्थों में किये हैं। रीतिकालीन ग्रन्थ लगभग सभी ऐसे हैं।

अत्यन्त खेद की बात तो यह है कि तथाकथित आधुनिक गद्य के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चन्द्र भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके। उन्होंने भी यौन विकृति, जैसे:-स्वरति, :समरति, चित्ररति, वस्त्ररति, परपीडनरति इत्यादि का भी वर्णन किया है। उदाहरण के लिये—

सजि सेज रंग के महल में उमंग भरी,
पिय गर लागी काम-कसक मिटायें लेत।
ठानि विपरीति पूरी मैन मसूसन सों,
सुरत-समर जयपत्र हि लिखायें लेत।
हरीचन्द उझकि उझकि रति गाढ़ी करि,
जोम भरि पियहिं झकोर न हरायें लेत।
याद करि पी की सब निरदय घातें आजु,
प्रथम समागम को बदलो चुकायें लेत॥

इन वर्णनों के सम्बन्ध में भारतेंदु की अधिक आलोचना न करते हुए इतना कह देना ही पर्याप्त है कि महर्षि दयानन्द ही एक ऐसा दृढ़ स्तम्भ था जो न तो इस मैली गंगा में बहा और न ही राष्ट्र को बहने दिया। उसने एक जबर्दस्त बाँध बांधा जिसने सारे राष्ट्र के विचार प्रवाह को विशुद्ध सुर सरिता की ओर मोड़ दिया।

महर्षि का साहित्य अतीव उच्चकोटि का साहित्य है। सारे हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसा महान् साहित्य न किसी ने लिखा और न निकट भविष्य में लिखे जाने की आशंका है। लोकप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो महर्षि के अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" ने जितनी लोकप्रियता प्राप्त की है उतनी लोकप्रियता शायद एक तुलसीदास जी के रामचरित मानस ने ही प्राप्त की होगी। महर्षि के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके साहित्य में प्रत्येक विषय पर (चाहे वह पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, वैयक्तिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक या अन्य कोई भी विषय हो) सुदृढ़,

सुस्पष्ट और ठोस विचार पाये जाते हैं। कोई भक्ति-सम्बन्धी विचार भी भक्तिकालीन सूर, तुलसी, कबीर से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। यहाँ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रार्थना

"हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।"

—आर्याभिविनय।

'जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुखः क्यों कर हो" —'आर्या भिविन'

स्तुति

"हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं।" —आर्याभिविनय।

"सो कृपा करके हमको आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त हो के आनन्दित हों।" —आर्याभिविनय।

"उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिये।"

"परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्‌गद् हो के पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं।"

—आर्याभिविनय।

उपासना

"हम को ईश्वर के अनुग्रह से वह फल शीघ्र ही प्रात हो। कैसा वह फल है कि जो परिपक्व, शुद्ध, परम आनन्द से भरा हुआ और मोक्ष सुख को प्राप्त करने वाला है।" —ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका।

'जो विद्वान् लोग····वे···हृदयों में व्याप्त ईश्वर को उपासना रीति से अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं···· सब अविद्यादि दोषों के अन्धकार से छूट के, आत्माओं को प्रकाशित करनेवाले परमेश्वर में प्रकाशमय होकर प्रकाशित रहते हैं।" —ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका।

इस तरह भक्ति के क्षेत्र में भी महर्षि के विचार अत्यन्त उच्चकोटि के हैं। वे मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी, एकेश्वरवाद के समर्थक थे। वे जीव, प्रकृति और परमात्मा को नित्य मानते थे। वे परमयोगी, सन्त, महात्मा थे। "आर्याभिविनय" उनका भक्ति साहित्य का उच्चकोटि का ग्रन्थ है। वेद का भाष्य करते हुए वे भक्ति के रस में इस तरह प्रवाहित हो जाते हैं कि देखते ही बनता है।

उनका सब से प्रसिद्ध और प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है। सब ग्रन्थों से बाजी मार ले गया है। इस ग्रन्थ में महर्षि के विचारों का समस्त सार आ गया है। आचार्य चतुरसेन जी ने लिखा है:—"इस ग्रन्थ में लेखक का गहन अध्ययन अपूर्व प्रतिभा, तर्क का अद्‌भुत चमत्कार, समय-सूचकता, सूक्ष्म दर्शिनी दृष्टि, तत्काल प्रत्युत्तर देने की क्लृप्ति, सहृदयता और कुरीति एवं रूढ़िवाद के प्रति तीव्र रोष है।" सत्यार्थ प्रकाश में जहाँ मतमतान्तरों के खण्डन में चार समुल्लास लिखे गये हैं, वहाँ वैदिक मत प्रदर्शन के लिये दस समुल्लास रखे गये हैं। महर्षि का काम केवल खेत में बीज बोना ही नहीं था अपितु झाड़, झंकाड़ से युक्त जंगल को काट कर खेत बनाना और फिर उसमें बीज बोना था और वे अपने इस कार्य में पूर्ण सफल रहे। 'सत्यार्थ प्रकाश' को पढ़कर पाश्चात्य विचारकों ने जो विचार प्रकट किये हैं वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। रोम्या रोलाँ और डाक्टर एन्ड्रयू जैक्सन डेविस के विचार तो अनुपम हैं। सुभाषचन्द्र बोस, महात्मा गांधी, लाला लाजपत, सरोजिनी नायडू, अरविन्द आदि ने भी इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वर्तमान धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का मूल स्रोत इस ग्रन्थ से ही निकला है। अछूतोद्धार, स्त्रीशिक्षा, स्वराज्य आन्दोलन, नमक-कर विरोधी आन्दोलन, स्वदेशी वस्तु उपयोग का आन्दोलन, खादी-प्रचार, प्राचीन शिक्षा प्रणाली, प्रजातन्त्र राज्य, राष्ट्रभाषा हिन्दी आन्दोलन आदि का सूत्रपात महर्षि के व्याख्यानों तथा सत्यार्थ प्रकाश से ही हुआ है।

भाषा

महर्षि की भाषा निर्दोष तथा मंजी हुई है। विषय एकदम स्पष्ट होता है। उन्होंने भाषा को सरल और मधुर रखा है। उनकी हिन्दी फक्कड़ी नहीं अपितु विशुद्ध सांस्कृतिक तथा प्रभावशाली है। उन्होंने भाषा को छन्द

और अलंकारों के बन्धन से मुक्त रखा जिससे जनता द्वारा शीघ्र अभिप्राय ग्रहण किया जा सके और अर्थ का अनर्थ न हो जाय। महर्षि के ओजपूर्ण भावों के कारण उनकी भाषा भी ओजस्विनी तथा प्रभावशाली हो गई है। व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों का अभाव है। भारतेन्दु जी के ग्रन्थों में व्याकरण की त्रुटियाँ अनेक हैं।

भारतेन्दु की भाषा का नमूना

"क्या कोई दिव्यचक्षु इन अक्षरों की गुलाई, पंक्तियों की सुघाई और लेख की सुघड़ाई को अनुत्तम कहेगा? क्या यही सौम्यता है कि एक सिर आकाश पर और दूसरा सिर पाताल पर छा जाता है? क्या यही जल्दपना है कि लिखा 'आलूबुखारा' और पढ़ा 'उल्लू बेचारा', लिखा 'छन्नू' पढ़ने में आया झब्बू'। अथवा मैं इस विषय पर जोर इसलिए देता हूँ कि आप लोग सोचें, समझें, विचारें और अपने नित्य के व्यवहार, प्रयोग में लायें। इससे आपका नैतिक जीवन सुधरेगा, आप में परोक्ष की अनुभूति होगी, और होगी देश तथा समाज की भलाई।"

शैली

महर्षि की वर्णन शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। आपकी शैली का अनुसरण आपके बाद के लगभग सभी साहित्यकारों ने किया। प्रो० धर्मचन्द एम० ए० (त्रय) के मतानुसार हिन्दी में व्यंगपूर्ण शैली का आविर्भाव महर्षि दयानन्द व आर्यसमाज के शास्त्रार्थों से ही हुआ है। महर्षि की शैली से क्या सनातनी, क्या पादरी और क्या मौलवी सभी प्रभावित हो गए। जनता पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। यही कारण था कि उनके जीवन काल में ही हज़ारों व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये। उनकी शैली व भाषा की यह विशेषता है कि जिस बात को वे कहना चाहते थे उनका गद्य उस बात को पूरे बल से व्यक्त करने में समर्थ होता था। दूसरी बात वह व्यंग तथा हास्य से युक्त होने के कारण उसमें सरसता होती थी। गद्य में व्यंजना शक्ति भी महर्षि के काल से ही प्रारम्भ हुई है।

हिन्दी बनाम आर्य भाषा

अपनी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपना साहित्य हिन्दी में लिखा और उसके साहित्य की वृद्धि कर उसके प्रचार का मार्ग अति प्रशस्त बना दिया। उन्होंने हिन्दी को "आर्य भाषा" की संज्ञा दी तथा इसका ज्ञान प्रत्येक आर्य सदस्य के लिए आर्य समाज के उप-नियमों में अनिवार्य कर दिया। स्वदेशी संस्कृतज्ञ पंडित हिन्दी को "भखाभाखा" कह कर मुँह सिकोड़ते थे, अंग्रेज अंग्रेज़ी को लादना चाहते थे, सर सैय्यद अहमद उर्दू के प्रचार में एड़ी चोटी का जोर लगा रहे थे, ऐसे समय महर्षि दयानन्द ने दीना हीना हिन्दी को आश्रय दिया और इस आश्रयदान के प्रभाव से ही आज हिन्दी राष्ट्र भाषा के पद से सम्मानित हो रही है। आर्यसमाज, गुरुकुल, डी. ए. वी. कालेज तथा अन्य संस्थाओं ने ही हिन्दी का सारे देश में प्रसार किया है। राष्ट्र भाषा प्रसारकों की सूची में महर्षि दयानन्द का नाम सर्वोच्च स्थान को सदैव अलंकृत करता रहेगा।

महर्षि दयानन्द ही सबसे पहिला दक्षिण भारत का अहिन्दीभाषी व्यक्ति था जिसने हिन्दी के प्रसार में हिन्दी भाषियों से भी अधिक योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में अधिकतर हिन्दी भाषियों के ही नाम पाये जाते हैं। कितने शोक की बात है कि इतिहास लेखक, हिन्दीभाषियों से भी अधिक, हिन्दी के लिए प्रयत्न करने वाले सर्वप्रथम अहिन्दीभाषी व्यक्ति को अपने ग्रंथ में स्थान देने में हिचकिचाते हैं। इतिहास लेखक को सर्वथा निष्पक्ष होना चाहिये।

खैर, चाहे इतिहास लेखकों ने महर्षि की कितनी ही उपेक्षा क्यों न की हो पर युग इस बात का साक्षी है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अगर महर्षि दयानन्द को अपनायेगा तो इसमें वही गौरवान्वित होगा और मुझे पूर्ण विश्वास है कि भावी पीढ़ी इस भूल को सुधारेगी तथा महर्षि दयानन्द को योग्य स्थान देकर हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करेगी।

हिन्दी भाषा को व्याख्यान के योग्य बनाने का श्रेय भी महर्षि दयानन्द को है। संक्षेप में यदि इतना कह दें तो पर्याप्त होगा कि हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति का मार्ग केवल मात्र या सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द ने प्रशस्त किया है।

लोकसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयंगार ने महर्षि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्हें राष्ट्रपितामह की उपाधि से विभूषित किया था। राष्ट्र महर्षि का मूल्यांकन जान चुका है। आशा है। हिन्दी साहित्यप्रेमी अपने इतिहास में भी महर्षि को उचित स्थान देकर अपने साहित्य का पुनरुद्धार करेंगे।

□□□

वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिए। जैसे 'देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल,पराक्रम बढ़ के वहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयि-लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त-सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करते हैं वैसे तुम भी रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होना······"।

○

विद्यार्थियों को सावधान करते हुए महर्षि आदेश देते हैं कि—"जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा"।

⊙

जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं··· । जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये।

○

क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे।

○

सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज का भविष्य : महेन्द्रदेव शास्त्री विद्याभूषण

"आर्यसमाज का भविष्य" इस विषय पर कुछ लिखने के लिए मुझ से कहा गया। मैं समझता हूं यह विषय लोगों के मस्तिष्क में तब आया जब उन्हें आर्यसमाज का भविष्य अन्धकारमय नज़र आने लगा। यह निर्विवाद सत्य है कि आर्यसमाज का अतीत बड़ा शानदार रहा है। ऐसी कोई दिशा आर्यसमाज से नहीं छूटी जिसमें इसने प्रगति न की हो। अतीत में आर्यसमाज ऐसे तपस्वी, त्यागी, कर्मनिष्ठ, उद्भट विद्वान्, शास्त्रार्थ महारथी तथा लेखक उत्पन्न करता रहा है जिनके कार्यकलापों से प्रभावित होकर इसके विरोधी भी इसका लोहा मानते रहे हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी लज्जावश प्रत्यक्ष में इस भाव को प्रकट नहीं करते थे किन्तु उनके हृदय यही साक्षी देते थे कि यदि मनुष्योचित गुण हैं तो आर्य समाजियों में ही हैं। अदालतें भी किसी समय आर्यसमाजी की गवाही के बाद उस ही के पक्ष में फैसला दिया करती थीं क्योंकि अदालत के जजों पर यह छाप पड़ी होती थी कि कोई आर्य कभी झूंठी गवाही दे ही नहीं सकता। अतीत यद्यपि प्रेरणाप्रद होते हैं तभी तो लोग राम कृष्ण की महिमाओं का वर्णन करते हैं, बड़े बड़े वीर पुरुषों के चरित्रों की गाथाएं सुनाई जाती हैं किन्तु यदि अतीत की वर्तमान पर छाप नहीं पड़ती है तो उससे भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। वर्तमान के सुधार से ही भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। किसी कवि ने कहा है—

शानदार था भूत, भविष्यत् भी महान् है
सुधर जाय यदि वह जो कि वर्तमान है।

इस स्थिति में हम तो यही कहेंगे कि इस समय तो वर्तमान की स्थिति बड़ी ही खराब है। हम अपनी तुलना आधुनिक दूसरे धर्मावलम्बी अथवा देशवासियों से नहीं कर रहे। यह सोचना कोई सन्तोष की बात नहीं है कि इस समय तो सारे संसार की स्थिति ही बड़ी खराब है निस्बतन फिर भी आर्यसमाजी अच्छा है। अच्छाई की जाँच का यह कोई माप नहीं है। दो और दो चार होते हैं किन्तु यदि कोई दो

ग्रौर दो का जोड़ पांच निकाल दे तो उसे यह कहकर प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता कि यह चार के नजदीक तो है। सत्य तो वही सत्य हो सकता है। जो निश्छल ग्रौर निष्ककट दो "नतत्सत्यंयच्छेनाभ्युपेतम्"

विचारणीय बात

ग्रच्छा तो ग्रब सोचने की बात यह है कि इस पतन के ग्राने का कारण क्या है ग्रौर कितने प्रकार का पतन है जिसे दूर करने की ग्रावश्यकता है। पतन एक काला पर्दा है जिसके ग्रावरण से प्रकाश नजर नहीं ग्राता, उसके हटते ही प्रकाश नजर ग्राने लगता है। वही ग्रार्यसमाज का सत्य स्वरूप होगा। ऋषि दयानन्द ने ग्रज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए ही सत्य ग्रर्थ का प्रकाश किया जिससे लोग जीवन के ग्रसली मूल्यों को समझ सकें। जिन्होंने उस ग्रन्थ रत्न को पढ़ा ग्रौर मनन करके उस पर ग्राचरण किया वो मनुष्यत्व से ऊपर उठकर देव बन गये ग्रौर उन्होंने संसार को ग्रपने गुणों से चकित कर दिया। उन लोगों ने ग्रार्यसमाज के गौरव को चारों दिशाग्रों में बढ़ाया। किन्तु ग्राश्चर्य यह है कि ग्राधुनिक पीढ़ी के लोगों ने ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को ऐसा ठुकराया है जैसा लोगों को स्वप्न में भी ध्यान न था। वास्तव में ऋषि के कोई मनघड़न्त सिद्धान्तनहीं थे। ऋषि ने तो वेद प्रतिपादित उन सिद्धान्तों को लोगों के सामने रख दिया जिनमें मानव कल्याण का स्त्रोत छिपा था। राम राज्य की रट लगाने वाले, सत्य, ग्रहिंसा के पुजारी महात्मा गान्धी की सब मान्यताग्रों का निरादर करके जैसे कांग्रेस ने ग्रपना सर्वनाश कर लिया ग्रौर भविष्य में ग्रौर भी नाश का ग्रन्देशा है वही दशा ग्रार्य समाज की ऋषि दयानन्द की ग्रवहेलना करने से हुई है। ग्रार्य समाज का भविष्य तभी उज्ज्वल हो सकेगा जब ऋषि दयानन्द की एक एक ग्राज्ञा का पूर्णतया पालन होगा। हमारी संस्कृति ग्रौर सभ्यता की प्रतिष्ठा को क़ायम रखने वाले गुरुकुल ही होते थे जहाँ ब्रह्मचर्य, तप ग्रौर ज्ञान से शरीर, मन, बुद्धि ग्रौर ग्रात्मा को इतना पवित्र, उन्नत ग्रौर दृढ़ बना दिया जाता था कि सांसारिक कार्य क्षेत्र में उतरने के बाद उनमें किसी भी प्रकार के पतन की सम्भावना ही नहीं रहती थी। उन्हीं गुरुकुलों में ग्राज ऋषि दयानन्द की ग्राज्ञाग्रों की सर्वथा ग्रवहेलना कर दी गई है। इन संस्थाग्रों में करोड़ों रुपयों की सम्पत्तियाँ खड़ी हुई हैं, गवर्नमेण्ट से बड़े बड़े ग्रनुदान भी मिलते हैं दान भी लोगों से मांगा जाता है किन्तु इन संस्थाग्रों की ग्रान्तरिक स्थिति को देखने के बाद कोई भी ऋषिभक्त ग्रांसू बहाये बिना नहीं रहेगा। ग्रपने लम्बे लम्बे वेतनों का स्वार्थ छोड़कर, गवर्नमेण्ट के ग्रनुदानों पर ग्राश्रित न रहकर ग्राश्रम परम्परा के ग्रनुसार प्रारम्भ से ही ग्राश्रम में रह कर ग्रपना व्रती जीवन बनाने वाले ब्रह्मचारियों का ग्रन्य गृहस्थ विद्यार्थियों से सर्वथा सम्पर्क रहित होकर कोई सही क्रम न बनेगा तो गुरुकुलीय शिक्षा का कोई लाभ ही न होगा। जो स्कूलों में ग्रनुशासनहीनता तथा उद्दण्डता है वही गुरुकुलों में भी देखी जा रही है। शिखा सूत्र की मान्यता तथा श्रद्धा ही नहीं है। ग्रौर तो ग्रौर ब्रह्मचारियों के पवित्र वेश को भी समाप्त कर दिया गया है। ब्रह्मचारियों को पीत वस्त्र धारण करने की ग्राज्ञा है। ये वस्त्र टसू के फूलों के जल में रंगे जाते थे ग्रौर ग्रायुर्वेद के ग्रनुसार ब्रह्मचर्य संरक्षण के लिए ढाक के फूल ग्रत्यन्त उपयोगी माने जाते हैं। मधुमेह (डाइबिटीज) की यह खास ग्रौषध है किन्तु इसको भी दकियानूसी समझकर तिलाञ्जलि दे दी गई है। ग्रनेक वेशों में गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों को देखा जा सकता है। सभी विषयों की शिक्षा गुरुकुलों में दी जानी चाहिये जिससे वे किसी विषय से ग्रनभिज्ञ न रहें किन्तु वह नियमपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम में रहने वाले छात्रों को ही दी जानी चाहिये तभी ऋषि का स्वप्न पूरा हो सकता है। इसके विपरीत चलने पर ग्राचार-विचार की पवित्रता की कल्पना करना ग्रपने लिए ग्रौर ऋषि के लिए धोखा देना है। हम किस मुंह से कहते हैं कि ग्रार्य समाज की हालत खराब हो रही हैं। जब कि हम स्वयं ही उसके प्रति उत्तरदायी हैं। इन दोषों को दूर किये बिना ग्रार्य समाज का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता।

सभा तथा समाजों की स्थिति

ग्रब समाजों की सभाग्रों की स्थिति को देखिये वह तथा ग्रौर भी हास्यास्पद ग्रौर चिन्तनीय है। कोई कोई ही ग्रार्य समाजें ऐसी होंगी जहां झगड़े ग्रौर पार्टियां न हों। ग्रार्य-समाज के सत्सङ्गों में उपस्थिति दयनीय सी ही होती है। श्रद्धा का लोगों में भाव ही नहीं रह गया है। ग्रार्यों

के आचरण ही ऐसे होते थे जिनसे आकृष्ट होकर लोग उनकी तर्फ़ खिचा करते थे किन्तु इस समय लोगों के हृदयो में आर्य सिद्धान्तों के प्रति आस्था ही नहीं हैं। शायद आर्य की परिभाषा अब यही रह गई है कि जो आर्य समाज के रजिस्टर में अपना नाम लिखा दे और।),॥) मासिक चदा दे दे वही आर्य है। जब तक लोग आर्योचित गुणों को अपना कर दृढ़ता के साथ उन पर आचरण न करेंगे तब तक आर्यसमाज का भविष्य कभी उज्ज्वल न होगा। दूसरा कोई हमारा अनिष्ट कर रहा हो उससे तो हम सचेत होकर मुक़ाबला कर सकते हैं किन्तु यदि हम अपना अनिष्ट स्वयं ही कर रहे हों तो उसका उत्तरदायी कौन होगा।

पुरुष समाज तथा स्त्री समाज

हम सदैव यह शिकायत करते हैं कि प्रत्येक आर्यसमाज में उपस्थिति कम होती है किन्तु इस कमज़ोरी को हमने ही जान बूझकर पैदा किया है। प्रत्येक धर्मावलम्बी अपने २ सत्सङ्गों में स्त्री, पुरुष परिवार के साथ जाते हैं। सनातनी, सिक्ख, मुसलमान, ईसाई सभी प्रेमपूर्वक सामुदायिक रूप से सभी सत्सङ्गों, कथाओं, धार्मिक समारोहों में उपस्थित होते हैं किन्तु केवल आर्य समाज ही ऐसी संस्था है जिसके बुद्धिमान् स्त्री पुरुषों ने एक नई प्रथा को जन्म दिया है कि इन के पुरुष समाज अलहदा हैं और स्त्री समाज अलहदा। अपने-अपने कोष भी प्रायः इनके पृथक पृथक् ही हैं। प्रतिनिधि सभाओं में पुरुष प्रतिनिधि अपने भेजते हैं और स्त्रियां अपनी प्रतिनिधि पृथक् भेजती हैं। ऐसी ही उन्नति चलती रही तो निकट भविष्य में हो सकता है इनके भवन भी पृथक् खड़े हो जावें। इस समय भी कहीं हों तो मैं निश्चयात्मक दृष्टि से नहीं कह सकता। इस स्थिति में क्या यह सम्भव नहीं है कि आर्य गृहस्थ परिवारों में अनिष्टकर मतभेद पैदा न हो जावें। आर्य गृहस्थ यदि कोई धन राशि दान में देने लगें तो स्त्रियां कहेंगी इसमें से आधी धनराशि स्त्री समाज को जावेगी, इस प्रकार घर में ही विरोध भाव पैदा हो जावेंगे जो गृहस्थों के सारे सुखों को ही नष्ट करके रख देंगे। यदि इस पर गहराई से परिणाम का चिन्तन न किया गया तो किसी भी गहरे विरोध के समय क्या यह संभावना के विपरीत बात है कि स्त्रियों की स्त्री आर्य प्रतिनिधि सभाएँ भी स्थापित न हो जावें यह कैसा अच्छा संगठन का रूप है। "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" का पाठ पढ़ने वाले इस पर विचार तो करें। क्या आर्यसमाज शब्द में स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, सभी नहीं आ जाते फिर पुरुष समाज और स्त्री समाज को पृथक् रूप देने की आवश्यकता क्या थी? अपने विशेष उत्थान के लिए देवियां अपने लिये कोई विशेष व्याख्यानों की व्यवस्था करें अथवा महिलोचित कोई अन्य कार्य करें यह तो उचित है किन्तु वह होना चाहिये एक ही आर्यसमाज मन्दिर में एक ही संगठन के अन्तर्गत। यह क्या कि स्त्रियें अपनी डफली अलहदा बजावें और पुरुष अलहदा। प्रायः यह देखा जाता है आर्य समाज के सत्सङ्गों में देवियां सम्मिलित नहीं होतीं अथवा बहुत ही कम संख्या में सम्मिलित होती हैं ऐसी दशा में माताओं के साथ जाने वाले बच्चे भी आर्य समाजों में नहीं जाते और हम फिर अफ़-सोस करने बैठ जाते हैं कि न मालूम क्यों हमारी युवा पीढ़ी अथवा बाल सन्तति समाज के सत्सङ्गों में नहीं आती। भला आप ही विचारिये बच्चों के हृदयों में यह आशंका नहीं होती होगी कि हम पिताओं के आर्य समाज में जावें या माताओं के। यदि स्त्री आर्यसमाज की पृथक् सत्ता से स्त्रियों की विशेष उन्नति मानी जावे तो इस उन्नति को और भी प्रगतिशील बनाने के लिए प्रौढ़ा आर्यसमाज, वृद्धा आर्य समाज, कन्या आर्यसमाज आदि स्थापित कर के विदुषी देवियां अथवा देवता क्यों नहीं यशोलाभ करते। ऋषि दयानन्द ने स्त्रियों के लिये बड़ा कार्य किया है और उन्हें बड़े आदर का स्थान दिया है ऐसी दशा में ऋषि तो जरूर लिखते कि स्त्री आर्यसमाज पृथक् ही होना चाहिये। दुनिया सङ्गठन चाहती है और आर्यसमाज, विघटन से कल्याण सोचता है। जब सभी स्त्री पुरुषों को समाज में उचित अधिकार प्राप्त हैं तो विदुषी तथा अनु-भव शीला स्त्रियें आर्यसमाज की प्रधाना बनें, मन्त्रिणी बनें यह तो अच्छा है और उचित है किन्तु पृथक् पृथक् होने से दोनों का सामूहिक रूप ही समाप्त हो जावे यह कौनसी बुद्धिमत्ता की बात है। पद प्राप्ति की गन्दी अभिलाषा से समाज के संगठन को नष्ट भ्रष्ट कर डालना सर्वथा अनुचित है। जब तक आर्यसमाज और स्त्री आर्यसमाज का एक रूप नहीं होगा कभी आर्य समाज का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता। जब स्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा

पृथक् है तो उससे सम्बन्ध रखने वाली स्त्री आर्य समाजें भी उससे ही अपने को सम्बन्ध करेंगी और धनराशि भी उसी को देंगी ऐसी स्थिति में उस पुण्य दिन की भी आर्यों को प्रतीक्षा करनी चाहिये। जब स्त्री सार्वदेशिक सभा की घोषणा बड़े गर्व के साथ कर दी जावेगी उस दिन सारे संसार में आर्य समाज का मस्तिष्क ही सर्वोन्नत मस्तिष्क समझा जावेगा। आर्यजन गम्भीरता से इस पर विचार करें।

सभाएं

अब सभाओं की दशा को लीजिये। एक-एक प्रान्त में दो-दो आर्य प्रति निधि सभाएं और दो-दो उप आर्य प्रतिनिधि सभाएं कमर कसकर खड़ी हो गई हैं। इनके अधिकारी संचालक वीतराग, तपस्वी, पद प्राप्ति के अनिच्छुक समाज के मूर्धन्य लोगों से आर्यसमाज का भाल सुशोभित हो रहा है और विरोधी लोग तालियां बजा-बजा कर ऐसी उन्नति से खुश होकर आर्यसमाज को धन्य-धन्य कहकर इसका मज़ाक उड़ा रहे हैं। क्या हम समझते हैं इससे हम अपने में या संसार में आर्यत्व ला सकेंगे। भारत के ही नहीं संसार के प्रत्येक व्यक्ति की आंख आर्यसमाज पर थी और संसार की समस्त पाखण्ड प्रचारिणी शक्तियां समझती थीं कि अब हमारी दाल गलनी मुश्किल है किन्तु उन्होंने देखा कि औरों का जगाने वाला प्रहरी खुद सो गया है तो उन्होंने इस निद्रा से लाभ उठाया और आज संसार में अनेक पाखण्डों को लेकर आगे बढ़ने वाले मत मतान्तर संसार में फैल गए हैं जो ऋषि दयानन्द के ज़माने में भी नहीं थे। इसके लिये भी पूर्ण रूप से आर्यसमाज ही ज़िम्मेवार है। जब तक आर्यसमाज का ऊंचा मस्तिष्क स्वार्थ रहित होकर त्याग तथा तपस्या को नहीं अपनावेगा तब तक आर्यसमाज का भविष्य उज्ज्वल न हो कर अन्धकार मय ही बना रहेगा और उस अवस्था में यह प्रकाश-स्तम्भ टिमटिमाता हुआ ही समझा जावेगा।

लेखन कार्य

आर्यसमाज का अतीत में सर्वाङ्गीण कार्य चलता था। व्याख्यानों, शास्त्रार्थों तथा लेखों से सभी विरोधियों को परास्त कर आर्य समाज अपनी धाक जमाता था किन्तु अब लेखन कला भी समाप्त हुई और शास्त्रार्थ भी समाप्त हुए, केवल व्याख्यान ही रह गए, वो भी वक्ता द्वारा व्यक्त किये गए अपने विचारों के प्रतिकूल आचरण को देख कर जनता में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करते अतः आर्यसमाजों को अपनी शक्ति आचारवान् विद्वानों द्वारा आर्यसमाज के सिद्धान्तों और सुधारों के विषयों पर ट्रैक्ट लिखवा कर उनसे प्रचार कार्य बढ़ाना चाहिये जैसा कि पहले ज़माने में अमर बलिदानी स्व. श्री पं. लेखरामजी, वीतराग स्व. श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज तथा कर्मवीर, तपस्वी स्व. श्री प. मुरारीलालजी शर्मा सिकन्दराबादी के ज़माने में होता रहा है। इस प्राचीन कार्यक्रम को चलाने की बड़ी आवश्यकता है जिससे आर्यसमाज का गौरव बढ़े और उसकी उन्नति हो इससे ही आर्यसमाज का भविष्य उज्ज्वल होगा।

अन्तिम निवेदन

व्यक्ति का समाज के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है और समाज का असर भी व्यक्तियों पर पड़ता है। मूल में सबके व्यक्ति ही है। ऊपर लिखी जितनी खराबियां गुरुकुलों में, सभाओं में और समाजों में आई हैं वो सब व्यक्तियों के कारण ही आई हैं यदि व्यक्ति सुधर जावें तो सब सुधरा हुआ ही है। व्यक्तियों के बिगड़ने का कारण स्वार्थ है जिसको प्रोत्साहन मिला है गलत राजनीति से। म० गान्धी के नेतृत्व में जब सत्याग्रह आन्दोलन चला तो ८० प्रतिशत आर्य समाजियों ने उसमें सक्रिय भाग लिया और कांग्रेसी बन गए किन्तु दुःख यह है कि वो कांग्रेस में शामिल होकर आर्य समाज को भुला बैठे और कोरे कांग्रेसी ही रह गए। बड़ी-बड़ी कान्फ्रेंसें हुईं। एक मेरठ में हुई दूसरी देहली में। दोनों ही कान्फ्रेंसों में स्वार्थी आर्यसमाजियों ने राजनीति प्रवेश का घोर विरोध किया और प्रस्ताव पास किया कि सामूहिक रूप से आर्यसमाज का राजनीति में प्रवेश ठीक नहीं किन्तु वैयक्तिक रूप से उसमें कोई भाग ले सकता है। उस समय आर्यसमाज के लीडरों ने ज़रा भी दूरदर्शिता से यह न विचारा कि इसके दूरगामी परिणाम क्या होंगे। आज कभी राष्ट्र भाषा के लिये आन्दोलन किया

जाता है, कभी गोवध निषेध के लिये सत्याग्रह किया जाता है, कभी मद्यपान के विरोध में आवाज उठाई जाती है और कभी भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिये हम रोते हैं। भला यह तो सोचिये कि जब व्यक्तिगत रूप से एक बात उचित है तो वह समष्टि रूप में अनुचित कैसे हो जावेगी। यह तो ऐसी ही बात है जैसे कहा जावे कि समष्टि रूप में कोई असत्य नहीं बोल सकता किन्तु व्यक्तिगत रूप से बोल सकता है। जो भला या बुरा है वह तो व्यक्तिगत रूप में या सामुदायिक रूप में दोनों में ही भला बुरा है। यदि आर्यसमाज ने उस समय राजनीति को अपनाया होता तो शासन की बागडोर आर्य समाज के हाथ में होती और आज जो देश की दुर्दशा हो गई है वह कभी न हो पाती। इसलिये इस जघन्य और धर्म विरुद्ध कार्य के लिये भी आर्य समाज ही दोषी है। पंजाब में बना अकाली दल ही जो बहुत पीछे बना है राजनीतिक दल होने के कारण बहुत कुछ ले बैठा है। राजनीति में जितने भी आर्यसमाजी गए वो ऋषि दयानन्द को भुला कर प्रायः गान्धी भक्त बन गए। इसलिये व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक आर्यसमाजी को अपने वैयक्तिक रूप का ध्यान करना चाहिये। यदि स्वार्थ भाव को छोड़कर प्रत्येक आर्यसमाजी आर्यसमाजी न बन कर सही अर्थों में आर्य बन जावेगा तो आर्यों का और आर्य समाजों का भविष्य उज्ज्वल हो जावेगा इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

निचोड़

(१) गुरुकुलों का कायाकल्प किया जावे जैसा स्वा. दर्शनानन्द जी तथा स्वा. श्रद्धानन्द जी के ज़माने में था वही रूप लाया जावे।

(२) आर्यसमाज तथा स्त्री आर्यसमाज दोनों मिलकर एक हो जावें। संगठन और शक्ति एकता में ही छिपी है।

(३) प्रान्तों की दो-दो प्रतिनिधि सभा तथा दो-दो उप-आर्य प्रतिनिधि सभाएँ तोड़ कर एक ही कर दी जावें। स्वार्थ इससे ही नष्ट हो सकते हैं।

(४) लेखन द्वारा प्रचार कार्य पुनः जोर शोर के साथ प्रारम्भ किया जावे जैसा कि श्री पं. लेखराम जी श्री स्वा. दर्शनानन्द जी तथा श्री पं. मुरारीलाल जी शर्मा के ज़माने में होता था। इससे ही आर्यसमाज का भविष्य उज्ज्वल होगा और हम संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेंगे। आर्य समाज के प्रचार का और लोगों में वैदिक सिद्धान्तों की सत्यता को प्रकाश में लाने का यही एक तरीका है।

(५) आर्य समाज अपनी समस्त शक्तियों के साथ मिल-जुलकर सभी भेद भावों को मिटाकर पूर्ण सक्रिय रूप से राजनीति में भाग ले और प्रारम्भ में एक ही प्रान्त को चुनकर उसमें ही वैदिक शासन को प्रारम्भ करें।

सन्देह

मैंने अपनी अल्प बुद्धि से आर्य समाज के भविष्य पर अपने विचारों के अनुसार थोड़ा बहुत लिखा है किन्तु मुझे सन्देह है कि उससे कोई विशेष लाभ होने वाला है क्योंकि स्वार्थ की जड़ें लोगों में बहुत गहरी पहुँच चुकी हैं उसके कारण ही तमोवृत्तियों का आवरण अच्छाइयों पर पड़ रहा है फिर भी कोई विचारशील इन पर गहरा-विचार कर लाभान्वित होंगे तो मैं अपने लेख की सार्थकता समझूँगा।

□□□

आर्य समाज का भविष्य : डा० अभयदेव शर्मा

'आर्यसमाज' शब्द कभी कभी भ्रम पैदा कर देता है। इस शब्द का अर्थ 'आर्यों का समाज' है। पर 'आर्यसमाज' शब्द पिछले लगभग सौ वर्षों से अपने यौगिक अर्थ में प्रयुक्त न होकर रुढ़िपरक अर्थ को ले बैठा है। 'आर्यसमाज' का अब अर्थ है 'आर्यसमाजियों का समाज'। इस संस्थाविशेष के सदस्य ही अपने नाम के पीछे 'आर्य' शब्द का प्रयोग करते हैं। इस संस्था से संबद्ध कार्यकताओं पत्रिकाओं, कार्यक्रमों के लिये ही 'आर्य' शब्द सीमित हो गया है। 'आर्यसमाज' के आज तक के कार्यकलाप के और जो भी भले-बुरे परिणाम सामने आये हों, इतना अवश्य हुआ है कि 'आर्य' शब्द जो प्रयोगातीत सा हो गया था पुनः पूरे आवेश के साथ प्रचलन में आ गया। पर इस परिणाम का एक पक्ष यह भी है कि यह महनीय शब्द प्रयोग में रूढ़ हो चला है। आधुनिक इतिहासकार 'आर्य' किसी जाति-विशेष:का नाम मानते हैं। पता नहीं, यह कहाँ तक सच है। पर आज यह शब्द एक संस्थाविशेष के सदस्यों की जातिवाचक संज्ञा अवश्य बन गया है।

भविष्य अज्ञात है। अनिरुक्त है। भूत ज्ञात है, व्यक्त है। वर्तमान सामने है। भूत संस्कार बनकर वर्तमान को संचालित करता है और फल होता है भविष्य। भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है क्योंकि वह तो फलरूप है जो वर्तमान के परिणामरूप में यथाकाल अपने आप सामने आ जायेगा। वह किसी के वश की बात नहीं है। वर्तमान में जीने वाले, चाहे वह प्राणी हो वा प्राणिसमाज हो, का अधिकार वा वश तो केवल वर्तमान पर होता है। भविष्यरूपी फल का हेतु वर्तमान में किया जाने वाला कर्म ही हो सकता है। अतः कर्म पर समूचा ध्यान एकाग्र कर देना ही फलाभिलाषी कर्मकर्त्ता के लिये संभव और उचित है। बिना लक्ष्यनिर्धारण के तो कोई पागल भी किसी को भाटा नहीं मारता। अतः कामनामय लक्ष्य निश्चित करके, फिर लक्ष्यसाधक कर्म में जी-जान से ऐसा जुट जाना चाहिये कि कर्मकाल में लक्ष्य स्मरण ही न रहे। उसे याद रखने की आवश्यकता है भी नहीं क्योंकि उसकी चिंता

तो क्रियमाण कर्म स्वय ही कर लेगा। शेखचिल्ली की तरह लक्ष्य की चाह में पड़कर, अपनी सीमित कर्मशक्ति को क्रिया और फल के दो भिन्न क्षेत्रों में बाँट देने से न कर्म कुशलता से संपन्न हो पायेगा और न फल ही पूरा संतोष दे सकेगा। यही निष्काम कर्म की युक्ति का सार है।

आर्यसमाज अपने जन्मकाल से किन लक्ष्यों को लेकर चला था, उसके कार्यक्रम कहाँ तक उन लक्ष्यों के अनुरूप थे, लक्ष्य किस सीमा तक संधान हो पाये, कर्मों में क्या त्रुटियाँ रहीं, यह आत्मालोचन करके आत्मपरिष्कार करने से ही यह संस्था अपना अभीष्ट भविष्य सिद्ध कर सकती है, अन्यथा नहीं। परालोचन करना जितना सरल होता है, आत्मलोचन उतना ही कठिन, दुस्साध्य और पीड़ादायक होता है। अपने दोष या तो दीखते ही नहीं, दीख़ भी जायें तो उनकी अहमियत कम करने को मन तैयार रहता है, और अपनी असफलताओं का दोष परिस्थिति आदि पर खिसका कर मन अपने आपको कलंक से साफ़ बचा ले जाता है। अतः इस लेख की यदि कोई बात किसी पाठक को तक़लीफ़ देने वाली हो तो यह लेखक क्षम्य होना चाहिये।

आर्यसमाज के लक्ष्य और कार्यक्रम, दोनों उसके दस सुख्यात नियमों में सन्निहित हैं। इनमें से तीसरे नियम में 'आर्य' की परिभाषा दी गई है। आर्य वह है जो अपना परम धर्म वेदाध्ययन को मानता है। शतांश देकर (ईमानदारी से शतांश देने वाले आर्य शायद कुल आर्यों के शतांश ही होंगे) संस्था का सदस्य रूप 'आर्य' तो कोई भी बन सकता है पर अपने संस्थापक की भावनानुरूप 'आर्य' कितने हैं, सबसे पहले तो आर्यसमाज को यह सर्वेक्षण करना चाहिये। आर्यसमाज की निष्ठा का आधार उसके संस्थापक, स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। पर स्वयं संस्थापक की निष्ठा का आधार वेद है। अतः परम्परया आर्यसमाज का परम धर्म 'वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना' ही हो सकता है, और है। नियमों में अन्य जितनी बातें हैं, वे सब इस परम धर्म के अंगोपांगमात्र हैं। यथा, विद्या-वृद्धि (नियम ८) वेदविद्या की वृद्धि में अंतर्भुक्त है। वेदविद्या के प्रभाव से सत्याग्रह (नियम ४,५) स्वतः सिद्ध हो जायेगा। वेदविद्या के द्वारा सत्य का ज्ञान होने पर सत्य का ग्रहण होगा, और सत्य-धर्मानुसार कर्म भी होगा तथा असत्य का निराकरण और त्याग भी संपन्न हो सकेगा। जीवन और जगत् का परमाधार ईश्वर है, यह बोध होना और 'उसी की उपासना' का आश्रय (नियम२) भी वेद-विद्या का आनुषंगिक फल है। यह सब आत्मिक और शारीरिक उन्नति का विस्तार है (नियम ६)। पर वेदविद्या और उसके परिणामरूप अन्य तथ्य (सत्य, ईश्वर आदि) सामाजिक स्तर पर भी वैसे ही कारगर होंगे जैसे कि वे वैयक्तिक स्तर पर हो सकते हैं। अतः सामाजिक उन्नति (नियम ६, ९, १०) जिसे दयानन्द ने 'उपकार' 'सर्वोन्नति' अर्थात् सर्वोदय कहा है, तथा उसकी साधक, समाधानपरक, अहिंसामय (न कि बलात्कारपरक, हिंसामय) नीति (प्रीतिपूर्वक—नियम ७, समाजपरक=समाजवादी दृष्टिकोण—नियम १०) भी वेदविद्या पर आश्रित हैं।

वेदविद्या वह लक्ष्य था जिसे आर्यसमाज के संस्थापक ने इस संस्था के समुख रखा था। आर्यसमाज देखे कि उसने इस लक्ष्य की पूर्ति में कितनी सफलता पाई है और कि क्या यह संस्था अपने संस्थापक की उम्मीदों के अनुरूप सिद्ध होने का संतोष कर सकती है। आर्यसमाज के अनेक कार्यक्रम अतीत में रहे हैं। थोड़े-बहुत वे आज भी जारी हैं। आर्यसमाज ने वेदों को दयानन्द की दृष्टि से देखा, पर उतना ही जितना उसने दिखा दिया था। वेदों का एक-एक शब्द अपने अर्थ और रहस्य को अनावृत कराने के लिये एक एक पुस्तक के निर्माण की प्रतीक्षा में हैं। पर आर्य-समाजी वेदज्ञ कुछ गिने-चुने चार-पांच सौ मंत्रों के मनन की परिधि से आगे नहीं बढ़े। आर्यसमाजी पत्रिकाओं के देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। किसी पत्रिका में वेदमंत्रों का स्वच्छ, स्फूर्तिमय विवेचन देखने को नहीं मिलता। सिवाय दो-तीन वेदज्ञों के, वेदमंत्रों के मनन और उनकी जीवनोपयोगी व्याख्यायें देने का शौक आर्यसमाजी विद्वानों में शून्यप्राय है। पुराने वेदज्ञों की कृतियों में से वेदमंत्रव्याख्यायें छापने की दुहराहट के द्वारा आर्यसमाजी पत्रिकायें अपनी वेदनिष्ठा की इति समझ बैठी प्रतीत होती हैं। वेद का नाम लेने वाली आर्यसमाजी पत्रिकाओं में उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, षड्दर्शन आदि पर लेख मिल

जायेंगे, सामयिक प्रश्नों पर चर्चायें मिलेंगी, पर 'वेद' लगभग नदारद मिलेगा। जब आर्यसमाज ने अपनी नींव का पत्थर ही खोखला कर रक्खा है तो वह किसी उज्ज्वल भविष्य की क्या आशा कर सकता है ?

यही हाल आर्यसमाज के भाषणकर्ताओं का है। वेद-मंत्रों को लेकर तद्व्याख्यारूप में एक घंटे का भाषण देने का साहस कितने भाषकों में है ? दस-बीस मंत्रों की पूँजी भी किसी के पास हो तो बहुत जानिये। अन्यथा आर्य-समाजी प्रवचनकर्ताओं के भाषणों में वेद की कोई पंक्ति भले ही कहीं उद्घृत मिल जाये, समान्यत: ये लोग वेदप्रवचन देने में असमर्थ हैं। कुरान, बाइबिल, पुराणों की धज्जियाँ इनसे उड़वा लीजिये, साम्यवाद, समाजवाद को गालियाँ दिलवा लीजिये, सनातनधर्मियों को कुसवा लीजिये, चुटकले, दृष्टान्तों, कहानियों की चासनी भरपेट ये श्रोताओं को पिला सकते हैं, पर वेदमृत का पान कराना इनके बूते का नहीं। कारण स्पष्ट है, कि आर्यसमाज के लेखक और प्रचारक वेद का नाम तो लेते हैं, 'वेदों का डंका तो आलम में' बजा सकते हैं, पर वेद का अध्ययन नहीं करते हैं। दुकान चलाने के लिये चलते-फिरते, बहुप्रचलित सौ-पचास मंत्र और उनका स्थूल-सा अभिप्राय घोटा हुआ है।

आरंभ में आर्यसमाज की जो वेदाध्ययन-रूपी पूँजी थी वह शनैः शनैः कम हुई है, और अब तो लुप्तप्राय है। आर्यसमाज में व्याकरण और दर्शनों ने वेदों को पदच्युत किया हुआ है। जब तक आर्यसमाज में वेदाध्ययन का जोश था, इस संस्था ने इसके नियमों में लिखित अन्यान्य अवांतर कार्यक्रमों (यथा विद्यावृद्धि, सत्याग्रह, ईश्वरो-पासना, सर्वोदय) में प्रभूत प्रभावी काम किया। पर जैसे जैसे वेद पीठ पीछे होता गया, ये सब कार्यक्रम भी फीके पड़ते गये। आज तो न आर्यसमाजी गुरुकुलों और विद्यालयों में शब्द के सही अर्थों में विद्यावृद्धि करने वाले विद्वान् तैयार हो रहे हैं, न सत्याग्रहपरक शास्त्रों की धूम और गूँज कहीं शेष रह गई है, न ईश्वरप्रणिधान वा भक्ति से युक्त आध्यात्मिक जीवन कहीं दीखता है, और न आर्यसमाज के पास सामाजिक उन्नति का ही कोई कार्य-क्रम प्रतीत होता है। बात कटु है, पर है सच कि वेद के तलस्पर्शी विद्वान् अब आर्यसमाज में उतने नहीं हैं जितने आर्यसमाज के बाहर हैं।

आर्यसमाज एक ऐसे स्वनिर्मित जाल में फंसा हुआ है जिसमें उसके प्राण रूंधे जा रहे हैं। जैसे श्वान हड्डी चबाये चला जाता है और घायल मुख के खून को हड्डी का रस समझता रहता है, वैसे ही आर्यसमाज की सारी शक्ति और साधन ऐसे काम में दुर्व्यय हो रहे हैं जिसने इस संस्था को किसी काम का नहीं छोड़ा है। अपनी वैचारिक पूँजी पैदा करने की जब सामर्थ्य नहीं रहती, तो आदमी कोरे शाब्दिक नारों से चिपके रहने में ही अपने अस्तित्व का बचाव देखने लगता है। आर्यसमाज के पास आज केवल एक कार्यक्रम है, और वह है सालाना जलसे करते रहना। संस्था के सारे विद्वानों, लेखकों, प्रचारकों, श्रद्धालुओं, पदाधिकारियों आदि का समूचा श्रम और पूरे के पूरे साधन बस वार्षिकोत्सवों में चुक रहे हैं। एक समाज से दूसरे समाज में फिरते फिरने में ही विद्वानों और प्रचारकों का सारा साल बीत जाता है। गला फाड़ने वालों को दक्षिणायें मिल जाती हैं और तालियों के साथ अपनी वाग्मिता का खोखला आश्वासन भी उनके झोले में पड़ जाता है। समाजों को दान मिल जाता है, छोटा-मोटा हुजूम इकट्ठा करके वे अपनी लोकप्रियता के झांसे में खुश हो लेते हैं। भला कोई पूछे कि समाजों के वार्षिकोत्सव मनाने में क्या तुक है। संस्थायें वार्षिकोत्सव मनाती हैं अपना लेखा-जोखा लेने के लिये और अपने कृत कार्य का विवरण देने के लिये। क्या कभी किसी आर्य-समाज ने अपने वार्षिकोत्सव पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट (शायद ही कोई 'समाज' रिपोर्ट जनता के सामने पेश करती हो) में यह बताया कि पिछले वर्ष में उसने कितने लोगों को कितना वेद पढ़ाया, कितनों को वेदाध्ययन में उपयोगी होने से, संस्कृत सिखाई, कितनों को मतपरिवर्तन करा कर वैदिक विचारों का बनाया? वार्षिकोत्सव माने साप्ताहिक सत्संग के एक भाषण के बजाय, ढेर सारे भाषणों की एक बाढ़ जो जिस तेजी से आती है उसी तेजी से गुज़र जाती है। आर्यसमाजों के कार्यकर्त्ताओं को वार्षिकोत्सवों से फ़ुरसत मिले तब तो वे कुछ और काम का काम हाथ में लें। अत: यदि आर्यसमाज को अपना सार्थक और प्रभावी भविष्य बनाना हो, तो उसे वार्षिकोत्सवों

और कथाओं की बीमारी से छुट्टी पानी होगी। अन्यथा लाख यत्न किये जायें और कितने भी मन-घड़न्त सुझाव दिये जायें, रहेंगे वे ही ढाकके तीन पात। आज तो स्थिति यहां तक बिगड़ चुकी है कि जो आर्य समाजें अपने वार्षिकोत्सव नहीं करती हैं वे निष्क्रिय और थर्ड रेट की आर्य समाजें मानी जाती हैं।

आर्यसमाज के पास कार्यकर्ताओं की कमी नहीं है। साधन भी काम लायक अपर्याप्त नहीं हैं। कुछ ठोस काम होता दीखे, तो साधन ढेरों आ सकते हैं। अतः आर्य समाज को आवश्यकता इस बात की है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति को समेटे और ढंग से उसका नियोजन करे। सबको रखने के उद्यम में सब चला गया। अतः सबको छोड़, एकमात्र वेद का पल्ला पकड़ लिया जाये, और सारी शक्ति वेदाध्ययन, वेदरुचिजागरण, वेदश्रद्धा-संपादन, वेदव्याख्याकरण पर केन्द्रित कर दी जाये तो सब कुछ अब भी सध सकता है। आर्यसमाज का एक-एक कार्यकर्त्ता एक-एक जिले को लेकर बैठ जाये। जिले को अपना कार्यक्षेत्र बना ले, उसके एक-एक गांव और गली में, एक-एक घर में वह प्रवेश पाये, और अपने प्रखर व्यक्तित्व, सोत्साह कर्मनिष्ठा, प्रीतिव्यवहार और सेवा के द्वारा जन-जन के जीवन का निर्माण करने में जुट जाये। चाहे कोई व्यक्ति हो लोकैषणा को छोड़कर एक-एक जिला संभाल कर यदि आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता अपने-अपने क्षेत्र में जुट पड़ें तो दस वर्षों में देश की काया-पलट करके रख सकते हैं। आर्यसमाज में तड़प है, आग है, कुछ कर गुज़रने के अरमान हैं, सामर्थ्य भी है, पर यदि नहीं है तो लक्ष्य की एकाग्रता नहीं है, और सुनियोजित कार्यक्रम तथा कार्यशैली नहीं है। आर्य समाज चंचलचित्त, अपने व्यक्तित्व को वाहवाही दिलाने में रुचि रखने वाले, लोकैषणापरायण कार्यकर्त्ताओं का एक अननुशासित जमघट बना हुआ है। याद रखना चाहिये कि जमघट वा भीड़ का कोई भविष्य नहीं हुआ करता है।

□□□

....जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्या दान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेद विहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं।

○

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं। ....यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है।

○

जब पांच-पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज कैसे संगठित हो ? : राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

१९२५ ई. में महर्षि दयानन्द जी महाराज की जन्म शताब्दी मनाई गई। मथुरा नगरी में आर्यों का ऐतिहासिक समारोह हुआ। शतियों के पश्चात् धार्मिक जगत् में एक ही विचार के लोगों का यह प्रथम विशाल सम्मेलन था। इससे पूर्व बौद्ध काल में ही ऐसे विराट सम्मेलन हुए थे। दोनों में एक अन्तर था। बौद्धों को राज्य का संरक्षण प्राप्त था और आर्यसमाजी राज-द्रोही समझे जाते थे। इस शताब्दी के पश्चात् एक दशाब्दी में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अग्रिम पंक्ति में लड़ते हुए वीरगति पाई यथा स्वामी श्रद्धानंद जी, लाला लाजपतराय जी, वीर रामप्रसाद 'बिस्मिल', वीर गेंदालाल दीक्षित, वीर रोशनसिंह, वीर भगतसिंह, वीर सुखदेव आदि आदि।

राजकीय विरोध के होते हुए भी आर्यसमाज संकट सागर की लहरों को चीरता हुआ आगे बढ़ा। इसके दो प्रमुख कारण थे। (१) वेद के अटल सिद्धांतों में आर्यों का अडिग विश्वास (२) महर्षि के ऐक्यवादी दृष्टिकोण के कारण आर्यों में अपने लक्ष्य के लिए तड़प व परस्पर प्यार। इतिहास को आर्यों ने एक नया मोड़ दिया। शतियों के पश्चात् युग ने पहली बार यह दृश्य देखा कि जब आर्यवीर निज़ाम हैदराबाद से टक्कर लेने निकले तो महाशय खुशहालचंद, महाशय कृष्ण पंजाब से नेतृत्व करने के लिए आगे आए। इन दोनों के पीछे बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि के आर्य योद्धा आततायी से जूझने चल पड़े। राजस्थान से कुंवर चाँदकरण सेनापति बन कर आगे आये तो उ० प्र०, पंजाब, गुजरात, तामिलनाडु आदि प्रदेशों के धर्मवीर पीछे चल पड़े। हैदराबाद में शिखा-सूत्र धारियों की रक्षा के लिए पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण से आर्यों के दल उमड़-घुमड़ कर हैदराबाद को निकले।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की पराजय का एक मुख्य कारण यह भी तो था कि उत्तर भारत ने मराठों का पूरा साथ न दिया। विदेशी मुस्लिम

आक्रान्ता इस हिन्दु दृष्टिकोण का सदैव लाभ उठाते रहे। ऋषि के सैनिकों ने युग बदल कर दिखा दिया।

महाशोक की बात है कि आज आर्यसमाज के लीडरों ने सारे समाज को अपनी दलबंदी की गंदी दल-दल में फंसा दिया है। पहिले संगठन में मतभेद और झगड़े तो होते थे परन्तु ऐसा घिनौना रूप न था। आर्य समाज के हितों की रक्षा में सब एक होकर बलिदान देते थे। विचारिए ! कि संगठन कैसे हो ? अतीत का अवलोकन व वर्तमान की समस्या मैंने सामने रख दी। संगठन की रक्षा व सुदृढ़ता के लिए मेरे निम्न सुझाव हैं:—

(१) आर्यसमाज में प्रादेशिक व सार्वदेशिक स्तर पर किसी भी पद पर तथा सभाओं की अन्तरंग में किसी भी राजनैतिक दल से संबंधित किसी भी व्यक्ति को निर्वाचित न किया जाए। जिनकी आर्य समाज के प्रति अखण्ड निष्ठा हो केवल वही व्यक्ति सभाओं को चलाएं। जिन राजनैतिक व्यक्तियों को समाज से प्रेम है वह पदों से परे रहकर भी सेवा कर सकते हैं।

(२) जिनकी रुचि धर्म प्रचार में है, जो इसी कार्य को प्रमुखता देते हैं, केवल उन्हीं लोगों को आगे आने दिया जाए।

(३) सब प्रादेशिक प्रतिनिधि सभाओं व सार्वदेशिक सभा के अध्यक्ष पूरा समय देने वाले सन्यासी अथवा वानप्रस्थी हों। ऐसे-ऐसे व्यक्ति प्रधान बना दिये जाते हैं जिनके दर्शन ही आर्य जन ने कभी नहीं किए। अपने धंधे ही जिनके समाप्त नहीं होते वे समाज का क्या बनाएंगे ?

(४) सभाओं के अधिकारियों की योग्यता का कुछ तो स्तर हो। महात्मा नारायण स्वामी जी, स्वामी श्रद्धानंद जी, आचार्य रामदेव जी, पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, प्रो० सुधाकर जी आदि विभूतियों के उत्तराधिकारी किसी स्तर के व्यक्ति तो हों। महाशय कृष्ण जी के शब्दों में आज तो 'बौने दिमागों' के हाथ में आर्यसमाज आ फंसा है।

(५) बेकार के आंदोलनों में आर्यसमाज को न उलझाया जाए। आर्यसमाज सोच समझ कर कोई आंदोलन चलाए। यूंही चार नारेबाज लीडरों की लीडरी का शिकार सारे संगठन को न बनाया जाए। कितना अनर्थ ! कितना पतन है कि महर्षि को गालियां देने दिलाने वाले करपात्री जी, निरंजनदेव जी शंकराचार्य आदि को लीडर मानकर आर्यसमाज को आंदोलन में फंसाया जाए। जब-जब आर्यसमाज ने अपने तपोबल से आंदोलन किये आर्यसमाज विजयी हुआ। तब हमारा नेतृत्व विशुद्ध आर्यों के हाथ था। जब 'टिकट पंथी' रंग-बिरंगी टोपियों वाला नेतृत्व मिला तब से पराजय व पतन का इतिहास आरम्भ हुआ।

(६) सार्वदेशिक की नीति भी सार्वदेशिक हो। आर्यसमाजी राष्ट्रीय ढंग से सोचते व सेवा कार्य करते हैं यह बहुत अच्छी बात है। हमें आर्यों की राष्ट्र भावना पर गर्व है परन्तु, आर्यसमाज का विश्वव्यापी स्वरूप हमारी दृष्टि से ओझल तो न हो। श्री पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की इस चेतावनी को सम्मुख रखकर अपनी नीतियों का सुधार कर हम अपने संगठन की शोभा बढ़ा सकते हैं।

(७) आर्य समाज की नीतियां आर्य समाज के हितों को सामने रखकर निश्चित की जाएं। इस समय तो स्थिति वैसी ही जैसी भिन्न-भिन्न रंगों वाली बोतलों में पानी का अपना रंग तो दिखायी नहीं देता। बोतल के रंग में ही पानी रंगा जाता है। आर्यसमाज की नीति क्या है ? जनसंघी लीडरों की लीडरी की बोतल में हमारी नीति संघी। भाक्रांद की बोतल में भाक्रांद की नीति। कांग्रेस की बोतल में कांग्रेस की नीति की छाप हम पर लगाई जाती है।

आर्यसमाज में पूज्य स्वामी ब्रह्मानंद, पूज्य स्वामी सर्वानंद, पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी D.Sc., श्री पं. युधिष्ठिर जी, श्री पं. धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड, श्री पं. शांति प्रकाश जी, श्री डा. भवानीलाल भारतीय, श्री डा. मुन्शीराम जी सोम, डा. बाबूराम जी डी. लिट् सरीखे विद्वान् विचारक हैं। कमी कुछ नहीं। केवल संगठन की सुदृढ़ता चाहिए।

अतीत में विलीन मोत प्रोत को पुकारिये

भावना पुनीत मीत मन में आज धारिये
विश्व के सुधार का प्रकार क्या विचारिये

विश्व यह विनाश का है राग आज गा रहा
मौत का संगीत आज काल है सुना रहा
है मनुज फूट द्वैत द्वेष को बुला रहा
शिष्टता की वाटिका में आग है लगा रहा

अतीत में विलीन मीत प्रीत को पुकारिये—

वेदना से आज है मनुष्यता पुकारती
दनदनाती विश्व में है दुष्टता दहाड़ती
एकता की भावना निराश हो निहारती
मन में वीरता की है उमंग रे निनादती

जड़ से मीत दुराचार विश्व से उखाड़िये—

प्राणियों में प्यार की जो भावना है सो गई
राग रंग में जो लीन लय तरंग खो गई
उखाड़ दो अशिष्टता जो धृष्ठता है वो गई
फिर सुधार लो जो भूल भूल से है हो गई

जागृति को चेतना चैतन्य कर उभारिये।
विश्व के सुधार का प्रकार क्या विचारिये॥

□□□

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान हो के जल के समीप स्थित हो के नित्य कर्म करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

○

आर्यवर शिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।

○

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्री सेवनादि में नहीं फसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है, जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें, वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें, क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता।

○

जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा, योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्ति रूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज और शोध कार्य : जयदेव आर्य

आज का युग शोध का युग है। जीवन, साहित्य, विज्ञान, धर्म, इतिहास, शिक्षा, राजनीति आदि कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जिस पर कुछ न कुछ शोध-कार्य न हो रहा हो। छोटे से छोटे स्थान तथा संक्षिप्त से संक्षिप्त ऐतिहासिक काल में घटित घटनाओं एवं उसकी परिस्थितियों, छोटी से छोटी रचनाओं एवं उसके लेखकों, कम से कम महत्त्व वाले व्यक्तियों एवं उनके कार्यों, नगण्य से नगण्य भाषाओं और बोलियों तक को आधार बना कर विश्वविद्यालयों में उन पर शोध-ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं, विचार-गोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं, शोध-संस्थान स्थापित किये जा रहे हैं, तथा शोध-पत्रिकाएँ निकाली जा रही हैं। शङ्कर, रामानुज, मध्व, गुरु गोरखनाथ, वल्लभ, गुरु नानक, कबीर, गुरु गोविंदसिंह, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी, नेहरू जी, डॉ. जाकिर हुसैन, अरविंद, डॉ. राधाकृष्णन् जैसे आधुनिक व्यक्तियों के जीवन, सिद्धान्तों तथा कार्यों पर अनेक उत्तमोत्तम रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। कलकत्ता में नेता जी शोध-संस्थान केवल नेता जी के जीवन पर शोध-कार्य कर रहा है। इन महापुरुषों के महत्त्व और उन पर हो रहे कार्य की महर्षि के महत्त्व तथा उन पर हो रहे कार्य से तुलना करने पर मन में भारी खेद का उदय होता है। महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के अनेक पक्ष ऐसे हैं जो साहित्य एवं अनुसन्धान कीदृष्टि से अछूते से ही पड़े हैं और लोगों के मन में उनके विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ बैठी हुई हैं। आर्यसमाज में प्रकाशित होने वाला साहित्य अधिकांशतः या तो स्तर की दृष्टि से घटिया है, पिष्टपेषण है, या फिर उत्तम हो तो वितरण एव विज्ञापन की उचित व्यवस्था के अभाव में आर्यसमाज से वाहर के क्षेत्र में प्रसारित नहीं हो पाता। आर्यसमाज जैसी प्रचारक संस्था के लिए यह स्थिति भयावह है। इसके परिणामस्वरूप जहां कल परसों उत्पन्न हुए अनेक निकृष्ट प्रकार के सम्प्रदाय देश में एक शक्ति के रूप में उभर आए हैं और देश की सीमाओं को लांघ कर विदेशों तक में चर्चा का विषय बन गए हैं

वहां आर्यसमाज बाहर तो क्या, भारत के भी बहुत बड़े प्रदेश में सर्वथा अज्ञात है। उच्च शिक्षित और अशिक्षित—दोनों प्रकार के लोगों में अपरिचित सा बन कर यह केवल मध्यवर्ग के कुछ लोगों तक सीमित होकर रह गया है। आर्यसमाज के प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से जहां कई अन्य साधन अपेक्षित हैं, वहां-शोध-कार्य की ओर अविलम्ब ध्यान दिया जाना भी नितान्त आवश्यक है।

आर्यसमाज का साहित्यिक एवं शोध का कार्य आरम्भ में बड़ी तीव्र गति से चला जिससे देश-विदेश में इसका नाम चमका। डी. ए. वी. महाविद्यालय, लाहौर में अनुसन्धान-विभाग ने अपने कार्य से विश्व भर में ख्याति अर्जित की। पं. गुरुदत्त आदि के Vedic Magazine में प्रकाशित लेखों ने आर्यसमाज को विदेशी विद्वानों में भी चर्चा का विषय बना दिया। बाद में आचार्य रामदेव, पं. चमूपति, पं. शिवशंकर काव्यतीर्थ, पं. प्रियरत्न आर्ष (स्वा. ब्रह्ममुनि जी), पं. भगवद्दत्त आदि अनेक विद्वानों ने शोध का अच्छा कार्य किया। स्वा. विश्वेश्वरानन्द एवं स्वा. नित्यानन्द जी ने विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की स्थापना की जिसका उद्देश्य आर्यसमाज में वेद पर शोध-कार्य करना था। अब आचार्य विश्वबन्धु जी के मार्ग-निर्देशन में इस शोध-संस्थान के शोध-कार्य का आर्यसमाज से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। पं. हंसराज ने कई वैदिक और ब्राह्मण कोशों के निर्माण से आर्य समाज के सिद्धान्तों को पुष्ट किया। अब वह सोनीपत के जिज्ञासु स्मारक भवन में पुस्तकाध्यक्ष के रूप में घोर आर्थिक संकट की यातना झेलते हुए अपने अमूल्य जीवन को शीघ्र नष्ट करने के लिए बाध्य हैं। सारा आर्यसमाज उनके गुजारे की अच्छी व्यवस्था करके उनके परिश्रम और ज्ञान का कोई उपयोग नहीं कर सकता—यह बड़े खेद की बात है। पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु एवं श्री पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक ने वेद विषय में शोध-कार्य को अच्छी गति दी है। पं. सातवलेकर जी के अनेक ग्रन्थ आर्यसमाज के दृष्टिकोण के अच्छे पोषक हैं चाहे सर्वांश में ऐसा न हो। आचार्य वैद्यनाथ जी ने भी कई अच्छे ग्रन्थ लिखे और पं. धर्मदेव जी विद्या-मार्तण्ड ने भी। वेद के सम्बन्ध में एक अच्छा मौलिक कार्य पं. चमूपति जी का था—३ भागों में 'वेदार्थ कोष; जो महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य पर आधृत था पर खेद कि वह अब अप्राप्य है। उसका प्रकाशन समय की महती आवश्यकता है। पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने भी वैदिक मन्तव्यों एवं अर्थों के सम्बन्ध में कई मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत कीं। महर्षि दयानन्द के जीवन पर पं. लेखराम, देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय तथा स्वा. सत्यानन्द ने काफी अनुसन्धान किया। कलकत्ता के श्री दीनबन्धु शास्त्री द्वारा की गई 'महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी' विषयक खोज अभी विवाद का विषय बनी हुई है और उसकी प्रामाणिकता का निर्णय बहुत परिश्रम तथा व्यय-साध्य, पर आवश्यक है। आर्यसमाज के वैज्ञानिक विषयों पर भी पूर्वकाल में कुछ अनुसन्धान किया गया। गुरुकुल कांगड़ी, डी. ए. वी. कालेज लाहौर तथा दयानद ब्राह्म महाविद्यालय, लाहौर में यज्ञ-हवन के लाभों पर रासायनिक-प्रयोग किये गए जो बहुत उत्साह वर्द्धक रहे। दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय लाहौर द्वारा प्रकाशित देवयज्ञ-प्रदीपिका में उन प्रयोगों का विवरण उपलब्ध है। डॉ. सत्यप्रकाश D. Sc., डॉ. कुन्दनलाल अग्निहोत्री तथा डॉ. रामप्रकाश M. Sc. Ph. D. की पुस्तकें भी इस विषय में उपादेय हैं। आजकल पं. वीरसेन जी वेदश्रमी का 'यज्ञ और वर्षा' पर अनुसन्धान जारी है। सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम दो समुल्लासों का जिस शैली पर पं. वाचस्पति जी ने लाहौर से भाष्य निकाला, वह अत्यन्त आकर्षक और उपयोगी है। तीसरे समुल्लास पर भाष्य पं. शिवपूजनसिंह जी, कानपुर का है। आधुनिक शैली पर डॉ. सुधीर कुमार गुप्त ने 'महर्षि दयानन्द की वेद भाष्य शैली' पर Ph. D. की और महर्षि की वैदिक मान्यताओं के सम्बन्ध में कई शोध-पत्र प्रकाशित किए। डॉ परमानन्द ने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पर Ph. D. की। मेरठ के डॉ. वेद प्रकाश ने 'महर्षि की दार्शनिक देन' पर Ph. D. की है। अन्य भी 'सायण और दयानन्द के भाष्य का तुलनात्मक अध्ययन' आदि विषयों पर कई शोध-प्रबन्ध लिखे गए हैं, पर खेद है कि वर्षों बीत जाने पर भी वे अभी तक अप्रकाशित पड़े हैं। डॉ. भवानी लाल भारतीय के संस्कृत भाषा तथा साहित्य को तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण गुप्त के हिन्दी भाषा और साहित्य को

आर्यसमाज की देन के सम्बन्ध में लिखित शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। पं. गङ्गा प्रसाद उपाध्याय तथा उनके सुपुत्र डॉ. सत्यप्रकाश जी (अब स्वा. सत्यप्रकाश जी) ने जो कार्य किया है, वह अविस्मरणीय है। दर्शन-क्षेत्र में आचार्य उदयवीर जी शास्त्री का कार्य महत्वपूर्ण है।

ये सब प्रयास अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं, महान् हैं, पर हैं अधूरे ही। कारण? यह सभी कुछ इन व्यक्तियों ने व्यक्तिगत रूप से अपने सीमित साधनों से किया। उनमें कोई संयोजन, एक सूत्रता और एक लक्ष्यता नहीं थी। आज आवश्यकता है कि आर्यसमाज के सब प्रकार के शोध-कार्य के सुचारु संचालन के लिए एक 'दयानन्द वैदिक शोध संस्थान' स्थापित किया जाए, जिसको आर्य समाज के सभी विद्वानों, धनियों तथा संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हो। उसमें कार्य करने वाले तथा सहयोग देने वाले विद्वानों को आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था हो। उत्कृष्ट कोटि के साधनों के बिना उत्कृष्ट कोटि का अनुसन्धान एवं प्रकाशन सम्भव नहीं। आज दूसरे क्षेत्र के लेखकों को अधिक से अधिक साधन उपलब्ध कराए जा रहे हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट ने 'Gandhi, the Writer' नाम की लगभग २५० पृष्ठ की पुस्तक तैयार करने के लिए लेखक भवानी भट्टाचार्य को २० हजार डालर तथा अमरीका आने जाने का खर्च अर्थात् लगभग २ लाख रुपये का अनुदान दिया। हमारे यहां परिश्रम की बात तो दूर रही, न पुस्तकों की सहायता मिलती है, न निवास की और न ही प्रकाशन की। ऐसी अवस्था में आर्यसमाज में शोध का मार्ग कण्टकाकीर्ण है।

आर्यसमाज में ऐसे शोध-संस्थान के लिए असीम कार्य क्षेत्र खुला पड़ा है। महर्षि दयानन्द की कितनी ही अकेली अकेली पंक्तियों पर एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ आवश्यक है। पं. भगवद्दत्त जी के शब्दों में 'यह मनुस्मृति जो सृष्टि के आदि में हुई' महर्षि के एकादश समुल्लास के इन शब्दों पर एक ग्रन्थ लिखे जाने की आवश्यकता है। 'आर्यों का आदि जन्म स्थान तिब्बत है' यह एक स्वतंत्र विषय है। 'महाभारत पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा' यह एक ग्रन्थ का विषय है। इस प्रकार के कितने ही विषय हैं। महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के आधार पर 'वैदिक कोष' महर्षि द्वारा किए गए अर्थों का पोषक 'प्रमाण-कोष', वैदिक देवतावाद पर पूर्ण ग्रन्थ, वैदिक ऋषि और वैदिक छन्दों का स्वरूप-विवेचन; वेद में मांस, इतिहास, अद्वैतवाद, बहुदेवतावाद, सर्वविध सत्य विद्याएँ; वेद की भाषा; प्राचीन वेद-भाष्य शैली आदि शतशः विषय अनुसंधेय हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति सभ्यता, कला आदि के विषय पृथक् हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन एवं कार्यों पर अनुसंधान एक पृथक् विषय है। इसके लिए लन्दन और स्विट्जरलैण्ड तथा अन्य देश के पुस्तकालयों तक की खोज जरूरी है, जहां कि महर्षि दयानन्द के समय के सरकारी तथा गैर सरकारी विवरण उपलब्ध होने की सम्भावना हो सकती है। श्याम जी कृष्ण वर्मा के पुस्तकालय की खोज आवश्यक है। आर्यसमाज के इतिहास के लिए जिस-जिस भी देश में आर्य समाजी गए, उन-उन देशों से विवरण प्राप्त करना आवश्यक है। आर्य समाज के साहित्य की आद्योपान्त सूची आवश्यक है। महर्षि दयानन्द के सभी ग्रन्थों पर विस्तृत भाष्य लिखा जाना चाहिए। इस कार्य में अनेक विषयों के विद्वानों का सहयोग आवश्यक है। महर्षि के ग्रन्थों के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी आवश्यक हैं। महर्षि की शैली पर शेष वेद भाष्य करना तथा ऋषि की शैली का स्पष्टीकरण और उनके भाष्य की प्रामाणिकता तथा विशेषता सर्वाधिक विवेच्य विषय है। 'छहों दर्शनों में अविरोध' 'वैदिक शाखाओं का वेद व्याख्यानत्व' 'ब्राह्मण ग्रन्थों का वेद भाष्य में योगदान' आदि महत्त्वपूर्ण विषय हैं। आर्यसमाज के अनेक दार्शनिक विषय प्रतिपादन की अपेक्षा रखते हैं। आर्य समाज का देश के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में क्या योगदान और प्रभाव रहा है, यह भी अध्ययन का विषय बनना चाहिये। शिक्षा विषयक ऋषि का दृष्टिकोण तथा शिक्षा-क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान एक अन्य विषय है। ऋषि और आर्यसमाज के सम्बंध में किसने, कब, कहां और क्या लिखा, इस की सूची आवश्यक है। जिस प्रकार पिछले दिनों सर्वखाप पंचायत के रेकार्ड से स्वामी विरजानन्द का भाषण तथा अभिनन्दन का विवरण मिला, उस प्रकार न जाने कितने ही और तथ्य अभी अज्ञात पड़े हैं। उन सबको प्रकाश में लाने के लिए और आर्यसमाज के सिद्धांतों के प्रचार तथा प्रसार के लिए एक ऐसे संगठित प्रयास की महती आवश्यकता है जो युग की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। ○○

आर्य समाज की भावी प्रचार योजना : जयसिंह गायकवाड़

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का महान् नारा लेकर हम वेद का प्रचार करने के लिए चिन्तित रहते हैं। आज जब कि रोज सैकड़ों क्विंटल प्रचार सामग्री प्रेसों से छपकर, हजारों मीटर फिल्में प्रदर्शन के लिए स्टूडियो से तथा इसी प्रकार टेलीविजन पर दर्शाने व रेडियो पर सुनाने के लिए मीटरों टेप निकल कर जनता के बीच डाले जा रहे हैं, हम अपनी सदी पुरानी परिपाटी से चिपके हुए प्रचार किये जा रहे हैं।

लगभग सौ वर्ष पूर्व की हमारी स्थिति में कितना अन्तर आया है इसके लिए अधिकृत रूप से कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं है अतः अभी तक के प्रचार के परिणामों के बारे में केवल अन्दाज ही लगाया जा सकता है।

हमारा प्रचार किस प्रकार चल रहा है इस पर एक विहंगम दृष्टि डालना उपयुक्त होगा।

(क) स्थानीय स्तर पर—आर्य समाजें साप्ताहिक सत्संगों आदि के अतिरिक्त वार्षिकोत्सव एवं पर्वों का आयोजन करती हैं। जनसाधारण के बीच पहुँचने का अवसर वार्षिकोत्सव के समय ही आता है। मोटे रूप में देश में १ लाख से २,५०,००० लाख लोगों के बीच एक आर्य समाज है। इन उत्सवों पर यदि १ से २,५०० तक उपस्थिति हुई तो १ प्रतिशत व्यक्ति तक हमारा पहुँचना हो पाता है। औसतन ४-५ हजार रुपया इन उत्सवों पर व्यय होता है। उत्सवों की समाप्ति पर न तो श्रोताओं को और नहीं आयोजकों को सन्तोष होता है। स्व० श्री ज्ञानानन्दजी ने लिखा है "आर्य समाज के २-३ दिन के महोसत्वों में केवल खेल तमाशों के सिवाय कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा"। हमारा विचार है कि थोड़ी या अधिक मात्रा में सर्व साधारण आर्य इस उक्ति से सहमत होंगे।

(ख) प्रतिनिधि सभाओं की ओर से—इस सम्बन्ध में विशेष न कहते हुए हम पं० धर्मदेव जी विद्या मार्तण्ड जी के इस महत्त्वपूर्ण भाषण से, जिसे उन्होंने गत महा सम्मेलन (दशम) के वेद सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिया था, निम्न उद्धरण

प्रस्तुत करना चाहेंगे "वर्तमान आर्य प्रतिनिधि सभाओं की ओर से वर्तमान वेद प्रचार दुर्भाग्यवश नाम मात्र होता है।"

(ग) सार्वदेशिक स्तर पर—देश विदेश में सार्वदेशिक सभा के द्वारा प्रचार किया जाता है। सार्वदेशिक सभा कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में कार्य कर रही है। देश में प्रचार करना तो प्रतिनिधि सभाओं का उत्तरदायित्व होना चाहिए। विदेशों में प्रचार और विभिन्न स्तरों पर समन्वय सार्वदेशिक की चिंता होनी चाहिये। दुर्भाग्यवश सार्वदेशिक सभा के द्वारा उपदेशकों को तैयार करने का जो महत्त्वपूर्ण कार्य है वह एक प्रकार से उपेक्षित है। आसाम, गंगाक्षेत्र, गोवा आदि में सार्वदेशिक सभा द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। विदेशों में चाहे सार्वदेशिक सभा के तत्त्वाधान में या अन्य प्रकार से जो प्रचार होता है वह प्रायः विदेशों में जो भारतीय हैं उनके बीच ही होता है, विदेशियों में नहीं। इस प्रकार हम शायद संतोष के लिए कह लेते हैं कि विदेशों में प्रचार हो रहा है। हमारे पास कितनी विदेशी भाषाओं में आर्य साहित्य है? हमारे कितने उपदेशक महानुभाव उन देशों की भाषा, संस्कृति, साहित्य आदि से परिचित होते हैं जहां वे प्रचार करने जाते हैं। सार्वदेशिक सभा द्वारा सन् १९७० में विदेश प्रचार मद में रु. ७४०२=५७ पैसे खर्च किये गये हैं। अमेरिका में पादरी रैक्स, "टाइम्स" के अनुसार अपने निजी वायुयान में यात्रा करते हैं व ३५५ टेलीविजन स्टेशनों से अपनी वार्ताएं प्रसारित करते हैं। हम सार्वदेशिक स्तर पर ८०००=०० प्रतिवर्ष मुश्किल से व्यय करते हैं। यह राशि ही हमारे विदेश प्रचार का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करती है। अस्तु। सुबह का भूला हुआ यदि शाम तक घर वापस आ जाये तो भूला नहीं कहलाता, इस युक्ति के अनुसार यदि हम 'बीति ताहि विसार दे और आगे की सुध लें' तो कोई बुरा नहीं होगा।

भविष्य के लिए यदि योजनाबद्ध ढग से कार्य किया जावे तो हम अवश्य ही अपने महत्त्वाकांक्षी लक्ष तकपहुँचने का विचार कर सकते हैं। अन्यथा शेख चिल्ली वाली बात ही होगी। योजना निर्माण के लिए विचार मंथन की और विचार मंथन के लिए सामंजस्य पूर्ण एवं समन्वयात्मक वातावरण की आवश्यकता होती है। इस वातावरण के निर्माण की आवश्कता है, यदि यह हो गया तो अधिकांश कार्य सफल हो गया ऐसा माना जा सकता है। हमें अपनी लीक छोड़नी होगी।

दृश्यश्राव्य (Audio Visual) प्रणाली

यदि हमें सर्व साधारणजन (masses) तक पहुँचना है तो केवल दृश्य श्रव्य प्रणाली के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। आर्य समाजी प्रारम्भ से ही दूसरे व्यक्तियों से दो कदम आगे चलते हैं। मैजिक लेंटर्न का प्रयोग प्रारम्भ हुआ था तभी उसे आर्य समाजी उपदेशकों ने अंगीकार किया था। अभी भी कई महानुभाव उसका उपयोग करते हैं। पर क्या 'सुपर सानिक एज' में हम बैलगाड़ी का अवलम्ब ही लेते रहेंगे। यदि हां तो हम अवश्य ही पीछे छूट जावेंगे और पिछड़े तो हैं ही और पिछड़ते जावेंगे।

प्रत्येक आर्य समाज में जो कुछ साधन जुटा सकता है टेपरिकार्डर होना आवश्यक है। देश में स्वा. आनन्दस्वामी जी महाराज आदि कई महानुभावों के भाषण टेप किए गये हैं पर उनका लाभ दूसरों को प्राप्त नहीं होता। यदि अभी जो भाषण 'टेप' हुए हैं उनके अतिरिक्त २५-५० भाषण और 'टेप' करवा लिये जावें एवं उनका आदान प्रदान समाजों को होता रहे तो उससे बड़ा लाभ हो सकता है। इसके लिए सार्वदेशिक सभा में इन 'टेपों' की लाइब्रेरी बनाई जा सकती है या वह एक माध्यम बन सकती है आदान प्रदान के लिए।

दूसरी बात है सुमधुर, सुरीले, कलात्मक दृष्टि से उच्च स्तर के संगीत के रिकार्डों की। यह प्रसन्नता की बात है कि श्री प्रकाशचंद्र जी के अपने ही कार्य क्षेत्र में, उनसे ही प्रमुखतः प्रेरणा प्राप्त करके ६-८ रिकार्ड तैयार किए गए हैं। इनमें से ५ रिकार्ड तो शायद समाप्त हो गए हैं। आशा है यह क्रम इसी तरह चलता रहेगा। हमें यह प्रयास करना होगा कि २-३ रिकार्ड, गीत एवं भजनों के, देश के उच्च कोटि के कलाकारों के द्वारा तैयार करवाये जावें आवश्यकतानुसार हमें कुछ पूर्वाग्रहों को छोड़ना भी पड़ सकता है। इस प्रकार के रिकार्ड बनाने के लिए सार्वदेशिक सभा या अन्य कोई सभा कार्य करे तो

कार्य अवश्य सफलता से हो सकता है। योजना यदि सभा की ओर से आर्य समाजों एवं आर्य जनता के संमुख आये तो समाजों एवं आर्यों की ओर से १०-१५ रुपये अग्रिम के रूप में अवश्य ही प्राप्त हो सकते हैं। इस तरह तैयार किये कये रिकार्ड तो बाजार में भी, लोकप्रियता के कारण खप जावेंगे। आज जिस प्रकार हम अपना साहित्य वेचने के लिए मुहिम चलाते हैं उसी प्रकार यदि उच्च कोटि के रिकार्डों के लिए भी चलाना पड़े तो कोई बुरा नहीं होगा।

तीसरी बात है डाकूमेंटरी या पूरी लम्बाई की फिल्में तैयार करने की। इस बात को पढ़कर शायद कुछ भाई चौंक जावें। पर वैसी आवश्यकता नहीं है। इसमें सन्देह नहीं है कि महर्षि दयानन्द ने स्वांग रचने की मनाही की है और हमें उनकी बात एवं भावना का आदर करना चाहिये। पर यह आवश्यक नहीं है कि फिल्म बनाने में स्वांग करना आवश्यक ही होवे। महर्षि दयानन्द जी ने अपनी रचनाएं स्वयं प्रश्नोत्तर—'डायलोग' रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत की हैं। अपने इस दृष्टिकोण को रखकर फिल्में बनाई जा सकती हैं। एक वात हमें यह भी ध्यान में रखनी चाहिये कि कितने आर्यसमाजी या आर्यसमाजियों के बच्चे फिल्में नहीं देखते। अस्तु। प्रयोगात्मक रूप से इसे प्रारम्भ किया जा सकता है। इसके लिए 'स्क्रिप्ट्स', सार्वदेशिक या अन्य किसी अधिकृत संस्था द्वारा, बुलाई जावें। सभा उत्तम रचना को स्वीकार करे एवं बाद में उसे फिल्माया जा सकता है। देश में अच्छी बुरी सब प्रकार की फिल्में बनती हैं, उसी प्रकार इसकी भी फिल्म बन सकती है। आर्थिक समस्या का समाधान निकल ही सकता है। एक फिल्म अगर हिन्दी भाषा में बन जाये तो उसे अन्य भाषाओं में 'डॅब' कराया जा सकता है।

इस प्रकार बनी हुई टेपों, रिकार्डों एवं फिल्मों से देश एवं विदेशों में प्रचार बड़ी सुगमता से हो सकेगा।

विदेशों में प्रचार

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि हम कई बार 'लड़ैयों में गोला बारूद बर्बाद करते हैं।' ऊपर पं० धर्मदेव जी के जिस भाषण का मैंने उल्लेख किया है उस में यह भी कहा गया था कि स्वा० समर्पणानन्द जी सरस्वती महा० (अब स्वर्गीय) को आर्य समाजों ने वार्षिकोत्सवों में ही लगा रखा जिससे वे महत्त्वपूर्ण भाष्य-कार्य नहीं कर सके। यह विडम्बना ही है न ! हमें आगे पछतावा न होवे इन बात का ध्यान रखना होगा। युग 'विशेषज्ञता' का है। हमें हर देश में प्रचार करने की क्षमता वाले अपने में से महानुभाव की खोज करनी होगी। यदि उपलब्ध न हों तो उसके लिए तैयारी करनी होगी और आर्य माध्यम से ही प्रचार कराना। प्रतिवर्ष कम से कम एक किसी विदेशी भाषा में आर्य समाज के प्रारम्भिक प्रचार के लिए आवश्यक साहित्य तैयार करवाना होगा। भले ही एक दीर्घकालीन योजना बनाई जावे पर उसे बनाकर कार्य करना होगा।

साहित्य: रचना, प्रकाश और वितरण

सार्वदेशिक स्तर पर देश के चोटी के आर्य विद्वानों की एक बैठक बुलाकर यह तय करना आवश्यक है कि कौनसा व कितना साहित्य तैयार करना आवश्यक है। इसके लिए आवश्यकतानुसार प्राथमिकता भी निर्धारित करनी होगी। इसके वाद विद्वान् महानुभावों से उक्त साहित्य तैयार करवाया जावे।

प्रकाशन का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। आर्य जगत् में लब्ध प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थाएं हैं। परन्तु उनके द्वारा पृथक् २ प्रकाशन किये जाते हैं। यह निर्विवाद है कि अधिक संख्या में छपाया साहित्य सस्ता और अच्छा पड़ता है। यदि इस बात को ध्यान में रखकर ऊपर वर्णित साहित्य प्राथमिकता के आधार पर निर्धारित करके उसे प्रकाशित करने के लिए प्रकाशकों को दे दिया जावे तो प्रकाशक उन्हें छापने के लिए तैयार हो जावेंगे क्योंकि उन्हें तो इस बात की खातिरी तो होगी ही कि यह अधिकृत साहित्य है एवं अवश्यमेव बिक ही जावेगा। प्रकाशकों के बीच समन्वय लाने के लिए सार्वदेशिक स्तर पर विचार विनिमय होना चाहिये।

आर्य साहित्य का स्तर अच्छा होता है पर उसकी विक्री के लिये विशेषकर विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों, विद्यालयों एवं सार्वजनिक वाचनालयों में उसे समूल्य वेचने के लिए प्रयास नहीं होते। इस सम्बन्ध में कार्य होना आवश्यक है।

अन्य स्फुट बातें

प्रचारार्थ सेमिनार्स, शिविर, भाषण-मालाओं आदि के माध्यम को अपनाना चाहिये। यह कार्य स्थानीय, प्रदेशीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सभी स्तरों पर करना होगा।

इसी प्रकार विश्वविद्यालयों में दयानन्द या वैदिक पीठ कायम करने के लिए साधन जुटाने चाहिये।

विश्वविद्यालयों में दानदाताओं की ओर से कई मैडल रखे जाते हैं। इस प्रकार के मैडल रखते समय ऐसी व्यवस्था की जा सकती हैं जिससे कि वेद प्रचार में सहायता प्राप्त हो सके।

संस्थाओं में कई प्रकार के फोरम, रिसर्च संगठन होते हैं जो गत दिनों की गतिविधियों के प्रभाव के बारे में गवेषणा करती रहती हैं। मूल्यांकन एवं अनुसरण ये दो आवश्यक बात हैं। आर्य जगत् की समस्त गतिविधियों की तारीख पूर्ण जानकारी यथासम्भव सार्वदेशिक कार्यालय में होनी चाहिये। इस जानकारी के आधार पर मूल्यांकन हो सकता है। आगे की योजनाओं के निर्माण में इस मूल्यांकन से बड़ा लाभ प्राप्त होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रचार, श्रम एवं धन साध्य है हैं परन्तु योजनाबद्ध ढंग से कार्य करने से सफलता के मार्ग पर अग्रसर हुआ जा सकता है। ⊙⊙

वेद ईश्वर कृत होने से निर्भ्रान्त, स्वत:प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। इसलिए वेद हमको मान्य है, हमारा मत 'वेद' है। वेद का सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य-मात्र को पढ़ने का अधिकार है।

⊙⊙

यदि तुम को सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।

⊙○

सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

○⊙

जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

हिन्दी काव्य के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान : क्षेमचन्द्र 'सुमन'

हिन्दी के अन्य अंगों की समृद्धि में सहयोग देने के साथ-साथ आर्यसमाज ने काव्य के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान किया है। यह आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन का ही प्रताप था कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे कवियों ने भी अपने काव्य का विषय उन्हीं कुरीतियों को बनाया, जिन्हें आर्यसमाज देश से मिटाना चाहता था। हिन्दी कविता में समाज सुधार के अंकुर उत्पन्न करने में जहाँ आगे कई कवियों ने उल्लेखनीय कार्य किया वहाँ सबसे पहले उसके भजनीकों ने अपने गीतों और भजनों के माध्यम से भारतीय जनता में समाज-सुधार की भावना भरी। अतीतकाल के ऐसे आर्य भजनीकों में पं० बस्तीराम, ठा० तेजसिंह, पं० वासदेव शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस परम्परा में कुँवर सुखलाल का नाम भी अग्रगण्य है, जो आज भी अपनी सुरीली वाणी से जनता में नई चेतना का संचार करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं।

कदाचित् यह बात आप में से बहुत कम लोग जानते होंगे कि हिन्दी के प्रख्यात नाटककार और अभिनेता श्री नारायणप्रसाद 'बेताब' भी एक अच्छे कवि थे। उन्होंने अपने नाटकों और प्रहसनों के गीत स्वयं ही लिखे थे। आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों में गाया जाने वाला—

'अजब हैरान हूँ भगवान् तुम्हें क्यों कर रिझाऊँ मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी, जिसे सेवा में लाऊँ मैं।'

यह गीत लिखकर उन्होंने जहाँ जनता में निराकारोपासना की पुष्टि की वहाँ इसमें तर्क और शिष्ट व्यंग्य की झलक भी दिखाई देती है।

बाद में हिन्दी-काव्य की समृद्धि में योग देने वाले कवियों में कविता कामिनीकान्त पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व का स्थान रखता है। उनकी 'अनुराग रत्न', 'गर्भरंडा रहस्य' और 'वायस विजय' आदि काव्य कृतियाँ हिन्दी के काव्य-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

उनके सुपुत्र डॉ० हरिशंकर शर्मा भी एक सिद्ध कवि और साहित्यकार थे।

उनकी प्रमुखतम रचनाओं में 'महर्षि महिमा', 'राम राज्य' और 'घास पात' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से उनके अन्तिम काव्य-संकलन पर उन्हें 'देव पुरस्कार' प्रदान किया गया था। शर्मा जी को आगरा विश्वविद्यालय ने 'डी. लिट्' की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया था और उन्हें भारत के राष्ट्रपति ने 'पद्म श्री' की उपाधि भी प्रदान की थी, जिसे उन्होंने बाद में त्याग दिया था।

'शंकर' जी के प्रभाव के कारण उनके प्रमुख शिष्य 'कर्ण कवि' भी इस दिशा में आगे बढ़े और उन्होंने अपनी वीर रस की रचनाओं से देश के नवयुवकों में जीवन और जागृति का अभूतपूर्व सन्देश भरा। इनके अतिरिक्त आर्यसमाज में जिन कवियों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी, उनमें डॉ० सूर्यदेव शर्मा और डॉ० मुन्शीराम शर्मा 'सोम' भी अग्रणी हैं। डॉ० सूर्य देव शर्मा ने जहाँ अनेक वेद-मन्त्रों के पद्यानुवाद प्रस्तुत किये वहाँ डॉ० मुन्शीराम 'सोम' ने सन्ध्या और हवन के मन्त्रों का पद्यानुवाद किया है। उनकी इस पुस्तक का नाम 'सन्ध्या-संगीत' है। अजमेर के 'प्रकाश कविरत्न' का नाम भी इस क्षेत्र में अपना अनन्य स्थान रखता है, जिनके अभिनन्दन में यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। श्री पन्नालाल 'पीयूष' भी इसी परम्परा के कवि हैं। 'प्रकाश कविरत्न' और पन्नालाल पीयूष' की किसी समय आर्य क्षेत्र में बड़ी धूम थी। श्री ओंकार मिश्र 'प्रणव' और श्री 'कुसुमाकर' भी ऐसे ही समादृत कवि हैं। मेरठ के श्री हरिशरण श्री वास्तव 'मराल' भी अच्छे कवि थे।

यही नहीं कि आर्यसमाज ने स्फुट काव्य रचना करने वाले कवि ही प्रदान किये, बल्कि प्रबन्ध-काव्यों के निर्माण की ओर भी कुछ कवियों का ध्यान गया। इस सन्दर्भ में ठा. गदाधरसिंह, वैद्य गदाधरप्रसाद, रमेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर, यज्ञदत्त शर्मा और विमलचन्द 'विमलेश' के नाम विशेष स्मरणीय हैं। ठा० गदाधरसिंह ने जहाँ 'दयानन्दायन' नाम से महर्षि दयानन्द का जीवन चरित लिखा वहाँ वैद्य गदाधरप्रसाद ने सत्यार्थप्रकाश का पद्यानुवाद 'सत्य सागर' नाम से प्रस्तुत करने का साहस किया। यह ग्रंथ रामायण की भाँति दोहा तथा चौपाई छन्द में लिखा गया है और इसकी भाषा ब्रजभाषा है। इसकी लोकप्रियता का सबसे उज्ज्वल प्रमाण यही है कि इस के अभी तक ४-५ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ० विद्याभूषण 'विभु' की रचनाएँ भी अपनी विशिष्टता के लिए याद की जायेंगी। श्री रमेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर ने 'दयानन्द गुरु पथ' नाम से जहाँ स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित लिखा है वहाँ श्री यज्ञदत्त शर्मा और श्री विमलचन्द्र 'विमलेश' ने भी उनकी प्रशस्ति में स्वतन्त्र काव्यों का निर्माण किया है। श्री रमेशचन्द्र शास्त्री ने देव-पुरुष गांधी, नाम से गान्धी-जन्म-शती पर एक विशाल महाकाव्य भी लिखा है, जिसे पर्याप्त समादर मिला है।

हिन्दी-काव्य को अभिवृद्ध करने की दिशा में गुरुकुलों का बड़ा हाथ रहा है। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों में जहाँ प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, वंशीधर विद्यालंकार, वागीश्वर विद्यालंकार, धर्मदेव विद्यावाचस्पति, रामनाथ वेदालंकार, निरंजनदेव आयुर्वेदालंकार 'प्रियहंस', सत्यपाल विद्यालंकार 'उन्मुख', सत्यभूषण 'योगी' वेदालकार, 'आनन्दवर्धन विद्यालंकार' रत्नपारखी', विराज वेदालंकार और प्रताप विद्यालंकार-जैसे उत्कृष्ट कवि हुए हैं वहाँ गुरुकुल वृन्दावन भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहा। गुरुकुल वृन्दावन के पुराने स्नातकों और छात्रों में स्व० द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्त शिरोमणि, हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक', कमला प्रसाद 'कमल', भद्रजित् 'भद्र' आयुर्वेद-शिरोमणि और रत्नाकर आयुर्वेद शिरोमणि के नाम उल्लेख्य हैं। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से दीक्षित और प्रशिक्षित कवियों में से श्री रमेशचन्द्र शास्त्री विद्याभास्कर और विमलचन्द्र 'विमलेश' के अतिरिक्त डॉ० कपिल देव द्विवेदी, 'चन्द्रभानु 'अकिंचन' और रामप्रिय मिश्र 'लाल धुआँ' उल्लेखनीय हैं। और यदि अपना उल्लेख क्षन्तव्य हो तो मैं यह अत्यन्त गौरव के साथ कह सकता हूँ कि मैं भी गुरुकुल ज्वालापुर की पावन भूमि में ही लोट-लोटकर चला, पला और बढ़ा हूँ।

इस प्रकार इस संक्षिप्त से आलेख से पाठक इस परिणाम पर पहुँचे बिना न रहेंगे कि आर्यसमाज ने हिन्दी-काव्य, साहित्य की अभिवृद्धि में जो योगदान दिया है वह अभूतपूर्व और उल्लेखनीय है। □□

आर्य समाज का भविष्य : विश्वनाथ शास्त्री

महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार चैत्र सुदी ५ संवत् १९३२ वि. (सन् १८७५) शनिवार को बंबई नगर के गिरगांव मुहल्ले में डा. माणिकचन्द की वाटिका में सायं समय आर्यसमाज की शुभ स्थापना हुई। वैदिक धर्म प्रचारक सभा की नींव रखी गई। सुधार का कल्पतरु, आरोपित किया गया। आर्य जाति में नूतन जीवन और जागृति उत्पन्न करने का साधन उपस्थित हो गया। आर्य मानमर्यादा तथा आर्य गौरव-गरिमा की रक्षा के निमित्त एक सैनिक संघ संगठित हुआ। सर्व साधारण को धर्म प्रदान करने के लिए एक सत्संग गंगा का स्रोत खुल गया और दीन दुःखियों की सहायता के लिये एक सेवक समिति उपस्थित हो गई। इन शब्दों में स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने "श्रीमद्दयानन्द प्रकाश" में आर्यसमाज की स्थापना का वर्णन किया है।

आर्यसमाज की स्थापना के बाद महर्षि केवल आठ वर्ष और जीवित रहे। आठ वर्ष का ही उन का वह सारा काम है जो उन्होंने आर्य समाज की स्थापना आदि के संबंध में किया था। महर्षि के समय में ही बंबई, पूना, लाहौर, अमृतसर, गुरुदास-पुर, फिरोज़पुर, रावलपिंडी, झेलम, वजीराबाद, गुजरांवाला, मुलतान, रुड़की, मेरठ, देहरादून, मुरादाबाद, बदायूं, शाहजहांपुर, कानपुर, दानापुर, काशी, लखनऊ, फर्रुखा-बाद, मैनपुरी, आगरा, जयपुर, अजमेर, मसूदा इत्यादि स्थानों में आर्यसमाजों की स्थापना हो चुकी थी।

महर्षि ने स्पष्ट कहा है कि आर्यसमाज की स्थापना करके उन्होंने कोई नवीन पन्थ नहीं चलाया अपितु प्राचीन वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, सभ्यता और परम्परा की पुनः स्थापना की है। उनका उद्देश्य केवल यह था कि समय बीतने के साथ-साथ सत्य सनातन धर्म और उसके अनुयायिओं में जो अवैदिक बातें, अंध-परम्पराएं, रूढ़ियां और सामाजिक कुरीतियां आ गई हैं उन्हें दूर किया जावे और शुद्ध वैदिक धर्म जनसाधारण के सामने रखा जावे। महर्षि प्रत्येक व्यक्ति और

समाज की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते थे। वे चाहते थे कि व्यक्ति और समष्टि के शरीर, मन और आत्मा सब स्वस्थ हों। इसी आधार पर आर्यसमाज ने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक सभी प्रकार के सुधारों के करने का यत्न किया। आर्यसमाज एक आस्तिक संस्था है। इसका आधार तर्क (बुद्धिवाद) पर है इसलिए वह धार्मिक अन्धविश्वासों को नहीं मानता। वह अवतार वाद, मूर्तिपूजा, रूढ़िगत पूजापाठ, यंत्र-मंत्र, जादू टोने, कृत्रिम देवी देवताओं आदि में विश्वास नहीं रखता। आर्यसमाज का धर्म मंदिरों तक ही सीमित नहीं, अपितु वह व्यक्ति और समष्टि के सदा साथ रहने वाली वस्तु है। आर्यसमाज मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक दशा में धर्म का पालन करना चाहिए।

सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज मनुष्य मात्र की समता में विश्वास रखता है। उसकी दृष्टि में कोई किसी से ऊँचा या नीचा नहीं प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार है। वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं होती, गुण कर्म से होती है, स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त कर उन्नति करने का पुरुषों के समान ही अधिकार है। शूद्र अथवा अछूत भी औरों के समान उन्नति करने का अधिकार रखते हैं। आर्यसमाज बालविवाह और अनमेल विवाहों का विरोधी है।

राजनैतिक क्षेत्र में आर्यसमाज "स्वराज्य" का पक्षपाती है। वह महर्षि के इस कथन में विश्वास करता है—कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

आर्यसमाज शिक्षा के क्षेत्र में नेतृत्व करता रहा है। बालकों और कन्याओं की शिक्षा के लिए इस ने अनेक संस्थाएँ खोलीं हैं। उत्तर भारत में तो आर्य संस्थाओं का जाल सा बिछा हुआ है।

आर्यसमाज ने शुद्धि का आन्दोलन चला कर हिंदू जगत् में एक क्रान्ति पैदा कर दी है। हिंदू जाति में शुद्धि एकदम नया आंदोलन है। इस का प्रथम पग तो यह रहा है कि हिंदू जाति के अभी अभी बिछुड़े हुए विधर्मियों को हिंदू धर्म में लाना है। इस दिशा में तो आर्यसमाज को सफलता भी मिली है। वैसे अन्य विधर्मियों की शुद्धि भी आर्यसमाज का एक कार्यक्रम ही है।

आर्यसमाज के प्रति लोगों के आकर्षण के निम्न लिखित कारण हैं—

(१) एक परमात्मा की पूजा (२) वेदों की पुनः प्रतिष्ठा (३) जन्म से जात पात का खंडन (४) दलितोद्धार और शुद्धि (५) समाज सेवा (६) देश भक्ति के भावों को भरना।

आर्यसमाज ने थोड़े से ही समय में अपने कार्यक्षेत्र को बड़ा विस्तृत कर लिया है। इस समय इसका विस्तार इस प्रकार है।

(१) भारत और उसके बाहर ४००० से अधिक आर्य समाजें हैं जिन में से ३००० भारत में हैं।

(२) भारत, नेपाल, अफ्रीका, ट्रीनीडाड, फिजी आदि में आर्यवीर दल की लगभग ५४० शाखाएं हैं।

(३) सब मिलाकर लगभग २००आर्यकुमार अथवा आर्य-युवक सभाएं हैं—

(४) आर्यसमाजों की ओर से ३००० के लगभग लड़कों और लड़कियों की शिक्षा संस्थाएं चलाई जा रही हैं जिनमें ३०० से अधिक डिग्री कालेज और हाई स्कूल हैं। शेष विद्यालय अथवा पाठशालाएं हैं।

(५) ६० बालकों तथा बालिकाओं के गुरुकुल अथवा संस्कृत पाठशालाएं हैं।

(६) ४०० से अधिक अछूतों की पाठशालाएं हैं।

(७) १२ से अधिक टेक्नीकल इंस्टीट्यूट हैं।

(८) २०० से ऊपर अनाथालय, विधवा-आश्रम, धर्मार्थ औषधालय, गोशालाएँ हैं।

(९) ५०० के लगभग अतिथि भवन और व्यायाम-शालाएं हैं।

(१०) ५०० से अधिक प्रेस, पत्र पत्रिकाएँ, पुस्तकालय और वाचनालय हैं।

(११) आर्यसमाज के १००० से अधिक उपदेशक, व्याख्याता, प्रचारक हैं।

(१२) आर्यों की संख्या एक करोड़ से अधिक होगी।

आर्य समाज का बहिरंग परिचय देने के पश्चात् हम कुछ अन्तरंग परिचय भी देते हैं। आर्य समाज के दस

नियम है और यह उन्हीं के आधार पर ठहरा हुआ है। पहले तीन नियमों में आर्यसमाज का दर्शन आ गया है पहले और दूसरे नियम से स्पष्ट है कि आर्यसमाज ईश्वर और वह भी निराकार ईश्वर में विश्वास रखता है। तीसरे नियम से स्पष्ट है कि वह वेद को अपना धर्म ग्रन्थ मानता है। शेष सात नियम मानवीय गुणों का वर्णन करते हैं। इनमें सत्य, धर्म, प्रीतिपूर्वक व्यवहार विद्या की महिमा गाई है। नवें तथा दसवें नियम में सामाजिक संगठन पर बल दिया गया है। आर्य समाज का छठा नियम आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र की ओर संकेत करता है और कहता है कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। इस प्रकार हम ने देख लिया कि आर्य समाज के नियमों में इतनी सामग्री मौजूद है जो व्यक्ति और समाज को अधिक से अधिक उन्नत बनाने के लिए पर्याप्त है।

आर्यसमाज के नियमों में मानवीय गुणों यथा सत्य, धर्म, विद्या, सद्व्यवहार, सामाजिक संगठन पर बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त आर्य समाज का एक विशिष्ट दर्शन भी है जिस को हम मन्तव्य कह सकते हैं। मन्तव्य अथवा दर्शन का संबंध मस्तिष्क से ही अधिक होता है अतः मन्तव्य अथवा दर्शन विशेष रूप से विद्वानों की वस्तु है। जन साधारण के लिए यह कुछ कठिन विषय है।

संक्षेप में हम यह कह सकते है जो कुछ वेदों में लिखा है वही आर्य समाज का मन्तव्य है। परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि जनता वेद के तत्व को समझने में असमर्थ सी है अतः आर्य समाज के मतन्व्यों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त कर देना लाभप्रद रहेगा इस दृष्टि से महर्षि दयानन्द ने स्वरचित "सत्यार्थ प्रकाश" के अन्त में इनको दे दिया है वैसे सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में अपने-अपने प्रकरणों में मन्तव्यों की व्याख्या की गई है। इन मन्तव्यों में महर्षि ने प्रत्येक पद की व्याख्या की है। ईश्वर वेद, धर्म, जीव, अनादि पदार्थ, प्रवाह से अनादि, सृष्टि, बंध, मुक्ति, अर्थ, काम, वर्णाश्रम, देव, शिक्षा, पुराण, तीर्थ, संस्कार, यज्ञ, आर्य, आर्यावर्त्त, स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि, मन्तव्यों की व्याख्या सत्यार्थप्रकाश में की गई है। आर्यसमाज इन शब्दों के अर्थ इसी दृष्टि से मानता है।

आर्यसमाज का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए महर्षि कृत सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कारविधि आर्य ग्रन्थों का स्वाध्याय करना आवश्यक है। इन सभी ग्रन्थों का आधारभूत ग्रन्थ वेद ही केवल स्वतः प्रमाण है। अन्य सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं।

हमने उपर्युक्त पंक्तियों में आर्य समाज के बहिरंग और अन्तरंग परिचय को दिया है परन्तु मुझे भय है कि जन-साधारण अब भी आर्यसमाज के स्वरूप को समझ पाएँगे या नहीं। अतः मैं संक्षेप में बड़े मोटे शब्दों में आर्य-समाज का सरल परिचय देता हूं। आर्य समाज के निम्न-लिखित प्रमुख प्रतीक हैं।

१. परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम ओम् है। ओम् का ही ध्यान करना चाहिए।
२. वेद सत्य, सदाचार और धर्म का प्रतिपादन करने वाला संसार में सब से प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति का आधार स्तंभ सदाचार ही है। व्यभिचार, मद्यपान, मांसाहार, जुआ, चोरी, छल-कपट, रिश्वत आदि दुराचार हैं। इन से सर्वदा बचना चाहिए।
३. हमें अपने प्राचीन जातीय नाम आर्य का ही प्रयोग करना चाहिए। आर्य श्रेष्ठ मनुष्य को कहते हैं।
४. परस्पर मिलते समय नमस्ते शब्द से एक दूसरे का अभिवादन करना चाहिये।
५. महर्षि दयानन्द वर्तमान भारत के धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्णधार थे। वे प्राचीन वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक, आर्य (हिन्दू) जाति से भेदभाव और अस्पृश्यता को मिटा कर समानता और एकता को लाने वाले नेता और स्वराज्य आन्दोलन के जन्मदाता थे। उन के विचारों को जानने के लिए उनका सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिए।

आशा है अब तो साधारण से साधारण पाठक भी आर्य-समाज के स्वरूप को समझ गये होंगे। अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि आर्य समाज का भविष्य क्या होगा। आर्यसमाज का अब तक का इतिहास गौरवशाली रहा है, इसका वर्तमान रूप भी सन्तोषप्रद है अतः हमें आशा रखनी

चाहिए कि इस का भविष्य भी उज्ज्वल होगा ।

संसार का नियम है कि संस्थापक तो प्रायः बड़े उदार और परोपकारी होते हैं। उनका जीवन प्रेरणादायी होता है। वे समस्त संसार को अपना कुटुम्ब मानते हैं उनके लिए अपना पराया नाम की कोई वस्तु नहीं होती है। उनके सम्पर्क में आने वाले शिष्यों का जीवन भी उच्च होता है वे प्रायः गुरु के रंग में रंगे होते हैं। परन्तु अगली आने वाली पीढ़ियाँ फिर निम्न स्तर पर आ जाती हैं। उनके जीवन का उद्देश्य केवल अर्थ काम तक ही रह जाता है। वे धर्म से पराङ्मुख हो जाते हैं। अनुयायी होने के नाते वे परम्परा को निभाने मात्र तक उत्सुक रहते हैं। वस्तुतः धर्म के प्रति उनका कोई विशेष आकर्षण नहीं होता। वे अन्तरंग विचारों की अपेक्षा बहिरंग आडम्बर पर अधिक ध्यान देते हैं। जन-साधारण आडम्बरों में ग्रस्त हो जाते हैं। विद्वान् लोग दार्शनिक विश्लेषण में लीन से हो जाते हैं। ऐसी दशा देखकर धर्म वहाँ से अन्तर्धान हो जाता है। ऐसी अवस्था में फिर से महापुरुषों की आवश्यकता पड़ती है जो जनता को पुनः धर्म मार्ग पर चलाए।

महर्षि दयानन्द आर्यसमाज के संस्थापक थे। उनके लिए सारा संसार ही अपना कुटुम्ब था। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख सब उन के शिष्य थे। उनके जीवन पर बीसियों आक्रमण किए गये। उनको कई बार जहर दिया गया। उन्होंने किसी पर प्रत्याक्रमण नहीं किया। उन्होंने किसी को दंड नहीं दिया। उन्होंने आर्य समाज लाहौर की स्थापना डा० रहीम खां की कोठी में रहते हुए की। पादरी स्काट उनके श्रद्धालु शिष्य थे। महर्षि परम उदार थे। महर्षि के संपर्क में आने वाले पं० गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम का जीवन भी बड़ा उच्च था। उन में यह निष्ठा थी कि आर्यसमाज वस्तुतः संसार का कल्याण करने वाला है। वे हृदय से आर्य समाजी थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मस्जिद में उपदेश दिया था। एक बार मुसलमानों ने स्वयं निमन्त्रण दे कर पं० लेखराम जी का प्रचार करवाया था। आर्य समाज के वे बड़े गौरवशाली दिन थे। वर्तमान पीढ़ी आर्य समाज के भविष्य को बनाने वाली हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि वह इसको प्रेरणा दे कि वह निष्ठावान् हो और आर्यसमाज के भविष्य को उज्ज्वल करे।

□□

जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे। जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

संस्कृत साहित्य को आर्य समाज की देन : आचार्य रामानन्द शास्त्री

देववाणी संस्कृत साहित्य बहुत ही पुराना है। इस विशाल साहित्य महोदधि में बहुत रत्न हैं जिनमें कुछ का ही पता अभी तक चला है। बहुत, अथाह विचार सागर में विलीन है। यह संस्कृत भाषा अमर है। वेद, उपनिषद, दर्शन शास्त्र, बाद्य एवं जैन आगम तथा शास्त्र महाभारत गीता रामायण कालिदास के काव्य आदि विराजमान हैं, वह अमरता क्यों न प्राप्त करेगी। किन्तु आज से प्राय: एक हजार वर्षों से संस्कृत साहित्य का प्रवाह रुक गया था। कठिन शब्द जाल कुण्ठित नव्य न्याय के वाक्यों से विभूषित संस्कृत भाषा दुर्बोध एवं दुर्गम्य हो गयी थी। बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे समासों में लिखना तथा ऐसी भाषा बोलना कि कुछ ही लोग समझें, विद्वत्ता का लक्षण हो गया। व्याकरण की पढ़ाई कठिन हो गयी थी। एक आदमी को सारा समय केवल व्याकरण शास्त्र के पढ़ने में ही व्यतीत करना पड़ता था, परिणाम यह हुआ कि दर्शन शास्त्र आयुर्वेद का नूतन आविष्कार, ज्योति: शास्त्र पर अनुसंधान आदि सुतरां बन्द हो गया। अलबेरूनी ने अपने 'भारत' नामक पुस्तक में लिखा है कि भारतीय संस्कृत पण्डित यह जानते ही नहीं हैं कि भारत के अतिरिक्त देश हैं वहाँ भी विद्वान् रहते हैं। मुसलिम मतान्धता ने भी संस्कृत साहित्य का बहुत विनाश किया। मुसलिम आक्रमणकारी जहाँ पहुँचते थे वहाँ की पुस्तकें जला देते थे तथा कला की वस्तुओं को नष्ट भ्रष्ट कर देते थे। मुगल जमाने में संस्कृत पढ़ाई पर पूर्ण प्रतिबन्ध था। बेचारे संस्कृत के पण्डित प्राइवेट तौर से अपने छात्रों को पढ़ाते थे। वे भी छात्र व्याकरण, साहित्य तथा फलित ज्योतिष का थोड़ा अध्ययन ही विद्या की इति श्री समझते थे। अंग्रेजी जमाने में संस्कृत मृतभाषा—"डेड लेंग्वेज" घोषित हो गयी। उस समय स्वामी दयानन्द का आगमन हुआ। स्वामी जी संस्कृत के कट्टर समर्थक तथा देव वाणी को सारी भाषाओं की जननी समझते थे। उन्होंने ब्राह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र से संस्कृत पढ़ने का आग्रह किया। स्वामी जी जहाँ कहीं जाते थे संस्कृत पाठशाला की स्थापना करते थे। उन्होंने व्याकरण की दुरूहता को कम

करने के लिए अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ने का आदेश दिया। स्वामीजी ने आर्य भाषा के द्वारा व्याकरण शास्त्र की अवगति हो तदर्थ वेदाङ्ग प्रकाश का निर्माण किया। सर्व साधारण संस्कृत सीखे इसके लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक छोटी पुस्तिका लिखी।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व जब काशी नगरी में स्वामीजी ने घोषणा की—वेद के पढ़ने का अधिकार मानवमात्र का है, इससे सब ब्राह्मणेतरों में भी संस्कृत जानने तथा वेद पढ़ने की अभिलाषा हुई। ब्राह्मण-वर्ग के अतिरिक्त हजारों छात्र गुरुकुल में संस्कृत पढ़ने लगे। आज पंजाब जैसे उर्दू भाषा भाषी प्रांत में तथा हरियाणा में संस्कृत के शास्त्री उत्पन्न करने का श्रेय आर्य समाज को ही है। स्वामी जी ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सरल तथा सुबोध भाषा में लिखी, इससे संस्कृत में भाषण करने तथा सरलतम भाषा का प्रयोग करने की प्रवृत्ति जगी। आर्यसमाज ने दर्शन के विचारों को जनता के मध्य में लाने का प्रयास किया अतः उन सूत्रों के अर्थ जानने के लिए संस्कृत की पढ़ाई विशेष रूप से जागृत हो गयी। स्त्रियों को वेदादि शास्त्रों से दूर रखा जाता था किन्तु स्वामी के आदेश से स्त्रियां भी संस्कृत पढ़ने लगीं तथा पुरुषों के समान शास्त्र-चिन्तन करने लगीं, इससे भी संस्कृत की व्यापकता बढ़ी। कन्या गुरुकुलों के द्वारा सैकड़ों लड़कियाँ संस्कृत भाषा की विदुषी बनीं। आर्यसमाज ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग प्रारम्भ किया, उससे भी संस्कृत की व्यापकता बढ़ी। स्वामी दयानंद के पश्चात् श्रीमान् पं० भीमसेन शर्मा, श्री पं० काव्यतीर्थ के शिवशंकर शर्मा, क्षेमकरण जी त्रिवेदी, श्री आर्यमुनि प्रभृति विद्वानों ने सरल संस्कृत में वेद उपनिषद एवं दर्शनों का भाष्य लिख कर संस्कृत को नूतन बल प्रदान किया। कविरत्न पण्डित अखिलानंद, श्री मेधाव्रत शास्त्री एवं श्री गंगाप्रसाद जी उपाध्याय आदि लोगों ने काव्य एवं संस्कृत नाटक लिखकर संस्कृत साहित्य को व्यवहारिकता प्रदान की। आज भी आर्यसमाजी संस्थाओं में हजारों छात्र संस्कृत पढ़ते हैं तथा पढ़कर सरकारी पदों को विभूषित करते हैं।

यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि आर्य समाज नहीं रहता तो आज संस्कृत भाषा विलुप्त हो गयी होती क्योंकि वर्ग विशेष के संकुचित दायरे से निकाल कर विश्व के समक्ष इसकी उपयोगिता तथा उत्कर्षता उपस्थित करने वाला आर्यसमाज ही है।

अतः देव वाणी के प्रचार, प्रसार में भी भारत को ऋषि दयानंद का ऋणी होना चाहिये।

□□

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील हो कर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं—कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों—उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और [अधर्मी] चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का भावी रूप क्या हो ? : जयदत्त शास्त्री

आर्यसमाज ने विगत पिचानवे वर्षों के जीवन काल में भारत ही नहीं अपितु विश्व के विभिन्न देशों में वैदिकधर्म और आर्य संस्कृति के प्रचार का गुरुतर कार्य बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न किया है। देश के भीतर अनेक समाज-सुधार सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ शिक्षा और हिन्दी-संस्कृत भाषागत-साहित्य के सर्जन और संवर्धन में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है। आज सहस्रों की संख्या में आर्य समाज की शाखायें और आर्य-शिक्षा-संस्थायें देश के आभ्यन्तर फैली हुई मिलती हैं, जिनसे यह तो सिद्ध ही है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा बोया गया यह बीज एक विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होकर अपनी आभा दिग् दिगन्त में फैला रहा है।

परन्तु वर्त्तमान में दो प्रश्न यहाँ पर उपस्थित होते हैं। एक तो यह कि इस वृक्ष के पल्लव, पुष्प और फलों के बीच में जो कहीं-कहीं रोग-कीटाणु प्रविष्ट हो गये हैं, जो कि इसके आयुष्य और शोभा के उपघातक हो रहे हैं, उनको दूर करने की हमारे पास क्या ओषधि है और उस ओषधि के प्राप्ति और प्रयोग के क्या साधन हैं? दूसरे यह कि इस महा-कल्पतरु को भविष्य में भी निरन्तर हरा-भरा और फलदायी बनवाने के लिये क्या-क्या उपाय हमारे पास हैं? यहाँ पर यह स्मरणीय है कि आर्य समाज की सुरक्षा और समृद्धि के लिये जो कुछ भी उद्योग और व्यवस्थायें की जायेंगी, वे ही अब उसके भावी-रूप या भावी-प्रगति के परिचायक होंगे। अतः इन प्रश्नों पर मनीषी, प्रबुद्ध और अनुभवी आर्य विद्वानों के विचारों के समाहार की नितान्त आवश्यकता है, यह समय की मांग और पुकार है।

हमारी दृष्टि में इस विषय पर निम्नांकित बातें उपयोगी बन सकती हैं। प्रथम, जहाँ तक वर्त्तमान दोषों को दूर करने की बात है, उसके लिये ये प्रणालियाँ अपनायी जा सकती हैं :—

दोष-निवारण-योजना

(१) जो संस्थायें (चाहे वे आर्य समाज हों, आर्य शिक्षा केन्द्र हों, आर्य अनाथालय विधवाश्रम आदि कोई भी क्यों न हों) इस प्रकार रोगग्रस्त अर्थात् किसी दोष से

दूषित हों, उनका सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अथवा सम्बन्धित प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के चुने हुये कुछ प्रतिनिधियों द्वारा निरीक्षण किया जाये और उन दोषों को दूर करने के लिये समुचित उपायों का अवलम्बन किया जाय। दोषग्रस्त संस्था को दोष निवारणार्थ समुचित सुझाव दिये जाँय। यदि कथञ्चित् दण्ड देना ही उचित समझा जाय तो उसके प्राप्य अनुदान या मान्यता पर रोक लगाना इत्यादि मार्ग अपनाये जा सकते हैं। इसके विपरीत जो संस्थायें अच्छा कार्य कर रही हैं, और उचित मार्ग पर आगे बढ़ती जा रही हैं, उनको (निरीक्षण द्वारा वस्तुस्थिति ज्ञात होने पर) समुचित प्रोत्साहन भी साथ साथ पुरस्कार, अनुदान वृद्धि, इत्यादि रूप में दिया जाना चाहिये।

(२) दोषग्रस्त संस्थाओं में यदि पदाधिकारी विशेष दोषी पाये जाँय तो उन्हें यथानियम हटाकर, उनके स्थान में नये योग्य व्यक्ति नियुक्त किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिये।

(३) यदि कहीं दोष विकट रूप में अथवा अधिक मात्रा में दिखाई दें और उनके सुधार का कोई समाधान न मिले तो ऐसी संस्थायें कुछ काल या सदैव के लिये बंद ही कर देनी चाहिये।

(४) सार्वदेशिक और प्रादेशिक सभायें ऐसी संस्थाओं पर विशेष रूप से नियंत्रण रखें। ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि प्रतिमास या प्रति त्रैमास में ऐसी संस्थाओं के प्रगति की विस्तृत सूचना प्रांतीय और केन्द्रीय सभा कार्यालयों में पहुँचें और उनपर उन सभाओं के प्रत्यादेश सम्बद्ध संस्थाओं को यथाशीघ्र भेजे जांय।

निर्माण योजना

आर्यसमाज की स्थापना प्रमुखतः जनता में विशुद्ध धार्मिक चेतना जागरित कर तद्द्वारा सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कार्यक्रमों के देश कालानुकूल ऐसी व्यवस्था करने के लिये हुई है जिससे कि सर्वसाधारण को सुख शांति और समुचित न्याय सुलभ हो सके। राजदण्ड के मामलों को छोड़कर, शोषण, उत्पीड़न, दमन, दैन्य और भय की बातें मानव समाज में व्याप्त न हों, तथा आत्मोत्कर्ष की सुविधा समान रूप से सबको सुलभ हो। धार्मिक चेतना को प्रथम स्थान इसलिये दिया गया है कि वह मनुष्य को वास्तविक मनुष्य (मत्वा कर्माणि सीव्यतीति= विचार कर कार्य करने वाला) बनाने और पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने में सक्षम और समर्थ होती है। सच्चा धार्मिक पुरुष सहसा अन्याय कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता; न ही किसी को व्यर्थ या स्वार्थ के कारण लूटने और कष्ट पहुंचाने की बात ही सोच सकता है। समासतः उसके भीतर मानवमात्र के प्रति सहृदयता, मैत्री और भ्रातृत्व की भावना तथा प्राणिमात्र के प्रति दया की भावना रहती है[1] उसमें उग्रता केवल अन्याय और दुराचार को ठिकाने लगाने के लिये ही जागा करती है, स्वार्थवश किसी का गला काटने या सम्पत्ति के अपहरण आदि के लिये नहीं। संक्षेप से यों कह सकते हैं कि एक भद्र पुरुष में जिन गुणों के होने की आशा की जाती है, वे एक जागरूक, शिक्षित धार्मिक व्यक्ति में सहजतया देखे जा सकते हैं। यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि धार्मिकता से अभिप्राय हमारा वर्त्तमान में प्रचलित जिस किसी सम्प्रदाय या मत से नहीं है, अपितु विशुद्ध सनातन वैदिक धर्म से है। वैदिक धर्म में जो उदात्तता दिखाई देती है, वह अन्यत्र सुदुर्लभ है। क्योंकि वैदिक धर्म प्राकृतिक (प्रकृति अर्थात् प्रजा या जगत् के सहभूत) है, आदिकालीन है और ईश्वर प्रेरणा-प्रसूत होने से सन्मार्ग का प्रदर्शक है। जब कि अन्य तथा-कथित धर्मों की स्थिति ऐसी नहीं है। वे सब वैदिक धर्मा-पेक्षया अवरकालीन हैं और मनुष्य प्रणीत होने से भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सादि दोषग्रस्त हैं। जो कोई उनमें अच्छे गुण हैं तो वे वैदिकधर्म से ही परम्परया प्राप्त हुये हैं।

इस प्रकार धार्मिक विशुद्धि को प्राप्त होकर मनुष्य सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रिय आदि जिस किसी भी क्षेत्र में कार्य करेगा, स्वहित के साथ साथ परहित का भी ध्यान रखेगा और प्रवञ्चना से व्यवहार नहीं करेगा। यदि कथंचित् परहित न भी साध सकेगा तो इतना तो अवश्य ध्यान रखेगा कि उसके अपने आचार-व्यवहार के कारण किसी अन्य व्यक्ति का किसी प्रकार का अहित नहीं होना चाहिये। ऐसी अवस्था में समाज और राष्ट्र से शोषण,

१—द्रष्टव्य—"प्रतिविशिष्टश्चायमेव वैदिक आम्नाय आगमः, एतत्पूर्वकत्वादन्येषामागमानाम्। (निरुक्त दुर्गाचार्य कृत भाष्य १–१६–६)।

उत्पीड़न, हिंसा और कदाचार की सारी बातें स्वत एव दूर हो जाया करेंगी। अतएव आर्यसमाज वैदिकधर्मानुष्ठान को विशेष महत्त्व और उस पर बल देता है।

(१) अतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये आर्य शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा की अच्छी व्यवस्था होनी अत्यावश्यक है। सम्प्रति डी० ए० वी० कॉलेजों या आर्य कन्या कॉलेजों में धार्मिक शिक्षा सर्वथा लुप्त हो चुकी है—इसकी ओर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। जब घर ही में अँधेरा है तो बाहर हम क्या प्रकाश दिखा सकेंगे। इस समय डी० ए० वी० कॉलेजों या अन्य तत्समान कॉलेजों में शिक्षा दीक्षा में कोई अन्तर नहीं रह गया है। प्रत्युत इनके आगे दयानन्द या आर्य नाम जोड़कर प्रवञ्चना मात्र की जी रही है, न कि दयानन्द और आर्य समाज के उद्देश्य की पूर्ति की जा रही है। अतः इस त्रुटि को शीघ्र दूर कर वांछित सुधार करने की आवश्यकता है। गुरुकुलों या ब्रह्मचर्याश्रमों में भी कुछ अपवादों को छोड़कर समुचित वातावरण धार्मिक शिक्षा का नहीं है। अतः उनमें भी अपेक्षित सुधार किया जाना चाहिये।

(२) आर्य समाज मन्दिरों में चल रहे साप्ताहिक अधिवेशनों में भी परिवर्तन वांछनीय है। कुछ ऐसे कार्यक्रम अपनाये जाने चाहिये जिससे कि प्रति सप्ताह मन्दिर में आगन्तुक सज्जन वहां से कुछ लेके जाँय। विशेषतः बड़े नगरों में जहाँ समाजों की संख्या पर्याप्त रहती है, प्रति सप्ताह नये नये उपदेशकों का आयोजन हो सके तो साप्ताहिक कार्यक्रम रोचक हो सकता है। लेखक को जिला आर्योपप्रतिनिधिसभा, लखनऊ के तत्वावधान में चलने वाली ऐसी योजना अच्छी लगी है। सामाजिक सेवा और सुधार के कार्य भी आर्य सामाजिक कार्यक्रम के अभिन्न और अनिवार्य अङ्ग माने जाने चाहिये। ग्रामीण क्षेत्रों में कहीं, कहीं आर्य समाज को लोग जानते भी नहीं कि यह क्या वस्तु है। अतः नगरों में स्थित आर्य समाजें स्वसमीपस्थ ग्रामों में भी कभी कभी उत्सव मनाया करें। मेले और नामकरण-विवाहादि संस्कार तो ऐसे अवसर हैं जब कि क्या ग्राम क्या नगर कहीं भी वेद प्रचार कार्य सुविधा से चलाया जा सकता है। हाँ इसके लिये प्रान्तीय और केन्द्रीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं से सस्ता अथवा निश्शुल्क रूप से वितरण करने के लिये उपयोगी साहित्य छोटी छोटी पुस्तकें (ट्रैक्ट) सहायता के रूप में प्रचारार्थ माँगने वाली संस्थाओं को भेंट किया जाना चाहिये।

(३) प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि प्रत्येक आर्य सदस्य, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष सन्ध्या, अग्निहोत्र, यज्ञ-संस्कारादि वैदिक कर्मकाण्ड का वस्तुतः प्रेमी और अनुष्ठापक हो और सद्ग्रंथों के नैत्यिक स्वाध्याय का व्रती हो। जिससे कि वह इन कृत्यों के द्वारा अपना व्यक्तिगत जीवन यथाशक्ति शुद्ध और सत्यनिष्ठ बनाने की प्रेरणा ले सके और उसमें समर्थ और सफल हो सके। होना तो यह चाहिये कि इसकी शिक्षा आर्य समाज के योग्य पदाधिकारी-गण अपने स्वयं के समुज्ज्वल चरित्र से दें। धैर्यौदार्यादि उदात्त गुण आर्य व्यक्तियों की पहचान के चिह्न होने चाहिये। तभी वे नित्य आने वाले पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय आदि झगड़ों और विवादों को शान्तिपूर्वक हल कर सकेंगे।

(४) सार्वदेशिक और प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभायें इस प्रकार सुगठित हों कि राष्ट्रहित के कार्यक्रमों में, चाहे वे अकेले चलाने पड़ें, अथवा राजनैतिक या अन्य किन्हीं संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे हों, अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें। आर्यसमाज को अभीष्ट सफलता तदितर व्यक्तियों के साथ प्रेममय व्यवहार से ही मिल सकती है। किसी बात या कार्य का खण्डन या निषेध भी करना हो तो विनम्रता और सद्युक्ति से ही करना चाहिये न कि अभिमान और उद्दण्डता से। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" इस नीति वचन को चरितार्थ करने में ही आर्यसमाज की सफलता है।

(५) ऐसा पाया गया है कि यदा कदा श्रेष्ठ विद्वान्, महात्मा लोग आर्यसमाज में जिस प्रतिष्ठा के योग्य हैं, वैसी प्रतिष्ठा तो दूर रही, किसी प्रकार की सहायता तक समाज से नहीं प्राप्त कर सकते। यह आर्यसमाज के गौरव के लिये कलंक की बात है। अतः इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। सुयोग्य महात्मा, संन्यासिवर्ग और विद्वत्समुदाय की प्रतिष्ठा न होगी तो आर्यसमाज स्वयं कैसे प्रतिष्ठित रह सकेगा? और वेदप्रचार का गुरुतर कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा? अतः सुयोग्य व्यक्ति

समुचित सत्कार और प्रतिष्ठा से पूज्य होने चाहिये। इस बात को हम पहले भी कह आये हैं कि श्रेष्ठ व्यक्ति हों अथवा श्रेष्ठ संस्थायें, वे सब यथोचित सम्मान के भाजन हैं। उनका तिरस्कार करना अपना ही तिरस्कार करना होगा। हमारे लिये स्वतंत्र रूप से वेदानुसंधान या वेद-प्रचार में प्रवृत्त चाहे श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर हों, चाहे स्वाध्याय मण्डल, पारडी हों, चाहे स्वामी श्री विद्यानन्द विदेह जी हों, सभी अपने अपने क्षेत्र और स्थान में आदर के पात्र हैं। प्रादेशिक और सार्वदेशिक सभाओं को अपने सहायता कोप से इन सब की भी यथोचित सहायता करनी चाहिये (अपने अधीनस्थ संस्थाओं की तो करनी ही है)। क्योंकि ये संस्थायें और महानुभाव भी उसी कार्य और मार्ग को अपनाये हुये हैं, जो स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज का लक्ष्य है।

अब हम अन्त में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात को इंगित कर के लेख को उपसंहृत करेंगे। वह यह कि आज के इस वैज्ञानिक और यांत्रिक युग में सामान्य मानव, विज्ञान के चमत्कारों की चकाचोंध से विमुग्ध और व्याकुल होकर किंकर्त्तव्यविमूढ सा हो गया है। उसे उचित मार्गदर्शन कराने में आध्यात्मिक देश भारत के अतिरिक्त कोई भी देश समर्थ नहीं है और भारत में भी वैदिक धर्मानुयायी विद्वान् ही इस कार्य में समर्थ हैं। एक ओर तो विज्ञान के कुछ विनाशकारी यन्त्र और अस्त्र शस्त्रों के भय से मानव संत्रस्त है, दूसरी ओर चारित्रिक पतन के भय से भी पीड़ित है। उसे निर्भय बनाना है, और साथ ही बलशाली और चरित्रवान् भी बनाना है। इसकी औषधि किस प्रयोगशाला में मिलेगी ? एकमात्र उत्तर है—सनातन वैदिक धर्मरूपी प्रयोगशाला में। अतः वैदिक धर्मानुयायी आर्य समाज के सामने यह एक विशेष समस्या है और यह उसी का उत्तरदायित्व है कि उक्त प्रकार के भयान्वित मानवों को अभयदान दे। उनमें वेद और उपनिषदों के प्रति श्रद्धा के सुमन अंकुरित करे। यह एक महान् कार्य है और इससे आर्यसमाज को जूझना ही होगा। जब हमारा दृढ़ विश्वास है कि वेदों में त्रिकालोपयोगी ज्ञान निहित है, तो हमारा पुनीत कर्त्तव्य है कि आज के युग के अनुकूल ज्ञान-विज्ञान की सामग्री वेदों से निकालकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करें। केवल आध्यात्मिकता के नाम पर इन भौतिकवादी मनुष्यों को हम आकृष्ट नहीं कर सकते। वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग (प्रेयः) और निवृत्तिमार्ग (श्रेयः) की पृथक् पृथक् यथार्थ व्याख्या हमें प्रस्तुत करनी होगी और यह दिखाना होगा कि सांसारिक क्षेत्र में प्रवृत्तिमार्ग, यदि वह धर्म-शास्त्रानुमोदित है, तो सर्वथा युक्तियुक्त है। सच्चे प्रवृत्तिमार्ग पर आरूढ़ होकर ही हम अन्त में निवृत्ति-मार्ग के अनुगामी बन सकते हैं। हमारी दृष्टि में वैदिक धर्म की इस गुत्थी को यथार्थतः समझ लेने पर सर्वसाधारण फिर स्वत एव वैदिकधर्माभिमुख हो जायेगा। हाँ, एक बात और है—विज्ञान प्रेमी मनुष्यों के लिये तदनुकूल व्याख्या भी वेदों की प्रस्तुत की जानी चाहिये। यह तो विद्वद्विदित है ही कि आज भी वेदों की शतशः ऋचायें अज्ञातरहस्यिका बनी हैं। तथापि अधिक से अधिक वैदिक विद्वानों के सहयोग द्वारा इस दिशा में कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। सामान्यतया वेदों की चर्चा सम्बन्धी बातों को कुछ लोग 'Out of Date' कहकर टालने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु ऐसे लोगों को यह समझाने की परमावश्यकता है कि जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि प्राकृतिक वस्तुयें अति प्राचीन होने पर भी आज 'आउट आफ़ डेट' नहीं कही जा सकती हैं, वैसे ही वैदिक ज्ञान भी 'आउट आफ़ डेट' नहीं कहा जा सकता। वह भी प्राकृतिक है और त्रिकालोपयोगी ज्ञान उसमें निहित है,—इत्यादि

आर्यसमाज का जन्म-शती समारोह निकट आ रहा है। यदि उससे पूर्व आर्यसमाज अपने भावी कार्यक्रमों को उचित रूप से निर्धारित कर ले और उन पर चलना आरम्भ कर दे तो अपने यश के साथ विश्व के कल्याण का सौभाग्य भी प्राप्त कर सकता है। शमित्योऽम्।

□□

आर्य-समाज की संस्कृत-काव्य साहित्य की देन : कुमारी सुशीला आर्या

भारतीय संस्कृति का संस्कृत भाषा से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। क्योंकि आर्य समाज का अभ्युदय पुरातन भारतीय संस्कृति के जीर्णोद्धारक के रूप में मुख्यतया हुआ। एतदर्थ आर्य-समाज का भी संस्कृत भाषा से चोली दामन का साथ सदैव से रहता आया है। आर्य समाज द्वारा संचालित गुरुकुलों में उच्च कोटि की संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था की गई। वेद वेदांगों के पूर्ण अध्ययन अध्यापन के फलस्वरूप व्याकरणादि से विधिवत् शिक्षा प्राप्त विद्वान् तैयार हुए। छन्दादि शास्त्रों का अध्ययन भी हमारी आर्य पाठ प्रणाली में सम्मिलित रहा। अतएव काव्य-प्रणयन का क्षेत्र सींचा एवं हरा भरा किया गया।

आर्यसमाज स्थापना की लगभग एक शताब्दी के पश्चात् आज हम देखते हैं कि आर्यसमाज की छत्रछाया में पले गुरुकुलों के काव्यमय वातावरण में पनपे अनेक कवियों ने संस्कृत–काव्य–कानन को अपनी कलित कला से अलंकृत किया है। देववाणी का अक्षुण्ण भण्डार भरा है। प्रस्तुत लेख में हम इसी कविमण्डल की संस्कृत–काव्य–साहित्य को देन पर विचार करेंगे।

स्मरणीय है कि स्वयं आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ही महान् कवि थे। ठीक है उन्होंने किसी काव्य-ग्रन्थ का प्रणयन नहीं किया किन्तु इसका कारण उनके पास समय का अभाव तथा अनेक झंझटों में उलझे रहने के कारण उस निश्चिन्तता की भावुकता पूर्ण स्थिति की अल्पता ही कहा जा सकता है जिसकी काव्य-प्रणेता को अनिवार्य रूप से ;आवश्यकता रहती है। उनका संस्कृत भाषा पर अबाध अधिकार था तथा छन्द रचना में नैपुण्य निर्दोष। फिर भी परिस्थिति वश उनकी पद रचना केवल ग्रन्थों के आरम्भ तथा अन्त में मंगलाचरण एवं इतिश्री सूचक छन्दों तक ही सीमित रही। पुनरपि इसकी महत्ता न्यून पद संख्या से घटती नहीं है। उनके पदों की सरसता सिद्धहस्त कवियों जैसी है। प्रसिद्ध पद—

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ।।
(सत्यार्थप्रकाश—तृतीय समुल्लास)

काव्य-गुणों की अलंकृति का सुन्दर उदाहरण है। सम्भवतः उनकी योजना सत्यार्थ प्रकाश की रचना में इसी प्रकार के भावपूर्ण श्लोक स्थान-स्थान पर रखने की रही हो; किन्तु इसमें विषय की गहनता आड़े आ गई हो। अस्तु। कवि परम्परा के अनुरूप संस्कारविधि तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं आर्याभिविनय के प्रारम्भ में ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय तथा रचनाकाल रचयिता के परिचय परक पद प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ—

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे कार्तिकस्यान्तिमे दले
अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया।
(संस्कार विधि १० वां श्लोक)

यहाँ तक कि अपने विशाल ग्रन्थों के अतिरिक्त छोटे से पुस्तक गोकरुणानिधि में भी आप काव्य कौशल के परिचायक पद लिखना नहीं भूले। इसी लघु ग्रन्थ का अन्तिम श्लोक तो श्लेषालंकार की शोभा सहित सुन्दर कविता का नमूना है—

धेनुः परा दया पूर्वा यस्यानन्दाद् विराजते।
आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः ।।

यहाँ स्व-परिचय देते हुए कवि ने स्पष्ट किया-जिस दयानन्द सरस्वती के नाम में प्रारम्भ का शब्द दया अंतिम शब्द गो (अर्थात् वाणी–सरस्वती है) उसी दयानन्द सरस्वती ने इस पुस्तक की रचना की।

एक प्रकार से महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत काव्य-धारा के प्रवाह का उद्घाटन कर ही दिया। पश्चात् तब से आज तक यह कभी सूक्ष्म कभी स्थूल, कभी झाड़ झंखाड़ो में अटक कर तो कभी निर्बाध गति से बहती ही आ रही है। इस काव्यधारा ने दार्शनिक जटिल सिद्धान्तों से लेकर सामान्य विषय देश–प्रेम, कृषक-महिमा, महापुरुषों को श्रद्धांजलि तक को स्पर्श किया है। काव्य-साहित्य में मुख्यतः महाकाव्य, काव्य, शतक, गीति–काव्य, चरित काव्य, ऐतिहासिक काव्य स्तोत्र काव्य, तथा कुछ काव्यानुवाद परिगणित किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से आर्यसमाज की देन संस्कृत-साहित्य को दो भागों में बांटी जा सकती है। १—कुछ कवि वे हुए जिन्होंने बड़ी मात्रा में काव्य-साहित्य की सृष्टि की। २—जिन्होंने ग्रन्थबद्ध साहित्य, न लिखा न प्रकाशित कराया अपितु पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रासंगिक कविताओं की रचना कर प्रकाशित कराते रहे। सर्वप्रथम हम विस्तृत साहित्य रचयिताओं का कार्यावलोकन करेंगे। इस श्रेणी में पं० अखिलानन्द शर्मा, कविवर मेधाव्रताचार्य, पं० दिलीपदत्त शर्मा महोपाध्याय, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० सत्यदेव वाशिष्ठ, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, पं० देवचन्द्र शास्त्री, पं० भगवद्दत्त वेदालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सब से अधिक संख्या में ग्रन्थ रचना करने वाले इनमें से दो कवि पं० अखिलानन्द शर्मा तथा कविरत्न मेधाव्रताचार्य जी कहे जा सकते हैं। दोनों ही महाकवियों ने अपनी-अपनी शैली पर 'दयानन्ददिग्विजय' 'दयानन्द लहरी' तथा 'ब्रह्मर्षि विरजानन्द चरितम्' तीन रचनाएँ समान नाम से रचीं। इनके अतिरिक्त दोनों ही कवियों ने लगभग २० से अधिक छोटी बड़ी कृतियों से गीर्वाणी के भण्डार को भरा। पं० अखिलानन्द शर्मा के लगभग ३७ ग्रन्थों का नाम निर्देश आता है। जिनमें काव्य, नाटक, चम्पू आदि सभी प्रकार की रचनाएँ सन्निविष्ट हैं फिर भी अधिक संख्या में काव्य ग्रन्थ ही हैं। कविरत्न मेधाव्रत ने छोटे बड़े ग्रन्थों के रूप में ५००० के लभगग पद तथा ४०० के लगभग फुटकर कविताएँ लिखीं। आपके प्रायः सभी काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हो संस्कृत-प्रेमी जनता के कण्ठाभरण बने हुए हैं। फुटकर रचनाएं जीवन के अन्तिम समय तक गुरुकुल पत्रिका, भारतोदय, परोपकारी इत्यादि मासिकों में प्रकाशित होती रही हैं। आपने आर्यसमाज के दो दिग्गजों महर्षि दयानन्द सरस्वती, दण्डी विरजानन्द के चरित-लेखन के साथ-साथ महात्मा नारायण स्वामी के

विशेष टिप्पणी—प्रस्तुत लेख की विषय-सामग्री के लिए डॉ० भवानीलाल भारतीय के शोध-ग्रंथ 'आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन' से सहायता ली गई है, तदर्थ लेखिका श्री भारतीय जी की आभारी है।

कर्मठ एवं परोपकारी जीवन पर भी लेखनी उठाई। उसका परिणाम 'नारायण स्वामी चरितम्' नामक चरित-काव्य है। वेद मन्त्रों के सरल-सरस काव्यानुवाद की परम्परा भी आपने कुशलता पूर्वक निभाई। इस प्रसंग में ईशोपनिषत्काव्यम् तथा ब्रह्मचर्य-महत्त्वम् की रचना की जिनमें क्रमशः यजुर्वेद के ४० वें अध्याय तथा अथर्व-वेद के प्रसिद्ध ब्रह्मचर्य-सूक्त के मन्त्रों का सरस छन्दों में अनुवाद प्रस्तुत किया है। छन्द शास्त्र तथा अलंकार शास्त्र पर आपकी टीकाएँ भी तत्तद् शास्त्रों के अध्येता विशेषतः छात्र-वर्ग के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुई हैं। संस्कृत साहित्य के लक्षण ग्रन्थ प्रायः अश्लील उदाहरणों से भरे रहते हैं। आपने इस त्रुटि का निवारण करते हुए सभी छन्दों तथा अलंकारों के उदाहरण स्वरचित पं० अखिलानन्द शर्मा कृत अथवा अन्य किसी ग्रन्थ से भी केवल वही दिए हैं जिनमें अश्लीलता नाममात्र को भी नहीं। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य के एक बड़े अभाव की पूर्ति इनकी रचनाओं से हो सकी है। सभी रचनाएँ वैदिक सिद्धांतानुकूल होने से शिष्य शिष्याओं के पढ़ने योग्य हैं। काव्य के रसास्वादन के उद्देश्य की पूर्ति के साथ-साथ ये ग्रन्थ वैदिक सिद्धांतों का सरल स्पष्ट चित्र पाठक के समक्ष अंकित कर देते हैं। मूर्तिपूजा, अवतारवाद जैसे जटिल दार्शनिक सिद्धांतों को कवि ने अपनी लेखनी के स्पर्श से रसात्मक काव्य बना दिया है।

इसी प्रकार पं० अखिलानन्द शर्मा की रचनाएँ भी शास्त्रीय लक्षणों पर तो पूरी उतरती ही हैं साथ उनमें भारतीय संस्कृति के मोहक चित्र उपस्थित किए गए हैं। धर्म लक्षण वर्णन काव्य, ईश्वर स्तुति काव्य, भारत महिमा वर्णन, संस्कृत-विद्या-मन्दिर काव्य ये कुछ नाम हैं जिनसे उनकी विविध विषयों का स्पर्श करने वाली प्रतिभा स्वतः स्पष्ट है। मेधाव्रत जी की ही भान्ति अपने संस्कृत-साहित्य में वैदिक भावों से ओतप्रोत काव्यों का अभाव पूर्ण किया है। वस्तुतः आपका ग्रन्थ रचना का लक्ष्य ही यही रहा। उन्होंने इस आशय को इन शब्दों में प्रकट भी किया है "मन्मते तु आर्षपदमनुपगताः कवयो न वैदिकाः किन्तु लौकिका एव। यदीमे वैदिक विषयाब्धौ कृतावगाहा भवेयुस्तर्हि कथं न जगदीश्वरगुणानुवादपूर्वकं तत्कृतिषु यज्ञसंध्यादिवैदिककर्मणां पूर्णतया वर्णनमुपलभ्यते।" निश्चयेन इसी यज्ञादि वर्णन के अभाव की पूर्ति हेतु कवि ने ग्रन्थ प्रणयन का उपक्रम किया और उसे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिली है।

इस विवरण से कोई यह न समझ ले कि हमारे आलोच्य इन कविद्वय ने केवल आर्य समाज के प्रचार का लक्ष्य लेकर ही अपनी संस्कृत-रचनाएँ की अपितु इन रचनाओं में काव्य गुण यत्र तत्र सर्वत्र देखे जा सकते हैं। संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध कवियों की ही भान्ति उनकी वर्णन शैली अलंकार योजना छन्दों का निर्वाह, भाषा पर अधिकार दर्शनीय है। शृंगारिक भावनाओं से पृथक् करके पवित्र रूप में देखने वाले ये आर्य समाजी संस्कृत कवि ही रहे। अन्यथा पुरातन कवियों ने तो कामोत्पादक संध्या वर्णन तथा विषय खेद-सूचक प्रभात वर्णनों तक ही अपने को सीमित रखा था।

इन दो महाकवियों तक ही आर्य समाज की संस्कृत-साहित्य को देन सीमित हो सो बात नहीं। इस उद्यान में अनेकानेक फूल खिले जिन्होंने अपने पराग से संस्कृत-साहित्य-कानन को सुवासित तथा जन-जन को मन्त्रमुग्ध किया। आशु कवित्व के सहज गुण से अलंकृत पं. दिलीप-दत्त शर्मा ने मुनि चरितामृत महाकाव्य स्वामी दयानन्द के जीवन को आधार बना कर लिखा। जो भाव पक्ष तथा कला पक्ष की दृष्टि से सुन्दर बन पड़ा था किन्तु इसे विशेष प्रचार न मिल सका।

चरित-काव्यों के प्रसंग में पं. अखिलानन्द शर्मा का 'विरजानन्द चरितम्' कविवर मेधाव्रत का महात्म-महिम मणिमंजूषा तथा ब्रह्मर्षि विरजानन्द चरितम् प्रसिद्ध तथा प्रचारित हुए हैं। गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड के 'महिला मणि कीर्तन' तथा 'महा पुरुष कीर्तन' भी भारत की अनेक देवियों एवं महापुरुषों के जीवन से संबद्ध होने के कारण पर्याप्त उप-योगी एवं काव्य गुणों से अलंकृत हैं। श्री हरिश्चंद्र रेणापुरकर ने लाला लाजपतराय के जीवन पर 'लाजपत तरंगिणी' नाम से १०० श्लोकों का काव्य लिखा।

चरित काव्यों तथा महाकाव्यों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक काव्य भी आर्य विद्वानों एवं कवियों ने लिखे।

जिनमें से राजपण्डित यमुनादत्त रचित, 'वीर तरंगरंग', पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का 'आर्योदय काव्य' तथा पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित 'भारतैतिह्य' उल्लेखनीय हैं। इनमें विद्वान् कवियों द्वारा काव्य तथा इतिहास का मणिकांचन संयोग प्रस्तुत किया देखा जा सकता है। पं० गंगाप्रसाद जी ने इस ऐतिहासिक काव्य के अतिरिक्त मनुस्मृति की शैली पर आर्य स्मृति लिखी जिसमें १५ अध्यायों में वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार लौकिक तथा धार्मिक व्यवहारों का विधान किया गया है।

पं० सत्यदेव वाशिष्ठ का 'सत्याग्रह नीति काव्य' केवल हैदराबाद के सत्याग्रह का ही विवरण नहीं अपितु इसमें सत्याग्रह-सिद्धान्त की शाश्वत व्याख्या है। यह इतिहास भी है, दर्शन भी और काव्य भी। सचमुच ग्रंथ अपने ढंग का निराला तथा संस्कृत-साहित्य की एक अनुपम निधि है। डॉ० मंगलदेव शास्त्री रचित 'रश्मिमाला' में सदाचार, राजनीति, लोकनीति, ईश्वरभक्ति आदि विषयों पर भिन्न-भिन्न रश्मियों में विचार लिखे गए हैं। यह नीति विषयक एक उच्चकोटि का काव्य है। इसमें प्रयुक्त सूक्तियां जीवनोपयोगी तथा मार्मिक हैं। सत्य की महिमा का गान करने वाली एक सूक्ति-सुधारस से मनः क्षेत्र को सिंचित कीजिए—

सत्येन धार्यते लोकः सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
नहि सत्यात् परो धर्मो देवाः सत्यमया मताः॥
रश्मिमाला ७।६५।

आपकी ही रचना 'अमृत-मन्थन' में जीवन तत्त्वों पर विचार किया गया है।

शतक-काव्यों के संदर्भ में कविरत्न मेधाव्रताचार्य के 'ब्रह्मचर्य-शतक' तथा 'गुरुकुल-शतक' एवं केवलानंद शर्मा का यतीन्द्रशतक उल्लेखनीय है। इन तीनों काव्यों का विषय शृंगार से सर्वथा अछूता आर्यसमाज क्षेत्र से सम्बन्धित है। इनमें ब्रह्मचर्य-शतक की रचना कवि ने सप्तमी श्रेणीमें पढ़ते समय की। मेधाव्रत जी के दोनों शतकों में भावपक्ष तथा कलापक्ष की उत्कृष्टता निःसंदिग्ध है।

स्तोत्र-काव्यों के क्षेत्र में पं० देवीचंद्र शास्त्री ने अभिनव महिम्न-स्तोत्र' की रचना शिवमहिम्न स्तोत्र की शैली पर की। इसके अतिरिक्त अज्ञात रचयिताओं के अष्टोत्तरशतनाम मालिका' तथा आर्यचपेटपञ्जरिका स्तोत्र प्राप्त हैं।

लहरी-काव्य वर्ग में पुनः पं० अखिलानंद शर्मा की 'दयानन्द लहरी' तथा आचार्य मेधाव्रत रचित 'दयानन्द लहरी' एवं 'दिव्यानन्द लहरी' विशेष प्रसिद्ध हैं। दोनों कवियों की दयानन्द लहरी का विषय दयानन्द गुणकीर्त्तन है ही। मेधाव्रत की दिव्यानन्द लहरी वेद उपनिषद् दर्शन के सिद्धांतों की आध्यात्मिक पदलहरियों से ओतप्रोत है। इसमें शास्त्र तथा काव्य का मणिकांचनसंयोग दर्शनीय है—

दिने सूर्यश्चन्द्रो निशि भगवतो यस्य नयने
शिरो द्यौर्यस्यादौ वदनमनलोङ्घ्री च पृथिवी
जगत्प्राणः प्राणा गगनमुदरं त्वङ् निगमगीर्
दिशो यस्य श्रोत्रे वपुरपि जगत्तं यज मनः। दि. ल. ।५।

मौलिक काव्यों के अतिरिक्त काव्यमय अनुवाद भी आर्य कवियों द्वारा अत्यन्त भावपूर्ण सरल तथा मूल के भावों की रक्षा करते हुए किए गए। कविरत्न मेधाव्रत ने ईशोपनिषद् का तथा अथर्ववेद के सुप्रसिद्ध ब्रह्मचर्य सूक्त का अनुवाद करते हुए ईशोपनिषत्काव्यम् और ब्रह्मचर्य-महत्वम् की रचना की। इन्हें पढ़ते समय तत्तद् शास्त्रों तथा कवि की सरस रचना का दुहरा आनन्द एक साथ प्राप्त होता है। आर्य समाज के नियमों का संस्कृत श्लोक-बद्ध अनुवाद भी पं० अखिलानन्द शर्मा, पं० विद्यानिधि शास्त्री तथा पं० ज्वालादत्त ने किया। अन्य भी अनेक हिन्दी उर्दू आदि की कविताएँ संस्कृत अनुवाद रूप में प्राप्त होती हैं।

इन बड़ी-छोटी सुसम्बद्ध काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त अनेक सम सामयिक फुटकर रचनाओं द्वारा भी आर्य समाजी कवियों ने माँ सरस्वती का कोष भरा और भर रहे हैं। ये रचनाएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं-अमृतलता, परोपकारी, गुरुकुल पत्रिका, वेद प्रकाश, आर्य जगत, आर्यमित्र, आर्योदय-इत्यादि में प्रकाशित होतीं रहती हैं। आचार्य मेधाव्रत की ही ४०० के लगभग फुटकर कविताएँ समय-समय पर प्रकाशित हुईं। आर्य समाज के दिवंगत नेताओं, भारत के राष्ट्रिय नेताओं-महात्मा गांधी, जवाहर-लाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री आदि के प्रति श्रद्धाञ्जलि-परक भारत पर चीन के आक्रमण की संकटकालीन

स्थिति में देश भक्ति तथा वीररस की ओजस्वी रचनाएँ, वेद, आर्य समाज, दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश की प्रशस्ति एवं महिमा विषयक, गुरुकुलों की स्तुति तथा वर्तमान में सम्मेलन किंवा उत्सवों की अध्यक्षता करने वाले नेतागण के अभिनन्दन में लिखित विविध रचनाएँ संस्कृत-साहित्य में अपना विशेष महत्त्व तथा उपयोगिता रखती हैं। इन फुटकर रचनाओं से संस्कृत-रचना का प्रवाह निरन्तर गतिमान है इसमें अवरोध उत्पन्न नहीं होने पाया। इस क्षेत्र के मुख्य कवि पं० धर्मदेव विद्या वाचस्पति, श्री बालचंद्र शास्त्री, श्री पं० विद्यानिधि शास्त्री, पं० त्रिलोकचंद्र शास्त्री, पं० शंकरानंद शास्त्री, श्री नरसिंह शास्त्री, पं० हरिश्चंद्र रेणापुरकर, डॉ० हरिदत्त पालीवाल, पं० जनमेजय विद्यालंकार, पं० विश्वबंधु शास्त्री. पं० दिलीपदत्त शर्मा, पं० आर्यमुनि, पं० ब्रह्मानंद शास्त्री, पं. प्रशस्यमित्र, पं० जयदत्त शास्त्री, श्री नलिन आदि और भी अनेक नाम लिये जा सकते हैं। इन कवियों ने अपनी प्रासंगिक रचनाओं द्वारा समय की मांग को पूर्ण किया है।

इस विवेचन से सिद्ध है कि आर्य समाज की संस्कृत काव्य-साहित्य को देन विशाल तथा बहुमुखी है। कोई क्षेत्र इस रचनाक्रम से अछूता नहीं रहने पाया। क्या दिग्विजय, लहरी शतक आदि की पुरातन परिपाटी तो क्या वर्तमान की भावनाओं को लेकर अभिनव रचना प्रणाली, क्या देश भक्ति, क्या देश भक्तों के प्रति लिखित स्तुतियाँ सब कुछ इस काव्य-साहित्य में आ गया है।

इस देन का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ा चढ़ा है कि आध्यात्मिक, दार्शनिक, पवित्र, अश्लीलता रहित साहित्य होते हुए भी इसका 'शास्त्रीय' एवं कलापक्ष पूर्णतया समृद्ध है। छंदों का विशद् निर्वाह खूब हुआ है। कोई अलंकार नहीं छूटने पाया। प्रायः सभी मुख्य रसों का परिपाक होने से केवल शृंगार-परक, संस्कृत-साहित्य का एक बड़ा अभावपूर्ण हो सका है। शब्दों का सुन्दर-चयन तथा उपयुक्त स्थल पर प्रतिष्ठापन भाषा की सुचारुता पर चार चांद लगा रहा है। एक ओर आधुनिकता के रंग में रंगी एक रचना का उदाहरण लीजिए जिसकी गेयता प्रशस्य है—

सादरं समीयताम्, वन्दना विधीयताम्।
श्रद्धया स्वमातृभू समर्चना विधीयताम्॥
(प० वासुदेव द्विवेदी साहित्याचार्य)

दूसरी ओर 'श्रुति प्रशस्ति' में लिखी पं० धर्मदेव विद्या मार्तण्ड की प्रसाद-गुणयुक्त भाषा में गहन भावनाओं का अवलोकन किया जा सकता है—

कल्याणी जगदीश्वरस्य सुखदा वाणी परानन्ददा,
विज्ञान विविध जगद्धितकर या वोधयव्यादिमा।
जाड्यं या निखिलं निहन्ति वरदा संपालयन्ती सुतान्।
सा नः पातु सरस्वती सकलमृद् या वेद मातरङमरा।

□□□

वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार कैसे हो ? डॉ० ओमप्रकाश वेदालंकार

कविरत्न श्री पं० प्रकाशचन्द्र 'प्रकाश' के अभिनन्दन समारोह के इस शुभ अवसर पर आर्य जगत् अखिल भारतीय स्तर पर वैदिक धर्म के प्रचार व प्रसार के निमित्त कुछ आधारभूत प्रश्नों पर विचार करने के लिए कृत संकल्प है। श्री प्रकाश जी ने अपने भजनोपदेशों द्वारा अतीत में एक ऐसी जागृति को जन्म दिया जिस की स्मृति आज भी हमारे मन में एक हर्ष-लहर उत्पन्न कर देती है। किन्तु अतीत चाहे वह कितना ही सुन्दर क्यों न हो भावी का रूप धारण नहीं कर सकता। ९६ वर्षों का दीर्घ अनुभव प्राप्त करके भी आर्य समाज आज अपने को गति-शून्य-सा क्यों अनुभव कर रहा है? क्या हम लक्ष्य-भ्रष्ट हो गये हैं अथवा धर्म-प्रचार के हमारे साधनों में ऐसी एकाङ्गिता प्रविष्ट हो गई है जो हमें आगे नहीं बढ़ने देती।

जहाँ तक आर्य समाज के लक्ष्य का प्रश्न है मैं समझता हूँ वह एक वाक्य में वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार करना है—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है'—ऋषि के इन वाक्यों में इसी सत्य की एक सुन्दर झलक है। आर्य समाज के सभी कार्यक्रम इसी एक लक्ष्य को केन्द्र मानकर निश्चित किये जाने चाहिये थे। निस्सन्देह हमारे पुराने आर्य नेताओं ने इसका ध्यान रक्खा होगा। किन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या हम सभी आर्यजन एक स्वर से यह कह सकते हैं कि हमने वेद पढ़ लिये हैं, उन्हें सुन लिया है? जब पढ़ा और सुना ही नहीं तो पढ़ाने और सुनाने की कल्पना तो और भी दूर जा पड़ती है। यही बात हमारे धर्म-प्रचारकों व उपदेशकों में है। आलम में वेदों का डंका बजाने वाले, इन प्रचारकों से जरा पूछिये तो क्या उन्होंने चारों नहीं तो एक ही वेद का साङ्गोपांग अध्ययन करने में कितने घण्टे व्यतीत किये हैं। फिर वेद का पढ़ना और सुनना केवल पाठ-मात्र ही नहीं होता उन्हें शनैः शनैः जीवन में ढालना होता है। यास्क मुनि ने ऐसे 'पण्डितों' को 'यथा खरश्चन्दन-भारवाही, भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य' कह कर सम्बोधित किया है। धर्म प्रचार

का कार्य इतना सरल व सुलभ समझ लेना हमारी दूसरी भूल है कि जिसे आजीविका का अन्य कोई साधन उपलब्ध न हो वह धर्म-प्रचारक तो बन ही सकता है। बेकारी के इस युग में धर्म भी आजीविका प्राप्ति का एक साधन बन जाये इससे अधिक उपहासास्पद बात और क्या हो सकती है? प्रतिनिधि सभाओं के पास उपदेशक नहीं और जो उपदेशक हैं उनमें से अधिकांश गृहस्थी हैं जिन्हें अपने सभी व्ययों की पूर्ति भी इसी कार्य द्वारा करनी है। धर्म-प्रचार के प्रति सच्ची निष्ठा, लग्न व त्याग कैसे रहे? नेता किंर्त्तव्यविमूढ़ हैं तो धर्म-प्रचारक विवश हैं।

धर्म-प्रचार की इन तथा ऐसी अन्य समस्याओं पर विचार करने से पूर्व हमें धर्म प्रचार पर गम्भीर विचार करना होगा। धर्म-प्रचार हम किसे कहेंगे? क्या स्थान स्थान पर घूम घूम कर जन-समूह एकत्र करना और उस जन-समूह के बीच उबलते शब्दों में धर्म की विस्तृत जोरदार व्याख्याएं करना अथवा मन्दिरों में उच्च स्वर से वैदिक मन्त्रों का पाठ-यज्ञ-यागादि का आयोजन, दान-दक्षिणा क्या धर्म का सारतत्त्व इन कार्यों में निहित है? मैं इसे धर्म का मुखर रूप कह सकता हूँ। क्या यह मुखरता मेरे स्वयं के जीवन में अथवा अन्य व्यक्तियों के जीवन में जिन्हें मैं वैदिक धर्मावलम्बी बनाना चाहता हूँ—धर्म का का प्रवेश दिला सकेगी? आप कहेंगे कि सामूहिक यज्ञ-यागादि का आयोजन प्राचीन ऋषियों की देन है, गोष्ठियों के रूप में सम्मिलित धर्म-चर्चाएं भी उन्हीं का आयोजन है अतः इसे हमें धर्म-प्रचार के कार्यक्रम से कैसे हटा सकते हैं? मैं हटाने की बात नहीं कह रहा किन्तु उन्हीं महिमामय ऋषियों के उन तपः-पूत जीवनों को ध्यान से देख रहा हूँ जिनके निर्माण में उन्होंने कितना घोर परिश्रम किया है। सदाचार नैतिकता, संयम, सत्य, त्याग आदि सद्गुणों से परिपूर्ण उनके जीवन ही साक्षात् धर्म के प्रतिरूप थे। धर्म की इस सक्रिय व्यवस्था में फिर दूसरों को बोलकर समझाने की आवश्यकता ही कितनी रह जाती है? धर्म की मुखरता एक सामाजिक वातावरण तय्यार करती है जिसमें रह कर व्यक्ति धर्म के प्रति उन्मुख होना चाहता है किन्तु वह धर्म का सर्वस्व नहीं है, वह तो केवल प्रवेश-द्वार ही दिखाता है। प्रवेश तो अभी आगे करना है उन नैतिक गुणों को जीवन में प्रवेश देकर जिन्हें हम धर्म कहते हैं, जिनकी प्राप्ति के प्रयत्न को प्राचीन ऋषियों ने धर्म-साधना नाम दिया था। धर्म की सामाजिकता धर्म-साधना के लिए एक मार्ग प्रशस्त करती है। किन्तु यदि साधना ही नहीं होगी तो धर्म की मुखरता अथवा सामाजिकता हमारे किस काम की है? इसी कारण इस मुखर धर्म के प्रचार से जनता भी मुखर हुई व होती जा रही है। सच्चा धर्म न प्रचारकों में है और न प्रचारितों में।

विश्व में विभिन्न धर्मों के विस्तार का इतिहास भी उपर्युक्त सत्य का प्रकाश कर रहा है। बौद्ध धर्म भारत से बाहर सिंहल, बर्मा, चीन, जापान, जावा आदि देशों में विस्तृत हुआ। किन्तु क्या हमने उन धर्म प्रचारकों को विशाल जनसमूह में आज की भांति केवल उपदेश करते सुना है? सम्राट् अशोक ने अपने प्रिय पुत्र और पुत्री महेन्द्र और संघमित्रा को धर्म-प्रचार के लिए अर्पित कर दिया और उन दोनों राजकुमार और राजकुमारी ने भी राजसी सुख-वैभव पर लात मारकर इसे अपने जीवनों का लक्ष्य बना लिया, गैरिक वस्त्र धारण किये और बिना किसी राजकीय साधनों के धर्म-प्रचार के लिए निकल पड़े। आज के युग में यदि यह घटना घटित हुई होती जिस की कल्पना भी दुरारूढ़ है तो सर्व प्रथम बड़े बड़े उत्सवों में उनका अभिनन्दन किया जाता, प्रशस्ति-गान होता, पुष्प मालाएं अर्पित होतीं कितने ही लोग उनकी सुख-सुविधा का विचार व प्रबन्ध करते तथा राजकीय ठाठ–बाट से विदाई दी जाती। किन्तु वहाँ सब कुछ चुपचाप हुआ, जीवन का एक स्वाभाविक कार्यक्रम समझकर। यह स्वाभाविकता ही धर्म-प्रचारक के जीवन की अमोघ शक्ति है। बौद्ध धर्म के सभी प्रचारकों में इसी स्वाभाविक लग्न और तत्परता के दर्शन होते हैं। ईसाई धर्म-प्रचारकों में यही गुण उन्हें प्रेरणा देता है। किन्तु हमारा विश्वास केवल धर्म-प्रचार के मुख्य रूप में ही रहा है—सम्भवतः हमने केवल मात्र उतना ही धर्म प्रचार समझ लिया है।

मुझे इस अवसर पर अपने साथी बन्धुओं से केवल

यही निवेदन करना है कि धर्म-प्रचार के गम्भीर अर्थों को हम समझने का प्रयास करें। हमारा केवल एक ही धर्म है—वैदिक धर्म अर्थात् वेदों को पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना। इसे हम परम धर्म कहते हैं। इसकी परिपूर्णता सच्चे अर्थों में होनी चाहिए। हमारे अन्य सभी कार्यक्रम इसी एक लक्ष्य की पूर्ति स्वरूप निर्धारित होने चाहियें। हमारे विद्वानों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे वेदों को इतना सुलभ, सरल और आधुनिक जीवन की समस्याओं के समाधान के रूप में इस प्रकार उपस्थित करें कि प्रत्येक आर्य उन को समझ सके, स्वयं पढ़ और सुन सके, जीवन में धारण करे और तदनन्तर अन्य व्यक्तियों को भी उन्हें पढ़ा और सुना सके—उन का प्रचार कर सके। धर्म-प्रचार के इस प्रकार दोनों ही अंग स्पष्ट और दृढ़ होंगे। धर्म प्रचार के सच्चे अधिकारी मैं आर्य-संन्यासियों को मानता हूँ। जिन्होंने आश्रम-प्रणाली का पालन कर ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम में वानप्रस्थी रह कर धर्म की मर्यादाओं का स्वयं पालन किया है और फिर अपना सब कुछ विश्व के उन दीन-दुःखी जिज्ञासुओं के लिए अर्पित कर संन्यास ले उन्हीं की सेवा के लिए झोली उठाकर निकल पड़े हैं। स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द ऐसे ही साधु थे—जिन्हें गृहस्थाश्रम की भी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। आर्य समाज अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु ऐसे ही संन्यासियों की प्रतीक्षा में है।

□□.

जीवन बन्धन है

धर्म का ध्येय मुक्ति है अर्थात् छुटकारा। साधारण मनुष्यों के लिए संसार बन्धन है। यह जीते हैं, इसलिये कि उन्हें जीना पड़ता है. वह परिश्रम करते हैं, इसलिये कि उन्हें परिश्रम करना पड़ता है। यदि भोजन का झंझट न हो तो वह हाथ पाँव ही न हिलाएं। उनकी दृष्टि में हाथ पांव न हिलाना मुक्ति है! वास्तव में देखा जाये तो आलस्य और मुक्ति एक दूसरे के सर्वथा विरोधी भाव हैं। मुक्त मनुष्य कर्म करता है, हां! कर्म की ग्लानि से सदा छूटा रहता है।

⊙

मुक्त स्वभाव

'मुक्त स्वभाव' परमात्मा हैं। उनका ज्ञान-बल-क्रिया स्वाभाविक है। उन्हें उसमें ग्लानि नहीं होती। प्रभु का परिश्रम वास्तव में 'अनथक' है। प्राणि-मात्र के कल्याण के लिये वेद का उपदेश कर दिया है। कोई लाभ उठाले तो उसकी इच्छा, न उठाये तो भी उसकी इच्छा। इसका हानि लाभ उसी को होगा। संसार के जीवन का प्रभु के आनंद पर कोई प्रभाव नहीं।

—चमूपति

AN APOLOGY FOR THE ARAYA SAMAJ : Upendra Sharma

Swami Dayanand who felt agitated to find the Hindu society groaning under the clutches of countless social evils, blind beliefs, ignorance and servitude undertook the task of relieving it from the yoke. He and his great mission is undoubtedly misunderstood the moment he is looked upon as a founder of some particular sect, ism or 'Panth'. He came as fresh air to let the down-trodden and sufferers breath freely. The mission of his life was to bring about social awakening and human welfare and with this object the Arya Samaj was founded. Like many other reformers—like those who cannot think and act exactly as their forefathers did and preached—Dayanand too was not only hooted down and sternly opposed but was also, on occasions, stoned and was ultimately poisoned to death. But he heroically bore the torch, lifted the veil of gloom and illumined the society. His attainments are glorious and inspiring and the success of his mission infused a new life in the society and immortalised him. One cannot think of the Arya Samaj without him. He pulsed his life with it. Both are identical.

But as it has been customary in case of many organizations fathered by great souls, after Dayanand, weaknesses began to creep into the Arya Samaj too. It began to go astray and inspite of warnings and guidance its down-slope journey still continues and to revive its past glory appears to be a dream. No doubt, today we are not confronted exactly with the problems which stirred Dayanand to make a challenging move. The problems like child-marriage, widow remarriage, women-rights and their education, untouchability, to a considerable extent, have been solved. Nevertheless, the present state of affair does not leave us without problems. It will be too much to suppose that the Arya Samaj is now not needed and that its mission is over. Now, along with the changing times, our problems have assumed different shapes. Things are different and the Arya

Samaj, if it still claims to retain its spirit and is alive to its aims, should have been the first to observe the changes and act accordingly.

Time was when stern opposition and vehement action were imperative. But now what for we the Arya Samaj of today—begin with oppositions ? Then, what are the objectives behind the cries of opposition against this and that ? Opposition for its own sake is a mere whim unless it paves a better path and inspires others to follow it. The sad fact is that the so-called leaders of the Arya Samaj confuse the job of a reformer with that of a propagandist. The weekly 'Sat Sanghs' seem to have lost their intellectual and emotional content. Party politics, personal prejudicies, negative approach and lust for domination have not only blurred its past glory but have paralysed the Arya Samaj to take constructive measures. The pedagogues of the Arya Samaj have been condemned for blowing their own trumpet and for abusing the faith and ways of others. Evils must be sternly opposed but let that not be the end, Let us do something constructive. Late or soon people will join us and we shall be strengthned by their cooperation.

To day our corntry is confronted with the problems of provincialism, the clash of languages, student unrest and a kind of all-round disintegration. These and other problems have their social aspect. As a social organization that aims at human-welfare what is the Arya Samaj doing ? Sometimes proper understanding and a kind of persuasion can bring about the good results that law and force fail to bring about. Rigidity, practice of 'Kkandan' that too for its own sake and the Puritanic-attitude towards life cannot help us in the modern society. The chants of Swamiji's glory and of the achievements of the Arya Samaj in the past from the mouth of those who lack the spirit of the Arya Samaj and like professional speakers indulge in propaganda sound hollow. we shall be judged by our present deeds. Do we not lend ourselves and the Arya Samaj to laughter by talking of the glorious past when our present bears a painful contrast with the past ? We have to prove ourselves worthy of the Araya Samaj not by mere preaching but by practising its principles.

We may be, for example, justified in our criticism of the Christian missionaries for the spread of Christiainty, but we do not think of the pains they take, of the service by which they serve their purpose. The success of the more than one thousand institutions run by the Araya Samaj should inspire us to direct our energy and means to such constructive deeds. Let us try to emulate the missionary model schools, hospitals, maternity homes and shelters for the poor. We deplore the lack of means and finance but whose responsibility it is to procure them. It chiefly depends on the unity and the earnestness of the body to work. Besides, the complaint of scanty means and finance is only partly just. Ways and means are not beyond the strong will and sincere efforts to secure them.

It must be remembered that the Araya Samaj is not a sect or a team of propagandists;or of preachers. As Swami Dayanand stressed and successfully endeavoured to achieve its chief aims are to promote human welfare and for this it must encourage intellectual growth, it must strengthen physical and spiritual development and assist social awakening and advancement. It is, indeed, a tremendous job and calls for good will, spirit of service and sacrifice and above all for actions. Let the Arya Samaj be not a tool in the hands of the politicians. Apart from external forces there are internal

currents of personal prejudices and groupism that are sapping the vitality of the Arya Samaj. The enternal differences and clash of interests are more dangerous than the external forces.

Arguments do not lead to the knowledge of reality. We have not to overpower the faith of others, we have not to amaze others by the force of our logic but we have to win heart by love and tolerance. Since we aim at the human welfare, let us not isolate ourselves. Swami Dayanand was an embodiment not only of strong will-power, intellect, social consciousness and dauntlessness but also of tolerance and assimilation. Can we not establish and justify our worth without attacking the views and faith of others ? After all a social oranization cannot afford to ignore the good-will of the people. We cannot compromise with evils; we cannot always join the majority, we seek justice and aim at human-welfare and therefore we should not be intolerant and fanatic in our views, approach and practice.

□□

जीव अनादि

जीव और प्रकृति। विकासवादी जीते शरीर का सरल से सरल रूप (Protoplasm) कललरस को ठहराते हैं। वे समझते हैं कि इन कललरसों की वृद्धि से संकीर्ण शरीरों का विकास होता है। परन्तु उनके सामने यह समस्या अनिवार्य बनी रहती है कि जीवन का प्रादुर्भाव अजीवन से कैसे हुआ ? जीव की अलग सत्ता मानने से ही इस गुत्थी का सुलझाव हो सकता है। ऐसे ही जो आदिम कारण केवल आत्मिक सत्ता को मानते हैं, उनके पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं कि आत्मा अनात्मा कैसे हो जाता है ? जैसे जड़ से चेतनता का विकास असम्भव है ऐसे ही चेतन से जड़ का विकास अयुक्ति-युक्त है। आत्म तत्व के अतिरिक्त अनात्म-तत्व का अस्तित्व मानना एक अनिवार्य वैज्ञानिक आवश्यकता है।

प्रकृति भी अनादि

कोई कोई कहते हैं, परमात्मा ही प्रकृति और आत्मा को बनाता है। काहे से ? अभाव से तो नहीं। तब अपने से बनाता होगा। चेतन (प्रभु) से अचेतन (जगत्) के प्रादुर्भाव की कल्पना इस धारणा को भी अयुक्त बना देती है। रहा जीव, वह पाप की समस्या उपस्थित करता है। परमात्मा मात्र को अनादि मानने से इस शंका का किसी प्रकार समाधान नहीं हो सकता कि पाप की प्रवृत्ति किस से होती है ? जीव अपने कर्मों का स्वतन्त्र कर्त्ता है तो उसकी स्वतंत्रता किसी दानी का दान नहीं होना चाहिये। किसी राजनीतिज्ञ से ही पूछ लो-दान में पाई स्वतंत्रता परतंत्रता है। स्वतंत्रता तो स्वभावसिद्ध ही हो सकती है केवल परमात्मा के अनादि होने की अवस्था में पाप का मूल बीज परमात्मा ही रहेगा, और यह किसी सचेत धर्मवादी को अभीष्ट नहीं हो सकता।

—चमूपति

वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की नई योजनायें : स्वामी ओमानन्द सरस्वती

वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये यों तो व्याख्यान, उपदेश, शास्त्रार्थ एवं भजन आदिक अनेक साधन हैं, किन्तु इन्हीं उपायों को दीर्घायु एवं स्थायीत्व प्रदान करने के लिये कुछ नूतन योजनाओं की आवश्यकता है, जिनमें से एक है—सस्ता साहित्य प्रकाशित करके विना मूल्य अथवा अल्प मूल्य में जनता के हाथों में पहुँचाना। क्योंकि साहित्य से जो प्रचार होता है वह दीर्घजीवी और ठोस होता है वक्ता और उपदेशक प्रत्येक स्थान में नहीं पहुँच सकते। उस अभाव की पूर्ति के लिये वैदिक सिद्धान्तों की सुन्दर और भावपूर्ण व्याख्यायें प्रकाशित करके देश-विदेश में भेजी जानी चाहिये। जिस प्रकार कि गीताप्रेस गोरखपुर वाले तथा ईसाई प्रचारक करते रहते हैं, इसी प्रकार आर्यसमाज को भी साहित्य प्रचार द्वारा जनता का वास्तविक कल्याण करना चाहिये।

आर्यसमाज में साधु महात्माओं का विशेष सम्मान नहीं रहा, उनके उपदेशों को मानना छोड़ दिया, यह किसी भावी अनिष्ट का द्योतक है। उपदेशक साधुओं पर व्यय करने को भी आर्य समाज तैयार नहीं होता, कारण कि जिन लोगों के हाथ में आर्यों का नेतृत्व दिया हुआ है उन्हें स्वार्थसिद्धि के अतिरिक्त कुछ दीखता ही नहीं। इस समय आर्यसमाज के प्रचार व प्रसार में ह्रास हुआ है। ऐसे स्वार्थी लोगों के स्थान पर आर्यसमाज का नेतृत्व वीतराग साधु महात्माओं को दिया जाना चाहिये, जैसे कि कुछ पूर्व तक होता आया है। पूर्ण विद्वान्, निरभिमानी और परोपकारी साधु सभी को सुव्यवस्था में चला सकता है। इसके साथ-साथ जो संन्यासी और वानप्रस्थी साधु पूर्ण पांडित्य से युक्त नहीं हैं, तथा वे वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें आर्यसमाज मन्दिरों में जाकर रहना चाहिये और वहां रहते हुए ग्रामीण जनता को, सन्ध्या, हवन, यज्ञोपवीत संस्कार और उपदेश आदि के द्वारा प्रचार में योगदान करते रहना चाहिये। यह ऐसे महानुभावों के लिये है जो भ्रमण करके प्रचार कार्य नहीं कर सकते। जो निरन्तर भ्रमण करके प्रचार

करना चाहें तो अत्युत्तम है।

किसी भी देश का भविष्यत् उसके बालकों पर आधारित होता है। उनकी पृष्ठभूमि तैयार करने के लिये उनके चरित्र की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। इसके लिये स्कूल और कालिजों में समय-समय पर "ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविरों" का आयोजन करना चाहिये, जिनमें बालकों को सन्ध्या, हवन, आसन, व्यायाम और प्राणायाम आदि की शिक्षा दी जानी चाहिये। इस शुभ कार्य में अध्यापकों का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। जब नींव ही वैदिक सिद्धान्तों से ओत प्रोत होगी तो राष्ट्रभवन में अवैदिकता कहां से आ सकती है। इस प्रकार वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये यह भी एक अत्युत्तम साधन है।

आशा है आर्यसमाज इस ओर ध्यान देकर इन्हें कार्यरूप में परिणत करके वेद और ऋषियों के सन्देश को पूरा करेगा।

□□□

मैं क्या हूं ?

पुराना प्रश्न है—मैं क्या हूँ? यह प्रश्न धर्म ने किया है, तर्क ने किया है, और विज्ञान ने भी किया है। उपनिषद् में आत्मा को 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है; कोई बोध हो, उसमें बोध वाले का बोध साथ लगा रहता है। मैं देखता हूं—इसमें देखने के साथ 'मैं' का भाव भी है। यह वृक्ष है—मैं न होऊं तो वृक्ष के होने की साक्षी क्या है? सब साक्षियों में अपनी साक्षी का सहभाव है। प्रत्येक चेष्टा अपनी चेष्टा होती है। प्रत्येक प्रत्यय (Cognition) अपना प्रत्यय (Cognition)होता है। इसी अपना वा आप को संस्कृत में 'आत्मा' कहते हैं।

—चमूपति

आर्य समाज का हिन्दी प्रचार व प्रसार में योगदान : लक्ष्मीनारायण गुप्त

१९ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भारतवर्ष में अनेक सुधार संस्थाओं ने जन्म लिया। ये संस्थाएँ धार्मिक सामाजिक एवं राजनैतिक थीं। इनमें प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्यसमाज, और इंडियन नेशनल कांग्रेस प्रमुख संस्थाएं थीं। सभी संस्थाएं अपने ढंग से कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुईं। प्रारम्भिक दिनों में जिस तीव्र गति से आर्यसमाज ने प्रगति की उसकी बराबरी कोई भी संस्था न कर सकी। इसका एकमात्र कारण यह था कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात् उनके सभी शिष्य एवं अनुगामी, निस्वार्थ सेवी, त्यागी, सत्यवादी, चरित्र-वान एवं दृढ़व्रती थे। उन्होंने पूर्ण निष्ठा से आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया और २० वीं शताब्दी के २५ वर्ष में ही भारत के सभी प्रमुख नगरों में आर्य-समाज का जाल विछा दिया। इतना ही नहीं अपितु विदेशों में भी दक्षिण अफ्रीका, पूर्व अफ्रीका के नगरों, मारिशस एवं फिजी द्वीपों में भी आर्यसमाज की स्थापना कर दी। १९२५ई०में महर्षि दयानन्द जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर आर्यसमाज के प्रचार की एक झांकी देखने को मिली। उस समय आर्यसमाजियों का अदम्य उत्साह, त्याग, वीरता एवं वलिदान देखने योग्य था। पं० लेखराम जैसे कर्मवीर ने आर्य सिद्धान्तों के प्रचार हेतु अपनी वलि दे दी थी। अनेक विद्वानों ने संन्यास ग्रहण कर आर्यसमाज का प्रसार किया। कितने ही कर्मठों ने जीवनपर्यन्त आर्य-समाज की सेवा का व्रत लिया। उन सभी महापुरुषों के तप और त्याग का परिणाम भी संतोषदायक ही हुआ। आर्यवीरों के सत्प्रयत्नों का सुफल यह हुआ कि शिक्षित जनता जाग गई। धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ। अंधविश्वास एवं परम्परा की लकीर पीटने से पठित वर्ग हटने लगे और राष्ट्रीय विचार धारा प्रवाहित हुई।

तत्कालीन भारत में राष्ट्रीय विचारधारा प्रवाहित करने का श्रेय आर्यसमाज को ही है। महर्षि दयानन्द ने स्वदेशी वस्तुओं के सेवन का उपदेश दिया था। अपने

देश के अत्याचारी राजा को भी विदेशी शासकों से अच्छा बताया था और एक राष्ट्रभाषा के प्रचार पर बल दिया था। कांग्रेस की स्थापना से दस वर्ष पूर्व सन् १८७५ ई० में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था और आर्यसमाज ने उन राष्ट्रीय धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का श्रीगणेश किया था जिनमें से कुछ को कांग्रेस ने अपनाया। देश की राष्ट्रीय जागृति में आर्यसमाज की जो देन है उन सब पर प्रकाश न डाल कर मैं यहां केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में आर्यसमाज का जो योगदान है उसी पर अपने विचार प्रकट करूँगा।

हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित करने वाले महर्षि दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे। उन्होंने इसके प्रचार एवं प्रसार हेतु आर्यसमाज को प्रेरणा दी और मार्ग-निर्देश किया। उन्होंने प्रथम बार वेदभाष्य संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी में भी लिखा, आर्यसमाजियों को पत्र एवं उस पर पते भी हिन्दी में लिखने का आदेश दिया, राजकुमारों को सर्वप्रथम हिन्दी देव नागरी लिपि में पढ़ने लिखने का आदेश दिया, हंटर कमीशन के सामने हिन्दी को ही शिक्षा-माध्यम रखने पर बल दिया एवं इस विषय में सभी आर्यसमाजों को निर्देश भिजवा दिये, अपने सभी ग्रन्थों को संस्कृत में न लिख कर हिन्दी में ही लिखा, बंगदेश की यात्रा के पश्चात् अपने भाषण हिन्दी में देने लगे, अधिकतर शास्त्रार्थ हिन्दी में ही किये।

महर्षि ने अपने सत्प्रयत्नों द्वारा आर्यसमाज को इस दिशा में पूर्णरूपेण प्रोत्साहित किया कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का व्यापक प्रचार किया जाय। आर्यसमाज ने भी उनके आदेशों को शिरोधार्य कर हिन्दी भाषा का भरसक प्रचार एवं प्रसार किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना सन् १८७५ ई० में बम्बई में की और उसके दो वर्ष पश्चात् लाहौर आर्यसमाज की स्थापना की थी। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के अवसर पर ही उन्होंने नियमों एवं उपनियमों को अन्तिम रूप दिया। उपनियमों में उन्होंने निर्देश दिया था कि आर्यसमाज का समस्त कार्य आर्यभाषा हिन्दी में देवनागरी लिपि में होगा।

प्रान्त के अनुसार आर्यसमाज का संगठन महर्षि दयानन्द के देहावसान के पश्चात् हुआ। विभिन्न प्रान्तों में आर्य प्रतिनिधि सभायें स्थापित हुईं और प्रान्त की समस्त आर्यसमाजें अपने प्रान्त की प्रतिनिधि सभाओं के अन्तर्गत रखी गई। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की स्थापना सन् १८८५ ई० में हुई। तदनुसार उत्तर प्रदेश की १८८६ ई० में, राजस्थान एवं मालवा की सन् १८८८ ई० में, बिहार एवं बंगाल की सन् १८९९ ई०, मध्य प्रदेश एव विदर्भ की सन् १८९९ में, बम्बई सन् १९०२ ई० में, सिंध सन् १९१९ ई० में, पुनः बंगाल एवं आसाम अलग १९३० ई० में और हैदराबाद रियासत १९३१ ई० में स्थापित हुई। इनके अतिरिक्त विदेशों में भी आर्य प्र. नि. सभाएँ स्थापित हुईं। मारिशस सन् १९२६ ई०, पूर्वी अफ्रीका सन् १९२० ई०, नेटाल १९२५ ई० एवं फीजि १९१६ ई० में स्थापित हुई।

आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब सिंध एवं बिलोचिस्तान का संगठन आ० प्र० नि० पंजाब से अलग है। इसकी स्थापना सन् १८९२ ई० में हुई थी।

सार्वदेशिक सभा की स्थापना सन् १९०९ ई० में अधिकाँश प्रतिनिधि सभाओं के पश्चात् हुई। इस प्रकार सार्वदेशिक सभा ने एक केन्द्रीय सार्वभौम संस्था का रूप ग्रहण किया।

ऊपर अति संक्षेप में आर्यसमाज के विश्वव्यापी ढांचे को दिखाने का प्रयत्न किया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज ने किस प्रकार अपना प्रचार कार्य किया होगा। हिन्दी-प्रचार का कार्य भी आर्यसमाज ने व्यापक रूप से किया। सार्वदेशिक एवं प्रतिनिधि सभाओं ने अपना समस्त प्रचार कार्य हिन्दी में ही किया। अंग्रेजी उर्दू एवं अन्य भाषाओं में प्रचारार्थ जो कुछ भी लिखा गया वह अपवादमात्र है। अन्य भाषाओं में आर्यसमाज का साहित्य नगण्य सा है और जो कुछ है भी वह केवल क्षेत्र विशेष के निवासियों को प्रभावित करने के लिए विवश होकर लिखा गया है। स्वयं पंजाब में जो आर्य समाज का गढ़ था और जहां उर्दू का बोलबाला था आर्यसमाजी लेखकों ने जो उर्दू, पुस्तकों एवं समाचार पत्रों में लिखी वह संस्कृत शब्दों से युक्त थी। जब शनैः-शनैः उर्दू पठित जनता संस्कृत के शब्दों को भी जानने

लगी तो देवनागरी लिपि की ओर भी उसका ध्यान आकर्षित किया गया और हिन्दी में भी पुस्तकें लिखी जाने लगीं तथा समाचारपत्र प्रकाशित होने लगे।

आर्यसमाज का समस्त कार्य वस्तुतः हिन्दी प्रचार का ही कार्य था। १६ वीं शती के अन्तिम और बीसवीं शती के प्रथम चरण में आर्यसमाज आन्दोलन इतना प्रबल था कि जनता उसकी ओर बरबस आकृष्ट हो जाती थी। इसके सभी प्रचार—माध्यम हिन्दी में थे। निम्नलिखित माध्यमों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

१—भाषण द्वारा:—स्वामी जी के पश्चात् आर्य समाज में बड़े उत्कट वक्ता हुए। उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों पर हिन्दी में ओजस्वी भाषण दिये। जनता उनके भाषण सुनने के लिए सहस्त्रों की संख्या में एकत्र होती थी। आकर्षण का प्रमुख कारण यह था कि हिन्दू समाज जिन धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों को सदियों से अपनाये था और भविष्य के लिए भी अटल मानता था, उन्हीं का आर्य विद्वान् खंडन करते थे। लाला लाजपतराय जी के कथनानुसार उनके लिए ये बातें बड़े आश्चर्य की थीं। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अनेक देवी देवताओं की कल्पना, बाल विवाह, विधवा विवाह का निरोध, स्त्री-शूद्रों की निम्नता, श्राद्ध, जाति पांति का प्रचलन आदि उनके धर्म के अंग थे। ऐसे अखंडनीय माने हुए सिद्धान्तों का खंडन वे असंभव समझते थे परंतु आर्य समाजी वक्ता इन्हीं का खंडन करते थे। धीरे धीरे लोग आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होने लगे। भाषण के साथ-साथ आर्य समाज का साहित्य भी पढ़ने लगे।

२—शास्त्रार्थ द्वारा :—प्रारम्भिक दिनों में शास्त्रार्थों की भी बड़ी धूम थी। कुछ शास्त्रार्थ तो संस्कृत में भी हुए परन्तु अधिकांश हिन्दी में ही हुए। इनमें हिंदू जनता आर्य विद्वानों के तर्कों को सुनकर अवाक् रह जाती थी। अनेक लोग झगड़ा करने पर भी तैयार हो जाते थे। परन्तु तर्क-संगत बात की अवहेलना कब तक की जा सकती है। शास्त्रार्थों का प्रभाव भी आर्यसमाज के हित में हुआ। हिन्दी में लिखित आर्यसमाजी साहित्य की ओर लोग आकृष्ट हुये और बहुतों ने हिन्दी पढ़ी।

३—ग्रन्थ-रचना :—आर्यसमाज के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए महर्षि दयानन्द ने सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की। यह ग्रन्थ इतना प्रभावकारी है जिसे पढ़कर अनेक कट्टरपंथी आर्य समाजी बन गए एवं अनेक अंधविश्वासियों की बुद्धि परिष्कृत हो गई। इस ग्रंथ की आरंभ में इतनी मांग थी कि स्वामी जी को मुद्रण के पूर्व ही केवल १२० पृष्ठ एक एक रुपये में बेचने पड़े(देखो, ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)इस से ग्रंथ की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है तत्कालीन जनता इस ग्रंथ को पढ़ने के लिए इतनी उत्सुक थी कि कितने ही व्यक्तियों ने एतदर्थ हिंदी पढ़ी। महर्षि के पश्चात् भी आर्यविद्वानों ने लेखन कार्य संचालित रखा। आर्यसमाज का प्रमुख साहित्य खंडन-मंडनात्मक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक है। सभी ग्रन्थों का विवरण देना तो यहाँ संभव नहीं है परन्तु कुछ ग्रंथ एवं उनके लेखक निम्न-लिखित हैं :—

'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' 'ओंकार निर्णय,' 'त्रिवेद निर्णय' पं० शिवशंकर शर्मा, 'वेदान्त तत्व कौमुदी' पं० आर्यमुनि जी, 'उपनिषदों की भूमिका' पं० इन्द्र जी, 'यम पितृ परिचय' वैदिक मनोविज्ञान' 'वैदिक ज्योतिष शास्त्र' 'आर्य योग प्रदीप' प० प्रिय रत्न जी, 'वैदिक विनय' श्री देवशर्मा जी 'अभय', 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' पं० भगवद्दत्त जी, "वैदिक सम्पति' पं० रघुनन्दन शर्मा, 'आत्म-दर्शन' 'मृत्यु और परलोक' 'कर्म रहस्य' महात्मा नारायण स्वामी जी, 'आस्तिकवाद' 'जीवात्मा' 'अद्वैतवाद' पं० गंगा-प्रसाद उपाध्याय, 'जीवन ज्योति' 'परमात्मा का स्वरूप' 'तत्वज्ञान' लाला दीवानचन्द्र जी आदि।

इन मौलिक ग्रंथों के अतिरिक्त वेद ब्राह्मण एवं उपनिषदों के भाष्य अनेक आर्य विद्वानों ने लिखे। महर्षि दयानन्द के अनेक जीवन चरित, स्वामी श्रद्धानन्द जी की आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' तथा अन्य आर्य विद्वानों के जीवन चरित भी हिंदी साहित्य की शोभा बढ़ाने वाले ग्रंथों में से हैं।

पं० भगवद्दत जी द्वारा संपादित 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' केवल आर्यसमाज के ही इतिहास पर नहीं अपितु हिन्दी साहित्य के इतिहास पर भी प्रकाश डालने वाला है। ऋषि की हिन्दी गद्य शैली के

अतिरिक्त हिन्दी भाषा के प्रचार हेतु महर्षि ने जो प्रयत्न किये उसकी चर्चा भी इन पत्रों में मिलती है।

हिन्दी में आर्यसमाज का पद्य-साहित्य अल्पमात्रा में है। इसका मुख्य कारण यह है कि धार्मिक एवं सामाजिक सुधार-संस्था होने के कारण नवरसों का आश्रय लेकर आर्य कवियों ने रचनाएं नहीं कीं। उन्होंने धर्म एवं समाज में ,निहित कुप्रभावों एवं बुराइयों को दूर करने के लिए पद्य रचनायें कीं, उनका मुख्य उद्देश्य सुधार था अतः प्रचार सम्बन्धी पद्य-रचनाएं ही विशेष रूप से हुईं। भजनीकों ने रोचक भजन बनाकर गाये और जनता को आर्यसमाज की ओर आकर्षित किया, उन्होंने विदेशी भाषा एवं लिपि का भी खंडन किया और जनता को हिंदी एवं देवनागरी लिपि अपनाने की प्रेरणा दी। साहित्यिक कवियों में पं० नाथूराम जी 'शंकर' शर्मा, पं० सूर्यदेव शर्मा, पं० मुन्शीराम शर्मा, पं० हरिशंकर शर्मा और पं० प्रकाशचन्द्र जी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

आर्यसमाज जैसी सुधार संस्था में प्रबन्ध काव्य का अभाव स्वाभाविक ही है। प्रचार की दृष्टि से भजनीकों ने विभिन्न प्रकार के विषयों पर फुटकर पद्य बना कर ही प्रचार कार्य किया। तथापि स्वर्गीय ठाकुर गदाधरसिंह जी ने 'दयानन्दायन' नामक ग्रन्थ में महर्षि के जीवन का चित्रण प्रारंभ से अन्त तक किया है। इस ग्रंथ का अधिक प्रचार न हो सका।

आर्य समाज के आध्यात्मिक सुधार सम्बन्धी एवं खंडन-मंडनात्मक ग्रंथों के अध्ययन में ही जनता ने रुचि न ली अपितु आर्य विद्वानों और संस्थाओं द्वारा संपादित एवं संचालित पत्र पत्रिकाओं के पढ़ने में भी जन समुदाय समुत्सुक रहता था। २०वीं शताब्दी के प्रारंभ में पंजाब से लेकर बंगाल तक जो धार्मिक एवं सामाजिक क्रांति आर्य समाज ने की उसका बहुत कुछ श्रेय हिन्दी के पत्र एवं पत्रिकाओं को है। वास्तव में यह प्रेरणा आर्यसमाज को ईसाई प्रचारकों और ब्रह्म समाजियों से मिली परन्तु आर्य समाज ने इसका व्यापक प्रयोग किया। सुधार की इस लहर ने सहस्रों व्यक्तियों को हिन्दी-पठन-पाठन के हेतु प्रेरित किया। "हिन्दू-हिंदी-हिंदुस्तान" की जो भावना तत्कालीन हिंदी के लेखकों में व्याप्त हुई उसकी पृष्ठभूमि में आर्यसमाज ही था आर्यसमाज के पत्रिकाओं का पूर्ण विवरण इस संक्षिप्त निबन्ध में सम्भव नहीं है। +

शिक्षण संस्थाओं द्वारा हिन्दी प्रचार :—आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं ने भी हिन्दी का व्यापक प्रसार किया है। आर्यसमाज ने गुरुकुलों एवं डी० ए० वी० कालेजों की स्थापना की, उनमें हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया। गुरुकुलों में तो उच्च शिक्षा का माध्यम ही हिन्दी रखा। गुरुकुल कांगड़ी प्रथम महाविद्यालय है जिसमें हिंदी माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा दी गई। राष्ट्रीय विद्यापीठों ने इस कार्य को बाद में किया। आज समस्त उत्तरी भारत में गुरुकुलों एवं डी० ए० वी० कालेजों का जाल बिछा है। ये सभी संस्थाएं प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हिन्दी प्रचार का कार्य कर रही हैं।

पुरुष शिक्षा संस्थाओं से बढ़कर कार्य महिला संस्थाओं द्वारा हुआ है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं पंजाब में पुरुष वर्ग उर्दू ही पढ़ता रहा है, परन्तु महिलाओं ने हिन्दी को ही अपनाया। सनातनधर्मी तो "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" के सिद्धान्तानुसार स्त्रियों को पढ़ाना ही नहीं चाहते थे। यह आर्य समाज ही था जिसने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पंजाब में सर्वप्रथम कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्थापना सन् १८९१ ई. में हुई। तब से इसकी वृद्धि उत्तरोत्तर होती रही। इसके अतिरिक्त आर्य कन्या पाठशालाओं की स्थापना स्थान-स्थान पर होने लगीं। लाला हरदयाल जी ने अपने लेखों में से एक में लिखा है कि कन्याएं युवती होकर विवाहित हुईं और अपने पतियों को हिन्दी में पत्र लिखने लगीं, तो पुरुषों ने उन पत्रों को पढ़ने के लिए हिन्दी पढ़ना आरंभ किया, इस प्रकार से भी आर्य समाज ने कितनों को हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा दी।

वयस्कों को साक्षर एवं हिन्दी पढ़ने योग्य बनाने के लिए आर्यसमाजों ने रात्रि पाठशालायें संचालित कीं जिनमें आर्य सभासदों ने अपनी सेवायें अर्पित कीं और जहाँ यह

+ इस विषय में विस्तृत वर्णन पाठकगण लेखक द्वारा लिखित शोध ग्रन्थ "हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन" देख सकते हैं।

संभव न हो सका वहाँ वैतनिक अध्यापक नियुक्त किये। अधिकतर यह कार्य नवयुवकों ने किये जिन्हें आर्यसमाज से निस्वार्थ सेवा की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

विदेशों में हिन्दी प्रचार

विदेशों में हिन्दी प्रचार मुख्य रूप से दक्षिण अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका केनिया, मॉरिशस एवं फीजी द्वीप समूहों में हुआ है। दक्षिण अफ्रिका में भाई परमानन्द, स्वामी शंकरानंद एवं भवानीदयाल संन्यासी जैसे कर्मठ आर्य विद्वानों ने हिंदी प्रचार किया। वहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा स्थापित हुई, हिंदी-सम्मेलन एवं हिंदी संघ की नींव भी डाली गई तथा अनेक हिंदी के समाचार-पत्र भी संचालित किये गये। श्री भवानीदयाल जी संन्यासी भारत से मजदूर के रूप में गये थे, अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय से वे नेता के रूप में निखरे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं तथा 'हिंदी' पत्र का सम्पादन किया। उनका आत्मचरित प्रवासी की आत्मकथा' बड़ी शिक्षाप्रद, उपादेय, एवं ज्ञातव्य बातों से युक्त है।

पूर्वी अफ्रीका में पं० सत्यपाल जी सिद्धान्तालंकार ने बड़ा प्रयत्न किया वे मांसाहारी अफ्रीकनों की सुरक्षित बस्तियों में महीनों शाक एवं फल पर ही निर्वाह करते रहे परन्तु हिंदी प्रचार से विमुख न हुए।

मारिशस में स्वामी मंगलानन्द पुरी, डा० चिरंजीव भारद्वाज, तथा स्वामी स्वतंत्रानन्द जी ने आर्य समाज का प्रचार किया। डा० भारद्वाज ने सपत्नीक हिन्दी पढ़ाने का कार्य किया और विदेश में अपनी कर्मठता का परिचय देकर आर्यसमाज का मुख उज्ज्वल किया।

फीजी द्वीप समूह आस्ट्रेलिया के पूर्व और न्यूजीलेंड से उत्तर की ओर है। यहाँ स्वामी राममनोहरानन्द, पं० गोपेन्द्र नारायण, पं० श्री कृष्ण शर्मा आर्य तथा श्रीमती सर्वती देवी ने आर्यसमाज का कार्य किया। वहाँ कन्या पाठशालाओं और गुरुकुल में हिंदी पढ़ाई जाती थी। आर्य पुरुषों के प्रयत्न से एक हिंदी पत्र 'वैदिक संदेश" भी निकला।

उपसंहार

आर्यसमाज ने अपने जन्म से ही वैदिक धर्म प्रचार के साथ-साथ हिंदी प्रचार का भी कार्य किया। अहिंदी प्रांतों में आर्यसमाज ने तो हिंदी का प्रचार किया ही परंतु आर्य समाजेतर संस्थाओं ने जो हिंदी प्रचार किया उसके संचालन में भी आर्यसमाजियों का सहयोग रहा है। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के प्रारंभिक मुख्य कार्यकर्त्ताओं में केरल के श्री एम० के० अमोदान अण्णी जी थे जिन्होंने आर्यसमाज की प्रसिद्ध संस्था गुरुकुल ज्वालापुर से हिंदी एवं संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। इसी प्रकार दक्षिण में हिंदी प्रचार करने वाले श्री चन्द्रकांत जी मुदालियर भी आर्यसमाजी ही हैं। पूज्य नेता महात्मा गांधी जी ने आसाम में हिंदी प्रचारार्थ गुरुकुल के आचार्य श्री देवशर्मा जी 'अभय' से नवयुवक एवं त्यागी कार्यकर्त्ताओं की मांग की थी। इससे सिद्ध होता है कि महात्मा जी को इस दिशा में आर्यसमाज ही पर पूर्ण विश्वास था।

न्यायालयों में भी सर्वप्रथम हिन्दी का प्रयोग करने वाले जज श्री मदनमोहन सेठ, श्री विष्णुलाल शर्मा और बाबू मुरारीलाल जी आर्य समाजी थे। श्री सेठ महोदय के विरुद्ध तो एक आन्दोलन-सा खड़ा हो गया था। अन्त में इसका स्पष्टीकरण सन् १९२२ ई० में हुआ जब सर सीताराम जी के प्रश्न के उत्तर में होम मेम्बर सर मुहम्मद अलीखान ने उत्तर दिया कि हिन्दी अथवा उर्दू में बयान लिखने पर कोई रोक नहीं है।*

आर्यसमाज ने हैदराबाद (दक्षिण) की अनेक आर्य संस्थाओं द्वारा हिन्दी का प्रचार किया। पंजाब में हिन्दी का सत्याग्रह चलाया, कितने ही आर्यसमाजी जेल गये और अपार कष्ट सहन किया। आर्यसमाज के अथक प्रयत्न एवं आर्यवीरों के तप और त्याग का ही परिणाम है कि आज देश देशान्तरों में हिन्दी की पताका फहरा रही है।

□□□

* हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन—पृष्ठ २६२।

आर्य समाज कैसे सङ्घटित रहे ? : वेदानन्द वेदवागीश

उपर्युक्त शीर्षक में सब से प्रथम शब्द "आर्य" है। यह वह शब्द है, जिसके विषय में काल का निर्णय नहीं किया जा सकता। निरुक्त में कहा गया है—आर्यः ईश्वरपुत्रः। जब ईश्वर के अस्तित्व में आने का निश्चय बुद्धिगम्य नहीं हैं, तब उसके पुत्र-सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। ईश्वर को अनादि-कल्प कल्पान्तरों में हुवा और होने वाला माना गया है। तब आर्य भी साथ ही साथ चला आ रहा है, और चलता चला जायेगा।

मानव सृष्टि प्रधानतया दो वर्गों में विभक्त है (१) आर्य में, और (२) दस्यु में। दस्यु को ईश्वर-पुत्र नहीं कहा है। व्याकरण के प्रवक्ता महा विद्वान् महर्षि पाणिनि भी आर्य को ईश्वर का पुत्र ही मानते हैं। वे कहते है :—"अर्यः स्वामिवैश्ययोः" अर्यः का अर्थ स्वामी है और हम सब का स्वामी ईश्वर है। अतः ईश्वर का पुत्र आर्य हुवा (अर्यस्यापत्यम्—आर्यः, अपत्यार्थेऽण् प्रत्ययः) तब आर्यसमाज ईश्वर के पुत्रों का सङ्घटन हुवा।

इतना निर्धारण हो जाने पर वह सङ्घटित कैसे रहे ? यह प्रश्न हमारे सम्मुख है। इससे ध्वनित हो रहा है कि आर्यसमाज सङ्घटित नहीं है, वह विघटित है और उसको समवेत करने के उपाय खोजने की आवश्यकता है। यह जानी बूझी सर्व-विदित बात है कि विघटन विभिन्न विचार धाराओं के कारण हुवा करता है और सङ्घटन ऐकमत्य होने से। इतने कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आर्यसमाज में विघटन का तत्त्व-अनार्यत्व प्रवेश किये हुवे है। अनार्य नाम दस्युओं का है। आर्य और दस्यु सर्वथा विपरीत विचार परम्परा के व्यक्ति हैं। इसीलिए ऋग्वेद में कहा है—"विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः" आर्यों को जानो और दस्युओं की भी परख करो। दस्युओं को निकालो आर्य शेष रह जायेंगे। यह स्थिति आ जाने पर सङ्घटन स्वतः हो जायेगा।

अब समस्या एक शेष रह जाती है वह यह—कि आर्यसमाज में सभी अपने

को आर्य कहते हैं फिर कौन किसको निकाले ? इसके उत्तर में हमारा निवेदन यह है कि न कोई किसी से निकलेगा और न कोई किसी के निकालने में सक्षम है, सभी एक जैसे खिचड़ी हो रहे हैं। हाँ, उपाय एक है, जिससे हम आर्य बन सकते हैं, उनका एक समुदाय-समाज वा सङ्गठन हो सकता है। वह यह है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जो कुछ भी अपने क्रिया कलापों, ग्रन्थ निर्माणों, व्याख्यानों, शिक्षा निर्धारणों और वेदादि के पठनपाठन कर्त्तव्यों का निर्देश किया है, उस पर किया गया आचरण आर्यसमाज को एक सूत्र में बांध देगा। हमें कलकत्ता जाना है, बम्बई की गाड़ी में बैठ गये, तो कैसे पहुँचेंगे। हमें बताया गया था कि आर्ष-ग्रन्थ पढ़ो उन्हें न पढ़ अनार्ष पढ़ने लगे, तो ऋषि कैसे बनेंगे। गुरुकुल खोलने का आदेश मिला था, उसे न मान, स्कूल चलाने में कल्याण मानने लगे, तो गुरु और उसका कुल संसार में कैसे दीख पाएगा। वेद का पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म बताया था, उसको छोड़ कुछ और ही पढ़ रहे हैं। वेद को पढ़ने के लिये जिस पद्धति को प्रशस्त किया था, उससे भटक कुछ और ही अपनाने में लगे हैं।

सारांश यह है, हमें यह आत्म-निरीक्षण करना होगा—कि हम आर्य कहे जाने वाले क्या आर्य हैं भी ! क्या हम आर्यसमाज की पद्धति पर उसके प्रवर्त्तक के अनुसार चल भी रहे हैं !! यदि ऐसा नहीं है, तो हमें दो में से एक बात दृढ़ता पूर्वक स्वीकार करके दूसरी छोड़ देनी चाहिये। यदि महर्षि दयानन्द की दर्शायी पद्धति पर हम नहीं चल सकते, तो आर्य कहना छोड़ देना चाहिये। और यदि चल सकते है, तो उन द्वारा अनिर्दिष्ट मार्ग छोड़ देना चाहिये। जो-जो चलने लगे, वे स्वतः एक ओर होते जायेंगे। जो नहीं चलेंगे, वे पृथक् होते जावेंगे। आर्यों के सङ्गठन की इससे उत्तम रीति मेरे विचार में और कोई नहीं है। जब हम निर्दिष्ट पद्धति पर न चल कर आर्य ही नहीं हैं, तब आर्य-समाज कैसे बनेगा ?

इस लेख के शीर्षक में "आर्यसमाज कैसे सङ्गठित रहे ?" इतना न कहकर "आर्य कैसे बने ?" इतना कहना ही पर्याप्त है। क्योंकि समाज और सङ्गठन पर्यायवाची शब्द हैं। आर्यों का समाज-समुदाय कहो अथवा आर्यों का सङ्गठन कहो, बात एक ही है। आर्य होंगे तो सङ्गठन अपने आप हो जावेगा। क्योंकि मैत्री समान संस्कार वालों में ही होती है विभिन्न में नहीं।

□□□

मृत्यु का भय

ऐसे भी लोग संसार में विद्यमान हैं जो जीवन को मानो त्योहार समझते हैं। उनके लिये जीवन भार नहीं। हंसते खेलते समय-यापन करते जाते हैं, परन्तु मृत्यु उनके लिये भी भयंकर होती है। कोई आपत्ति आ जाये तो अधीर होकर बैठ जाते हैं। अवश्यंभावी को भोग लेते हैं सही, परन्तु बाधा-वश होकर। मुक्ति इन बाधाओं से ऊपर होने की अवस्था है। जीवनमुक्त जीता है और सर्वदा आनंद पूर्वक जीता है। मरे पीछे उसे कल्प पर्यंत जीवन लाभ करना है। उसे मृत्यु का भय नहीं होता। वह तो जीवन-मरण का समभाव से स्वागत करता है। इसी अवस्था को वेद में अमृत कहा है।

—चमूपति

आर्य समाज में साहित्य संगीत : बिहारीलाल शास्त्री

आर्यसमाज में कोई न कोई दोष देखना ही जिन लोगों ने अपना परम धर्म बना रखा है, ऐसे लोगों की तरफ से एक यह प्रवाद भी फैलाया जाता रहता है कि आर्यसमाज में संगीत और साहित्य की जानकारी नहीं। और आश्चर्य है कि आर्य-समाजी भी इस भुलावे में पड़कर आत्मग्लानि को अनुभव करने लगते हैं। यह बात प्रायः हमारे भजनोपदेशकों को लक्ष्य में रखकर कही जाती है और इस बात को बिल्कुल दृष्टि से ओझल कर दिया जाता है कि पिङ्गल पर पूर्णाधिकार रखने वाले कविता-कामिनी-कान्त स्वर्गीय पं० नाथूराम 'शंकर' शर्मा जी भी आर्य समाज के ही एक रत्न थे और समालोचक शिरोमणि. सहृदय-सम्राट-सरस-गद्य के अद्वितीय लेखक श्री पं० पद्मसिंह जी एक आर्य सामाजिक विद्वान् ही थे। मंगलाप्रसाद पारितोषिक पाने वालों में भी आर्य समाजियों की संख्या ही अधिक है। मर्यादा पूर्ण हास्यरस के एक मात्र लेखक श्री पं० हरिशंकर शर्मा भी तो पक्के आर्यसमाजी ही हैं।

हमारे भजनोपदेशकों को ही उदाहरण में रखने वालों को जरा श्री नाथूराम जी के संगीत और श्री राधेश्याम जी की रामायण पर भी नजर डालनी चाहिये।

वस्तुतः आर्यसमाज के भजनोपदेशकों को जिस तरह का काम करना पड़ता है, जिन लोगों को धर्म का संदेश जाति:की दशा और मातृभूमि की दुःखगाथा सुनानी पड़ती है उन कविता और गायन की उपयोगिता को देखना चाहिये। आर्य समाज के भजनीकों को देश की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता को अंधकार से निकालना पड़ता है। अतः उन्हीं की भाषा में उन्हीं की रुचि को लक्ष्य में रखकर सुधार-सुधा की वर्षा करनी पड़ती है। आर्यसमाज के भजनोपदेशकों का ही प्रताप है कि आज देहात के कृषक भी बड़े सुधारक से भी अधिक विचार प्रकट कर सकते हैं और दार्शनिक चर्चा को समझ सकते हैं। पं० बस्तीरामजी के "धन्य तेरी कारीगरी कर्तार" "ईश्वर को लोगों करम प्यारे हैं" भजन जिस समय करतालों पर होते हैं उस समय उपनिषद और गीता से कम प्रभाव जनता पर नहीं पड़ता। चौधरी तेजसिंह के

"समय है कैसा यह परिवर्तन शील" के गायन में इतिहास की अच्छी जानकारी प्रकट होती है। "जगत में है घूँसा-बलवान, ना रही अहिंसा की पहचान" में उग्र राजनीति का चित्र खींच दिया है, "भिखारिन की टेर" में कैसा काव्य व्यंग्य है। अगर "वाक्यरसात्मकं काव्यम्" काव्य का यह लक्षण ठीक है तो आर्यसमाजी भजनोपदेशकों की तुकबन्दी कविता श्रेणी में बैठ सकती है। उनसे पढ़े बे पढ़े सबको परिप्लुत होते हमने स्वयं देखा है। झूमते लोट पोट होते जनता को आप देख सकते हैं। कुंवर सुखलाल सिंहजी की कविता पर हमने उर्दू के शायरों तक को तड़पते फड़कते पाया है। जनता तो उस समय तन्मय हो जाती है। कुंवर साहब का जब, गद्य-पद्य मिश्रित वाक् पीयूष प्रवाहित होता है उस समय पढ़े बेपढ़े सब ही उनकी तरङ्गों पर झूमते हैं। जनता को हँसाना, रुलाना, तपाना धड़काना आपके हाथ में होता है। साथ आप भी भावों के वशीभूत हो विदेह बन जाते हैं। पं० बस्तीराम जी चौधरी और तेजसिंह जी की कविता को तो पिंगलादि कविता के नियमों में कसना सहज नहीं है। वह गाँव की सीधी साधी व हृष्ट पुष्ट जाटिनी के समान हाव भाव अलंकारादि शून्य है। माली से काट छांट न की हुई बनलता समझिये। पर कुंवर सुखलाल जी की कविता खद्दर की साड़ी जम्फर से सुशोभित पढ़ी लिखी शिक्षित कांग्रेसी महिला के समान है, परन्तु स्वाभाविक सौन्दर्य सम्पन्न है। असल में देश के दुःख दर्द से पीड़ित कविता को शृंगार का अवकाश कहां है। देश के दुःख में बहे आंसू उसे मुक्ता-हारों से भी अधिक सुन्दर बना रहे हैं। देशोद्धार के जोश की लाली, अत्याचारों के प्रति क्रोध का आवेश रागरंजन की क्रिया की आवश्यकता नहीं रहने देते। इनके अतिरिक्त हमारे एक और भजनोपदेशक श्रेणी में ही विराजमान सुकवि हैं। काव्य-कलाधर संगीत सुधाकर श्री पं० प्रकाश चन्द्र जी। आप अजमेर में रहते है और वहीं के आर्यसमाज के आधीन काम करते हैं। आपके बड़े जिला अलिगढ़ के रहने वाले थे। अब आपने बरसों से अजमेर में ही निवास कर लिया है। आपकी कविता पिंगल, व्याकरण, अलंकार सभी नियमों को निबाहने वाली और वर्त्तमान भावनाओं से ओत-प्रोत होती हैं। प्राचीन परिपाटी पालने वाली किन्तु नवीन शिक्षा से सम्पन्न रूपवती देवी के समान आपकी कविता है। कोमलकान्त अनुप्रासमय पदावली, सरसभाव, पवित्र प्रेम का संदेश आपकी कविता के प्रति पद्य में मिलेगा। ललित पदों पर तो आपका अधिकार सा है। प्रेम प्रवाह में बिना स्नान किये तो आपकी वाग्देवी हृदय मन्दिर से निकलती ही नहीं। देश प्रेम और धर्म प्रेम के मञ्जु मधुर नुपुर बजाती हुई आपकी कविता कामिनी जब मराल गति से चलती है तो सहृदय श्रोता धर्म और देश प्रेम में झूमने लग जाता है। आपकी कविता को कभी वीर वेश में महारानी दुर्गावती के समान देखिये तो कभी भगवत्प्रेम में मीराबाई की छवि में। भावों को प्रायः आप ऐसे अच्छे ढंग से व्यक्त करते हैं कि चित्र खिच जाता है। आप स्वयं भी बड़े भावुक और सहृदय हैं। प्रेम की तो जीवित प्रतिमा समझिये। कविता के साथ ही साथ संगीत कला में भी निपुण हैं और नृत्य द्वारा भावों का चित्र खींच सकते हैं। आप स्वभावसिद्ध ही "संगीत साहित्य कला प्रवीण" है। सिनेमा वाले आपके बहुत सिर हैं। अच्छे से अच्छे मूल्य पर आपको खरीदना चाहते हैं परन्तु आर्य समाज के प्रचार के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य इन्हें स्वीकार्य नहीं है। यदि वे केवल काव्य चिन्ता में ही रहें तो साहित्योद्यान में वे नवीन ढंग के नाना सुरभित संगीत सुमनों का विकास कर सकते हैं। उनमें स्वभावतः वे सब योग्यताऐं हैं, जो एक सुयोग्य कवि में होनी चाहिए। परन्तु परिस्थिति से मजबूर होकर वे अपनी योग्यताओं का समुचित विकास नहीं कर पाते हैं। रात दिन रेल का सफर और समाज के प्रचार की हाय हाय आदि बाधाएँ उन्हें कभी सोचने का अवसर नहीं देती। खेद है ऐसे सुयोग्य कवि को नगर-कीर्तन में भी जोता जाता है।

[सुमन—संग्रह में प्रकाशित]

□□□



काव्य-संकलन

श्री प्रकाश जी रचित काव्य-सरिता के उल्लेखनीय,
प्रकाशित एवं अप्रकाशित अंश

ओ३म्

दयानन्द चरित्र

[महाकाव्य]

वन्दना

दृश्य काव्य से ये कमनीय कलापूर्ण अति, सकल जगत है नाटक नयनाभिराम।
सर्व जीव नट होके रंग मञ्च पै प्रकट, अभिनय करते हैं जो विविध निशियाम ।।

जागरूक होके आप चुपचाप देखता है, देता वैसा उसको है जैसा जिसका है काम।
लेता है न रूप जो, उसी अनूप सूत्रधार, ब्रह्म निराकार को है मेरा कोटिशः प्रणाम ।।

अनुपम दिव्यालोक से तुम्हारे अणु अणु, लोक लोकान्तरों का आलोकित अपार है।
खिल-खिल फूल हिल-हिल पत्ता, पत्ता सत्ता, अंगीकार करता तुम्हारी बार-बार है ।।

गुण-गण-गीत गारही तुम्हारे सरिता की, तरल तरंग माला शीतल बयार है।
अज, अविकार अद्वितीय एक करतार! सारी जगती का तुम्हारे ही कर-तार है ।।

जाग रही जग में तुम्हारी जगमग ज्योति, मेरे इस लघु दीप को भी तो जगाओ नाथ।
सकल संसृति में समाये हो सतत आप, आओ, आओ एक वार मुझमें समाओ नाथ ।।

फूली है फबीली फुलवारियाँ तुम्हारी अहो, मेरा यह मुरझित सुमन खिलाओ नाथ।
गूँज रही हैं तुम्हारे स्वर तान से दिशाएँ, मेरी मुरली में स्वर अपने बजाओ नाथ ।।

हो गया हूँ व्याधिग्रस्त अस्त व्यस्त क्षीण काय, पोर पोर में अपार वेदना है दाह है।
बह रहा तदपि अजस्र उर में उछाह, आशा, परम प्रतीति, प्रेम का प्रवाह है ।।

हूँ नहीं हताश मैं यद्यपि जीवन की साँझ, होने आई इसकी न रञ्च परवाह है।
केवल महामनीषि श्री महर्षि दयानन्द, जीवन चरित्र काव्य सृजन की चाह है ।।

गुरुजन, स्नेही,सुहृदादि की सहानुभूति, प्रेरणा से ही है मुझे कुछ लिखने का चाव।
छन्दालङ्करादि शास्त्र में न है गम्भीर गति मर्म-स्पर्शिणी कवित्व शक्ति का भी है अभाव ।।

मेरी दृष्टि में तो ऋषि राज दयानन्द जी का, जीवन चरित्र है विशाल एक दरियाव।
आपकी अपार अनुकम्पा के विना हे नाथ, पार पा सकेगी नहीं मेरी अल्प मति–नाव ।।

□□□

जीवन-संचारक दयानन्द

है ये एक युग से हृदय अभिलाषा अति, काव्य रचूँ मैं महर्षि जीवन महान् पर।
देखता कभी हूँ ऋषि का चरित्र उच्च कभी, दृष्टि जाती निज तुच्छ मति अल्प ज्ञान पर ॥

जैसे वे अमेरीका निवासी थे पहुँच गये, चन्द्र तक, बैठ कर अन्तरिक्ष-यान पर।
वैसे में बौना चला हूँ छूने चन्द्र रूपी लक्ष्य, बैठ के हे प्रभो ! तेरी कृपा के विमान पर ॥

वह दयानन्द ब्रह्मचारी हनुमान तुल्य, बाधा, विघ्न, विपद-वारिधि रहा चीरता।
कृष्ण सम जिसमें पुनीत नीति-परता थी, असुर संहारी राम के समान वीरता ॥

सूर्य सी तेजस्विता तो चन्द्रमा सी शीतलता, शैल-सी विशालता उदधि सी गम्भीरता।
शंकर-सा प्रखर पाण्डित्य बुद्ध-सा वैराग्य, भागीरथ भाँति तप, ध्रुव, सम धीरता ॥

भव्य भूमि भारत के विशद व्योमाँगन में, असत् अज्ञान-रात्रि तमतोम छाया था।
विविध विकारों की विकट सरिता में, जन-गण जलयान डूबने को डगमगाया था ॥

तब दयानन्द ही 'प्रकाश' स्तम्भ के समान, पुण्य-प्रद वेद रूपी दीप ले के आया था।
पूर्णतः कराया दिशा ज्ञान था उन्हीं अशांत, दिशा-भ्रान्त यात्रियों को डूबते बचाया था ॥

किसी ने तो बाईबिल किसी ने क़ुरान पै ही, आँख मीच के ईमान लाओ ये सुझाया था।
किसी ने पुराण भागवत्, किसी ने 'प्रकाश', धर्म ग्रन्थ हनुमान चालीसा बताया था ॥

किसी ने केवल ज्ञान, किसी ने केवल कर्म, किसी ने केवल ढ़ोल भक्ति का बजाया था।
किन्तु ऋषि दयानन्द जी ने वेद द्वारा ज्ञान, कर्म भक्ति तीनों का महत्त्व दरसाया था ॥

जीवन विकासक विवेक का प्रकाशक है, मोह–तम नाशक–प्रताप–पुञ्ज मित्र हैं।
धर्म, कर्म–बोधक अनीति—अवरोधक, नितान्त आत्म शोधक, सुधारक विचित्र हैं ॥

क्रान्ति कारक, परम शान्तिदायक, सकल, भ्रान्ति-हारक, सुपथ-प्रेरक पवित्र है।
लोक-उपकारक, तारक, उद्धारक, नव जीवन-संचारक दयानन्द चरित्र है ॥

भूल बैठी थी 'प्रकाश' जो भली परम्परायें, भूल बैठी थी जो ईश्वरीय वेद ज्ञान को।
भूल बैठी थी पवित्र जो चरित्र पूर्वजों के, भूल बैठी थी जो, राष्ट्र गौरव गुमान को ॥

जैसे वयोवृद्ध जामवन्त ने कराया बोध, भूली हुई शक्ति का था वीर हनुमान को।
तैसे भूली सर्वांगीण शक्ति का कराया बोध, दयानन्द ने था आर्य वीरों की संतान को ॥

□□□

गीत

जय जय यतिवर हे दयानन्द !
हे दयानन्द ! हे दयानन्द !!

कर आर्य जाति गौरव बखान
वैदिक युग का कर कीर्त्तिगान
ऋषि-सन्तति कर दी सावधान
तुमने फिर हे ! आनन्द कन्द ।
जय जय यतिवर हे ! दयानन्द ।।

खल प्रपञ्चियों के विकट टोल
अमृत में विष थे रहे घोल
जय वेद धर्म की बोल, खोल
कर पोल सकल काटे कुफन्द ।
जय जय यतिवर हे ! दयानन्द ।।

गुरुदेव ! तुम्हारे गुण अनेक
मुख में है केवल गिरा एक
प्रतिभा न पास विद्या विवेक
किस विधि गुण गाय 'प्रकाश चन्द' ।
जय जय यतिवर हे ! दयानन्द ।।



विश्व का प्रत्येक प्राणी
शान्त, निष्कण्टक अभय हो ।
हेय दानवता पराजित हो
मनुजता की विजय हो ।।

ज्योति जागे ज्ञान की
अज्ञान का तम तोम क्षय हो ।
श्री दयानन्दर्षि का जीवन
चरित कल्याण—मय हो ।।



शिशु दयानन्द

विक्रम सम्वत् अट्ठारह सौ
इक्यासी आया ही था जब
जन्मे जननी पुण्य कोख से
दयानन्द आनन्द-कन्द तब
इस शिशु-रवि ने सकल सदन में
अति विचित्र आलोक भर दिया
वातावरण मनोहारी, सुख—
कारी स्वर्ग समान कर दिया ।

समाचार शुभ सुनकर कर्षण
जी का हृदय अमित हर्षाया
मानो किसी दीन ने कंगाली
में रत्न अमोलक पाया
नगर वासियों को मंगलमय
दिवस, रात सुखकरी हो गई
हुई रुक्मणी कोख हरी
टंकारा धरती हरी हो गई ।

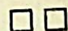
शरद् चाँदनी के पहने शुचि
वस्त्र निशा देवी सुकुमारी
तारक मुक्त-माल धारण कर
शिशु के स्वागत् हेतु पधारी
पुत्र—जन्म—उत्सव में स्नेही
सज्जन दूर दूर के आये
बाजे बजे, नृत्य गर्वा कर
महिलाओं ने मंगल गाये
सुत—जन्मोत्सव समारोह में
प्राप्त किया आल्हाद सभी ने ।
जाते समय सप्रेम दिया तब
शिशु को आशीर्वाद सभी ने ।।



गीत

तुम जुग, जुग जग में जिम्रो लाल !
हो धर्म, कर्म में परम प्रीति
उर में प्रभु की पावन प्रतीति
तुम चुनो, विविध गुण मुक्त मञ्जु
बन सत्संगति-मानस — मराल।
तुम जुग जुग जग में जिम्रो लाल ।।

फैले 'प्रकाश' यश, दिग् दिगन्त
पाम्रो विद्या-धन सुख म्रनन्त
करके सुकृत्य हे ! भाग्यवन्त
निज कुल का उज्जवल करो भाल।
तुम जुग जुग जग में जिम्रो लाल ।।





माता का प्रिय दुग्ध पान कर
होने लगा पुष्ट वह प्रिय शिशु
हँसता कभी, कभी रो जाता
होता कभी रुष्ट वह प्रिय शिशु
म्राँगन में म्रपनी छाया को
देख पकड़ने हाथ बढ़ाता
घुटनों के बल सरक सरक कर
चलता उठता फिर गिर जाता
माता तुरत उठाती मुख बहु
बार चूमती गले लगाती
हाथों से ऊपर उछालती
पलने में फिर उसे झुलाती
तोता, मैना कभी खिलौना
दिखलाती, झुनझुना बजाती
म्रति दुलराती, गीत सुनाती
देख, देख छबि म्रति हरषाती
दूध पिलाती, जब माता तो
मुखड़ा म्रपलक नयन निरखता
जिव्हा पर रख देती थोड़ा
सा मधु बड़े स्वाद से चखता
गृह-खम्भों में कांच जड़े जो
उनमें म्रपना मुख निहारता
पुनः मारता किलकारी
दिखलाने माता को पुकारता

कर्षणजी राज्यादि कर्म से
निवृत्त हो जब गृह म्राते थे
बापू ! बापू ! कह कर उन्हें
बुलाता था, वे हरषाते थे
कभी कभी म्रपने ही हाथों
तन पर धूल लगा लेता था
कर वह लीलाएँ बच्चा
सबको तत्काल हँसा देता था
बच्चे की है बात निराली
बच्चे की महिमा महान है
बच्चा है म्रनुपम विभूति
बच्चे से घर शोभायमान है
बड़े काम के हैं ये बच्चे
बच्चे केवल नहीं तमाशा
बच्चों की मत करो उपेक्षा
बच्चे हैं भविष्य की म्राशा
बच्चे ये मन के सच्चे
बच्चे दर्पण सम निर्विकार हैं
बच्चों का सब विधि पोषण हो
ये स्वराष्ट्र के कर्ण धार हैं
हरलेती है सकल मनुज की
म्राकुलताएँ चिन्ता पीड़ाएँ
बच्चे की तुतली वाणी
बच्चे की म्रति विचित्र क्रीड़ाएँ

है सम्राट चक्रवर्त्ती क्या ? वस्तु
एक बच्चे के आगे
रखते जो न स्नेह बच्चों से
वे मनुष्य हैं महा अभागे
बच्चे ही तो मानव को
मानवता का हैं पाठ पढ़ाते
मूक प्राणियों के प्रति मानव-
उर में करुणा भाव जगाते
सच तो यह इन बच्चों के
उर में करते भगवान वास हैं
बच्चों में ही वाल्मीक हैं
बच्चों में ही वेद व्यास हैं
जैमिनि, कपिल, कणाद, पतञ्जलि
बच्चों में ही ऋषि गौतम हैं
बच्चों में चाणक्य विप्र,
बच्चों में चन्द्र गुप्त विक्रम हैं
बच्चों में ही वीर शिवाजी
बच्चों में ही प्रताप राणा
बच्चों में गुरू गोविन्द हैं
बच्चों में वैरागी मर्दाना

बच्चों में ही सावित्री
बच्चों में ही सीता रानी है
बच्चों में ही लोपा, मुद्रा
मदालसा, गार्गी ज्ञानी हैं
सती पद्मनी बच्चों में
मीरा सी प्रभु की दीवानी है
बच्चों में दुर्गा, लक्ष्मी-
-झाँसी की रानी मर्दानी है
भीष्म पितामह बच्चों में ही
वह अभिमन्यु बाल रण बंका
बच्चों में हनुमान, फूंक दी
थी जिसने रावण की लंका
महावीर स्वामी बच्चों में
बच्चों में ही बुद्ध आर्य हैं
बच्चों में हैं भट्ट कुमारिल
बच्चों में शंकराचार्य हैं
बच्चों में श्री रामचन्द्र हैं
बच्चों में श्री कृष्णचन्द्र हैं
बच्चों में वेदोद्धारक
आनन्द कन्द ऋषि दयानन्द हैं ॥

कष्ट हरने, अनाथों, दलित वृन्द का
नाश करने अधम दासता फन्द का
मोड़ने मुख मलिन, म्लेच्छ मति-मन्द का
फोड़ने भण्ड पाखण्ड छल–छन्द का
प्राप्त करने, कराने 'प्रकाशार्य' प्रिय
बोध सद्धर्म शिव सच्चिदानन्द का
था किसे ज्ञात होगा कर्षण जी के घर
जन्म टन्कारा में श्री दयानन्द का

□□□

बोध-रात्रि

आया जब शिवरात्रि का सुविख्यात यह पर्व।
गये शिवालय में पिता सुत के साथ सगर्व ॥
आये भक्त अनेक पर किसको था यह ज्ञात।
कभी रात्रि यह लाएगी, नूतन पुण्य प्रभात ॥

मिल जाते कण्टकों में हैं सुमन मञ्जु कभी
कोयलों में हीरा द्युतिमान मिल जाता है।
कभी सिक्ता राशि में भी, प्यासों को सलिल स्रोत
सुरसरि धारा के समान मिल जाता है ॥
विकट तरङ्गित महा समुद्र में भी कभी
डूबते हुए को कोई स्थान मिल जाता है।
ऐसे ही 'प्रकाश' मेधावी महामनस्वियों को
अभिशाप में भी वरदान मिल जाता है ॥

□□

गीत

जिससे जन-जन की हृदय कली मुसकाई।
वह धन्य रात जो नूतन प्रभात लाई ॥
है धन्य मूल जी प्रखर बुद्धि वह बालक
जो बना दयानन्दर्षि मानवोद्धारक
शिवरात्रि पर्व पर पितुवर की आज्ञा से
व्रत रखा मूल शंकर ने भी श्रद्धा से
शिव मन्दिर में वे गये संग पितुवर के
पूजार्थ और भी पहुँचे भक्त नगर के
रेशम धोती तन, भाल—विभूति लगाये
रुद्राक्षी माला गर्दन में लटकाये
बम बम हर हर श्लोकादिक उच्चरते थे
मनमानी विनती शंकर से करते थे
कहता कोई सन्तान मुझे शंकर ! दो
कोई कहता धन से मेरा घर भर दो
कोई कहता सरपञ्च बना दे भोले !
कोई कहता अभियोग जिता दे भोले !!
कोई कहता था दूर कष्ट कर शंकर !
कोई कहता था शत्रु नष्ट कर शंकर !!
कोई कहता हो जाये विवाह मेरा
मैं जन्म जन्म गुण गाऊँ शंकर तेरा
यों विविध कामना करके मठ में आये
फिर उन्हें घूस में फल बिल्वादि चढ़ाये

घड़ियाल, शख, ढप, ढोलक झाँझ बजाई।
वह रात धन्य जो, नूतन प्रभात लाई॥
यूं कीर्तन करते आधी रात हुई जब
तब लगे ऊँघने शम्भु–भक्त सब के सब
मुँह फाड़ व्योम की ओर सो गया कोई
चारों खाने बस चित्त हो गया कोई
कोई तो सोया गर्दन करके नीचे
कोई बैठा ही सोया आँखें मींचे
कोई सोया बाहर को जीभ निकाले
कोई सोया घुटनों में ही सिर डाले

सिर कितनों के ही आपस में टकराये
ऐसे बेढब निद्रा के झोंके आये
यूँ भक्त—वृन्द चेतनता त्याग रहा था
पर, बालक मूल अकेला जाग रहा था
हाँ! जागरूक था एक दीप मिट्टी का
जो मिटा रहा था अन्धकार रजनी का
अति जगमग था कर रहा शिवालय भर को
मानो देता था सीख मूल शंकर को
पर-हेतु देख निज देह जलाता हूँ मैं
हँसते हँसते निज शीश कटाता हूँ मैं
करता 'प्रकाश' तम दूर भगाता हूँ मैं
सन्मार्ग सैकड़ों को बतलाता हूँ मैं
मुझ सम जग में तुझको प्रकाश करना है
अज्ञान असत् तम का विनाश करना है
लौ तेरी यदि मुझ सदृश उर्ध्वगामी हो
तो प्राप्त तुझे निश्चय शंकर स्वामी हो

कब! बिना साधना आश पूर्ण हो पाई।
वह रात धन्य जो नूतन प्रभात लाई॥
शिव मन्दिर में थी पूर्ण स्तब्धता छाई
वह बालक बैठा था ज्यों सजग सिपाही
आशा थी दर्शन देंगे शंकर स्वामी
वह त्रिशूल धर गौरी—पति अन्तर्यामी
इतने में चूहा एक विवर से निकला
वह महादेव की पिण्डी ऊपर उछला

निर्भय हो चटपट लगा चढ़ावा खाने
उस उद्दण्डी ने कृत्य किये मन माने
अपलक नयनों से मूल निहार रहा था
रह रह के मन में यही विचार रहा था
यह चूहा निश्चय ही मारा जायेगा
बिल में न कभी जीता जाने पायेगा
वे जटा – जूट – धर, भूतनाथ प्रलयङ्कर
हैं पड़े गले में जिनके व्याल भयङ्कर
वे शंकर जी इस पिण्डी से निकलेंगे
तीक्ष्ण त्रिशूल से अभी इसे कुचलेंगे
फल करनी का पायेगा चूहे अभागे!
तेरी बिसात ही क्या शंकर के आगे
अति उत्सुकता से बाट बहुत सी जोही
निकला न किन्तु उस पिण्डी में से कोई
किञ्चित न चेष्टा शंकर ने दिखलाई
महिमा मिट्टी में इस मौन ने मिलाई।
वह रात धन्य जो नूतन प्रभात लाई॥

छोटा सा बालक मूल किन्तु अति चेतन
यों लगा सोचने शङ्कित हो मन ही मन
यह काँच मलिन, बन बैठा हीरा कैसे
कोयला अरे! हो गया ममीरा कैसे
कहलाता जो देवों में देव निराला
संसार सकल जिसकी जपता है माला
जो सबका पालन विनाश करने वाला
पड़ गया आज उस महादेव पर पाला
अपराध कर रहा है चूहा अपराधी
पर, महादेव ने जड़वत चुप्पी साधी
जिससे न एक चूहा तक डर सकता है
वह जग पर शासन कैसे कर सकता है
सोते थे पितु उनको तत्काल जगाया
वह आँखों से सब देखा हाल सुनाया
चूहा सिर पर चढ़कर उत्पात मचाये
फिर बिना कहे ही भोजन चट कर जाये
जो रक्षा अपनी आप न करने पाये
वह शंकर कैसे? यह न समझ में आये

उठिये अब मठ में यों मत सोते रहिये
इस पिण्डी को शिव शंकर आप न कहिये
यह केवल जड़ है शिव चेतन है दूजा
हाँ! अबोध ही इसकी करते हैं पूजा
इस पिण्डी को मैं शङ्कर जानूं कैसे
मिट्टी को सच्चा सोना मानूं कैसे
सुन अश्रुतपूर्व यह वाक्य पिता चकराये
समझाने निज सुत को ये वचन सुनाये
कलियुग में शिव साक्षात न देते दर्शन
यों मूर्त्ति बना शिव का होता है पूजन
पाषाण आदि प्रतिमाओं में भी जो जन
रख शम्भु – भावना करते हैं आराधन
ढ़प, घण्टे, शंख बजा जो बम, बम बोले
तत्काल रीझ जाते हैं शंकर भोले

सन्तुष्टि हो सकी लेश न पितृ-वचन से
उठ गई आस्था जड़-प्रतिमा पूजन से
संकल्प किया जड़-मूर्त्ति नहीं पूजूँगा
हाँ उस शंकर को मैं अवश्य निरखूँगा
उसका ही पूजन श्रद्धा सहित करूँगा
उसके ही चिन्तन से भव सिन्धु तरूँगा
जो शङ्कर है चेतन 'प्रकाश' अविनाशी
निर्लेप, नित्य, सर्वज्ञ सकल सुखराशी
जो रक्षा करता है सदैव जग भर की
मैं खोज लगाऊँगा अब उस शंकर की
शंकर-दर्शन करने की हृदय समाई।
वह रात धन्य जो प्रभात नूतन लाई।।
खुले पिता दृग–पट तदपि, रहे हृदय–पट बन्द
बोले ! जड़ प्रति मोह लख, दयानन्द सुखकन्द

□□

गीत

शिवालय में धरा क्या है
उठो! बापू चलो घर को।
अचेतन शम्भु प्रतिमा को
झुकाओ मत वृथा सर को।।
चुहा भी एक छोटा सा
हुआ वश में नहीं जिसके।
बताओ वह करेगा किस तरह?
वश में चराचर को।।
निपट निर्जीव ये पाषाण
शंकर हो नहीं सकता।
हुआ खिलवाड़ है केवल
अविद्या में ग्रसित नर को।।

महा अन्धेर यह कैसा?
कहाता सर्व व्यापक जो
शिवालय में किया है बन्द
उस भगवान शंकर को।।
विकट घाटा उठाना ही
पड़ेगा क्यों न उस नर को।
समझकर शुद्ध हीरा, जो
कि लेता मोल पत्थर को।।
विधाता सर्व ज्ञाता जो
'प्रकाशानन्द' दाता है
कभी तो ढूंढ ही लूंगा
उसी शंकर महेश्वर को।।

□□

स्फुट-काव्य

यज्ञ-महिमा

यज्ञ जीवन का हमारे श्रेष्ठ सुन्दर कर्म है।
यज्ञ का करना कराना आर्यों का धर्म है॥
यज्ञ से दिश हो सुगन्धित शान्त हो वातावरण।
यज्ञ से सद्ज्ञान हो, हो यज्ञ से शुद्धाचरण॥
यज्ञ से हो स्वस्थ काया, व्याधियाँ सब नष्ट हों।
यज्ञ से सुख, सम्पदा हो, दूर सारे कष्ट हों॥
यज्ञ से दुष्काल मिटते यज्ञ से जल वृष्टि हो।
यज्ञ से धन धान्य हो, बहु भाँति सुखमय सृष्टि हो॥
यज्ञ है प्रिय मोक्ष दाता, यज्ञ शक्ति अनूप है।
यज्ञ-मय यह विश्व है विश्वेश यज्ञ-स्वरूप है॥
यज्ञ-मय अखिलेश ! ऐसी आप अनुकम्पा करें।
यज्ञ के प्रति आर्य जनता में, अमित श्रद्धा भरें॥
यज्ञ पुण्य 'प्रकाश' से सब पाप, ताप तिमिर हरें।
यज्ञ नौका से अगम संसार-सागर को तरें॥

नहीं अच्छा

धरा, धन, धाम पाकर, व्यर्थ इतराना नहीं अच्छा।
किसी को स्वार्थहित सन्ताप पहुँचाना नहीं अच्छा॥
दलित दुखिया जनों की पीर को मेटो तो हम जाने।
अकेले स्वर्ग का आनन्द भी पाना नहीं अच्छा॥
गगनचारी विहग टुक सोच केवल जीविका के हित।
पतंग की भाँति चढ़ ऊँचे यूं गिर जाना नहीं अच्छा॥
तुझे कुछ माँगना हो मांग उस आनन्द-घन प्रभु से।
भिखारी बनके दर दर हाथ फैलाना नहीं अच्छा॥
नदी का शुद्ध मीठा जल हुआ पड़ सिन्धु में खारा।
पतनकारी कुसंगति में कभी जाना नहीं अच्छा॥
कुँआ या बावली में नर भले गिरता हो गिर जाये।
निगाहों से कभी लोगों के गिर जाना नहीं अच्छा॥
'प्रकाशादर्श' जीवन तू बना इस विश्वप्रांगण में।
विषय दुर्वासना में आयु विसराना नहीं अच्छा॥

□□□

वेद-महिमा

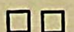
सर्वस्व आर्यों का सर्वगुण निधान है
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है
है ज्ञान, कर्म, भक्ति का उत्कृष्ट समन्वय
रहते हैं सर्वकाल ये, हो सृष्टि वा प्रलय
निश्रेयसाभ्युदय का है साधन ये असंशय
फल चार का दाता है यही वेद चतुष्टय
यह तर्क युक्ति-पूर्ण विज्ञानानुकूल है
सब काल सभी को ये सौख्य शान्ति मूल है
साहित्य सर्वमान्य वेद का पुनीत है
कल्पित कहानी ये न गड़रिये का गीत है
हीरा है सच्चा वो, तू काँच समझा है जिसे
रे ! देख वेद को तू वेद की ही दृष्टि से
मत-दीपों में कहीं जो चमकते हैं दिव्य कण
ज्योतित उन्हें है कर रही ये वेद-रवि-किरण
मत, पन्थ अन्य जितने भी प्रचलित हैं ये नूतन
हाँ, वेद सर्व श्रेष्ठ सभी से हैं पुरातन
प्रत्यक्ष यहाँ सृष्टि का सम्वत प्रमाण है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है॥
वेदों को मिटादे ये भला किसकी ताब है
है ज्ञान ये अक्षय न कोई ये किताब है
पानी में वेद ज्ञान कभी गल नहीं सकता
यह वेद आग में भी कभी जल नहीं सकता
वेदों के ग्रन्थ हाँ ! विधर्मियों ने जलाये
हम्माम अपने गर्म कई साल कराये
पर, मूढ़ पक्षपातियों ने ये भी न जाना
ग्रन्थों का जलाना नहीं वेदों का जलाना
वेदों की ऋचा वृक्षों पै वृक्षों के पत्तों पर
फूलों पै फलों पर है वो चोटी पै जड़ों पर
मानव-समाज पशु व पक्षियों के गात पर
सागर, तरंग, सरिता-तटों, जल प्रपात पर

पर्वत व पर्वतों के गगन चुम्बी शिखर पर
ब्रह्माण्ड के कण-कण पै भी हैं वेद के अक्षर
जिस काल ने मिटाये हैं यूँ लोक वृहत्तर
अक्षर अशुद्ध को ज्यों मिटा देता है रबर
वेदों को मिटा सकता न वो काल भयङ्कर
अङ्कित हैं वेद-वाक्य काल के भी भाल पर
हाँ ! अमर ईश का ये अमर वेद-ज्ञान है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है ॥
आर्यों ने वेद के लिये बलिदान किये हैं
हंसते हुए कराल गरल पान किये हैं
फांसी पै चढ़ गये प्रचण्ड अग्नि में जले
कुचले गये वो हाथियों के पाँव के तले
लोहे के गर्म चिमटों से तन खाल खिंचाई
जिह्वा कटाई आँख सलाखों से फुड़ाई
भालों कृपाणों बाणों से छिदवाये अङ्ग अङ्ग
जीवन के अन्त क्षण भी ये मन में रही उमङ्ग
फिर जन्म लेंगे वेद का उद्धार करेंगे
अभिशाप, पाप-ताप, अखिल जग के हरेंगे
हम आर्यों को वेद ही प्राणों का प्राण है।
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है ॥
है वेद की शिक्षा 'जियो औरों को जीने दो'
सुख, शांति का प्याला पियो औरों को पीने दो
है ओत प्रोत सारे ही ब्रह्माण्ड में ईश्वर
उसके हैं सब पदार्थ ये न भूल कभी नर
हाँ ! त्याग भाव से सदा इनका प्रयोग कर
लालच के वशीभूत हो पर, धन कभी न हर
मुख से भला कहो, भला देखो भला सुनो
हाँ ! साध्य भले के लिये साधन भले चुनो
सब के विचार एक हों आचार एक हो
होवे न परस्पर घृणा, व्यवहार नेक हो
जीवन में ओत प्रोत ये वैदिक विचार हो
निश्चय मनुष्यता का चतुर्दिक प्रसार हो
प्राणी समस्त विश्व के होंगे सुखी अभय
बोलेंगे सभी प्रेम से वैदिक धर्म की जय
शिव, सत्य, सुन्दरम् 'प्रकाश' का ये गान है
वर वन्दनीय वेद की महिमा महान् है ॥



सत्यार्थ प्रकाश

चाहो यदि लेना इस लोक में आनन्द आप
परम, पुनीत, प्रभु भक्ति मकरन्द का
चाहो तरना जो अघ असत्य, अविद्या सिन्धु
चाहो करना विनाश दुख-दैन्य-फन्द का
चाहो भरना जो सत्य ज्ञान से मस्तिष्क कोष
चाहो भण्ड फोड़ना पाखण्ड छल छन्द का
चाहो करना निवृत्ति शंकाओं की तो अवश्य
पढ़लो सत्यार्थ-प्रकाश दयानन्द का
कोटि-कोटि जनगण-जीवन सुधारक है
परम प्रचारक सुमति, सत्य-कान्ति का
विविध मतों का है समीक्षक भी जिससे कि
सत्य का प्रसारण, निवारण हो भ्रांति का
वैदिक सिद्धान्त-प्रतिपादक पुनीत प्रिय
पाठ ये प्रत्येक को पढ़ाता ऐक्य, शांति का
भारत के भाग्योदय करने महर्षि का ये
'सत्यार्थ प्रकाश' बना अग्रदूत क्रांति का
हो वर वेद से वञ्चित आर्य
लगाते गप्पाष्टक गर्त्त में गोता
सत्य, असत्य का पारखी लाखों में
होता कोई पटु पाठक श्रोता
आशा परायी सदा करते जिमि
पिञ्जर-बद्ध पराश्रित तोता
चेतना आती न भारत में
यदि ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश न होता



वैदिक धर्म महिमा

हमारा वैदिक धर्म महान् ।

पूज्य प्रिय, पावन, प्राणाधार, पुण्यप्रद, प्रभुप्रदत्त उपहार,
मुक्ति-पथ-प्रेरक परमोदार, भव्य भारती-भाव भण्डार,
अटल, अक्षय, अजेय, अविकार, अगम-अनुपम, आनन्दागार,
शांति-सुख-स्रोत, स्वर्ग-सोपान, सदा स्वप्रकाशी सूर्य समान ।
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥

वहाना रक्त न जिसका लक्ष्य, न लेता पापी जन का पक्ष,
जियो औरों को जीने दो, किसी का स्वत्व न तुम छीनो,
किसी को कभी न देना क्लेश, यही है वेदों का उपदेश,
मित्र की भाँति सभी को मान, करो तन, मन धन से कल्याण ।
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥

नियम-अनुकूल, विशुद्ध, नितांत, असत अघ अनय शून्य निभ्रांत,
वेद-रवि से ले प्रभा विवेक, चमकते हैं मत दीप अनेक,
यही जग में सुसभ्य प्राचीन, अन्य मत जितने सभी नवीन
सृष्टि सम्वत प्रत्यक्ष प्रमाण, मानते माननीय, मति-मान
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥

न होता यदि यह वैदिक धर्म, समझता कौन प्रकृति का मर्म,
सत्य का होता भीषण ह्रास, सभ्यता का होता न विकास,
मूढ़ता का होता व्यापार, निरन्तर बढ़ता पापाचार,
विचरते बनचर विहग समान, न होता मानवता का ज्ञान ।
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥

आर्य जन इस धर्म के लिये, मरे, इसके ही लिये जिये,
त्याग बलिदान अनेक किये, गरल के प्याले तलक पिये,
हाथियों के पावों कुचले, स्वयम् जीवित आग में जले,
खिंचाई खाल दिये निज प्राण, किंतु फिर भी था यह अभिमान ।
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥

बन्धुओ ! निज कल्याण चहो, धर्म वैदिक की शरण गहो,
देश, परदेश कहीं विचरो, पठन पाठन वेद का करो,
कार्य यह आवश्यक अनिवार्य, बनाना अखिल विश्व को आर्य,
प्रेम, श्रद्धा में हो गलतान, सुनाओ कवि 'प्रकाश' यह तान ।
हमारा वैदिक धर्म महान् ॥



महर्षि महिमा

वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ॥
असत् शम्भु की पूजा जिसने बिसारी ।
बना सच्चे शंकर का जो था पुजारी ॥
धरा धाम सुख-साज पर लात मारी ।
बना लोक-हित पूर्ण जो ब्रह्मचारी ॥
दशा जिसने भारत की बिगड़ी सुधारी ।
किये एक जिसने शिखा सूत्र धारी ॥
धर्म वीर, सेवा-व्रती क्रांतिकारी ।
बनाये थे जिसने बहुत नर व नारी ॥
किया जिसने फिर जागृति का सवेरा ।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ॥ १ ॥

नया पन्थ जिसने न कोई चलाया ।
पुरातन जो वेदों का संदेश लाया ॥
अविद्या का जिसने विकट दुर्ग ढाया ।
अनार्यों को फिर आर्य जिसने बनाया ॥
प्रथम जिसने नारी जगत को जगाया
अनाथ और विधवा को धीरज बँधाया
छूआछूत का भूत जिसने भगाया ।
गऊ-रक्षा का प्रश्न जिसने उठाया ॥
कृपा हस्त जिसने दलित जन पै फेरा ।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ॥ २ ॥

चलाने को फिर वेद शिक्षा प्रणाली ।
यहाँ नींव गुरुकुल की जिसने थी डाली ॥
पुनः आर्य जाति सुसाँचे में ढाली ।
बहा जिसने दी गंगा सद्ज्ञान वाली ॥
बना जो कि भारत के उपवन का माली ।
हृदय रक्त से सींची हर डाली डाली ॥
की हरियाली चहुँ दिश विपद जिसने टाली ।
नयी जान डाली, शिथिलता निकाली ॥
उखाड़ा था भ्रम-भूत का जिसने डेरा ।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा ॥ ३ ॥

मेरी शिक्षा पै आर्यों ध्यान धरना।
मेरे बाद ऐसी न तुम भूल करना॥
समाधी न मेरी कहीं तुम बनाना
न चद्दर न तुम फूल माला चढ़ाना
न पुष्कर, गया, अस्थियां लेके जाना।
न गंगा में तुम मेरी अस्थि बहाना॥
ये झंझट न तुम व्यर्थ के मोल लेना।
मेरी अस्थियां खेत में डाल देना॥
कि जिससे मेरी अस्थियां खाद बनके।
कभी काम आये कृषक दीन जन के॥
यूं कह जिसने टाला अविद्या का घेरा।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा॥४॥

परम लक्ष्य था जिसका जग की भलाई।
बराबर थी जिसको प्रशंसा, बुराई॥
क्षमा-शीलता खूब जिसने, दिखाई।
दिया जिसने विष जान उसकी बचाई॥
न थे पास मठ, धाम चेली न चेला
न सोना न चाँदी न पैसा न धेला
'प्रकाशार्य' संकट-विकट जिसने झेला
करोड़ों के आगे डटा जो अकेला
गया कांप जिससे प्रपञ्ची लुटेरा।
वही पूज्य गुरु है दयानन्द मेरा॥५॥

□□

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानंद ने

वेदों का डंका आलम में,
बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।
हर जगह ओ३म् का झंडा फिर,
फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने॥
अज्ञान अविद्या की चहुँदिशि,
घन घोर घटाएँ छाई थीं।
कर नष्ट उन्हें जग में प्रकाश,
फैला दिया ऋषि दयानन्द ने॥
सर पर तूफान बला का था,
आँखों से दूर किनारा था।
बनकर मल्लाह किनारे पर,
पहुँचा दिया ऋषि दयानन्द ने॥
घुस गये लुटेरे घर में थे,
सब माल लूट कर ले जाते।
सोतों का हाथ पकड़ कर फिर,
बिठला दिया ऋषि दयानन्द ने॥
मक्कारी ढोंग प्रपञ्चों से,
जो माल मुफ्त का खाते थे।
सब पोल खोल कर दिल उनका,
दहला दिया ऋषि दयानन्द ने॥

कब्रों पर सिर को पटकते थे,
काशी कावे में भटकते थे।
दे ज्ञान उन्हें फिर मुक्ति मार्ग,
दिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥
जो चीख चीख कर आठ पहर,
करते थे निन्दा वेदों की।
सर उनका वेदों के आगे,
झुकवा दिया ऋषि दयानन्द ने॥
सब छोड़ चुके थे धर्म कर्म,
गौरव गुमान ऋषि मुनियों का।
फिर संध्या, हवन, यज्ञ करना,
सिखला दिया ऋषि दयानन्द ने॥
विद्यालय, गुरुकुल खुलवाये,
क़ायम हर जगह समाज किये।
आदर्श पुरातन शिक्षा का,
बतला दिया ऋषि दयानन्द ने॥
बलिदान किया बलिवेदी पर,
जीवन 'प्रकाश' हँसते हँसते।
सच्चे नेता बनकर सबको,
चेता दिया ऋषि दयानन्द ने॥

□□

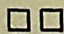
महर्षि महिमा

यूँ तो कितने ही महापुरुष हुए दुनियाँ में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥
छोड़ माता पिता, घर द्वार, धन खज़ाने को
चल दिया धार के व्रत ब्रह्मचर्य बाने को
लगी दिल में थी लगन ऐसी ही दीवाने को
होती दीपक से जैसे प्रीति है परवाने को
भटका जग में वो खोज सत्य की लगाने को
न मिला आह ! उसे कितने दिनों खाने को
कभी मरु-थल किया तै, वन कभी काँटों वाला
कभी बरफानी पहाड़ी कभी नदी नाला
हुआ लथपथ लहू से तन पड़ा पावों छाला
फेंके पत्थर किसी ने सांप विषैला काला
खड्ग चमकाया किसी ने तो किसी ने भाला
दिया नादानों ने कितनी ही बार विष प्याला
फिर भी पीछे न हटा सत्य का वो मतवाला
आज यूँ मुँह से कह रहा है हर अदना, आला
यूँ तो कितने ही महापुरुष हुए दुनियाँ में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥
पाला हनुमान पवन-सुत ने ब्रह्मचर्य था बस
अपने स्वामी श्री राम चन्द्र के रिझाने को
सुना है पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था
पृथ्वी से नाम क्षत्रि-वंश के नसाने को
पाला था ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह ने भी
अपने शान्तनु श्री पिता को सुखी बनाने को
किन्तु गुरुदेव दयानन्द ब्रह्मचारी ने
पाला था ब्रह्मचर्य जग के दुख मिटाने को
दीन दुखियों की दशा देख दुखी होता था
सारा जग चैन से सोता था तब वो रोता था
विश्व-कल्याण के साधन सभी संजोता था
एक पल भी वो कभी व्यर्थ को न खोता था
योगी जो आठ पहर ध्यान मग्न रहते हैं
देख स्वामी की तपस्या वे यही कहते हैं
यूँ तो कितने ही महापुरुष हुए दुनियाँ में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥
किया जब ऋषि के सत्य वेद धर्म का मण्डन
तर्क प्रतिभा से किया मिथ्या मतों का खण्डन
कहते खुद को थे जो गौतम, कणाद से आला
हुए चुप मानो लगा मुँह पै सभी के ताला
था अजब हाल पड़ा बुद्धि पै मानो पाला
सोचते थे महाविद्वान से पड़ा पाला
बैठे बिठलाये हाय ! कैसा ये झंझट पाला
लाखों के आगे अकेले ने ही जीता पाला
पास स्वामी के ले जिज्ञासा जो विद्वान गये
पूर्ण पाण्डित्य व प्रतिभा का लोहा मान गये
मारते मान रहे मिथ्याचार मण्डी के
वेद अनुयायी थे रक्षक थे ओ३म् झण्डी के
पूर्ण प्रतिद्वन्द्वी रहे पातकी पाखण्डी के
शिष्य बेजोड़ थे गुरु विरजानन्द दण्डी के
जैसे कवि अपने मधुर छन्द पर निछावर है
जैसे प्रेमी चकोर, चन्द निछावर है
भृङ्ग अरविन्द के मकरन्द पर निछावर है
तैसे दिल मेरा दयानन्द पर निछावर है
जिसने मृत आर्य जाति को पुनः जिलाया है
खुद ज़हर खाके वेद अमृत हमें पिलाया है
धैर्य विधवा, अनाथ, दलितों को जिलाया है
जिसने बिछुड़े हुओं को हमसे फिर मिलाया है
उस दयानन्द पै बलिहार क्यों न जायें हम
क्यों ! न उसके लिए सर्वस्व भी चढ़ायें हम
आर्य बन सच्चे क्यों न उसका ऋण चुकायें हम
क्यों न श्रद्धा से गीत ये 'प्रकाश' गायें हम
यूँ तो कितने ही महापुरुष हुए दुनियाँ में।
कोई गुरुदेव दयानन्द सा देखा न सुना॥

□□

आर्य-कर्त्तव्य

मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा।
जो सोते हैं उनको जगाये चला जा॥
कुकर्मों की कीचड़ में जो फंस रहे हैं।
अविद्या अँधेरे में जो धँस रहे हैं॥
उन्हें सत्य पथ तू बताये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
निराकार प्रभु है सभी में समाया।
सभी फिर हैं अपने न कोई पराया॥
घृणा, फूट मन से मिटाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
चुराना नहीं लोभ वश धन किसी का।
दुखाना नहीं तुम कभी मन किसी का॥
ये सन्देश घर घर सुनाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
जगत युद्ध की आग में जल रहा है।
प्रबल चक्र अन्याय का चल रहा है॥
मनुजता जगत को सिखाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
अखिल विश्व में भावना भव्य भरके।
स्वकर्तव्य उद्देश्य को पूर्ण करके॥
तू ऋषिराज का ऋण चुकाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
समझ के जो चन्दन लगा धूल बैठे।
पड़े भ्रान्ति में नाम तक भूल बैठे॥
उन्हें आर्य फिर तू बनाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥
'प्रकाशार्य' ग्रामों गली, हाट घर में।
नगर देश देशान्तरों विश्व भर में॥
दयानन्द की जय मनाये चला जा।
मधुर वेद-वीणा बजाये चला जा॥



म्हारो-देव-दयानंद

[राजस्थानी भाषा]

म्हारा देव दयानन्द फेर थे सुधारो गेली दुनियाँ ने।

फेर थे पधारो गेली दुनियां में॥
फैल रह्यो दुनिया में अधरम पाप।
भूल गये ज्ञान, ध्यान, धर्म कर्म जाप॥
म्हारा देव दयानन्द॥

बढ़ रह्यो घणो खल, मलेच्छां रो कोप।
लोग ने लुगायां ने लूट रहयो पोप॥
म्हारा देव दयानन्द॥

कटे नहीं गायां फेर देश हो सम्पन्न।
दूध पीर टावर, बूढ़ा ज्वान हो प्रसन्न॥
म्हारा देव दयानन्द॥

जागरूक करो फेर आर्य समाज।
जीसूं आखा देश रो सुधर जाय काज॥
म्हारा देव दयानन्द॥

घर घर करद्यो सत्यार्थ प्रकाश।
करद्यो असत्य अन्धकार रो विनाश॥
म्हारा देव दयानन्द॥

फेर थे छुड़ावो वेगा पूजणो पाषान।
जग ने कराद्यो सांचा शंकर रो ज्ञान॥
म्हारा देव दयानन्द॥

होवे दुनियां में वेद धर्म रो प्रचार।
विणती "प्रकाश" की या ही है बार बार॥
म्हारा देव दयानन्द॥



आर्य समाज महिमा

प्रिय पावन आर्य समाज,
मन भावन आर्य समाज,
ज्ञान–प्रकाशक घोर,
अविद्या तम का हरने वाला,
भ्रान्ति–विनाशक–भद्र-भावना,
उर में भरने वाला।
विकट विरोध विघ्न बाधा,
से कभी न डरने वाला ।।
देश हितैषी आर्य जाति की,
सेवा करने वाला
मानवता का परम पुजारी
लोकमान्य सिरताज,
प्रिय पावन आर्य समाज।
मन भावन आर्य समाज ।।
दीन दुखी विधवा अनाथ,
को तूने धैर्य बंधाया,
दलित–वर्ग नारी दल को,
समुचित अधिकार दिलाया,
भेद–भाव कर दूर प्रेम का
पावन पाठ पढ़ाया
तूने ही सदियों से सोता,
भारत देश जगाया।
प्रथम देश में तूने ही तो
छेड़ी तान स्वराज।
प्रिय पावन आर्य समाज।
मन भावन आर्य समाज ।।
तज बैठे थे भारतीय,
वैदिक सभ्यता पुरानी
बने लाल ऋषियों के थे
कुरआनी और किरानी
आर्य बनाया उन्हें सुनाकर
मधुर वेद की वाणी।
विद्यालय गुरुकुल खुलवाये
तूने विद्यादानी !
कर्ण-धार बन आर्य जाति
की तूने रख ली लाज।
प्रिय, पावन आर्य समाज,
मन भावन आर्य समाज ।।
देवी, देव पूजते थे सब,
अलग अलग मनमानी
सिखलाई, फिर एक ब्रह्म,
की उपासना सुख खानी
खाते थे धन माल मुफ्त
का पाखण्डी अज्ञानी
सुना सुना भोली जनता को
मिथ्या-कपट-कहानी
कर सचेत दी गिरा खलों
के विकट दुर्ग पर गाज।
प्रिय पावन आर्य समाज,
मन भावन आर्य समाज ।।
तेरी पावन शिक्षा को
यदि भारत अपनायेगा
फिर से अखिल विश्व गुरु की
जग में पदवी पायेगा
होगा फिर 'प्रकाश' निश्चय
सर्वत्र शान्ति सुख साज
प्रिय पावन आर्य समाज,
मन भावन आर्य समाज ।।

□□

आर्य समाज गौरव

यह आर्य समाज सकल जग में, वेदों का नाद बजायेगा।
इस उजड़े आरत भारत को, फिर स्वर्ग समान बनायेगा ।।
कर्तव्य क्षेत्र में आयेगा, पग पीछे नहीं हटायेगा।
बाधाओं को शिर पर अपने, फूलों की भांति उठायेगा ।।
कायरपन मार भगायेगा, नव जीवन ज्योति जगायेगा।
निज देश धर्म पर तन मन धन अर्पण करना सिखलायेगा ।।
ईश्वर का बोध करायेगा, मिथ्या विश्वास हटायेगा।
कर नष्ट अविद्या अन्धकार, विद्या–प्रकाश फैलायेगा ।।
वैदिक सन्देश सुनायेगा, ध्रुव धर्म ध्वजा पहरायेगा।
शिक्षा देकर महिलाओं को, कर्तव्य मार्ग बतलायेगा ।।
सुख शान्ति सुधा बरसायेगा, प्यासों की प्यास बुझायेगा।
कर छिन्न भिन्न सब भेद भाव, आपस में प्रेम बढ़ायेगा ।।
पतितों को पुनः उठायेगा, बिछुड़ों को गले लगायेगा।
पाखण्डी औ विधर्मियों के चुंगल से उन्हें छुड़ायेगा ।।
गऊओं के प्राण बचायेगा, विधवा को धैर्य बँधायेगा।
इन आश्रय–हीन अनाथों को, निज गोदी में बिठलायेगा ।।
सच्चरित्रता सिखलायेगा, सब भ्रष्टाचार मिटायेगा।
खल दम्भी, देश द्रोहियों के, मिट्टी में मान मिलायेगा ।।
स्वावलम्ब-पथ बतलायेगा, उन्नति के शिखर चढ़ायेगा।
ऋषि मुनियों का गौरव 'प्रकाश' भूमण्डल को फैलायेगा ।।

□□

दयानंद देव वेदों का उजाला लेके आये थे

दयानन्द देव वेदों का,
उजाला लेके आये थे।
करों में ओ३म् की पावन
पताका लेके आये थे॥
न थे धन, धाम मठ, मन्दिर,
न सङ्ग चेली न चेला था।
हृदय में वे अटल विश्वास,
प्रभु का लेके आये थे॥
गऊ, विधवा, दलित दुखिया,
अनाथों, दीन जन के हित।
नयन में अश्रु-कण मानस में,
करुणा लेके आये थे॥
अविद्या सिन्धु से अगणित,
जनों को पार करने को।
परम सुख–दायिनी सद्ज्ञान,
नौका लेके आये थे॥
कोई माने न माने सच तो,
ये ऋषि-राज ही पहले।
स्वराज्य स्थापना का मन्त्र,
सच्चा ले के आये थे॥
पिलाया ज़हर का प्याला,
उन्हीं नादान लोगों ने।
कि वे जिनके लिये
अमृत का प्याला लेके आये थे॥
प्रकाशादर्श शिक्षा का,
पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का,
सन्देशा लेके आये थे॥

□□

आर्य वीर जाग !

आर्य वीर जाग! आर्य जाति को जगायेजा,
होके सावधान धर्म अपना तू निभायेजा।
तू सुयश कमायेजा॥

डर की कौन बात है ईश तेरे साथ है,
तू अकेला बात अपने देश की बनाये जा।
जय विजय मनाये जा॥

आन के लिये तू अड़, आग में भी कूद पड़,
तप के स्वर्ण के समान खूब चमचमाये जा।
ज्योति जगमगाये जा॥

ढोंगियों की पोल खोल, जय सुकर्मियों की बोल,
देश में है फैला भ्रष्टाचार तू मिटाये जा।
विघ्न-भय हटाये जा॥

भेद भाव छोड़कर जाति पांति तोड़कर,
शुद्धि संगठन का सूत्र तू बिगुल बजाये जा।
बिछुड़ों को मिलाये जा॥

वृष्टि झंझावात हो, घोर काली रात हो,
कर्म क्षेत्र में निशंक तू कदम बढ़ाये जा।
वीरता दिखाये जा॥

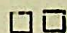
ओ३म् ध्वजा हाथ ले आत्म शक्ति साथ ले,
दुष्ट, दैत्य, देश द्रोहियों को तू दबाये जा।
धाक तू जमाये जा॥

वेद, सत्यज्ञान है आर्यों का प्राण है,
कर 'प्रकाश' घोर अन्धकार तू मिटाये जा।
ओ३म् गान गाये जा॥

□□

नवजवान चाहिए !

नवजवान चाहिए, नवजवान चाहिए
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए
दिन रात असुर कर रहे हत्यायें हानियाँ
होती समाप्त हैं न दुखों की कहानियाँ
मिटती सुहागिनों की भाग्य की निशानियाँ
आयेंगी काम कब ये जवानो ! जवानियाँ
होना हृदय में कुछ तो, स्वाभिमान चाहिए।
निज देश की रक्षा को नवजवान चाहिए।।
दुष्टों की दुष्टता कभी जिसको नहीं खले
रुँदता हो शीश जिसका शत्रु-पांव के तले
वन दास और के सदा संकेत पर चले
सच जानो ऐसे मर्द से तो मुर्दे ही भले
सूरत भी ऐसे की तो देखना न चाहिए।
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए।।
रह जायेगी पड़ी ये नोट रुपयों की थैली
रह जायेगी गड़ी ये चाँदी सोने की ढ़ेली
रह जायेगी खड़ी ये नई हाट हवेली
जायेगी नहीं साथ कभी एक अधेली
जीतेजो करना हाथ से, कुछ दान चाहिये।
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए।।
सुनते ही हृदय, ज्वालामुखी से भड़क उठें
भुजदण्ड प्रबल मारे जोश के फड़क उठें
तन जायें सीने, बन्ध कवच के तड़क उठें
बदकार बैरियों के कलेजे धड़क उठें
कवि को सुनाना ऐसा, अग्नि-गान चाहिए।
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए।।
ज्ञानी को यहीं स्वर्ग है, आनन्द है दूना
अज्ञानी को संसार ही है नर्क नमूना
रस्सी समझ के सर्प को हाथों से न छूना
धोखे में दही के कहीं खालेना न चूना
खोटे, खरे की कुछ यहाँ, पहिचान चाहिए।
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए।।
सावन पवित्र जिसका लक्ष्य भी पवित्र हो
दुष्टों का जो कि काल सज्जनों का मित्र हो
व्यसनों से दूर जिसका कि उज्ज्वल चरित्र हो
गति जिसकी धर्म, राजनीति में विचित्र हो
नेता "प्रकाश" ऐसा, गुण निधान चाहिए।
निज देश की रक्षा को, नवजवान चाहिए।।



आर्य क्या चाहते हैं !

बतायें तुम्हें आर्य क्या ! चाहते हैं।
भला सर्व संसार का चाहते हैं।।
निराकार जो सर्वव्यापक, अजन्मा।
उसी प्रभु की आराधना 'चाहते हैं।।
मिटा कर असत् ढोंग मिथ्या मतों को।
सुविस्तार सत्-धर्म का चाहते हैं।।
सती, सीता सावित्री सा नारियों में।
सदाचारिता, शीलता चाहते हैं।।
जगत के करोड़ों तृषित मानवों को।
पिलाना अमृत वेद का चाहते हैं।।
सभी देश के वासियों में परस्पर।
परम स्नेह सद्भावना चाहते हैं।।
स्वदेशी चलन वेश-भूषा स्वदेशी।
स्वदेशी कला, सभ्यता चाहते हैं।।
वयो वृद्ध भारत में फिर पथ प्रदर्शक।
दयानन्द ऋषिराज सा चाहते हैं।।
न हो रोग दुष्काल भय, शोक चिन्ता।
सुखी देश की सब प्रजा चाहते हैं।।
'प्रकाशार्य' भारत के हर नवयुवक में।
सदाचार श्री राम सा चाहते हैं।। ☐☐

मानव ! मानवता छोड़ नहीं

रवि की किरणें भू पर आती
तेरे पद रज को छू जातीं
हे ! मानव ! तू जग में महान्
देवों की भी कर होड़ नहीं
विज्ञान मुक्ति का कारण है
यदि श्रद्धा का सम्मिश्रण है
तू बुद्धिवाद के पाहन से
सहृदयता का घट फोड़ नहीं
क्यों ? बेल कपट, विष की बोई
वैरी न यहाँ तेरा कोई
जिसमें तेरी छबि अंकित है
तू उस दर्पण को तोड़ नहीं

□□

प्रेम

क्या ? तुम्हें सुनाऊँ मैं क्या क्या ?
उद्‌गार लिये फिरता हूँ।
प्रिय के स्वागत को कितने ही लाते फूलों की डाली
कितने ही लाते हैं रत्नों से भरित, स्वर्ण की थाली,
मैं अर्पित करने प्राणों का
उपहार लिये फिरता हूँ।
मैं बरबस फूट पड़ूंगा, तुम अब अधिक नहीं कलपाओ
पानी ही पानी होगा, डर है तुम न कहीं बह जाओ,
मैं आंखों में उच्छृंखल
पारावार लिये फिरता हूँ।
आदेश तुम्हारा पाऊँ तो मृतकों में जीवन भर दूं,
संकेत तुम्हारा पाऊँ तो, पल भर में हलचल कर दूं,
मत समझो हृद्‌वीणा का,
टूटा तार लिये फिरता हूँ।
रत्नाकर की रत्नावलि जिसके चरणों में लुण्ठित हो
सौन्दर्य स्वर्ग का जिस पर, बलि होने को उत्कण्ठित हो,
मैं अपने उर में वह सुन्दर
संसार लिये फिरता हूँ।

□□

उपहार

क्या ? तुम्हें उपहार दूं मैं।
मत्त मधुकर — अवलियों ने
और चंचल तितलियों ने
कर दिये जूठे मलिन कैसे ! कुसुम के हार दूं मैं ।।
क्या ? तुम्हें उपहार दूं मैं ।।
है तुम्हारा दिव्य तन, जब
शिथिल शोभा — भार से सब
भूषणों के भार से फिर कष्ट क्यों सुकुमार दूं मैं।
क्या ? तुम्हें उपहार दूं मैं ।।
पास है साधन न किञ्चित
भाव हैं उर में अपरिमित
क्यों ? नहीं दृग–सीप के मोती तरल दो, चार दूं मैं ।।

□□

समर्पण

कण्टक–पथ भी नन्दन–वन है
जब तू समीप जीवन–धन है !
तेरी छाया, हे करुणा-धन !
भर देती जड़ता में जीवन
तेरे ही क्षणिक हास से तो मुझ में प्रकाश नित नूतन है।
प्रिय स्मृति उर में, छवि नयनों में
तेरा यश–वर्णन वयनों में
क्या ! करूं और जग में लेकर जब सञ्चित यह अनुपम धन है।
मृदुतर वीणा का तार, सुमन,
तारक, प्याला, अथवा दर्पण
कुछ भी जो टूटा कहीं कभी मैं यह समझा, मेरा मन है।
कुछ भी तो यहां न मेरा है
जो कुछ भी है वह तेरा है
तेरी ही वस्तु तुझे प्रियतम ! आदर के साथ समर्पण है।

□□

क्या करना होगा !

उठो आर्य वीरो ! ये सुस्ती है कैसी
संभलने के दिन हैं संभलना पड़ेगा
लगी दौड़ उन्नति की जग-क्षेत्र में है
तुम्हें सबसे आगे निकलना पड़ेगा
सकल लोक-उपकारिणी वेद-वाणी
विमल सभ्यता, प्रिय सुराज्यादि के हित
धधकती हुताशन में जलना पड़ेगा
तुम्हें घोर विष भी निगलना पड़ेगा
दयानन्द ऋषिराज के सार्वभौमिक
सदोद्देश्य की हो नहीं पूर्त्ति जिनसे
उन्हीं संस्थाओं व दल बंदियों की
विकट दल–दलों से निकलना पड़ेगा
खुले आम नित नाच रंग हो रहे हैं
यहां सांस्कृतिक कार्यक्रम के वहाने
पतन घोर चारित्र्य-वल का हो जिससे
रवैया वो दूषित बदलना पड़ेगा
मृतक राष्ट्र को चेतना दी तुम्हीं ने
न हो तुच्छ तुम, है महाशक्ति तुम में
अरे ! क्रान्ति के, शान्ति के अग्रदूतो !
तुम्हें अग्रणी बन के चलना पड़ेगा
प्रवल युक्ति से, शक्ति से है बचाना
सकल राष्ट्र को आक्रमणकारियों से
कृतघ्नी कुटिल, सांप घर में घुसे जो
प्रथम मुख उन्हीं का कुचलना पड़ेगा
कहो ! जाके यह, नारियों से कि तुम भी
उठो ! देश को शत्रुओं से बचाने
इन्हीं चूड़ीवाले करों में बंदूक ले
निडर सिंहनी सम मचलना पड़ेगा
अगर चाहते हो 'प्रकाशार्य' भारत
अखिल विश्व-गुरु की करे प्राप्त पदवी
दयानन्द ऋषि के बताये सुपथ पर
तुम्हें पूर्ण श्रद्धा से चलना पड़ेगा।

□□

हंसते हैं तो हंस लेने दो

जब से मेरे चित चाह हुई उस अनुपम प्रिय के दर्शन की
तब से न पड़ो कल एक घड़ी सुध बिसर गयी सब तन-मन की
पुर, ग्राम, धाम, गिरि, कानन में भटका मृग सम मारा मारा
लाखों वियोग में कष्ट सहे पर, मिला नहीं मुझको प्यारा
वह चपल, चन्द्र चित चोर बना मैं चाहक चकित चकोर बना
वह छटा घटा घनघोर बना तो मैं मतवाला मोर बना
वह कमल फूल, मैं मधुकर वह वीणा, मैं मस्त कुरंग बना
वह स्वाति बूंद, मैं चातक, वह दीपक, मैं मुग्ध पंतग बना
आहार विहार, सिंगार हार घर द्वार न रञ्च सुहाता है
हो हाट बाट से चित उचाट आमोद–प्रमोद न भाता है
कटती तारे गिन सकल रैन सुख चैन कहीं भग जाता है
जब अनायास मन किसी निपट निर्मोही से लग जाता है
मुझ व्यथित हृदय को देख सभी हँसते हैं देते हैं ताने
नहीं पाँव पड़ा जिसके छाला वह पीर पराई क्या जाने ?
सच तो यह है, गति घायल की जाने हैं घायल ही कोई
पागल का प्रेम प्रलाप पुंज पहचाने पागल ही कोई
जब विरह बावले बन बैठे संसार रिझाकर क्या करना ?
प्रतिबिम्ब प्राकृतिक को अब इन आंखों में लाकर क्या करना ?
मन मन्दिर में मन मीत मिले फिर बाहर जाकर क्या करना ?
जब भरा प्रेम रंग रग, रग में, रंग और जमा कर क्या करना ?
पाया है बेपरवाह राज्य हम पागल प्रजाधिराज हुए
हम लोक लाज, सब जीत आज राजों के भी महाराज हुए
जी में जिनके जो कुछ आये कहने दो गाली देने दो
जो पागल जान 'प्रकाश' हमें हँसते हैं तो हँस लेने दो

□□

अपनी राह चला चल

कोई बुरा कहे कहने दे पर तू अपनी राह चला चल
बिन पतझड़ मधुमय वसन्त कब
बिन आतप बरसात कहाँ है ?
रजनी के अस्तित्व बिना, प्रिय
पावन पुण्य प्रभात कहाँ है ?
याद रहे यह तथ्य, वस्तु
अनुकूल जहाँ प्रनिकूल वहाँ है
अमिय जहाँ है गरल वहाँ है
फूल जहाँ है शूल वहाँ है
फूलों से ही नहीं कण्टकों से भी किये निवाह चला चल।
कोई बुरा कहे, कहने दे पर तू अपनी राह चला चल ॥
तरुवर की शाखा से पत्ता
पल में टूट कहीं उड़ जाता
पर, वह अपने सखा, साथियों
के वियोग में कब ? पछताता ?
तीर निकल करके तरकश से
पल में दूर कहीं गिर जाता
पर, वह निज संगी समूह के
बिछुड़न का कब शोक मनाता ?
जीवन साथी छूटे छुट जाने दे मत भर आह चला चल।
कोई बुरा कहे, कहने दे पर तू अपनी राह चला चल ॥

नाम न ले विश्राम शान्ति का
अरे ! विश्व यह समरांगण है
संघर्षण में यहाँ जागरण
विराम में ही महा मरण है
चञ्चल सरिता में मस्ती है
अचल कूल का क्या ? जीवन है
'बढ़े चलो बस बढ़े चलो'
लहरों का भी यह निर्देशन है
दूर नहीं मञ्जिल, उर में तू, लेकर नव उत्साह चला चल।
कोई बुरा कहे, कहने दे, पर, तू अपनी राह चला चल ॥
सौंप सभी कुछ तदपि हृदय में
रहे समर्पण की अभिलाषा
यही प्रेमियों की परिपाटी
यही प्रेम की है परिभाषा
अपने हाथों ही अपना घर
फूँक और फिर देख तमाशा
निज कर्त्तव्य 'प्रकाश' किये जा
किञ्चित रहे न फल की आशा
बाँध कफन सिर पर मिटने की लिये चौगुनी चाह चला चल।
कोई बुरा कहे, कहने दे पर, तू अपनी राह चला चल ॥

□□

वेदना

विष-वेदना के घूंट पिये जा रहा हूँ मैं।
फिर भी तुम्हीं को याद किये जा रहा हूँ मैं ॥

आयेगा कभी तो मेरे जीवन में भी वसन्त।
केवल इसी आशा पै जिये जा रहा हूँ मैं ॥

तर कर न सका होठ, तेरे द्वार से साक़ी।
रीता ही पात्र साथ लिये जा रहा हूँ मैं ॥

क्या याद करोगे अजी ! रखना संभाल के।
तुमको हृदय सी वस्तु दिये जा रहा हूँ मैं ॥

खो करके अपना देह, प्राण, धाम, धरा, धन।
मस्तों में तेरे नाम किये जा रहा हूँ मैं ॥

सुधियों के सुई धागे से एकान्त में 'प्रकाश'।
जर्जर हृदय-आँचल को सिये जा रहा हूँ मैं ॥

□□

मुक्तक

(१)

सोना चाँदी न मुक्त, लाल, रतन लाया हूँ।
मधुर आहार न बहुमूल्य वसन लाया हूँ॥
तीव्र शूलों से पोर पोर छिदाकर अपने।
भेंट को तेरी मैं कविता के सुमन लाया हूँ॥

(२)

नेह का नीर न जिनमें वो नैन, नैन नहीं।
गीत जिनमें न हो प्रिय के वो बैन, बैन नहीं॥
ये कसक, वेदना, उच्छ्वास और ये आँसू।
कैसे कह दूँ कि मुझे प्यार में है चैन नहीं॥

(३)

हमने तो प्रीति निभाना सीखा।
प्राणों की भेंट चढ़ाना सीखा॥
दीप कैसा है तुम्हारा ये चलन।
ज्योति पाई तो जलाना सीखा॥

(४)

द्वेष, छल मन में भरा है न दया प्रेम यहाँ।
बन के बैठे हैं सन्त, धूर्त कालनेम यहाँ॥
जाँच करले गरल, अमृत की तू हनुमान सदृश।
जो पथिक चाहता है अपनी कुशल क्षेम यहां॥

(५)

देख कर जलती शमा परवाने।
खुद ही आ जाते हैं जलने के लिये॥
अरे! उठ चल तेरे पीछे पीछे।
लाख हो जायेंगे चलने के लिये॥

(६)

मोक्ष भगवत की भक्ति से होगी।
दूर ममता विरक्ति से होगी॥
महापुरुषों के याद कर ये वचन।
सत्य की रक्षा शक्ति से होगी॥

(७)

प्राण दे फूँकते थे प्राण जो निष्प्राणों में।
महामानव वे कहाँ देखने में आते हैं॥
एक वे थे जो सबकी नजरों में समाये थे।
एक हम, सब की जो नजरों से गिर जाते हैं॥

(८)

नोट सौ सौ के जला चाय बनाई तुमने।
बड़ी मनुहार दिखा कर वो पिलाई तुमने॥
हार्दिक धन्यवाद किन्तु क्षमा आप करें।
उसमें दो पैसे की चीनी न मिलाई तुमने॥

(९)

चौकीदारी को दूध की बिठाई बिल्ली है।
इस समझ पर बड़ा मग़रूर शेखचिल्ली है॥
यूँ न अठखेलियों में वक्त गँवा अब भी सँभल।
होने आई है शाम दूर अभी दिल्ली है॥

(१०)

धन मिटे, धाम मिटे मैं मिटूँ न कुछ चिन्ता।
गीत यदि मेरे विश्व में अमिट ये हो जायें॥
फेंकता हूँ सभा में टोपियाँ विचारों की।
काश दो चार सिरों पर ही फिट ये हो जायें॥

(११)

दम जो भरता था मेरी आग के बुझाने का।
और भड़काने को उसने हवा का काम किया॥
छोड़ बैठा मैं जभी आसरा मसीहा का।
मेरे हम राही दर्द ने दवा का काम किया॥

(१२)

रात अन्धेरी है बादल है विकट जंगल है।
क्या है चिन्ता यह आत्मबल हमारा सम्बल है॥
बचने को माघ महीने की कठिन सर्दी से।
उसको कम्बल की जरूरत है जिसमें कम बल है॥

(१३)

शेख-चिल्ली सी डींग हांक नहीं।
धोखे शक्कर के धूल फाँक नहीं॥
उस फरेबी की ओर झांक नहीं।
लेगा मन देगा वह छटांक नहीं॥

(१४)

राष्ट्र-अपमान रंच सह न सके।
स्वार्थ-अन्याय-पन्थ गह न सके॥
धन्य स्वातन्त्र्य-गगन के पन्छी।
देह-पिन्जर में भी तुम रह न सके॥

[१५]

यद्यपि कुदैव व्याल का गड़ा विषाक्त दन्त है
सहस्त्र टूक छिद्र लाख वेदना अनन्त है
हुआ शरीर मम समस्त शुष्क पातझड़ सदृश
तदपि हृदय–निकुञ्ज में वसन्त ही वसन्त है

[१६]

लोभी भंवरों की टोलियां ठहर न पायेंगी
धूर्त्त बगुलों की पंक्तियां कहीं सिधायेंगी
इस परम रम्य सरोवर के सूख जाने पर
प्रेमी ये दीन मीन आह ! कहाँ जायेंगी

[१७]

लड़ी रण में कभी भारत की वीर नारियाँ ये
जलीं कर्तव्य के हित अग्नि में सुकुमारियां ये
देखते हैं जो हम आकाश में तारे अनगिन
काश ! सतियों की चिताओं की हैं चिनगारियाँ ये

[१८]

धुन के पक्के हैं ये माना कली से कच्चे हैं
लच्छे खुशियों के हैं इनमें बड़े ही सच्चे हैं
करो इनकी न अपेक्षा कभी सचमुच ये ही
राष्ट्र के कर्णधार होने वाले बच्चे हैं

[१९]

याद रहे यह दुनिया बलवानों को शीश झुकाती है
जो है कायर निबल चांद उसकी ही पीटी जाती है
मुख में कोमल जीभ सुदृढ़ दांतों से भय खाती है
हिलता है जो दाँत उसे वह बार-बार ठुकराती है

[२०]

धवल धाम नयनाभिराम भूकम्पों से ढ़ह जाते हैं
गज, तुरङ्ग, वाहन पानी की बाढ़ों में बह जाते हैं
अन्त चिता में बड़े-बड़े बलवन्त देह दह जाते हैं
पर, कवियों के काव्य कोटिशः कण्ठों में रह जाते हैं

[२१]

दानी निज धन सुकृत यज्ञाग्नि में हवि करता है !
ज्योतित इस विश्व को निज ज्योति से रवि करता है !!
ओज से पूर्ण मर्म-भेदी काव्य के द्वारा !
चेतनाशील अखिल राष्ट्र को कवि करता है !!

[२२]

धन्य जागृति का जिन्होंने किया सवेरा है !
ज्ञान-दीपक से मिटाया असत् अन्धेरा है !!
मातृ चरणों में ही जीवन-सुमन विखेरा है !
उन महा पुरुषों को सादर प्रणाम मेरा है !!

[२३]

मैं हूँ प्रेमी ये तेरा व्यर्थ अहङ्कार है रे।
प्रेम पथ है न सहज यह छुरे की धार है रे॥
नारियल रुपया देके माँगता है लाख गुना।
है नहीं प्यार ये भगवान से व्यापार है रे॥

□□

साथी

साथी ! ले चल तू उस ओर
मार रहा हो जहाँ प्रेम का सागर मस्त हिलोर।
साथी ! ले चल तू उस ओर॥

दो हृदयों का मधुर मिलन हो
जहाँ शान्ति के खिले सुमन हों
जहां न होता विरह व्यथा से व्याकुल विहग-चकोर।
साथी ! ले चल तू उस ओर॥

जहाँ वैर का नाम नहीं हो
छल, प्रपञ्च का काम नहीं हो
चूर न करता हो कोमल मन, कोई कुटिल कठोर।
साथी ! ले चल तू उस ओर॥

आज जगत में प्यार नहीं है
सुख शृंगार, बहार नहीं है
बिछे हुए हैं आह ! यहाँ पग-पग पर कंटक घोर।
साथी ले चल तू उस ओर॥

तू है जब मेरा चिर संगी
तो जग में मुझको क्या तंगी
तू बादल बनकर बरसेगा नाचेगा मन-मोर।
साथी ! ले चल तू उस ओर॥

□□

बढ़े चलो !

निशंक सावधान हो बढ़े चलो, बढ़े चलो।
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

विपत्ति-विघ्न-जाल हो प्रचण्ड-ज्वाल–माल हो
प्रमत्त गज विशाल हो कि केहरी कराल हो
विपाक्त वंक-व्याल हो समक्ष खड़ा काल हो
तदपि न मन्द चाल हो व्यथित न अन्तराल हो
मरण करो भले सुनीति–पन्थ से नहीं टलो।
बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

प्रखर किरण समूह से पयोद छिन्न भिन्न कर
समोद बढ़े जारहे प्रचण्ड भुवन-भास्कर
विटप, शिलादि ध्वंसकर बना डगर उमंग भर
समुद्र ओर जा रही सवेग जाह्नवी निडर
मिले न ध्येय जब तलक विराम तब तलक न लो।
बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

स्वदेश प्रेम का भरा हृदय पवित्र जोश हो
हिम्मत न हारना चहे मंज़िल हजार कोश हो
विनष्ट हो न आत्मबल चरित्र में न दोष हो
हरेक युवक देश का सुभाष चन्द्र बोस हो
स्वराष्ट्र-ध्वज स्वहस्त में सुदृढ़ 'प्रकाश' थाम लो।
बढ़े चलो, बढ़े चलो ॥

□□

बड़ी दूर मुझको जाना है, तार सुखों का तोड़

एक हँस से पिंजरे में बैठा, तोता बोला प्रिय ! आओ
मैं कैसा हूं महाभाग तुम भी मेरे से ही बन जाओ
गले-बन्ध है सोने का पग में भी पैंजनियाँ सोने की
भाँति भांति के मृदु व्यंजन से शोभित कटोरियाँ सोने की
सोने का ही देखो मेरे लिये बना पिंजरा सुन्दर है
अन्य आक्रमण करनेवालों का अब मुझको तनिक न डर है
पर, तुम बेघरद्वार भटकते इधर, उधर नित मारे मारे
तन रक्षा के लिए नहीं है कोई साधन पास, तुम्हारे
इतनी दौड़ धूप सहते क्यों? आओ तुम भी यहीं रहो अब
मेरी तरह छोड़ निज भाषा मिट्ठू राधेश्याम कहो अब
बोला हंस, अरे ! ओ तोते ! सोच समझ टुक अपने मन में
जो सुख मिलता स्वतन्त्रता में वह सुख मिलता कब बन्धन में
सोने के पिंजरे से अच्छा है स्वतन्त्रता का कोटर भी
बन्धन के हलवे से अच्छा स्वतन्त्रता का शुष्क मटर भी
पड़ा दासता के पिंजरे में सीखा आह ! पराई बोली
सुखद वास छूटा जंगल का छूट गये प्यारे हमजोली
तू तो पड़ा हुआ पिंजरे में दुख पायेगा, शीश धुनेगा
किन्तु स्वाभिमानी व्रतधारी राजहंस तो मुक्त चुनेगा

इस छोटे से पिंजरे में तुझको, केवल चक्कर खाना है।
मानसरोवर का मैं वासी, बड़ी दूर मुझको जाना है।।

•

शैल-शिला, तरु, तोड़, फोड़ती अन्तरिक्ष में नाद गुंजाती
सत्वर गति से चली जा रही सरिता इठलाती बलखाती
आस पास दोनों कूलों के मखमल सी हरियाली छाई
फूले गोभी, आलू, बेंगन जौ गेहूं में बाली आई
महक रहीं घनिये की क्यारी पीली पीली सरसों फूली
आये बौर आम्र डाली पर पके टमाटर गाजर मूली
चहक रही चञ्चल चिड़ियाएँ मृग-टोलिया छलांग भररहीं
बैठे आसन मार सन्त-गण, गैया भैंसे दूब चररहीं
फूल फूल अलि तितली डोलें डाल डाल कोयल मतवाली
कुहुक, कुहुक कहती सरिता से कहां ? चली तुम मेरी आली
खेत सींच जल से तुमने ही जंगल में मंगल कर डाला
इस छवि शाली बन वैभव को तुमने तनिक न देखा भाला
पल को भी विश्राम न लेती क्या ? है ऐसी बात बताओ
मोद मनाओ साथ हमारे आली आज यहीं रुक जाओ
बोली सरिता, अरी बावली ! कैसे निज उद्देश्य भुलाऊँ।
इस असार प्राकृतिक-पाश में कैसे अपना मन उलझाऊँ !
रवि किरणों से रंग बिरंगा मैंने वास हिमालय छोड़ा
जिससे सु-रत लगाई जिसके कारण तार सुखों का तोड़ा
अहो, ! उसी अपने प्यारे प्रिय सागर से मिलना ठाना है।
आली ! कैसे रुकूँ अभी तो बड़ी दूर मुझको जाना है।।

•

पार्थ, इन्द्र से गये सीखने धनुर्वेद की कला उच्चतर
एक उर्वशी, नाम सुन्दरी इन्हें देख हो गई निछावर
सखियाँ सब समझाकर हारी बात किसी की एक न मानी
सह न सकी जब विरह वेदना एक रात्रि मिलने की ठानी
काली रैन अकेली नारी पन्थ न तनिक सूझ पाता था
डर कैसा ! धनु बाण लिए जब काम देव संग में आता था !
देखी अर्जुन, ने पट-भूषण से सज्जित उर्वशी कामिनी
काली चादर फेंक खड़ी मानो बादल को चीर दामिनी
बोली बीती क्या वियोग में मुझपर निष्ठुर ! तुम क्या जानो
जला जा रहा विरह वेदना से है मम उर तुम क्या ! जानो
सोचा था पाऊंगी तुम को कहदूंगी बातें सब मन की
आते ही मैं यहां न जाने क्यों ? भूली सुध बुध सब तन की

सीखे जहाँ लक्ष्य-भेदन तुम भेदन करने अरि की काया
पर, तुमने तो आह अचानक मेरे उर को लक्ष्य बनाया
अगम अपार तरँगों वाला था मेरी आँखों का सागर
इसे पार कर कैसे ! आये मेरे उर तक हे नटनागर !
तुमने देखी केवल रिमझिम, रिमझिम अम्बर चुम्बी घन-की
किन्तु कभी तुम देख न पाये, वर्षा मेरे इन नैनन की
तुम वीणा मैं सरस रागिनी तुम चंदा, मैं चारु चाँदनी
तुम हो सागर, मैं तरंग हूँ, तुम हो घन, मैं दिव्य दामिनी
तुम ही में मैं चमकूँ दमकूँ तुम ही में मैं छिप छिप जाऊ
यही चाहना पार्थ ! तुम्हारे चरणों की सहचरी कहाऊँ
बोले पार्थ उर्वशी देवी ! मेरे भी कुछ समझ न आता
हृदय तुम्हारी ओर न जाने क्यों ? मेरा खिंचता ही जाता
कैसा रूप अनूप तुम्हारा धन्य धन्य तुम धन्य विधाता
पर, तुममें दिखलाई देती मुझको मेरी कुन्ती माता
आशिष दो, बस तुम्हें आज से मैंने निज माता माना है।
निज उद्देश्य पूर्ति करने को बड़ी दूर मुझको जाना है।।

चढ़ा हुआ था रंग हृदय पर जिसके देश भक्ति का गहरा
विशाल बाहू चौड़ा सीना उन्नत मस्तक हँसमुख चहरा
जेलों में ही बीते जिसके होली, दीपावली दशहरा
लगा रहा सरकार ब्रिटिश का जिसके घर सँगीनी पहरा
निकल गया जो साफ झौंक कर धूल ब्रिटिश दल की आँखों में
वह सुभापचन्द्र बोस काम कर गया अकेला ही लाखों में
प्रिय माता का दुलार छोड़ा घर छोड़ा सुख-साधन छोड़ा
भारत सा प्रिय स्वदेश छोड़ा पर स्वदेश का प्यार न छोड़ा
कहा किसी ने, सुभाष बाबू ! यह क्या तुमने मन में ठानी
कण्टक पथ में चलते चलते आह ! विनादी भरी जवानी
अब भी क्या बिगड़ा है ? सँभलो हो गुजरा जो कुछ था होना
कर तरुणी से शादी, भरलो सुख से दिल का कोना कोना
मन की हालत साफ बताती, खिंची भाल पर विषाद रेखा
हमने दुनिया का सुख देखा बतलाओ तुमने क्या देखा
उत्तर में यूँ कहा बोस ने तुमने, सुख की घड़ियाँ देखीं
मैंने कृषक मजूरों की आंखों में आँसू-लड़ियाँ देखीं !
देश भक्त सज्जन सन्तों के हाथों में हथकड़ियाँ देखीं
कितनी लतिकाओं की मुरझे फूलों की पङ्खड़िया देखीं
वीर लाजपत जैसों के लाठी से शीश फूटते देखे
मोती और जवाहर से जेलों में मूंज कूटते देखे !

भीगे बेंतों की मारों से कितने आह ! सिसकते देखे
खुदी, भगतसिंह से फांसी पर कितने वीर लटकते देखे
कई बार कितने ही निर्दोषों पर चलते गोली देखी
हद होली दानवता की, मानव-शोणित की होली देखी
मिटती, सुहागिनों के माथे से सुहाग की लाली देखी
कितनी माताओं की मैंने, गोदें होते खाली देखी
आह ! भूख से मरकर लाशों को सागर में फिकते देखा
लड़के और लड़कियों को दश दश आने में विकते देखा
विदेशियों द्वारा, भारत की होते नष्ट संस्कृति देखी
पश्चिमीय सभ्यता और हर नर नारी की प्रवृत्ति देखी
असुर विदेशी अन्यायी मायावी रावण छल वल करके
भारत की लक्ष्मी सीता को लेकर भगा पार सागर के
जमा रहे हैं आह ! निरन्तर आधिपत्य आतङ्क असुरगण
किया 'राष्ट्र-लक्ष्मण' है मूर्छित चला मोहनी शक्ति विलक्षण

इस लक्ष्मण को चेतन करने, मैंने यह बदला बाना है ।
बन हनुमान सँजीवनि लाने, वड़ी दूर मुझ को जाना है ।।

□□

प्रेम

गुणी हूँ न गायक न कवि नर-नायक हूँ,
नगरी का नागर न कोई बन-चारी हूँ, ।।

रसिक रँगीला न 'प्रकाश' हूँ छबीला छैल,
साधु हूँ न संत न महन्त मठधारी हूँ ।।

दाता हूँ न दानी हूँ न ज्ञानी हूँ न ध्यानी-मानी,
राजा हूँ न रंक न निशङ्क अधिकारी हूँ ।।

शूर शस्त्रधारी, न वणिक व्यवहारी, मैं तो,
कुछ भी नहीं हूँ एक प्रेम का पुजारी हूँ ।।

□□

उद्बोधन

मैं अपने आधार रहूँगा ।
अपने मन की करुण कहानी ।
सुर-तरुवर से भी न कहूँगा ।।
सूरज एकाकी चलता है
दीपक एकाकी जलता है
मैं भी इस संसृति-सागर में ।
एकाकी निर्द्वन्द्व वहूँगा ।।
मुख से आह कढ़ी कढ़ने दो
घाव वढ़ रहा है बढ़ने दो
पर, मरहम के अहसानों का ।
भारी भार तनिक न सहूँगा ।।
अन्ध भेड़ के तुल्य अनाड़ी
मैं न चलूँगा कभी पिछाड़ी
प्रगतिशील प्रस्फुटित स्त्रोत सम ।
निज निर्मित नव-पन्थ गहूँगा ।।

□□

जीवन

नीद में तो मैं यही समझा
कि है सौन्दर्य जीवन ।
पर, खुली जब आंख, तब
जाना कि है कर्त्तव्य जीवन ।।
विश्व का वातावरण होगा,
विमल उन व्यक्तियों से ।
होगया जिनका सुकृत–
–यज्ञाग्नि के हित हव्य जीवन ।।
शत्रु के बाणों, कृपाणों से.
भला वे क्या ? डरेंगे ।
जानते हैं जो मरण में ही
निहित है नव्य जीवन ।।
सूझ पाता पथ नहीं जब,
अन्धकारावृत निशा में
तब प्रकाश-स्तम्भ होते,
बुधजनों के भव्य जीवन ।।

□□

मधुमय देश

ऐसा मधुमय देश बनायें ।।
काम न जहाँ कुटिलता छल का,
हो प्राबल्य न द्वेषानल का।
हो न सबल, शोषक निर्बल का,
हरे न स्वत्व किसी का कोई,
बाँट सभी मिल खायें ।
ऐसा मधुमय देश बनायें ।।
सायं प्रातः प्रभु चिन्तन हो,
यज्ञादिक स्वाध्याय मनन हो।
सद् विचार सादा जीवन हो,
जहाँ गूँजती हो घर घर में,
पावन वेद — ऋचायें ।
ऐसा मधुमय देश बनायें ।।
जहां सजल, उर्वरा-धरा हो,
दृश्य हरे लख हृदय हरा हो ।
शाकपात, फल, अन्न भरा हो,
अश्व, बैल, गज, यान सुदृढ़ हों,
स्वस्थ दुधारु गायें ।
ऐसा मधुमय देश बनायें ।।
पुण्यमयी, पातक-निवारिणी,
वीर — प्रसूता, सदाचारिणी ।
परम सुशीला धर्म धारिणी,
स्नेहमयी सद्गुण-विभूषिता,
हों सबला महिलायें ।
ऐसा मधुमय देश बनायें ।
उन्नत जहाँ कला-कौशल हो,
धीर साहसी सैनिक-दल हो ।
सद्विज्ञान आत्मिक-बल हो,
बनकर शिष्य 'प्रकाश' विदेशी,
शिक्षा हित फिर आयें ।
ऐसा मधुमय देश बनायें ।।

□□

बढ़ो समर में

बढ़ो समर में मोह छोड़कर जान माल परिवार का
आज दिखादो दुश्मन को जौहर हिन्दी तलवार का
अरे ! दूसरे का मुँह तकता क्यों ? तू आठों याम है
अपने को पहिचान शौर्य, बल विद्या का तू धाम है
तू ही तो भगवान राम है, तू ही तो घनश्याम है
तेरे ही दम कंस असुर रावण का काम तमाम है
नाम निशान मिटा दो इस दुनियाँ से अत्याचार का
आज दिखादो दुश्मन को जौहर हिन्दी तलवार का
निकल पड़े सैनिक बनकर फिर दिवस अंधेरी रात क्या
धूप छांह सरदी गरमी फिर आंधी या बरसात क्या
बढ़े चलो हे वीर जवानो ! चिन्ता की है बात क्या
क्रूर भेड़िये भगां दिये इन स्यारों की औकात क्या
जीत तुम्हारे हाथ भूलकर नाम न लेना हार का
आज दिखादो दुश्मन को जौहर हिन्दी तलवार का
करो मदद अपने पौरुप से पीड़ित ललना लाल की
करना है जो कर डालो मत खाल निकालो बाल की
सहन करोगे कब तक ? ये गीदड़ भभकियां शृगाल की
कृष्ण सँभालो चक्र हो चुकी सौ गाली शिशुपाल की
मार खलों को हलका करदो, भार दुखी संसार का
आज दिखादो दुश्मन को जौहर हिन्दी तलवार का
तुम्हें शपथ है निज जननी की तुम्हें शपथ भगवान की
तुम्हें शपथ है वीरो ! हल्दी घाटी के मैदान की
तुम्हें शपथ है देश प्रेमियों के पावन बलिदान की
आओ मिलकर रखें आबरू भारत वर्ष महान की
रण की वेला में "प्रकाश" है, काम न सोच विचार का
आज दिखादो दुश्मन को जौहर हिन्दी तलवार का

□□

धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही

घात लगाकर धोखे से जब कभी शत्रु चढ़ आता
तू उसके टैंकों, विमान, राडारों से टकराता
रातों जगता कभी भूमि पथरीली पर सो जाता
कभी भूख तो कभी प्यास जिस पर भी तू मुसकाता
कभी सरकता, घुटनों चलना, गिरता चढ़ता कभी उछलता
घायल होता तुरत सँभलता, फिर दुश्मन के शीश कुचलता

दूर भागती तेरे भय से भीषण तानाशाही।
धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही॥

माँ कहती दिन बहुत हो गये आजा! लालन मेरे
बहिन कहे भैया सावन में बांधू राखी तेरे
पत्नी बाट जोहती उर में ले अरमान घनेरे
तुझे कहां अवकाश रण-स्थल में हैं तेरे डेरे

हाथ लिये बन्दूक दुनाली, निर्भय तू करता रखवाली
समर क्षेत्र में ही मनती है तेरी तो होली दिवाली
अल्हड़ मस्त जवान न करता किञ्चित लापरवाही।
धन्य, धन्य, तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही॥

सैनिक सच्चा बना देश का तजकर ममता माया
भरी जवानी में ही तूने कण्टक-पथ अपनाया
जननी जन्म-भूमि हित तेरी जननी ने तू जाया
तेरे बल पर ही व्याकुल जनता ने धीरज पाया

तेरे दम है राष्ट्र–सुरक्षा, तेरे दम है मान प्रतिष्ठा
कवि 'प्रकाश' ही क्या! तेरे गुण गण गाता है बच्चा बच्चा
नव–इतिहास लिखेगी तेरे तन की रक्तिम स्याही।
धन्य धन्य तेरा जीवन भारत के वीर सिपाही॥

□□

नीति प्रसंग

पाते ही आदेश रण–क्षेत्र में मराठे सिख,
राज–पूत, गोरखे, अहीर, जाट जायेंगे!
वीरता विराट, विश्व को दिखायेंगे 'प्रकाश'
दानवों को मृत्यु के उतार घाट जायेंगे!!
नष्ट कर डालेंगे विस्तारवादी योजनायें
संकट स्वदेश के सकल काट जायेंगे!
हिन्द रण बंका, डंका जीत का बजायेंगे ही
चीनी को तो चीनी के समान चाट जायेंगे!!

विपरीत औसर का सीधापन, मीठापन
जहर हलाहल का फल दिखलाता है।
कुटिल, कठोर कण्टकी अनेक वृक्ष खड़े
मीठा गन्ना ही देखो कोल्हू में पेला जाता है।

कांटे से ही कांटा विष से ही विष होता दूर
कपटी, कपट से ही शासन में आता है।
कपटी से सरल व्यौहार करे जो 'प्रकाश'
निश्चय वो सर्वनाश अपना कराता है॥

कपि की सी छलांग न व्यर्थ लगा
नभ शून्य में फूल की बेल कहां।
मत नाहक आश "प्रकाश" करो
इस नीरस बालू में तेल कहां।
खिंच जाता है लोहा ही चुम्बक से
खिंचता भला मिट्टी का ढेल कहां।
उन क्रूर कुचालियों के मनमें
जब मैल भरा तब मेल कहाँ॥

□□

महाभारत

[महाकाव्यांश]

जरासन्ध-वध-प्रसंग में युधिष्ठिर-कृष्ण-संवाद

जो है प्रजापालक गम्भीर, धीर, धर्मशील,
ज्ञानवान, नीतिवान, तेज बलधारी है।
बुद्धि, बल, विक्रम से जिसने जगत बीच,
भासमान भानु सम प्रभुता प्रसारी है॥
ध्रुव सम अटल है जो कि स्वकर्त्तव्य पर,
कुल की मर्यादा, जिसे प्राण से भी प्यारी है।
जिसका न देश में 'प्रकाश' प्रतिद्वन्द्वी कोई,
वही राजसूय करने का अधिकारी है॥
माना ये, हैं आप सर्व भाँति से समर्थ शूर,
वीर, धीर, सज्जन, गुणागर, प्रवीण हैं।
माना कीर्त्ति-कौमुदी तुम्हारी विश्व में है व्याप्त,
बड़े-बड़े राजा गण आपके आधीन हैं॥
माना ये भी होके प्रेम वश प्रजाजन सर्व,
आपके सुराज्य सिन्धु के ही बने मीन हैं।
किन्तु जब तक जीता जागता है जरासन्ध
तब तक आप शक्ति-क्षीण दीन हीन हैं॥
उसके ही प्रबल प्रताप शौर्य के समक्ष,
राजा, महाराजा सभी रहते हैं भयभीत।
विविध प्रकार देके कष्ट यातना अपार,
अगणित राष्ट्र-भक्तों का निचोड़ डालातीत॥
पास जिसके है सेना भी विशाल इसीलिये,
जग में समझता है अपने को वो अजीत।
ऐसे बलधारी, अत्याचारी भारी भूपति को,
रण में हराना असम्भव होता है प्रतीत॥
किन्तु, बुद्धि, बल है विचित्र मही मण्डल में,
बुद्धि से मनुष्य सुख कीर्ति जय पाता है।
कितना शरीर बल क्यों न हो किसी में किन्तु,
बुद्धि के समक्ष वो विकट मात खाता है॥
अगणित जीव जन्तुओं से भरे कानन में,
सिंह जो अकेला धाक अपनी जमाता है।
वही बुद्धि धारी एक छोटे से मनुष्य द्वारा,
पड़ पिंजरे में पराधीन बन जाता है॥
अतएव, शारीरिक बल के सहित आप,
बुद्धि के विशाल बल का सहारा लीजिये।
साधु सज्जनों को, दुखी को, उबारिये सदैव,
पातकी प्रपञ्ची पै तनिक न पसीजिये॥

सान, दाम, दण्ड, भेद सर्व भाँति से कदापि,
अपने विरोधियों को बढ़ने न दीजिये।
करलो परास्त जरासन्ध को प्रथम आप,
पीछे हो निश्चिन्त राजसूय यज्ञ कीजिये॥

युधिष्ठिरः—

मान लिया नृप जरासन्ध अति शूर वीर बलधारी है।
ऐसा है तो होने दो इसमें क्या? हानि हमारी है॥
कुछ बिगाड़ता नहीं हमारा फिर क्यों? शत्रु बनायें हम।
बिना बात वध करने का क्यों नाहक कष्ट उठायें हम॥

जान बूझ कर निर्दोषी का नाहक प्राण लिया जाये।
इससे तो है उचित यही मख राजसूय न किया जाये॥
बोले, कृष्णचन्द्र मुसकाते हे राजा भोले भाले।
यद्यपि हो तुम धर्म धुरन्धर वीर श्रेष्ठ शुभ गुण वाले॥
किन्तु अधिक आवश्यकता से हृदय उदार तुम्हारा है।
जरासन्ध के लिये तभी तो ऐसा कथन उचारा है॥
राजा को है उचित न केवल निज बैरी का नाश करे।
अपितु राष्ट्र के शत्रु ध्वंस कर जनता के सब कष्ट हरे॥

अत्याचार जरासन्ध के दिन-दिन बढ़ते ही जाते हैं।
उसके भय से राव, रङ्क पल को भी चैन न पाते हैं॥
जनता के शोषण को उसने ऐसे नियम निकाले हैं।
क्या? राजा क्या रङ्क सभी के पड़े जान के लाले हैं॥
छल बल से उसने कितने ही राजाओं को जीता है।
बन्दी उन्हें बनाकर करता अनाचार मन चीता है॥
पत्थर फुड़वाता है उनसे, चक्की भी पिसवाता है।
भरी बोझ की गाड़ी में बैलों की जगह जुताता है॥
नंगा कर, जल में भीगे बेंतों की मार लगाता है।
मार रहा भूखा कितनों को पानी से तरसाता है॥
कोल्हू में पिलवाता है जीता अग्नि में जलाता है।
बालक बूढ़े युवक किसी पर तरस नहीं कुछ खाता है॥
कितनी युवती सुहागिनों के उसने सुहाग लूटे हैं।
माताओं की गोदी से कितने ही बच्चे छूटे हैं॥
कितने भूप अभी तक उसके कारागृह में सड़ते हैं।
आता उनका ध्यान जभी आँखों से अश्रु उमड़ते हैं॥
वे तो घोर यातना भोगें राजसूय मख आप करो।
धर्म धुरन्धर भूप युधिष्ठिर! कुछ सोचो सन्ताप करो॥

[गीत]

हे धर्म धुरीण! युधिष्ठिर अपना कर्तव्य निभाओ।
उस पापी जरासन्ध का दुनियां से नाम मिटाओ॥
होकर मदान्ध दानव ने, हैं नियम कठोर निकाले।
राजा क्या प्रजा सभी के, पड़ गये जान के लाले॥
निर्दोष, मनुज कितने ही, निज कारागृह में डाले।
हो गये हाय! कितने ही, राजा मृत्यु के हवाले॥
निष्ठुर अत्याचारी के चुंगल से उन्हें छुड़ाओ।
हे धर्म धुरीण! युधिष्ठिर, अपना कर्त्तव्य निभाओ॥
यदि किसी भाँति भी तुमसे, वह पापी मर जायेगा।
सब होंगे सुखी हृदय से, संकट और डर जायेगा॥
जो हैं बन्दी उनका भी, फिर जन्म सुधर जायेगा।
देंगे आशिष वे तुमको, सुख से, घर भर जायेगा॥
वध हो पापी का जिससे, वह नीति कार्य में लाओ।
हे धर्म धुरीण धुरन्धर! अपना कर्त्तव्य निभाओ॥

पानी भरे नाव में उचित है उलीच देना,
लग जाये आग तो बुझाना ही उचित है।
विविध प्रकार उपचार करके 'प्रकाश',
रोग को शरीर से हटाना ही उचित है॥
आती हों अकारण अनेक आपदायें जहाँ,
उस ठौर से तो टल जाना ही उचित है।
बल से कि छल से या किसी अटकल से भी,
शत्रु को तो सर्वथा मिटाना ही उचित है॥

जब माधव यह वचन सुनाये, भूप युधिष्ठिर अति अकुलाये।
बोले धर्माधार हमारा, धर्म हमें प्राणों से प्यारा॥
भाव तुम्हारा मैंने जाना, छल से चाहो उसे मिटाना।
यह अधर्म-गति मुझे न स्वीकृत, दूंगा मैं सहयोग न किञ्चित्॥

बोले, कृष्ण वनिये अवश्य आप धर्मराज
किन्तु शत्रु के समक्ष नीति न भुलाइये
ऐसा है तो छोड़ के ये राजसिंहासन आप
कोने में बिछा के मृग-छाला बैठ जाइये
अस्त्र-शस्त्र धारण न कीजे, लीजे माला हाथ
मुकुट के ठौर जटाजूट ही रखाइये
दुख भोगें देशवासी आप स्वर्ग को सिधार
चैन की अकेले बैठ बांसुरी वजाइये

सुनके ये बोले धर्मराज, बिना कारण ही
युद्ध जरासन्ध से मचाना नहीं चाहता
जिससे अनर्थ, व्यर्थ बाधाएँ उपस्थित हों
ऐसा राजसूय तो रचाना नहीं चाहता
बनके वैरागी बन जाना है स्वीकार मुझे
किन्तु ये सम्राट पद पाना नहीं चाहता
राज, सुख, साज की तृषा के काज, महाराज !
मानवों का रक्त मैं वहाना नहीं चाहता

श्री धर्मराज के दीन वचन सुनकर ये
श्री कृष्णचन्द्र ने दिया पुनः उत्तर ये
जो केवल राज-भोग हित रण करते हैं
वह पुरुष पाप के पथ में पग धरते हैं
पर, जो पापी जन के विनाश करने को
सत्पुरुषों, दुखियों के संकट हरने को
निर्भय हो कर भीषण संग्राम मचाते
वह वीर जगत में अक्षय पुण्य कमाते
इसलिये युधिष्ठिर ! मेरा कहना मानो
उस दुष्कर्मी से रण करने की ठानो
जो चाहो जन संहार न होने पाये
कुछ हानि न हो वैरी का वध हो जाये
तो सरल उपाय तुम्हें मैं वतलाता हूँ
भीमार्जुन-संग उसके समीप जाता हूँ
छल, प्रपञ्च से हम उसे नहीं मारेंगे
हाँ ! मल्लयुद्ध करने को ललकारेंगे
वह भीमसेन से नहीं जीत पायेगा
इसके ही हाथों वह मारा जायेगा

दुष्कर्मी से निर्भय हो जायेंगे हम
जो वन्दी उनको मुक्त करायेंगे हम
वे भी अपने सहयोगी बन जायेंगे
यूँ राजसूय हम सफल वना पायेंगे

बोले युधिष्ठिर आप प्राण हैं मेरे,
भीमार्जुन लो ? दो लोचन समान हैं मेरे
उनके समीप तुमको जाने दूँ कैसे,
निज हाथों पग में कुठार मारूँ कैसे
ये शब्द उच्चारे भीमसेन बलधारी,
हे पूज्य भ्रात मत चिन्ता करो हमारी
हम तीनों तो ब्रह्माण्ड हिलादें सारा,
कर ही क्या सकता जरासन्ध बेचारा

बल का ही मानता है लोहा ये सकल विश्व
बल पै न होता कहीं कोई प्रतिबन्ध है
बल और बुद्धि दोनों का ही हो मिलाप यदि
तो फिर 'प्रकाश' शुद्ध सोने में सुगन्ध है
हम दोनों बल में प्रखर कृष्ण बुद्धि में है
देखिये ! विजय का ये निश्चित प्रबन्ध है
आप भय खाएँ भले, किन्तु मेरी दृष्टि में तो
भुनगे समान मति अन्ध जरासन्ध है

शिशुपाल वध (काव्यांश)

दोहा—धर्मराज ने कृष्ण का करने को सम्मान ।
सभा मध्य पहले किया, सादर अर्घ्य प्रदान ॥
किन्तु कृष्ण सम्मान को दुष्ट बुद्धि शिशुपाल ।
सह न सका अति क्रुद्ध हो, बोला यूँ तत्काल ॥

एक से एक राजा महाराज गण
विप्र, योगी, सुधारक, विचारक बड़े
हैं उपस्थित, दिया कृष्ण को अर्घ्य क्यों ?
बुद्धि पर आपके आज पत्थर पड़े

है न ऋत्विक न ऋषि सन्त ज्ञानी गुणी
है न आचार्य राजा महाराज ये
पहन पाया न सिर पर कभी ताज ये
उच्च आसन बिठाया है क्यों ? आज ये
अति वयोवृद्ध सम्मान के योग्य जो
है पिता कृष्ण के पूज्य वसुदेव जी

आज उनके सभा मध्य होते हुए
कृष्ण को क्यों ? दिया अर्घ्य तुमने अजी
किस तरह की उपेक्षा अरे ! पाण्डवो
भीष्म तो हैं तुम्हारे पितामह सगे
ये कलङ्की महा कृष्ण भाया तुम्हें
द्रोण आचार्य तुमको न अच्छे लगे
क्या ? पड़ा आँख पर्दा तुम्हारे अरे !
व्यांस भगवान भी ना दिखाई दिये
क्यों किया घोर अपमान सबका वृथा
क्या ? प्रथम अर्घ्य था कृष्ण के ही लिए
चाट जाता है जो यज्ञ हवि पुण्यप्रद
वह पतित श्वान ज्यों दण्ड का पात्र है।
यह प्रथम अर्घ्य स्वीकार कर्त्ता अरे !
मूढ़ तू कृष्ण ? त्यों दण्ड का पात्र है।
इन महामानवों के भी होते हुए
उच्च आसन सभा में तुझे है दिया
सुन अरे ! कृष्ण ! तेरी उड़ाने हँसी
घोर षड़यन्त्र यह पाण्डवों ने किया ॥

व्याह करना किसी क्लीव जन का अरे !
घोर उसके तिरस्कार की बात है
उच्च आसन पै बिठलाना तुझ तुच्छ को
कृष्ण तेरे ये अपकार की बात है
पूर्ण विश्वास ये आज मुझको हुआ
भीष्म यह वृद्ध मतिमन्द बौरा गया।
इस कुटिल की कपट युक्त करतूत से
काल निश्चय तुम्हारे निकट आ गया

कहे भीष्म ने ये वचन हे भूपति शिशुपाल
नहीं जानते कृष्ण के तुम गुण गण सुविशाल।

कृष्ण है प्रशंसनीय वन्दनीय पूजनीय,
अनुकरणीय कृष्ण नीति के निधान हैं।
असुर संहारी दीन, हीन, हितकारी कृष्ण
राजों के भी महाराज सर्वगुण खान हैं॥
ज्ञानवान, प्रीति, रीति, नीति, बुद्धि, ऋद्धि, सिद्धि
शौर्य तुष्टि पुष्टि कृष्ण ही में विद्यमान हैं।
कृष्ण को समझते हैं जो मनुष्य साधारण
मति के हैं मन्द वे अबोध हैं अजान हैं॥

कहता हूँ स्पष्ट सुनो राजन् ! क्या कौरव क्या पाण्डव दल में
है कृष्णचन्द्र सा एक नहीं, नय विनय विवेक बुद्धि बल में
माधव ने राजमुकुट अपने, मस्तक पर धारण किया नहीं
फिर भी अनगिनत मुकुटधारी, हैं राजाओं से बड़े कहीं
रक्खे हैं मुकुट इन्होंने ही, कितने ही राजाओं के शिर
वे मुकुट इन्हीं के प्रताप से, हैं आज तलक शोभित सुस्थिर
राजों के मुकुट प्रजाजन पर शासन दण्ड से जमाते हैं
वे मुकुट प्रजाजन के मन पर, दृढ़ आसन जमा न पाते हैं
पर, कृष्ण बिना ही मुकुट प्रजा, के उर में स्थान बनाये हैं
सुखधाम श्याम सबके दृग में अंजन की भाँति समाये हैं
जन समाज में वृद्धत्व माप केवल, वय से न किया जाता
फिर तो इन पीपल, नीमों को, हम सबसे वृद्ध कहा जाता
हैं बड़े बुद्धि में हम सबसे, माधव छोटे आयु में सही
जीवन के विकट प्रसंगों में स्थिर इनकी बुद्धि सदैव रही
माधव को प्रथम अर्घ्य देकर राजों का मान बढ़ाया है
शिशुपाल भूप ! तुमने हम पर लाञ्छन यह व्यर्थ लगाया है

हमने तो किया उचित ही है राजो महाराजो ! सुन लीजे
यदि है न पसन्द आपको तो जो भी जी में आये कीजे

बढ़ती ही गई अतिशय कटुता
शठता शिशुपाल नराधम की ।
तब भीष्म पितामह के फड़के,
भुज, आकृति ताम्र की ज्यों तमकी ॥
उन दम्भी दुराग्रही, द्रोहियों को,
दिखलाने अभी नगरी यम की ।
यमदण्ड सी खड्ग प्रचण्ड महा
झट म्यान से दामिनी सी दमकी ॥

जब भीष्म ने हाथ में शस्त्र गहा
नृप वृन्द हृदय दहलाने लगा ।
चरणों में झुकाने लगा सिर को
कोई शान्ति का पाठ पढ़ाने लगा ॥
अवलोक 'प्रकाश' परिस्थिति ये
मन में शिशुपाल खिजाने लगा ।
न चला कुछ ज़ोर पितामह पै
तब कृष्ण को आंख दिखाने लगा ॥

ऐरे कृष्ण ! कुटिल कलंकी आज तूने ही ये
घोर उपद्रव मचवाया कर छल बल।
अपनी प्रशंसा प्रतिष्ठा के हेतु तूने ही ये
किया अपमानित है सकल नृपति दल ॥
चाहे जो कुशलता उतर उच्च आसन से
माँग क्षमा सबसे तू बैठ घुटनों के बल।
नहीं तो ये सारे भूप, भीष्म पाण्डवों समेत
सर्प के सदृश देंगे आज तुझको कुचल ॥

कहे दुर्वचन असुर ने, हो मद में गलतान ।
सभा जनों से ये वचन, बोले कृष्ण सुजान ॥
बोल रहा ये दुर्वचन, नहीं मूढ़ शिशुपाल ।
सच तो यह इस अधम का बोल रहा है काल ॥

सौंपा था भार क्षत्रियों को
जनता के रक्षण करने का
रक्षण के बदले आज काज
रह गया प्रजा के भक्षण का

सत्ता के मद में चूर हुए
कर रहे आह ! पातक भारी
कर रही रात दिन त्राहि त्राहि
अति विकल प्रजा भय की मारी
पर, याद रहे हे राजाओ !
उनकी पुकार वेदनामयी
करुणा-निधि विश्व नियन्ता के
दरबार बीच, है पहुँच गयी
अभिमानी अनाचारियों का
मिथ्या मद उतारने वाली
हो रहीं धरा पर एकत्रित
शक्तियां निराली विकराली
जो राजा इन्हीं शक्तियों को
पहचान सजग हो जायेंगे
निश्चय जानो वे ही राजा
इस संसृति में बच पायेंगे

इन विकट शक्तियों का भीषण अति, ज्वालामुखी फटेगा जब ।
उसके खोलते हुए रस में, भस्म होंगे अत्याचारी सब ॥

शिशुपाल कुटिल ऐसा ही है
इसके भी साथ एक दल है
पहले था जरासन्ध नेता
अब ये नेता उच्छृंखल है
शिशुपाल पातकी आज तलक
तूने जितने अपराध किये
वे सब मैंने हैं सहन किये
केवल तेरी माता के लिये
कर सकता हूँ अपराध सहन
दे सकता क्षमा दान तुझको
पर, विश्व-नियामक सत्ता तो
कुछ और कह रही है मुझको
चंगुल से अत्याचारी के
पीड़ित वर्ग के बचाने को
सद्धर्म न्याय का जगती में
शुचि वातावरण बनाने को

दुखियों के धीर बधाने को
मेरा जग में आगमन हुआ
खल दल अस्तित्व मिटाने का
सच तो यह मुझको व्यसन हुआ
अत्याचारी से जो करता
निर्दोष प्रजा की रक्षा है
मेरे विचार से भारत की
वह करता सच्ची सेवा है
बस यह सेवा करना मैंने
है यथा शक्ति स्वीकार किया
तुझ सम दुष्टों का सर्वनाश
करने का पूर्ण विचार किया
यह चक्र सुदर्शन अब तेरा
सिर धड़ से अलग करेगा ही
शिशुपाल आज अपनी खोटी
करनी का दण्ड भरेगा ही

(गीत)

श्याम गह्यो कर चक्र सुदर्शन
बिखरे कच मुख पर घुंघरारे
बिहरे मनहुँ व्याल सुत कारे
चमकत मस्तक पर श्रम-बिन्दू
मानो टूक टूक भयो इन्दू

दाड़िम सरिस दसन अति सुन्दर
मुख मुद्रा गम्भीर मनोहर
हिले कर्ण-कुण्डल, फड़के कर
सरक पर्‌यो कटि सों पीताम्बर

शोभित अति विशाल युग लोचन।
श्याम गह्यो कर चक्र सुदर्शन ।।

मची प्रबल खल दल में हलचल
कितने भय से गिरे धरणि तल
मूंदे नयन भूल गये छलबल
भये विकल न परत एक पल कल
हा हा करत उसास भरत सब

कंप्यो पात सम थर थर थर तन।
श्याम गह्यो कर चक्र सुदर्शन ।।

फेंक्यो चक्र वेगयुत तक कर
शिर शिशुपाल गिर्‌यो कट भू पर
मंद मंद मुसकात चक्रधर
झींकत कौरव कर मल मल कर
भये निहाल सकल पाण्डव जन
लगे फूल बरसान देवगण
उचरत वचन 'प्रकाश' मुदित मन
जय, जय, जय, माधव मधु सूदन

असुर निकंदन, जन मन रञ्जन।
श्याम गह्यो कर चक्र सुदर्शन ।।

□□

अप्रकाशित "कीचक-वध" के कुछ अंश

धूर्त्त दुर्योधन की कपट नीति के कारण पांचों पांडवों तथा द्रौपदी नाम और वेश बदलकर राजा विराट के यहाँ १२ वर्ष तक अज्ञातवास करके रहे। महारानी द्रौपदी राजा विराट की रानी सुदेष्णा के पास सैरन्ध्री नाम से दासी बन कर रही। अर्जुन वृहन्नला नाम से रनवास में संगीत नृत्यादि सिखाने को नियुक्त हुए। इसी प्रकार युधिष्ठिर, भीम, नकुल व सहदेव भी राजा विराट के भिन्न-भिन्न कार्यों पर नियुक्त हुए। महारानी सुदेष्णा का भाई कीचक जो कि राजा का क्रूर, कामुक सेनापति था, उसकी कुदृष्टि रूपवती सैरन्ध्री (द्रौपदी) पर पड़ी। वह देखते ही उस पर आसक्त हो गया। उसने सैरन्ध्री को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन, भय तथा धमकियां दीं परन्तु सैरन्ध्री उसके चंगुल में न फँसी। नित्य प्रति की छेड़ छाड़ से तंग आकर उसने बल्लभ नामधारी भीमसेन को सोते से जगाया और अत्यन्त विकल व क्षुब्ध होकर कहा—

कुछ सोचो अजी! इतने तुम क्यों?
अब भीरु नपुंसक हो रहे हो
अपनी कुल लाज तो खो ही चुके
मम लाज भी साथ में खो रहे हो
मिला धूल में क्यों मुझ फूल सी को
अति तीक्ष्ण शूल चुभो रहे हो
दुखियारी कभी से मैं रो रही हूँ
सुख की निंदिया तुम सो रहे हो

कीचक कुटिल समझाने पै भी माना नहीं
वासना में चूर हो कुवाच्य मुझसे कहे
भागी धक्का मार चली रक्षा हित सभा ओर
पीछे दौड़, मेरे केश-पाश कर से गहे
खींचा हा! सभा में मुझे, घोर अत्याचार किया
गाय-सी रंभाती थी मैं तुम देखते रहे
पांच रक्षकों के होते मुझ हतभागिनी ने
संकट महान् अपमान कितने सहे

देख लिया भीम भुज-दण्ड बल क्षमा करो
तुमसे न अब कुछ कहूँगी सुनूँगी मैं
अपने ही बल बूते निज धर्म रक्षा हेतु
कीचक के सामने कमान-सी तनूंगी मैं
अबला हो अब न सहूँगी घोर अत्याचार
सबला महा कराल कालिका बनूंगी मैं

बैठो सब साधु सम साध साध मौन अब
कीचक कामी को निज हाथ से हनूंगी मैं
लेके अँगड़ाई बोला, भीम घबराओ नहीं
अपने किये का वह दुष्ट फल पायेगा
जायेगा पाताल में वहाँ भी मैं न पिण्ड छोड़ूँ
मेरे हाथों से वो बच कर कहाँ? जायेगा
कण्ठ लगा तुम्हें, लगी मनकी बुझाना चाहे
भीम उसका जीवन-दीप ही बुझायेगा
कल पीछे मुख जो दिखाया? तुम्हें कीचक ने
तो कभी ये भीम तुम्हें मुख न दिखायेगा

बोला भीम द्रुपद सुते! चिन्ता की क्या बात।
कीचक का वध करूँगा मैं अवश्य कल रात॥
एक कार्य मेरे लिये करें द्रौपदी आप।
कर छल बल भेजें उसे नृत्य-भवन चुपचाप॥
हुआ भोर ज्यों ही चली सैरन्ध्री उस ओर।
आता था जिस ओर से कीचक क्रूर कठोर॥
खल को निरख अरुण हुए, सैरन्ध्री के नयन।
भीम वचन कर याद वह, बोली छलयुत बयन॥

सुनिये सरकार ! तुम्हें अपने
मन की सब बात बताती हूँ मैं
मिल जाय न भेद किसी को कहीं
इस कारण ही भय खाती हूँ मैं
अब लौं अभिलाष छिपाती रही
यह सोच के ही पछताती हूँ मैं
तुम्हें कीचक चाहती हूँ कितना
यह कहते हुए शरमाती हूँ मैं

विश्वास करो मैं तुम्हारी ही हूँ
मन में कुछ शंका न लाइयेगा
बतलाना न भेद किसी को कभी
मेरे सामने सौगंध खाइयेगा
बतियाँ करते कोई देख न ले,
अब जाती हूँ आप भी जाइयेगा
दिन तो किसी भाँति बिताइयेगा
नृत्यशाला में रात को आइयेगा

सैरन्धी के वचन यों, सुन अपने अनुकूल ।
कीचक कुप्पे की तरह, गया हर्ष से फूल ।।

सैरन्ध्री चल दी तभी सुदेष्णा के पास ।
कीचक गृह को चल दिया भर मन में उल्लास ।।

कर स्नान सुगन्ध भरे जल से
फिर चन्दन इत्र कपूर मला
बहु भाँति सिंगार सजा तन पै
मणि मण्डित भूषण, वस्त्र भला
उर काला किया अर्घ-कालिमा से
मुख मद्य उँड़ेल बना पगला
रस रंग अनंग तरंग लिये
नृत्यशाला की ओर निशंक चला

पहले पहुँच गया था वह भीम नृत्यशाला
चुपचाप जा बिराजा शिर ओढ़ के दुशाला
कामोन्मत्त कीचक कुछ देर बाद आया
थी रात अति अंधेरी, पहचान भी न पाया

बोला, सैरन्ध्री सुकुमारी
रति मैनका लजावन हारी
गजगामिनि, भामिनि पिक-बैनी
शशिवदनी मृगशावक-नैनी
आवो देर करो मत प्यारी
करो कामना पूर्ण हमारी
सुन यह वचन भीम बलधारी
पूर्ण हास्य-रस के अवतारी
नारी सम मृदु बैन उचारे
बड़ी देर में आये प्यारे
जाओ, मैं तुम से नहीं बोलूं
रार करूँ घूँघट नहीं खोलूं
मैं मदमाती मैं अलबेली
मीठी जैसे गुड़ की भेली
तज के अपनी संग सहेली
कब से बैठी यहाँ अकेली
जोहत बाट नैन पथराये
तुम सौतन के घर बिरमाये
नीके नीके भोजन खाये
मेरे काज न कुछ भी लाये
भूख लगी है मैं क्या खाऊँ
क्या ? तुम को ही चट कर जाऊँ
जी में आता तुमको पीटूं
पकड़ टाँग फिर खूब घसीटूं
कुहनी मारूँ मुक्की मारूँ
कपड़े फाड़ूँ मूंछ उखारूँ
बिल्ली जैसे तुम्हें झिझोरूँ
पत्थर बांध कुण्ड में बोरूँ
चारों खाने चित्त उलट दूं
सिल पर धर चटनी सा बँट दूं

बोला कीचक तुम पर वारी
जो चाहे सो कह लो प्यारी
गाली दे लो, क्रोधित हो लो
एक बार तो घूंघट खोलो
यूं कह पांव बढ़ाया आगे
भीम फेर इठलाके भागे

कीचक पीछे दौड़ लगावे
सूम माल-सा हाथ न आवे
कीचक मन में अति अकुलाया
खूब थकाया खूब छकाया
कीचक बोला सजनी ! आओ
इतना मुझे न तुम तरसाओ
एक बार तो कहदो प्यारी
तुम मेरे मैं हुई तुम्हारी
बोला भीम तुम्हारी हूँ मैं
तुम लक्कड़ तो आरी हूँ मैं
घास फूंस तुम मैं चिनगारी
तुम कदुआ मैं छुरी, कटारी
तुम अनाज हो, मैं हूँ चक्की
तुम मूषक मैं बिल्ली पक्की
तुम दादुर, मैं क्रूर सर्पिणी
तुम कपड़ा, मैं चपल कतरनी
प्यार करूंगी तुमको प्यारे
लग जाओ लो, गले हमारे
कीचक मन में अति हरषाया
आलिङ्गन करने को धाया
दोनों भुज से जभी दबोचा
कीचक ने मन में यह सोचा
ये भुज-पाश नहीं नारी के
ये तो हैं नर बलधारी के
बोला कौन ? कहाँ से आया
क्यों ? तूने उत्पात मचाया

भीमसेन बोले अरे ! दुष्ट साध ले मौन ।
ले बतलाता हूँ अभी, तुझको मैं हूँ कौन ।।
काम विवश जो त्रिया पर, करता अत्याचार ।
उसका मस्तक तोड़ना, मेरा है व्यापार ।।
अबला पर अन्याय कर तुझे न आई लाज ।
अपनी करनी का अधम ! दण्ड भोग ले आज ।।

तब भीम ने लम्पट कीचक का
अति क्रुद्ध हो कण्ठ मरोड़ दिया
भुज दण्ड प्रचण्ड से उद्दंड का
धड़ दांव तड़ाक से तोड़ दिया
खल-मत्थ सुभट्ट ने झट्ट झपट्ट के
फूट सा फट्ट से फोड़ दिया
फिर पेट में पाँव घुसेड़ खदेड़
झिझोड़ वहीं पर छोड़ दिया

कीचक का यूँ भीम ने हुलिया दिया बिगाड़
नृत्यभवन से चल दिया करके बंद किवाड़
द्रुपद सुता के पास फिर पहुँचा भीम तुरन्त
बोला, आओ देखलो तुम कीचक का अन्त

गीत

किया हमने वचन पूरा वो आकर देखते जाओ
हमारे वीर भुजदण्डों का जोहर देखते जाओ
जो करना चाहता है नीच अत्याचार नारी पर
वही कीचक पड़ा बेजान होकर देखते जाओ
बहू बेटी पराई जो बुरी आँखों से तकते हैं
वो मरते हैं यूँ खाकर लात ठोकर देखते जाओ
जो लेने पक्ष आयेंगे मैं उनसे भी निबट लूँगा
इधर मेरी भुजा उनके उधर सर देखते जाओ
भरोसे निज भुजाओं के बचाते दुष्ट से कैसे
सतीपन नारियों का शूरमा नर देखते जाओ

बोली द्रौपदी मुदित हो, भीमसेन तुम धन्य ।
तुम सा वीर पराक्रमी नहीं जगत में अन्य ।।

[वीर अभिमन्यु काव्य का एक अंश]

अभिमन्यु-उत्तरा-संवाद

अभिमन्यु वीर ने मां के
चरणों में शीश नमाया
जब चला बिदा ले रण को
यह ध्यान हृदय में आया
उत्तरा प्रियतमा मुझको
कर रही याद रह रह कर
दे रहे भेद हैं उर का
दृग अश्रु-बिन्दु रह रह कर
कर रहा उपेक्षा कितनी
उसका कोमल कर गह कर
जाता हूँ रण में यह भी
मैं उसे न आया कह कर
बढ़ रहा यद्यपि आगे को
रथ के सम यह तन मेरा
होता जा रहा ध्वजा सम
पर पीछे को मन मेरा
इस ओर आग्रह पूर्वक
कर्त्तव्य पुकार रहा है
उस ओर प्रेम प्रेयसि का
उर लहरें मार रहा है
कर्त्तव्य, प्रेम दोनों में
यह कैसी ? होड़ लगी है
मैं भी तो देखूं इनमें
अब कौन प्रबल विजयी है
सुख, सौन्दर्य-झूले में
जी चाहे जितना झूले
मानव को यही उचित है
अपना कर्त्तव्य न भूले
उस प्राण प्रिया से भी मैं
इस समय विदा ले आऊँ
सान्त्वना धैर्य दे आऊँ
फिर निर्भय रण में जाऊँ
रह रह के व्याकुल बाला
खिड़की से झांक रही थी
निज हृदय पटल पर प्रिय की
सुन्दर छवि आंक रही थी
शशि को अवलोक कुमुदनी
हो जाती पुलकित जैसे
प्रिय को विलोक कर बाला
हो गई प्रफुल्लित तैसे
बोली, अपलक नयनों से
मैं बाट जोहती प्रियतम !
लगता है बिना तुम्हारे
पल भर भी मुझको युग सम
युद्ध के दिनों में मेरी
सत्वर सुधि लेते रहिये
करके करुणा दासी को
प्रिय दर्शन देते रहिये
यह भृकुटि आपकी असमय
क्यों ? तनी हुई है प्रियतम !
विद्रोह लड़ाई किससे ?
अब ठनी हुई है प्रियतम !
रह रह के आज फड़कते
बाहू विशाल दोनों क्यों ?
अंगार समान हुए हैं
ये नेत्र लाल दोनों क्यों ?
मन-भावन वसन्त ऋतु में
पावस की ऊमस क्यों ? है
सुखमय शृंगार समय में
यह युद्ध वीर रस क्यों है
है असन्तोष मेरे प्रति
या मुझसे रोष किया है
हे नाथ ! कहो दासी ने
क्या ? ऐसा दोष किया है
बोले, अभिमन्यु प्रिया को
निज भुज बन्धन में कसकर
उत्तरे ! मुझे तुम लगती
निर्दोष सभी विधि सुन्दर
अति भली लगी हैं मुझको
मोहक मुसकान तुम्हारी
अति नीकी लगी सुधा सी
रस बतियां प्यारी प्यारी
आँखें मञ्जुल मतवाली
मानो मधु-पूरित प्याली
होकर अति मुग्ध गले में
निज कोमल बहियां डाली
पर क्षुब्ध कर रहा अरि का
अन्याय कुशासन मुझको
है बना रहा अति व्याकुल
दुखियों का क्रन्दन मुझको
छिड़ गया युद्ध जब अरि से
तब प्रिये ! तुम्हीं सच कहना
शोभा देता युवकों को
क्या ? घर में बैठे रहना
कितनी ही ललनाओं के
अरि ने सुहाग छीने हैं
कितने सुजनों के बींधे
कटु बाणों से सीने हैं
बदला न लिया यदि उनसे
चुप यों ही रह जायेंगे
असुरों को शक्ति मिलेगी
पातक अति बढ़ जायेंगे
सन्देश दे रही मुझको
यह बार बार रण भेरी
सब साज सजाओ रण के
अभिमन्यु करो मत देरी
यह मोह सुहृद परिजन का
उर से बिसराना होगा
समराङ्गण में निर्भय हो
अब तुमको जाना होगा
खल, अधर्मियों दुष्टों का
आतंक मिटाना होगा

कटु वातावरण यहां का
शुचि शान्त बनाना होगा
लो जाता हूँ मैं रण में
उत्तरे ! बिदाई दीजे
तुम वीर क्षत्रियाणी हो
अक्षय यश जग में लीजे
गम्भीर वचन यह सुनकर
निज प्रियतम–प्राणेश्वर के
उस विधु–वदनी बाला के
आंखों से आंसू ढ़रके
रह गई स्तब्ध कुछ क्षण को
फिर बोली यह मृदु वाणी
मेरे अन्तर की ज्वाला
प्रिय ! तुमने तनिक न जानी
अब कहने से क्या होता
अपना कर्त्तव्य निभाओ
रण में प्रिय जाओ जाओ
सब मेरा मोह भुलाओ
कह दिये शब्द यह मुख से
पर मन न धीर धरता था
जायें न प्राण–धन रण में
संकेत यही करता था
फिर बोली धन्य जननि वो
जिसने तुम सा सुत जाया
सौभाग्य वीर की पत्नी
होने का मैंने पाया
पर, आज न जाने क्यों यह
अति शंकित, व्यथित हृदय है
हे ! नाथ न जाओ रण में
मेरी बस यही विनय है

बोला अभिमन्यु प्रिये ! तुम
क्यों ! कर भय, शोक रही हो
समराङ्गण में जाने से
क्यों ! मुझको रोक रही हो
अशकुन, भय, बाधाओं से
क्षत्रिय न कभी डरता है
कायर सम छिप कर घर में
बैठा न आह ! भरता है
रण में न पीठ दिखलाता
मारता या कि मरता है
सुख अपने न्यौछावर कर
औरों के दुख हरता है
यदि मोह विवश हम केवल
अपना ही सुख देखेंगे
प्रिय साथी स्वतन्त्रता का
फिर कैसे ! मुख देखेंगे
पर, पीड़ा को जो अपनी
पीड़ा करता अनुभव है
इस विस्तृत वसुन्धरा पर
वह ही सच्चा मानव है
मैं मान तुम्हारा कहना
यदि गया न आज समर में
कायर कपूत बनकर मैं
यदि बैठ रहा निज घर में
कर घृणा नाम पर मेरे
सब लोग सदा थूकेंगे
अनकहनी भी कहने में
वे तनिक नहीं चूकेंगे
तुम इस कलंक को रानी !
आजीवन धो न सकोगी

अपने जीवन में सच्ची
सुख, शान्ति संजो न सकोगी
जगती में कहलाओगी
तुम कायर पति की रानी
धरती में गड़ जाओगी
तब आह ! लाज की मारी
सन्तति फिर अपनी कायर
कुलघाती ही जन्मेंगी
जब तलक जियेगी जग में
अपकीर्त्ति भार ढोवेगी
सम्मान, शान्ति, वैभव से
जो जीवन सूना होता
यह जीवन नर्क–स्थल से
दुखदायक दूना होता
सुन वचन प्राणप्रिय पति के
सब भ्रान्ति, निराशा भागी
मिट गया मोह मानस का
कर्त्तव्य भावना जागी
बोली प्रिय ! भूल गई मैं
कर्त्तव्य क्षत्रियाणी का
निज वचनामृत से सारा
भय, शोक मिटाया जी का
अपना कर्त्तव्य निभाने
जाओ तुम समराङ्गण में
त्रुटि मैं भी नहीं रखूंगी
किंचित स्वधर्म पालन में
जब विजय प्राप्त कर प्रियतम !
समराङ्गण से आओगे
हां ! खड़ी हुई स्वागत हित
तुम मुझे यहीं पाओगे
□□

[अप्रकाशित पार्थ प्रतिज्ञा का एक अंश]

अभिमन्यु के निधन से शोकाकुल अर्जुन को कृष्ण का उपदेश

अर्जुन—

था जो कि धनुर्धर मुझ समान
था धर्मराज सा धैर्य्यवान
बलवान भीम सदृश महान
माधव सा था जो बुद्धिमान
जो था प्रद्युम्न सा रूपवान
सहदेव तुल्य सहृदय सुजान
अभिमन्यु पुत्र वह गुण निधान
कर गया आह ! सुरपुर प्रयाण

वीर धनञ्जय को अमित शोकित व्यथित विलोक।
कृष्णचन्द्र बोले वचन, कर न धनञ्जय शोक ।।

न हो यूँ विकल धीर धर हे ! धनञ्जय।
न कायर सदृश आह ! भर हे ! धनञ्जय ।।
स्वजन का निधन दुःखप्रद यह सही है
सहन जो करे धीर ज्ञानी वही है
बवण्डर विपद विघ्न के बहुत आते
कभी वीर साहस न अपना गँवाते
अधर्मीजनों का सदा नाश करने
दुखी साधु जन के विपद विघ्न हरने
जगत में प्रतापी सुभट जन्म लेते
स्वकर्त्तव्य हित युद्ध में प्राण देते

किया वीर अभिमन्यु ने धर्म पालन
समर का मरण शूर-हित स्वर्ग साधन
हुआ पुत्र तेरा अमर हे ! धनञ्जय।
न कायर सदृश आह ! भर हे ! धनञ्जय ।।

जहाँ वस्तु अनुकूल प्रतिकूल भी है
जगोद्यान में फूल है शूल भी है
न केवल मृदुल फूल ही फूल चाहो
यहाँ नेह कटु शूल से भी निबाहो
कहाँ ? बिन झड़े पात मधु-मास आया
तपे बिन कहो, स्वर्ण कब ? चमचमाया

कि ज्यों ग्रीष्म का ताप जल वृष्टि करता
प्रवल दुःख त्यों सौख्य की सृष्टि करता
बिना तप कहाँ ध्येय की प्राप्ति, होती
तुझे प्राप्त करना है यदि मञ्जु मोती
अगम सिन्धु जल में उतर हे ! धनञ्जय।
न कायर सदृश आह ! भर हे ! धनञ्जय ।।
मनुज मोह के जो वशीभूत होता
वृथा देव-दुर्लभ मनुज जन्म खोता
स्वयं नाव अपनी भंवर में डुबोता
धरे हाथ सिर पर अधम क्लीब रोता

अहो ! वस्तु जिसकी उठाली उसी ने
लगे शोक का घूँट तुम व्यर्थ पीने
स्वकर्मों-विवश पास आया तुम्हारे
जिसे पुत्र अभिमन्यु कहकर पुकारे

गया हँस वह मानसर हे ! धनञ्जय।
न कायर सदृश आह ! भर हे ! धनञ्जय ।।

वृथा शोक अभिमन्यु सुत का किया हैं
नहीं ध्यान मेरे कथन पर दिया है
मिटा है वही जन्म जिसने लिया है
सदा कौन ! जन इस जगत में जिया है

तुझी पर न आई हैं ये दुःख घड़ियाँ
अरे ! देख तू विश्व की अश्रु लड़ियां
जगड्जाल में जो अधिक लिप्त होगा
अरे ! है ये मृग-जल नहीं तृप्त होगा

सभल उठ खड़ा हो नहीं व्यर्थ शिर धुन
हुआ था स्वकर्तव्य-रत तू जिसे सुन
न वह ज्ञान गीता बिसर हे ! धनञ्जय।
न कायर सदृश आह !भर हे !धनञ्जय ।।

पार्थ प्रतिज्ञा से द्रोणार्जुन युद्ध

किया द्रोण आचार्य ने, शकट व्यूह निर्माण।
प्रमुख द्वार रक्षक स्वयं, थे आचार्य सुजान ॥
आगे जिनके था खड़ा, कौरव कटक अथाह।
पाण्डव सेना भी चली, लेकर नवोत्साह ॥
उधर पार्थ पाण्डव सहित, झट होते ही भोर।
रथासीन हो इन्द्र ज्यों, चले, समर की ओर ॥
उठा लिया गाण्डीव कर, कौरव दल अवलोक।
जिसके भीषण घोष से, हुआ प्रकम्पित लोक ॥

गीत

हुई गाण्डीव धनुष टङ्कार
धरती काँपी फैला कौरव
दल में हाहाकार।
हुई गाण्डीव धनुष टङ्कार ॥

मौन हुए हींसते हुए तुरङ्ग औ मतङ्ग
भूल गये भरना बनों में चौकड़ी कुरङ्ग
वाद्य ध्वनि हुई मन्द छोटे बड़े सभी दङ्ग
कितनों के भय से शिथिल हुए अङ्ग अङ्ग
छूट कर हाथों से धरणि पर गिरी खङ्ग
रोने लगे स्यार वृन्द, व्याकुल हुए विहंग
उल्कापात हुए झञ्झावात की उठी तरंग

अशकुन हुए अपार।
हुई गाण्डीव धनुष टङ्कार ॥

रथ को वढ़ाया श्याम ने शकट व्यूह ओर
पाण्डवी सुभट जयकार करने लगे
छूट के गाण्डीव प्रत्यञ्चा से पार्थ के विशिख
टीड़ी दल भाँति व्योम में विचरने लगे
प्राण हरने लगे असंख्य शत्रु सैनिकों के
भीरु डरने लगे उसास भरने लगे
रक्त की प्रबल धार सरिता समान बही
कच्छ, मच्छ तुल्य रुण्ड मुण्ड तरने लगे

कितने ही शूर बोले धन्य है वे कुन्ती मात
जिनके धनञ्जय से पुत्र बलवान हैं
सामना करेगा भला कौन? वाण विद्या में ये
इन्द्र, पर्शुराम शिव शंकर समान हैं
वे सुध बनते, रक्त चाट जाते हैं जलाते
वार करते विकट हर लेते प्राण हैं
तरुणी-कटाक्ष से कि जोंक से कि ज्वाल से कि
व्याल से कि विकराल काल से ये बाण हैं

रणधीर पार्थ समराङ्गण में प्रलयङ्कर युद्ध मचा रहे थे
अरि–सागर चीर पोत की ज्यों आगे को बढ़ते जा रहे थे
अवलोक शिष्य का रण-कौशल गुरुवर अतिशय हरषा रहे थे
कुछ अजा दशा थी ये विचार रह रह के मन में आ रहे थे
जो फड़क रहे थे बाहु-दण्ड पौरुष दिखलाने अर्जुन को
वे रोमाञ्चित हो रहे परम अब अङ्क लगाने अर्जुन को
विद्योपार्जन के हित जिसने संयम का शुचि व्रत धारा हो
गुरु से ले सीख उत्तरोत्तर कर मनन उसे विस्तारा हो
सविवेक नेक अति प्रखर बुद्धि पुरुषार्थी उद्भट न्यारा हो
ऐसा सद्गुण सम्पन्न शिष्य किस गुरु को भला न प्यारा हो
पड़ पारतन्त्र्य के पाश अन्न पापी का मैंने खाया है
उसका ही दुष्परिणाम आज आँखों के सम्मुख आया है
सह ले पग पग पर तिरस्कार निन्दा जग के संताप सभी
भूखों रह देह घुलादे पर पापी का अन्न न खाये कभी
इस अनाधिकारी दुर्योधन की ओर भले तन मेरा है
पर, धर्म-धुरीण युधिष्ठिर की ही ओर सदा मन मेरा है
हाँ आप्तजनों ने परम गूढ़ धर्म का तत्व बतलाया है
यह वाक्य परिस्थिति आने पर मेरे अनुभव में आया है
अन्यायी जन के लिये मुझे प्रिय जन से अनबन करना है
यूँ अधर्म की रक्षा करते धर्म-व्रत पालन करना है

प्रमुख द्वार रक्षण प्रमुख, आज हमारा कार्य।
हो निशङ्क धनु हाथ ले, खड़े हुए आचार्य ॥

आचार्य द्रोण को अर्जुन ने आदर के साथ प्रणाम किया
गुरुवर ने भी हर्षित होकर अर्जुन को आशीर्वाद दिया

बोले, अर्जुन है प्रण मेरा जयद्रथ अस्तित्व मिटाने का
गुरुदेव व्यूह के भीतर अब आदेश दीजिये जाने का
बोले यूँ द्रोणाचार्य युद्ध प्राङ्गण है यह गुरुद्वार नहीं
करना प्रवेश इसमें मेरी आज्ञा के है आधार नहीं
हां निज प्रचंड भुज दंडों का जब तुम कौशल दिखलाओगे
पहले हमको करलो परास्त व्यूह में तभी जा पाओगे

सुनके ये शब्द द्रोणाचार्य के तुरन्त पार्थ
बोले, यों सक्रोध निज हस्त में उठाये चाप
माना सुन मृत्यु से है ताप उर में असीम
है नहीं प्रताप का अभाव आपके प्रताप
कथनी है और किन्तु करनी है कुछ और
देख लिया तौर गुरुदेव ! क्षमा कीजे आप
ध्यान रहे है ये पार्थ कोई अभिमन्यु नहीं
बालक समझ मारलोगे जिसे चुपचाप

शब्द धनञ्जय के सुनके, गुरु
द्रोण महा मन में सकुचाने
कौन ? अरे ! सुत घातक, मैं
यह जानूं कि वो जगदीश्वर जाने
पुत्र वियोग के कारण ही तव
बुद्धि धनञ्जय ! है न ठिकाने
बाण चला अवलोकता क्या ?
मत बींध हृदय मम, देकर ताने

निज हस्त लाघव से सुभट धनञ्जय ने
गुरुदेव द्रोण के शरों के दिये मुख मोड़
अश्व कर डाला नष्ट, सारथी आहत किया
छिन्न भिन्न किये तन-त्राण रथ डाला तोड़
कूद पड़े रथ से तुरन्त, गुरुदेव द्रोण
क्षुब्ध हुए अति वाक्य बोले भृकुटि मरोड़
ऋण गुरु द्रोण का है अब लौं चुकाया नहीं
जाता है किधर पार्थ ! और एक बाण छोड़

प्रबल पराक्रमी प्रतापी प्रणवीर पार्थ
गुरुदेव द्रोण के ये सुनके वचन व्यंग।
कूद निज रथ से यूँ बोले करके प्रणाम
आपकी कृपा से है ये युद्ध कौशल प्रसंग ॥

आप रथ-हीन और मैं होकर रथासीन
युद्ध जो करूँगा होगा युद्ध का नियम भंग।
हो निःशस्त्र तो लो खड्ग, अङ्ग अङ्ग ले उमंग
गुरुदेव मेरे संग, कीजे आज-रण-रंग ॥

घोर घमासान रण-रंग बढ़ते विलोक
बोले बनमाली युद्धशाली रणनीति दक्ष
अर्जुन समझ बूझ जूझ रण में
चाहता है करना समय नष्ट शत्रु पक्ष
होने को है सूर्य अस्त, करिये प्रतिज्ञापूर्ण
रुकिये न द्रोण गुरु, कर्ण आदि के समक्ष
उलझो न व्यर्थ के बखेड़े में अगाड़ी बढ़ो
'जयद्रथ-वध' है तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य

वर्षा ऋतु में शैलों पर जल बरसाते हैं बादल जैसे
बरसाने लगे बाण भीषण अर्जुन कौरव दल पर तैसे
सिर छेद-छेद कर सुभटों के कन्दुक समान फेंकने लगे
मच गई प्रबल हल चल कितने उद्भट भेड़ों की भांति भगे
हां ! लगे भागने इधर उधर हय, हाथी, बिना सवारों के
यह दृश्य देख उड़ गये होश उन बड़े बड़े सरदारों के
रथ के अति द्रुत गामी घोड़े, वे बाण विचित्र धनुर्धर के
दोनों फुरती से एक साथ ही चलने लगे होड़ करके
ज्यों ज्यों अर्जुन कौरव दल पर निज बाण चलाते जाते थे
त्यों त्यों श्री कृष्ण चन्द्र आगे रथ शीघ्र बढ़ाते जाते थे
गति तीव्र रोकने अर्जुन की जो रिपु आये सम्मुख रण में
यों हुए धराशायी वे ज्यों झञ्झा से गिरते तरु वन में
कर छिन्न भिन्न किरणों से घन ज्यों बढ़ते अग्र अन्शुमाली
अरि-दल को कर विध्वंस बढ़े त्यों आगे अर्जुन बलशाली

दुर्योधन द्रोणाचार्य जी से कहता है—

गुरुदेव आपके होते रण में अर्जुन
कौरव सेना रुई की भांति गया धुन
हो रही निरन्तर रण में हार हमारी
कह रही यही है कौरव सेना सारी
आचार्य चाहते तो वह पार्थ अनाड़ी
बढ़ पाता रण में एक चरण न अगाड़ी

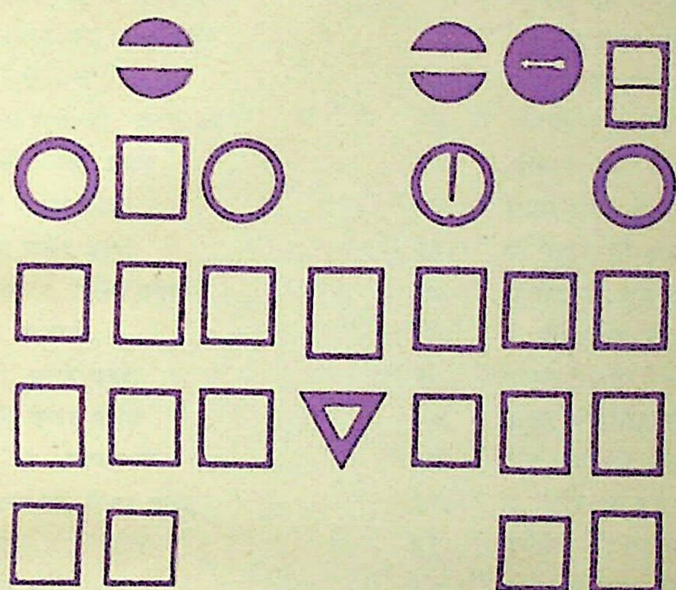
करता हूँ हार्दिक मान आपका गुरुवर !
करता हूँ मैं गुण गान आपका गुरुवर !
रखता हूँ सब विधि ध्यान आपका गुरुवर !
हूं सेवक श्रद्धावान आपका गुरुवर !
हम सर्व भांति कर्त्तव्य निबाह रहे हैं
हित आप हमारा तनिक न चाह रहे हैं
करते न विरोध हमारा खुले हुए हो
भीतर विनाश करने को तुले हुए हो
जयद्रथ-रक्षण का आश्वासन न दिलाते
तो अन्य युक्ति से वे निज प्राण बचाते
सच तो यह है गुरुवर आधार तुम्हारे
पटका है जयद्रथ हमने मृत्यु किनारे
उत्साह अमित पहले तुम दिखा रहे थे
धनु-टंकारों से भूतल गुंजा रहे थे
पर, समरांगण में जब प्रिय शिष्य निहारा
पानी के सदृश ओज ढल गया सारा

बोले द्रोणाचार्य करते हो अपमान मेरा
भूले श्रद्धा स्नेह शिष्टाचार का निबाहना
देखते न निज दोष करते हमीं पै रोष
बार बार देते हो अकारण उलाहना

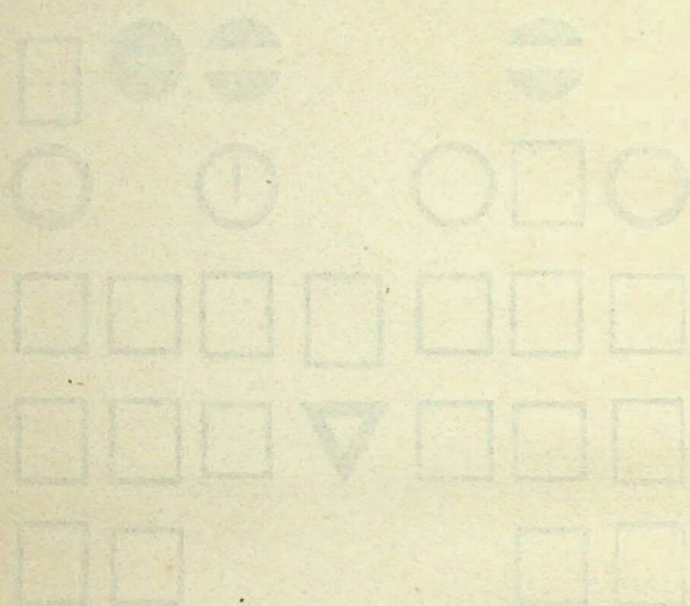
पाण्डवों से प्रेम होने पै भी प्रेरण पण से मैं
आपके सुयश की ही करता हूँ चाहना
नर हूँ न कोई पशु हूँ, गुणों पै रीझूँ क्यों न
करता है शूरमा की शत्रु भी सराहना

पार्थ योद्धा प्रबल कृष्ण भी साथ में
सारथी कार्य में जो कि निष्णात है
रोके रुकता न रथ आगे जाता निकल
अश्व गति कर रही वायु से बात है
आ रही सैन्य है पाण्डवों की निकट
वृद्धता से शिथिल होगया गात है
सैन्य रोकूँ इधर पार्थ को भी उधर
ऐसी मुझमें कहां की करामात है

चाहते हम सदा ही भलाई रहे
पर, बुराई मिली श्रेय पाये नहीं
चूर मद में रहे फिर हमारी भली
बात पर भी कभी ध्यान लाये नहीं
फँस गये आह ! ऐसे विकट जाल में
चैन से चार क्षण भी बिताये नहीं
पिस के सूरमा बने हम जिन्होंके लिये
दृष्टि में फिर भी उनकी समाये नहीं
□□



परिशिष्ट



आर्य भजनोपदेशक

श्री पन्नालाल जी पीयूष की जानकारी एवं प्रयास से कुछ भजोपदेशकों की सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

पुराने भजनोपदेशक

१. श्री बस्तीराम जी प्रज्ञाचक्षु, हरियाणा
२. " चौधरी तेजसिंह जी, उत्तर प्रदेश
३. " ठाकुर नत्थासिंह जी, उत्तर प्रदेश
४. " आत्माराम जी, उत्तर प्रदेश
५. " ठाकुर श्रवण सिंह जी, उत्तर प्रदेश
६. " नवलसिंह जी, उत्तर प्रदेश
७. " बलदेव जी, उत्तर प्रदेश
८. " वासुदेव जी, उत्तर प्रदेश
९. " सिद्ध गोपाल जी, उत्तर प्रदेश
१०. " सन्तरामजी, पंजाब
११. " कुँवरपालजी, उत्तर प्रदेश
१२. " चन्द्रगुप्त जी, उत्तर प्रदेश
१३. " ठाकुर सिंह जी, उत्तर प्रदेश
१४. " पण्डित ज्ञानेन्द्र जी, उत्तर प्रदेश
१५. " भगत मंगतराम जी, पंजाब
१६. " छज्जुराम जी प्रेमी,
१७. " देशबंधु जी, पंजाब
१८. " स्वामी सोमेश्वरदत्त जी, हरियाणा
१९. श्री चौधरी कालुराम जी, हरियाणा
२०. " चौधरी सुखराम जी, हरियाणा
२१. " महात्मा कालुराम जी, राजस्थान
२२. " चौधरी जीवनराम जी, राजस्थान
२३. " स्वामी अमृतानंद जी, उत्तर प्रदेश
२४. " घीसाराम जी, उत्तर प्रदेश
२५. " श्याम शर्मा जी, उत्तर प्रदेश
२६. " पं. महाराणी शंकर शर्मा गुजरात
२७. " दातार जी, गुजरात
२८. " पं. गोकुलदत्त जी, उत्तर प्रदेश
२९. " ठाकुर रघुवीर सिंह जी, राजस्थान
३०. " ठाकुर गंगासिंह जी, उत्तर प्रदेश
३१. " इन्द्र वर्मा जी, उत्तर प्रदेश
३२. " पं. ऋषिराम जी, उत्तर प्रदेश
३३. " धर्मसिंह जी त्यागी, उत्तर प्रदेश
३४. " सुखवासी लाल जी प्रज्ञाचक्षु, उत्तर प्रदेश
३५. " मुंशी सिंह जी आजाद, उत्तर प्रदेश
३६. " पं. बंसीलाल जी व्यास, हैदराबाद स्टेट

[लगभग सभी ऊपर लिखित भजनोपदेशक आजीवन प्रचार कार्य करते हुए स्वर्गवासी हो गए हैं।]

वर्तमान भजनोपदेशक

१. श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, उत्तर प्रदेश
२. " प्रकाशचंद्र जी कविरत्न, राजस्थान
३. " कुंवर जोरावरसिंह जी, उत्तर प्रदेश,
४. " श्रीमती प्रभावती जी, गुजरात
५. " पं० नंदलाल जी आर्य मिशनरी, पंजाब
६. " ठाकुर बिन्देश्वरी सिंह जी, उत्तर प्रदेश
७. " पन्नासिंह जी, उत्तर प्रदेश
८. " चौधरी खजानसिंह जी, उत्तर प्रदेश
९. " वीरेन्द्रसिंह जी वीर धनुर्धर, उत्तर प्रदेश
१०. " शीतलचंद्र जी शीतल, राजस्थान
११. " राजपाल जी, पंजाब
१२. " मदनलाल जी, पंजाब
१३. " ब्रह्मानंद जी, उत्तर प्रदेश
१४. श्री दयाचंद्र जी, उत्तर प्रदेश
१५. " देवेन्द्र जी तूफान, उत्तर प्रदेश
१६. " कुंवर महिपाल जी, उत्तर प्रदेश
१७. " वेदपाल जी, उत्तर प्रदेश
१८. " नरेन्द्र सिंह जी, उत्तर प्रदेश
१९. " शोभाराम जी प्रेमी, उत्तर प्रदेश
२०. " जगदीश जी प्रवासी, बम्बई
२१. " नंदलाल जी, उत्तर प्रदेश
२२. " किशोरी लाल जी उत्तर प्रदेश
२३. " आशानंद जी, दिल्ली
२४. " सत्यपाल जी मधु, अंबाला छावनी
२५. " ताराचंद जी, हरियाणा
२६. " वीर भान जी, उत्तर प्रदेश

२७. श्री रामचंद्र जी त्यागी, उत्तर प्रदेश
२८. " रामस्वरूप जी आर्य मुसाफिर, उत्तर प्रदेश
२९. " स्वामी योगानंद जी, मध्य प्रदेश
३०. " शिवनाथसिंह जी त्यागी, उत्तर प्रदेश
३१. " धर्मराज जी, उत्तर प्रदेश
३२. " वीरेंद्र जी, उत्तर प्रदेश
३३. " मुखराम जी उत्तर प्रदेश
३४. " हरिसिंह जी, उत्तर प्रदेश
३५. " मुकुंदराम जी, उत्तर प्रदेश
३६. " कांतिचंद्र जी, उत्तर प्रदेश
३७. " चुन्नीलाल जी आर्य, हरियाणा
३८. " ठाकुर महिपाल सिंह जी, उत्तर प्रदेश
३९. " चौधरी पृथ्वीसिंह जी बेधड़क, हरियाणा
४०. " चौधरी बलबीर जी बेधड़क, उत्तर प्रदेश
४१. श्री हरिश्चंद्र जी, दिल्ली
४२. " देवकी नंदन जी, दिल्ली
४३. " ठाकुर उदयसिंह जी
४४. " रामरीझन जी शर्मा कलकत्ता
४५. " पं० वृजलाल जी शास्त्री, दिल्ली
४६ " पं० देशराज जी, उत्तर प्रदेश
४७. " मुंशीलाल जी, हरियाणा
४८. " इंद्रदेव जी, राजस्थान
४९. " पं० विद्याशंकर जी शास्त्री, राजस्थान
५०. " लक्ष्मीनारायण जी प्रेमी, मध्य प्रदेश
५१. " रामदेव जी आर्य, बिहार
५२. " मुन्नालाल जी मिश्र, हैदराबाद
५३. " प्रेमचंद जी प्रेम, हैदराबाद
५४. " नरदेव जी स्नेही, हैदराबाद

[ऊपर लिखित भजनोपदेशकों के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्ति इसी पुण्य कार्य में जुटे हुए हैं। सीमित साधनों के कारण सबके नाम व पते न तो दिए ही जा सके और न ही हमें प्राप्त हो सके हैं।]

कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्रजी का शिष्य-मण्डल

(१) श्री धर्मदत्त आनन्द सर्वांगपुर पो० बरबर जि० सीतापुर, अच्छे कवि एवं प्रचारक हैं।
(२) श्री पं० बाबूराम जी ब्रह्मकवि राम गंज अजमेर, अच्छे कवि संगीतज्ञ, वक्ता एवं योग साधक हैं।
(३) श्री विश्वनाथ जी वर्मा अजमेर कवि संगीतज्ञ एवं विचारक हैं।
(४) श्री ओंकारलाल जी महेन्द्रगढ़ भीलवाड़ा, भजनों के साथ गायन वादन नृत्य के आचार्य हैं।
(५) श्री पन्नालाल जी पीयूष सतुचार उदयपुर, वर्तमान अजमेर, सिद्धांत शास्त्री संगीताचार्य।
(६) श्री देवदत्त नादमूर्ति भूपालपुरा उदयपुर, कवि, संगीतकार, प्रो० म० भू० कालेज'।
(७) श्री पं० धर्मवीर जी कलौंदा जि० बुलन्द शहर उ० प्र०, अच्छे कर्मठ प्रचारक हैं।
(८) महेशचन्द्रजी चण्डोकी साधु आश्रम अलीगढ़ संगीतज्ञ अच्छे भजनोपदेशक।
(९) श्री हरवंशलाल जी हँस, आर्य प्रतिनिधि सभा जालंधर पंजाब, कवि व प्रचारक।
(१०) श्री गणेशदत्त जी आर्य प्रधानाध्यापक प्र० वि० सागवाड़ा डूंगरपुर राज०।
(११) श्री किशनलाल जी मास्टर अजमेर, संगीतज्ञ, शिक्षक दयानन्द बाल सदन।
(१२) श्री अनन्त राव जी अजमेर संगीतज्ञ भजनगायक अध्यापक वि० हा० से० स्कूल।
(१३) श्री भवानी सिंह जी एम० ए०, अध्यापक, दोहद गुजरात।
(१४) श्री कन्हैयालाल जी वैश्व:अजमेर, संगीतज्ञ और अच्छे सेवक।
(१५) श्री इन्द्रदेव पीयूष बी० ए० एम० म्युजिक, अध्यापक केन्द्रीय विद्यालय उदयपुर।
(१६) गायत्री कुमारी संगीत विशारद डुंगरपुर राज०
(१७) श्री स्नेहलता शर्मा अजमेर एम० म्युजिक आकाशवाणी गायिका अध्यापिका सरस्वती विद्यालय
इसके अतिरिक्त अनेक बालक बालिकाओं और आर्य प्रेमी जनों को भजन गीत काव्य आदि की शिक्षा देते रहते हैं।

लेखक-परिचय

—पं० मदनमोहन विद्यासागर

गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक, आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध वक्ता, अनेक ग्रन्थों के यशस्वी प्रणेता—तथा चिन्तनशील विद्वान।

—श्री गुरुदत्त

शताधिक उपन्यासों के प्रणेता, आयुर्वेद—विशेषज्ञ तथा हिन्दी के ख्यातिप्राप्त चिंतक, विचारक तथा लेखक।

—पं० जगत्कुमार शास्त्री

दयानन्द उपदेशक विद्यालय, लाहौर के स्नातक, स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी के सुख्यात शिष्य, आर्यसमाज के लेखक तथा वक्ता।

—पं० नरेन्द्र

हैदराबाद (दक्षिण) में सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक चेतना के पुरोधा, आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण के सर्वविदित नेता तथा ओजस्वी वक्ता।

—डा० सुषमापाल

आर्यसमाज की नई पीढ़ी की प्रसिद्ध लेखिका तथा ओजस्वी वक्ता विदुषी।

—श्री ओमप्रकाश त्यागी

आर्यसमाज के सर्वोच्च अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के मन्त्री, आर्य वीर दल के प्रधान संचालक, ओजस्वी वक्ता तथा विचारक।

—श्री धर्मदत्त 'आनन्द'

उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रमुख भजनोपदेशक, उत्कृष्ट कवि एवं गायक।

—प्रो० हरिश्चन्द्र रेणापुरकर

संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान्, देववाणी के रससिद्ध कवि तथा लेखक। सम्प्रति गवर्नमेंट कॉलेज गुलबर्गा में संस्कृत के प्राध्यापक।

—डा० भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज की नई पीढ़ी के प्रसिद्ध विद्वान अनुसंधाता, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के मन्त्री, परोपकारिणी सभा के संयुक्त मन्त्री तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री, कुशल लेखक तथा ओजस्वी वक्ता।

—श्री महेन्द्र देव शास्त्री

शास्त्रार्थ महारथी स्व. पं. मुरारीलाल जी शास्त्री के सुपुत्र—मुरारी फाइन आर्ट वर्क्स दिल्ली के संचालक।

—डा० अभयदेव शर्मा

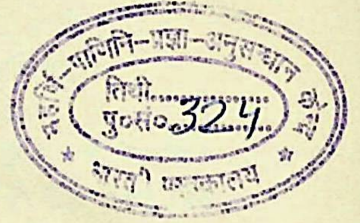
वेद के अन्वेषक विद्वान्, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर में संस्कृत के प्राध्यापक, 'सविता' मासिक के सम्पादक ।

—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु

आर्यसमाज के लगनशील, कर्मठ, युवक नेता, इतिहास के ख्यातनामा विद्वान्, सम्प्रति डी० ए० वी० कॉलिज अबोहर में प्राध्यापक ।

—प्रो० जयदेव आर्य

संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान्, आर्यसमाज की नई पीढ़ी के युवा लेखक और चिन्तक ।



श्री हरनारायण जी भटनागर

कविरत्न जी के बाल साथी, अवकाश प्राप्त फोरमेन रेल्वे, वर्तमान अर्बन बैंक के वाइस प्रेसिडेन्ट, भारत के संगीत क्षेत्र में, हरजी भैय्या के नाम से प्रसिद्ध ।

—पं० विद्याशंकर जी

भू. पू० चित्रपट संगीत निर्देशक, बाईबिलाचार्य, हाफिजे कुरान, आर्य समाज के अच्छे उपदेशक ।

—श्री माईल बदायूनी

ईसाई मिशन के व्यक्ति, अच्छे शायर हैं, वर्तमान में मदार सेनीटोरियम (अजमेर) में चिकित्सा विभाग में हैं।

—श्री कन्हैयालाल जी मधुकर

कविरत्न पं० प्रकाशचन्द्र जी के शिष्य, वर्तमान में अजमेर संगीत महाविद्यालय के आचार्य ।

—श्री कन्हैयालालजी सेठिया

अच्छे उद्योगपति, साहित्यकार, अनेक पुस्तकों के प्रणेता ।

—श्री जयसिंह गायकवाड़

आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश के सुयोग्य मंत्री, नई पीढ़ी के युवक विद्वान् तथा प्रशंसित लेखक, आर्य सेवक मासिक के सम्पादक ।

—पं० प्रकाशवीर शास्त्री

भूतपूर्व संसद सदस्य, प्रसिद्ध वाग्मी विद्वान् तथा आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रधान ।

—श्री सत्यव्रत साहित्यरत्न

कर्मवीर भाई वंशीलाल जी के द्वितीय सुपुत्र, संस्कृत व हिन्दी के अधिकारी विद्वान्, व्याकरणाचार्य तथा नई पीढ़ी के दक्ष लेखक, संप्रति हिन्दी महाविद्यालय हैदराबाद के हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक ।

—प्रो० उपेन्द्र शर्मा

पं० जयदेव जी वेदालंकार, वेदभाष्यकर्त्ता के सुयोग्य पुत्र, सफल उपन्यासकार, युवा चिन्तक, संप्रति दयानन्द कॉलेज अजमेर में अंग्रेजी के प्राध्यापक ।

—श्री रमेश चन्द्र शास्त्री

आर्यसमाज के जाने-माने विद्वान् लेखक तथा वक्ता, सम्प्रति दयानन्द कॉलेज अजमेर में संस्कृत के प्राध्यापक ।

—श्री भूदेवजी शास्त्री

हिन्दी व संस्कृत के अधिकारी, विद्वान्, लेखक एव वक्ता, संप्रति जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्राध्यापक ।

—श्री वेदभूषणजी

कर्मवीर भाई वंशीलालजी के ज्येष्ठ पुत्र, कुशल संगठक, ओजस्वी वक्ता एवं लेखक, दक्षिण में आर्य समाज के प्रगतिशील युवा कार्यकर्त्ता.

—श्री सुरेन्द्र प्रकाश शर्मा

लगनशील आर्य कार्यकर्त्ता, कुशल प्रबंधक एवं विचारशील लेखक व कवि, संप्रति वैदिक यंत्रालय अजमेर के प्रबंधक ।

—श्री पं. ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री

गुरुकुल के स्नातक, सुवक्ता और आर्य समाज के क्षेत्र में अच्छे कवि ।

—श्री कृष्ण लालजी कुसुमाकर

सुवक्ता और अच्छे कवि, आपने वेदमंत्र तथा ईशोपनिषद का पूरा काव्यमय अनुवाद किया है ।

—श्रीमती सुनीति देवी

डी. ए. वी. हाई स्कूल अजमेर के प्रधानाध्यापक श्री मंजुनाथ जी की विदुषी पत्नी, प्रभावशाली लेखिका तथा वक्ता ।

—वैद्य ब्रह्मानंद जी त्रिपाठी

भारत-प्रसिद्ध कुशल चिकित्सक, आर्यसमाज के चिंतनशील वयोवृद्ध अनुभवी लेखक, वक्ता, संस्कृत-हिन्दी के अधिकारी विद्वान, 'स्वास्थ्य' पत्रिका के सम्पादक ।

—श्री पन्नालाल जी पीयूष

श्री प्रकाश जी के सुयोग्य शिष्य, आर्य समाज के लगनशील, मधुर-कंठी संगीतज्ञ, गायन-पटु भजनोपदेशक तथा प्रकाशजी के अनन्य सेवक, इन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम अभिनंदन समारोह एवं ग्रंथ है ।

—कविराज श्री धर्मसिंह जी कोठारी

सफल चिकित्सक, विचारशील लेखक तथा महर्षिकृत ग्रंथों के अधिकारी अध्येता ।

—डॉ. सूर्यदेव जी शर्मा

आर्य जगत के प्रख्यात विद्वान लेखक, वक्ता, तथा कई पुस्तकों के प्रणेता, सुकवि, आर्य समाज अजमेर के मंत्री ।

—श्री रमाशंकर जी शास्त्री

संस्कृत, हिन्दी के गंभीर विद्वान लेखक, संप्रति दयानंद विद्यालय अजमेर में अध्यापक ।

—श्री रामचन्द्र जी आर्यमुसाफिर

आर्य समाज के वयोवृद्ध, लगनशील कर्मठ आर्य कार्यकर्त्ता, प्रभावी वक्ता एवं लेखक, चिकित्सा क्षेत्र में भी गतिशील।

—श्री सदाविजय आर्य

कर्मवीर भाई बंशीलाल जी (हैदराबाद स्टेट निवासी) के कनिष्ठ पुत्र युवापीढ़ी के ओजस्वी वक्ता, लेखक तथा कुशल संगठक एवं छायाकार, साहित्यिक क्षेत्र के सुपरिचित संपादक तथा कलाप्रेमी, संप्रति, दयानंद कॉलेज, अजमेर में हिन्दी प्राध्यापक।

—कु० सुशीला आर्या

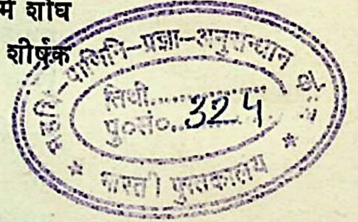
आर्यसमाज की लब्ध प्रतिष्ठ विदुषी, लेखिका तथा कवियित्री। सम्प्रति महाकवि मेधाव्रताचार्य के काव्य ग्रन्थों पर शोध कार्य में संलग्न हैं।

—श्री क्षेमचन्द्र सुमन

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर प्रबंध समिति के प्रधान, हिन्दी के अग्रणी लेखक, कवि तथा समालोचक, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, मेरठ विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य भी।

—पं० विश्वनाथ शास्त्री

रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर (म.प्र.) के पुस्तकालयाध्यक्ष, आर्यसमाज में शोध की प्रवृत्ति को देखने के इच्छुक, शास्त्रीजी ने ऋषि दयानन्द का जीवनी साहित्य शीर्षक से खोज पूर्ण पुस्तक लिखी है।



—श्री रमाकांत दीक्षित

आर्य विद्वान्, प्रसिद्ध कवि तथा श्री प्रकाशचन्द्र जी कविरत्न के परम स्नेही।

—पं० युधिष्ठिर मीमांसक

संस्कृत साहित्य एवं भाषा के प्रकाण्ड पंडित, ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के अध्येता, आर्य जगत् के गिने-चुने मनीषियों में से एक।

—श्री महादेव ईनाणी

ऋषि के परम भक्त, आर्य कार्यकर्त्ता, प्रकाश जी के परम स्नेही।

—स्वामी श्री ओमानन्द जी सरस्वती

भूतपूर्व आचार्य भगवान देवजी, गुरुकुल झज्झर के संचालक, ऐतिहासिक सामग्री के संग्रहकर्त्ता, संस्कृत के विद्वान, कर्मठ कार्यकर्त्ता, लेखक एवं प्रभावशाली वक्ता।

—श्री रामनारायण चौधरी

प्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्त्ता, स्वतन्त्रता-पूर्व से समाज-सेवा कार्य में संलग्न, विचारक एवं वक्ता.

—श्री ईश्वरी प्रसाद

'तपोभूमि' मासिक के सम्पादक, अनेक ग्रंथों के प्रणेता तथा सत्यप्रकाशन, मथुरा के संचालक।

—*पं० सत्यप्रिय व्रती*

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् एवं वक्ता।

—*पं० शिवकुमार शास्त्री*

संसद सदस्य, आर्यसमाज के प्रख्यात नेता और विद्वान् वक्ता, सम्प्रति आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान।

—*श्री कस्तूरचन्द घनसार*

आर्यसमाज के उदीयमान कवि। आर्यसमाज पीपाड़ (राजस्थान) के उपप्रधान।

—*पं० बिहारीलाल शास्त्री, काव्यतीर्थ*

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी, तार्किक तथा विद्वान् वक्ता।

—*पं० आनन्द प्रिय*

आर्यसमाज के लब्ध प्रतिष्ठ नेता, गुजरात प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष तथा आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा के कुलपति, शिक्षाशास्त्री और विचारक।

—*स्वामी ओमभक्त परिव्राजक*

आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के यशस्वी उपदेशक, आर्यसमाज के प्रति समर्पित व्यक्तित्व वाले मिशनरी।

—*स्वामी वेदानन्द वेदवागीश*

गुरुकुल चित्तौड़गढ़ के सम्मानित स्नातक, गुरुकुल झज्जर में अध्यापक तथा सुधारक मासिक के सम्पादक।

—*डॉ० लक्ष्मीनारायण गुप्त*

जुबली कालेज, लखनऊ में हिन्दी के प्राध्यापक–'आर्यसमाज की हिन्दी भाषा और साहित्य को देन' विषय पर शोध कार्य किया है।

—*पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण*

आर्यसमाज हनुमान रोड़ नई दिल्ली के विद्वान् पुरोहित तथा प्रसिद्ध वक्ता।

—*डॉ० ओम प्रकाश वेदालंकार*

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के विद्वान् स्नातक, सम्प्रति गवर्नमेंट कॉलेज भरतपुर में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं।

—*शुभैषी वानप्रस्थी*

आर्यसमाज के कुशल एवं कर्मठ कार्यकर्ता तथा सेवक।

—*आचार्य रामानन्द शास्त्री*

बिहार प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक तथा प्रसिद्ध वक्ता।

—*पं० जयदत्त शास्त्री*

संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान्, देववाणी में काव्य सृजन की अद्भुत क्षमता रखने वाले शास्त्री जी संस्कृत के प्राध्यापक हैं।

—श्री गणेश दत्त आर्य
कविरत्न प्रकाश जी के शिष्य, प्राथमिक विद्यालय सागवाड़ा के प्रधानाध्यापक।

—पं० विद्या भास्कर शास्त्री
आर्यसमाज के प्रसिद्ध वक्ता तथा कवि।

—श्री गणपतलाल डांगी
आकाशवाणी जयपुर के राजस्थानी विभाग के नियामक, कवि, गायक, कलाकार तथा नाट्यकार।

—प्रो० उत्तमचन्द 'शरर'
आर्य समाज के प्रसिद्ध कवि, लेखक, ओजस्वी वक्ता तथा विचारक।

—पं० भगवान देव शर्मा
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमंत्री आर्य समाज के उदीयमान नवयुवक नेता।

—पं० वाचस्पति शास्त्री
गुरुकुल महा विद्यालय, ज्वालापुर के प्रतिष्ठित स्नातक विद्याभास्कर, व्याकरणाचार्य उपाधि धारी। आर्य समाज के अद्वितीय वक्ता।

—श्री पं० रामेश्वर दयालु गुप्त
श्वेतवाद के सम्पादक एवं विचारक

□□


लिपि
पु०सं० 324

